# द्विवेदी-युगीन खण्डकाव्य

शिक्षा विभाग की पुस्तकीय सहायता की
परियोजना के अन्तर्गत पुस्तकालय
लोक-शिक्षा विभाग के सौजन्य से

लेखिका
डा० (श्रीमती) सरोजिनी अग्रवाल
एम० ए०, पी-एच० डी०

सुलभ प्रकाशन

प्रकाशक :
सुलभ प्रकाशन,
१७, अशोक मार्ग, लखनऊ

●

प्रथम संस्करण, १९८७

●

© डॉ० (श्रीमती) सरोजिनी अग्रवाल

●

मूल्य : १०० रुपये

●

मुद्रक :
[illegible]

# प्राक्कथन

आधुनिक हिन्दी-काव्य के विकास में द्विवेदी-युग की प्रमुख भूमिका रही है। इसी युग में खड़ी बोली काव्य की भाषा बनी और विभिन्न काव्यरूपों का प्रारम्भ और विकास हुआ। इसलिए इस युग के कवियों के कृतित्व का ऐतिहासिक महत्त्व है। द्विवेदी-युगीन कवियों के अथक प्रयास के परिणामस्वरूप खड़ी बोली न केवल काव्य का माध्यम बनी, अपितु काव्य-भाषा के रूप में उत्तरोत्तर विकसित होती हुई, वह आज के सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों, प्रश्नों और स्थितियों की अभिव्यक्ति में पूर्ण सक्षम दिखलाई पड़ती है। काव्य-रूपों की दृष्टि से आधुनिक हिन्दी कविता के विकास में द्विवेदी युग की सबसे बड़ी देन इस काल में लिखे गये प्रबन्ध काव्य हैं। अधिकांश कवियों ने युग को वाणी देने के लिये खण्डकाव्यों की रचना की। इस काल की कृतियाँ इसकी प्रमाण हैं। इनमें से कई खण्डकाव्य तो अपने काव्य-वैशिष्ट्य के कारण बहुचर्चित और प्रसिद्ध हुए, किन्तु अनेक खण्डकाव्य ऐसे हैं जिनका न तो अब तक साहित्य के इतिहास में उल्लेख ही हुआ है और न विद्वानों द्वारा उनकी चच ही की गई है।

बचपन से ही मेरा कविता के प्रति विशेष लगाव रहा। मैं खड़ी बोली में लिखती हूँ और मुझे उससे विशेष प्रेम है, अतः लगा कि खड़ी बोली को परिष्कृत करने, उसके विकास और प्रसार में जिन रचनाओं ने योग दिया है, उन पर मैं काम करूँ। प्रस्तुत ग्रन्थ इसी दिशा का एक विनम्र प्रयास है। यह प्रबन्ध कुल दस अध्यायों में विभक्त है।

प्रथम अध्याय में प्राच्य और पाश्चात्य दोनों प्रकार के काव्य-मतों के आधार पर खण्डकाव्य के स्वरूप को निर्धारित करने का प्रयास किया गया है।

द्वितीय अध्याय में इस युग की काल-सीमा के विषय में विभिन्न विद्वानों की सम्मतियाँ देकर अपना दृष्टिकोण भी सामने रखा गया है। द्विवेदी-युग को पृष्ठभूमि के रूप में भारतेन्दु-युगीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक स्थितियों एवं सांस्कृतिक पुनर्जागरण का उल्लेख भी किया है। मैंने यहाँ तत्कालीन उन परिवेश और उन परिस्थितियों की भी चर्चा की है जिन्होंने इस युग के काव्य को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया है।

तृतीय अध्याय में इस युग के मौलिक और अनूदित खण्डकाव्यों का कालक्रमानुसार परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत किया गया है।

चतुर्थ, पंचम और षष्ठ अध्यायों में कथा-स्रोतों के आधार पर क्रमशः

पौराणिक, ऐतिहासिक एवं काल्पनिक खण्डकाव्यों का स्वतंत्र विवेचन किया गया है। द्विवेदी-युग को सन् १९०० ई० से सन् १९२० ई० तक मानते हुए भी मैंने सन् १९२३ तक प्रकाशित खण्डकाव्यों को अपने अध्ययन का उपजीव्य बनाया है। क्योंकि किसी एक प्रकार के लेखन की समाप्ति किसी व्यक्ति की मृत्यु की भाँति एक दिन और एक रेखांकित समय में ही नहीं हो जाती। साथ ही किसी पुस्तक के लिखे जाने के उपरान्त उसके प्रकाशन में दो तीन वर्ष का समय लग जाना सामान्य बात है। मुझे प्रसन्नता है कि इस ग्रन्थ में मुझे अपने पूज्य पिताजी श्री रामशरणलाल गोविल, जिन्होंने साहित्य सृजन रामशरण गुप्त 'शरण' के नाम से किया, के एक खण्डकाव्य 'पतिव्रतादर्श' को भी सामने लाने का सौभाग्य मिला। कुछ विख्यात कवियों जैसे मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, रामनरेश त्रिपाठी, जगन्नाथ प्रसाद 'रत्नाकर', सियारामशरण गुप्त पर स्वतंत्र रूप से कार्य हो चुका है, अतः पिष्टपेषण से बचने के लिये मैंने उनके बहुचर्चित खण्डकाव्यों की विवेचना बहुत संक्षेप में की है।

सप्तम अध्याय में कुछ ऐसे खण्डकाव्यों की आलोचना की गई है जिनमें खण्डकाव्यों की अन्य समस्त विशेषताओं के होते हुए भी कथा-तत्व अति सूक्ष्म हैं। ऐसी कृतियों को मैंने निर्बन्ध-खण्डकाव्य की संज्ञा दी है।

अष्टम एवं नवम् अध्यायों में समग्र रूप से खण्डकाव्यों की रस-योजना एवं अभिव्यंजना कौशल पर विचार किया गया है। कुछ विशिष्ट उद्देश्यों को लेकर लिखे गये इन सीमित खण्डकाव्यों ने काव्य के भाव-सौंदर्य और कला-जगत को सम्यक् रूप से कितना प्रभावित किया, क्या वैशिष्ट्य और उपलब्धियाँ प्रदान कीं, क्या कमियाँ और असमर्थताएँ रहीं, कितनी अपेक्षाएँ पूर्ण हुईं आदि की सामान्य जानकारी और उसके समष्टिगत प्रभाव से अवगत होने के लिये ही इन अध्यायों का समायोजन किया गया है।

अन्तिम अध्याय में उपसंहार स्वरूप सम्पूर्ण प्रबन्ध के सार को प्रस्तुत किया है। द्विवेदी-युगीन खण्डकाव्यों में समाहित सामान्य प्रवृत्तियों की चर्चा करते हुए परवर्ती काव्यों पर, इन प्रवृत्तियों के प्रभाव को रेखांकित करने का प्रयास है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में आकलित अनेक अज्ञात और अल्पज्ञात खण्डकाव्यों को उपलब्ध करने के लिये मुझे काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, राष्ट्रीय पुस्तकालय कलकत्ता, आचार्य नरेन्द्रदेव एवं टैगोर पुस्तकालय लखनऊ आदि में रुककर विशेष अध्ययन करना पड़ा है। इन सभी संस्थानों के अधिकारियों एवं कर्मचारियों की सद्भावना को मैं कभी विस्मृत नहीं

कर सकती । इस सन्दर्भ में मुझे सर्वश्री डा० कुं० चन्द्रप्रकाश सिंह, डा० रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', डा० शिवमंगल सिंह 'सुमन', डा० रामकुमार वर्मा, आ० महादेवी वर्मा, डा० भगीरथ मिश्र, डा० विश्वनाथ प्रसाद शर्मा, गुलाब खण्डेलवाल, पं० विश्वनाथ मिश्र, पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी प्रभृति सम-सामयिक विद्वानों से भेंटवार्ता करने का सौभाग्य भी मिला है। सुविख्यात साहित्यकार श्री उमाकान्त मालवीय से मुझे जो प्रेरणा मिली, उसके लिये मैं उनकी ऋणी हूँ।

काशी विद्यापीठ में रीडर आदरणीय डा० ब्रजविलास श्रीवास्तव का सामग्री संचयन आदि में समय-समय पर जो अपूर्व सहयोग मिला, उसके प्रति आभार व्यक्त करने के लिये मेरे पास शब्द नहीं हैं।

लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग की अध्यक्ष डा० (श्रीमती) सरला शुक्ल एवं रीडर डा० रामफेर त्रिपाठी जिन्होंने मुझे निरन्तर अपना सहज स्नेह, अमूल्य समय और उत्प्रेरक मार्ग दर्शन दिया, के प्रति मैं अकिंचन कृतज्ञता-ज्ञापन में अक्षम हूँ।

आरंभ से अन्त तक मेरे पतिदेव श्री विनोद चन्द्र अग्रवाल का जो सहारा इस कार्य में मुझे मिला, उसके लिये क्या कहूँ—आभार प्रदर्शन तो उसका पासंग मात्र भी नहीं है।

अन्त में, अपने उन सभी हितैषी महानुभावों के प्रति मैं विनम्र धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ जिन्होंने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से रंचमात्र भी मेरे इस अनुष्ठान में सहायता दी है।

आलोच्य खण्डकाव्यों के विषय में जितनी सामग्री मैंने एकत्र की, उसका पूरा उपयोग सीमाओं के कारण मैं नहीं कर पाई, इसका मुझे खेद है, फिर भी मुझे हर्ष है कि कतिपय अज्ञात और अल्पज्ञात खण्डकाव्यों को मैं अन्धकार से प्रकाश में ला सकी। शोध चिर-तृष्णा है, तृप्ति नहीं। मुझे विश्वास है कि मेरा ज्ञान-विषयक शोध निरन्तर चलता रहेगा और मुझे पुनः किसी नूतन शोध के परिपक्व फल के साथ सुधी पाठकों के समक्ष उपस्थित होने का सुअवसर मिलेगा।

**सरोजिनी अग्रवाल**

वसन्त पंचमी : संवत् २०३९ वि०
'अभिवादन' बाल्दा कालोनी,
निशातगंज, लखनऊ—७

# विषय-सूची

●

प्रथम अध्याय

# खण्ड काव्य : स्वरूप-विवेचन

**काव्य का स्वरूप**

भारतीय काव्यशास्त्र में 'काव्य' शब्द का जिस व्यापक अर्थ में प्रयोग किया गया है, उस अर्थ में हिन्दी में यह शब्द प्रयुक्त नहीं होता। संस्कृत का 'काव्य' कुछ अंशों तक हिन्दी के 'साहित्य' का समानार्थी है। उसके अन्तर्गत न केवल गद्यात्मक और पद्यबद्ध रचनाओं का समावेश है, बल्कि नाटक-नाटकादि सभी रूपक भी उसके अन्तर्गत आ जाते हैं। क्षेत्र के इसी विस्तार के कारण संस्कृत के आचार्यों ने काव्य को दो वर्गों—दृश्य-काव्य और श्रव्य-काव्य में वर्गीकृत किया। इस वर्गीकरण का आधार प्रभाव अथवा उद्देश्य की भिन्नता न होकर रस-ग्रहण के ऐन्द्रिक आधार की भिन्नता है। रूपकों के आस्वादन का मुख्य करण आँख है, जबकि श्रव्य काव्यों—महाकाव्य, कथा-काव्य, आख्यायिका आदि का आस्वादन प्राचीन काल में सहृदय सुनकर करता था। आज के यान्त्रिक युग में मुद्रण व्यवस्था हो जाने पर श्रव्य-काव्य मुख्यतः पाठ्य हो गये हैं, यद्यपि उनके श्रव्य होने की परम्परा अभी बिलकुल लुप्त नहीं हुई है। आज हिन्दी में 'काव्य' शब्द संस्कृत के व्यापक अर्थ में प्रयुक्त न होकर श्रव्य अथवा पाठ्य-काव्य के उस वर्ग या भेद तक सीमित है जो गद्य से भिन्न छन्दोबद्ध, पद्यात्मक या लयात्मक है।

**शास्त्रीय विवेचन**

संस्कृत की शास्त्रीय परम्परा में श्रव्य-काव्य के पद्य-मय और गद्य-मय दो भेद किये गये—

श्रव्यं श्रोतव्य मात्रं तत्पद्य गद्यमयं द्विधा
छन्दोबद्ध पदं पद्यं........................ ।[1]

हिन्दी में व्यवहृत काव्य के अन्तर्गत 'छन्दोबद्ध पदं पद्यं' ही आ सकता है। प्रस्तुत विवेचन 'खण्ड-काव्य' से सम्बद्ध है। संस्कृत और हिन्दी दोनों की शास्त्रीय परम्परा में यह काव्य भेद श्रव्य काव्य के छन्दोबद्ध अथवा किसी न किसी प्रकार के लयात्मक पद-विन्यास से युक्त रचनाओं के वर्गीकरण के

---

१. साहित्य दर्पण : कविराज विश्वनाथ—६।३१३-३१४।

भीतर आता है। संस्कृत काव्य शास्त्र में 'खण्ड काव्य' शब्द का प्रयोग सर्व-प्रथम कविराज विश्वनाथ ने अपने 'साहित्य-दर्पण' में किया। कविराज विश्वनाथ के पूर्व, इस काव्य-भेद की अवधारणा किसी अन्य आचार्य के विवेचन में नहीं दिखाई पड़ती। 'साहित्य-दर्पण' संस्कृत की काव्य-शास्त्र परम्परा की अन्तिम कड़ी है जिसमें पूर्ववर्ती आचार्यों के मतों को ध्यान में रखते हुए साहित्य का व्यापक और सर्वांगीण शास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत किया गया है। यही कारण है कि हिन्दी की शास्त्रीय सैद्धान्तिक समीक्षा पर संस्कृत के अन्य ग्रन्थों की अपेक्षा इस ग्रन्थ का अधिक प्रभाव पड़ा। इसीलिए काव्य के एक प्रमुख भेद के रूप में ही 'खण्ड-काव्य' शब्द का प्रचलन और व्यवहार हिन्दी समीक्षा में विशेष रूप से हुआ। इसका यह भी अर्थ नहीं कि हिन्दी-समीक्षा या साहित्य-दर्पण के पूर्व काव्य-भेद पर विचार नहीं किया गया। भारतीय आचार्यों ने काव्य के वर्गीकरण पर विचार किया है। न केवल भारतीय, पाश्चात्य-काव्य शास्त्र में भी काव्य के कथ्य और शिल्प को ध्यान में रखकर उसका वर्गीकरण किया गया है। खण्ड-काव्य, काव्य के आधुनिक अर्थ में उसका एक रूप या भेद है, इसलिए उसके स्वरूप, लक्षण, परिभाषा तथा नामकरण के औचित्य को ठीक-ठीक समझने के लिए यहाँ संक्षेप में काव्य-भेद सम्बन्धी भारतीय और पाश्चात्य दृष्टिकोण पर विचार कर लेना प्रासंगिक होगा।

जैसा प्रारम्भ में कहा गया है—संस्कृत साहित्य शास्त्र में 'काव्य' आधुनिक 'साहित्य' शब्द का समानार्थी है, इसीलिए भामह ने प्रारम्भ में काव्य के गद्य और पद्य ये दो भेद किये—

शब्दार्थौ सहितौ काव्यं गद्य पद्यं च तद्द्विधा।[1]

इसके बाद भाषा, विषय और स्वरूप विधान के आधार पर उनका वर्गीकरण किया। भाषा के आधार रूप में संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश का उल्लेख करने के बाद प्रतिपाद्य विषय के आधार पर भामह ने काव्य के चार प्रकार माने—

१. देवादि चरित या वृत्त पर आश्रित (अर्थात् ख्यात वृत्त),
२. उत्पाद्य,
३. कलाश्रित,
४. शास्त्राश्रित।[2]

१. काव्यालंकार : भामह, १।१६।
२. वृत्त देवादि चरितशंसि चोत्पाद्य वस्तु च।
कला शास्त्राश्रयन्चेति चतुर्धाभिद्यते पुनः॥ —काव्यालंकार, १।१७

स्वरूप विधान के आधार पर भामह ने काव्य के निम्नलिखित भेद निर्धारित किये—

१. सर्गबद्ध, २. अभिनेय, ३. आख्यायिक, ४. कथा, ५. अनिबद्ध।[1] इसमें पद्यात्मक काव्य के दो भेद या प्रकार माने गये हैं—१. सर्गबद्ध, २. अनिबद्ध। स्पष्टतः यहां सर्गबद्ध से भामह का तात्पर्य महाकाव्य से है और अनिबद्ध मुक्तक का समानार्थी है। सर्गबद्ध और अनिबद्ध के लक्षण इसके प्रमाण हैं। सर्गबन्ध शब्द का महाकाव्य के लिए प्रयोग संस्कृत काव्य शास्त्र में रूढ़ हो गया है। भामह द्वारा सर्गबन्ध (महाकाव्य) के लिये दिये लक्षण ही परवर्ती आलंकारिकों द्वारा थोड़े बहुत परिवर्तन और परिवर्धन द्वारा स्वीकार किये गये हैं। भामह के अनुसार 'गाथा' (प्राकृत पद्य) और 'श्लोक' (संस्कृत पद्य) मात्र को अनिबद्ध कहते हैं—

'अनिबद्धं पुनर्गाथा श्लोक मात्रादि तत्पुनः'[2]

गाथा और श्लोक मात्र में 'मात्र' शब्द द्रष्टव्य है। स्पष्टतः इसमें निबद्धता या बन्धता अपेक्षित नहीं है। निबद्धता पूर्वापर प्रसंग और कार्य-कारण श्रृंखला की होती है। इसी के लिए 'प्रबन्ध' शब्द का भी प्रयोग किया गया जो आज अधिक प्रचलित है। यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि काव्य-भेद में एक भेद सर्ग से बद्ध काव्य है और दूसरा वह जिसमें किसी प्रकार या इस प्रकार की कोई बद्धता नहीं होती। यद्यपि सर्गबन्ध शब्द विशेषतः महाकाव्य के लिए आलंकारिकों द्वारा प्रयुक्त हुआ, किन्तु सामान्यतः देखा जाय तो सर्गों के अनुक्रम से युक्त काव्य सर्गबन्ध काव्य है। दूसरे शब्दों में घटनाओं या प्रसंगों के अनुक्रम (जो सर्गों में विभक्त कर दिये जायें) से युक्त काव्य सर्गबन्ध काव्य कहा जायेगा। अपने व्युत्पत्यर्थ में यह शब्द इसी अभिप्राय का द्योतक है, व्यवहार—रूढ़ि की बात और है। इस प्रकार भामह द्वारा प्रयुक्त सर्गबन्ध और अनिबद्ध को व्यापक अर्थ में प्रबन्ध और मुक्तक का पर्याय कहा जा सकता है। दण्डी ने मुक्तक, कुलक, कोश, संघात तथा इस तरह के पद्यों को सर्ग-बन्ध काव्य का अंश रूप कहा है। सर्गबन्ध से दण्डी का अभिप्राय भी महा-काव्य से है। दण्डी के बाद वामन ने काव्य के अन्य वर्गीकरण के साथ पद्यात्मक और गद्यात्मक दोनों प्रकार के काव्यों के दो भेद बताये हैं—

---

१. सर्गबन्धोऽभिनेयार्थं तथैवाख्यायिका कथे।
अनिबद्धन्च काव्यादि तत्पुनः पञ्चधोच्यते॥—काव्यालंकार, १।१८

२. काव्यालंकार, १।३०।

१. अनिबद्ध, २. निबद्ध। वामन ने इनके न तो अलग-अलग लक्षण बताये हैं और न उदाहरण दिया है। वामन के अनुसार ये रूप इतने प्रसिद्ध और ज्ञात हैं कि इनका लक्षण बताने की आवश्यकता नहीं है—

तदिदं गद्य पद्य रूपं काव्यमनिबद्धं निबद्धंच।
अनयो प्रसिद्धत्वालक्षणं नोक्तम् ।[1]

वामन ने इसके बाद 'क्रमसिद्धिस्त तो सुगुतंसवत' कहकर अनिबद्ध काव्य से प्रारम्भ करके निबद्ध-काव्य की सिद्धि का संकेत किया है। प्रसिद्धि के कारण लक्षण न देने की बात कहकर वामन ने स्पष्ट कर दिया है कि उनका अनिबद्ध-काव्य भामह के अनिबद्ध और दण्डी के मुक्तक से भिन्न नहीं है। आगे उन्होंने 'प्रबन्ध' शब्द का प्रयोग किया है। उन्होंने संदर्भों से युक्त प्रबन्ध में दशरूपक की श्रेष्ठता मानी है। यह बात उन्होंने 'संदर्भेषु दशरूपकं श्रेयः' की व्याख्या में कही है। स्पष्टतः प्रबन्ध सन्दर्भयुक्त के पर्याय या समानार्थी के रूप में प्रयुक्त है। इस तरह वामन ने काव्य की वही दो कोटियाँ मानी हैं जो पूर्व परम्परा से मान्य रही हैं। सर्गबन्ध के स्थान पर प्रबन्ध शब्द का प्रयोग निश्चित ही नया है और जैसा कि वामन ने बाद में उल्लेख किया है—इसके अन्तर्गत कथा, आख्यायिका, महाकाव्य आदि आते हैं। इस प्रकार संदर्भ की वांछा रखने वाली रचनाओं को वामन ने प्रबन्ध और सन्दर्भ से युक्त अपने आप में स्वतन्त्र और पूर्ण रचनाओं को अनिबद्ध माना है।

वामन के बाद रुद्रट का काव्य-भेद विवेचन विशेष महत्त्वपूर्ण है। रुद्रट ने कथाख्यायिका आदि गद्य प्रबन्धों की तरह पद्यात्मक प्रबन्ध काव्यों का कथावस्तु और स्वरूप विधान के अनुसार वर्गीकरण किया है। स्वरूप विधान के आधार पर उन्होंने प्रबन्ध काव्य के—(१) महत् प्रबन्ध काव्य, (२) लघु प्रबन्ध काव्य—दो भेद किये।[2] रुद्रट के अनुसार वे प्रबन्ध काव्य महान् होते हैं जिनके विस्तृत आयाम में चारों वर्गों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) का वर्णन रहता है, सभी रसों, क्रीड़ाओं (पुष्पोच्चय, जलक्रीड़ा आदि) तथा सभी काव्योचित (काव्य में वर्णन करने योग्य) स्थानों का निरूपण रहता है।

---

१. काव्यालंकार सूत्रे, १।३।२७।

२. सन्तिद्विधा प्रबन्धाः काव्य कथाख्यायिकादयः काव्ये।
उत्पाद्यानुत्पाद्या महल्लघुत्वेन भूयोऽपि ॥—काव्यालंकार, १६।२

३. तत्र महान्तो येषु च जिततेष्वभिधीयते चतुर्वर्गः।
सर्वे रसाः क्रियन्ते काव्यस्थानि सर्वाणि ॥—काव्यालंकार, १

लघु (प्रबन्ध काव्य) उनको जानना चाहिए जिनमें चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) में से कोई एक हो। यदि अनेक रस हों तो वे समग्रतः उद्घाटित न होकर असमग्र हों और यदि एक रस हो तो उसका समग्र अर्थात् पूर्ण वर्णन होना चाहिए।[१] नमिसाधु की टीका में महान् प्रबन्ध काव्य और लघु प्रबन्ध काव्य के उदाहरण रूप में क्रमशः 'शिशुपाल-वध' और 'मेघदूत' के उदाहरण दिये गये हैं।[२] तत्पश्चात् रुद्रट ने महाकाव्य, महाकथा और आख्यायिका का लक्षण देने के बाद क्षुद्र काव्य और खण्ड कथा का लक्षण दिया है। लक्षण से पता चलता है कि ये सभी प्रबन्धात्मक रचनाओं के ही भेद हैं। रुद्रट के अनुसार 'क्षुद्र काव्य और खण्ड-कथा में नायक को द्विज, सेबक, सार्थवाह आदि के साथ आपदग्रस्त दिखलाये। इसमें करुण-रस अथवा प्रवास जन्य विप्रलम्भ श्रृंगार रस दिखाना चाहिए अथवा नायक के प्रथमानुराग का वर्णन करने के बाद पुनः अन्त में उसका अभ्युदय दिखलाये[3]।' इसके तुरन्त बाद ही रुद्रट कहते हैं—'अनुत्पाद्य प्रबन्धों में चाहे वे लघु हों अथवा महान्, ऐसा नहीं होता। उनके विषय में यह उपदेश (नियम निर्देश) नहीं है। वहाँ तो जैसा वृत्त (अर्थात् प्रख्यात घटना क्रम या ऐतिहासिक और यथार्थ इतिवृत्त) हो, वैसा वर्णन होता है।[४] इस कथन से यह स्पष्ट है कि लघु अथवा महत् दोनों प्रकार के काव्यों में उत्पाद्य अथवा अनुत्पाद्य कथावस्तु के अनुसार काव्य का स्वरूप निश्चित होता है। रस, उद्देश्य आदि के निर्धारण में इनका योगदान रहता है। अनुत्पाद्य लघु अथवा महत् काव्य को तो वर्ण विषय, रसादि की किसी सीमा विशेष में बाँधा भी नहीं जा सकता।

हेमचन्द्र ने अपने ग्रन्थ 'काव्यानुशासन' में प्रेक्ष्य और श्रव्य काव्यों का बहुत ही स्पष्ट विभाजन करने के बाद श्रव्य काव्य के अन्तर्गत महाकाव्य,

---

१. ते लघवो विसेया येष्वन्यतमो भवेच्चतुर्वर्गात।
असमग्रानेक रसा ये च समग्रैकर सयुक्ताः॥ —काव्यालंकार, १६।६

२. ते मेघदूत आद्यो लघवः महान्तस्तु शिशुपाल वधादयः। —टीका अंश, १६।६

३. कुर्यात् क्षुद्रे काव्ये खण्ड कथायां च नायकं सुखिनम्,
आपद गतं च भूयो द्विज सेवक सार्थवाहादिम्।
अत्र रसं करुणं वा कुर्यादथवा प्रवास श्रृंगारम्,
प्रथमानुरागमथवा पुनरन्ते नायकाभ्युदयम्॥ —१६।३।३४

४. नैतदनुपाद्येषु तु तत्र ह्यभिधीयते यथावृत्तम्।
अल्पेषु महत्सु च वा तद्विषयो नायमुपदेशः॥ काव्यालंकार, १६।३५

आख्यायिका, कथा, चम्पू तथा अनिबद्ध काव्य का उल्लेख किया।[1] अनिब की अलग कोटि निर्धारित करने से ही स्पष्ट है कि शेष उससे भिन्न निबद्ध की कोटि के हैं। अनिबद्ध के प्रकारों में हेमचन्द्र ने मुक्तक, सँद्धान्ति विशेषक, कलापक, कुलक, कोष का उल्लेख किया है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि केवल रुद्रट के वर्गीकरण में निब या प्रबन्ध काव्य के अन्तर्गत महत् काव्य या महाकाव्य के अतिरिक्त ल प्रबन्धकाव्य तथा क्षुद्र (खण्ड) प्रबन्ध काव्य की अन्य कोटियाँ भी हैं। अ आचार्यों ने काव्य के प्रायः सर्गबद्ध और अनिबद्ध या निबद्ध और अनिब या प्रबन्ध और अनिबद्ध ये दो भेद ही किये हैं। रुद्रट द्वारा लघु-प्रबन्ध-का का लक्षण देने के बाद पुनः क्षुद्र-काव्य और खण्ड-कथा का लक्षण देने ऐसा लगता है कि दोनों एक नहीं हैं। रुद्रट ने काव्य में जिसे क्षुद्र विशेषण अभिहित किया है, कथा में उसी के लिए खण्ड विशेषण का प्रयोग कि है। क्षुद्र निश्चित ही निकृष्टता का द्योतक नहीं है। लक्षण इसका प्रमाण अतः कथा के प्रसंग में खण्ड से जिस अर्थ का द्योतन होता है, काव्य के संद में क्षुद्र भी उसी अर्थ का द्योतक है। क्षुद्र लघु का भी पर्याय नहीं माना सकता, क्योंकि यदि ऐसा होता तो लघु प्रबन्ध का लक्षण देने के बाद पु क्षुद्र-प्रबन्ध का लक्षण देने की पुनरावृत्ति अनावश्यक ही नहीं, परस्पर विरो भी है। इससे ऐसा लगता है कि रुद्रट खण्ड-कथा की तरह खण्ड-काव्य एक अलग वर्ग मानते हैं।

रुद्रट के बाद कविराज विश्वनाथ ने पहली बार बहुत स्पष्ट रूप श्रव्य-काव्य के दो भेद 'पद्य-काव्य' और 'गद्य-काव्य' करने के बाद पद्य का के मुक्तक, युग्मक, सान्दानितक, कलापक और कुलक[2] तथा सर्गबन्ध मह काव्य, काव्य और खण्ड-काव्य भेद किये। इसमें प्रथम पाँच अनिबद्ध मुक्तक कोटि के काव्य की श्रेणी में और अन्तिम तीन को निबद्ध या प्रब काव्य की श्रेणी में रखा जायेगा। इस प्रकार आचार्य विश्वनाथ के अनुस प्रबन्ध काव्य के तीन भेद हुए—१. महाकाव्य, २. काव्य, ३. खण्ड-काव्य खण्ड-काव्य की अवधारणा का प्रारम्भ यहीं से होता है। आचार्य विश्वना ने खण्डकाव्य की निम्नलिखित परिभाषा दी है—

---

१. श्रव्यं महाकाव्यकाख्यायिका कथा चम्पू अनिबद्ध च।

२. छन्दोबद्धं प ̇ पद्यं तेन मुक्तेन मुक्तकम्।
द्वाभ्यां तु युग्मकं सान्दानितकं मिभिरिष्यते।
कलापकं चतुर्भिश्च पंचभिः कुलकंमतम्। ६।३१४ साहित्य दर्पण

'खण्ड काव्यं भवेत्काव्यस्यैकदेशानुसारि च ।' अर्थात् खण्ड काव्य, काव्य का एक देशानुसारी होता है। एकदेशानुसारी से स्पष्ट तात्पर्य यह है कि खण्ड-काव्य में काव्य जितना फैलाव या विस्तार नहीं होता, वह उसके एक भाग, उसके कथ्य के एक भाग जितने विस्तार तक ही अपने को सीमित रखता है। इस प्रकार खण्ड काव्य की यह परिभाषा काव्य की परिभाषा पर आश्रित है। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार 'काव्य' की परिभाषा है—

भाषा विभाषा नियमात्काव्यं सर्ग समुज्झितम् ।
एकार्थ प्रवणैः पद्यैः संधिसामग्रय् वर्जितम् ॥[1]

अर्थात् काव्य, भाषा अथवा विभाषा (अर्थात् संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश) में लिखा जाने वाला वह (प्रबन्ध) रूप है जिसके लिए सर्गों का बन्धन आव-आवश्यक नहीं और न तो यही आवश्यक है कि सभी संधियों की उसमें योजना हो। वह एकार्थ-प्रवण होता है अर्थात् किसी एक अर्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में से एक) या प्रयोजन की सिद्धि उसका उद्देश्य होता है।

आचार्य विश्वनाथ द्वारा दिया गया काव्य का यह लक्षण रुद्रट के लघु प्रबन्ध-काव्य जैसा ही है। रुद्रट ने भी लघु-प्रबन्ध में चतुर्वर्ग में से किसी एक की सिद्धि उसका उद्देश्य माना है। साथ ही किसी एक रस का समग्र या यदि कई रस हों तो उनका असमग्र वर्णन करने का निर्देश दिया है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि संस्कृत काव्य-शास्त्र की परम्परा में काव्य के दो भेदों—अनिबद्ध-काव्य और निबद्ध-काव्य की अवधारणा प्रारम्भ से ही चली आ रही थी। इसी को कुछ आचार्यों ने मुक्तक वर्गीय काव्य जिसमें युग्मक, कलापक आदि सन्निविष्ट हैं और प्रबन्ध काव्य भी कहा है। प्रारम्भ में निबद्ध अथवा प्रबन्ध काव्य के रूप में केवल महाकाव्य के लक्षण दिये गये और इस वर्ग में मात्र यही काव्य-रूप में चर्चित रहा, किन्तु रुद्रट ने स्पष्ट रूप से प्रबन्ध-काव्य के दो भेदों का निर्देश किया—(१) महा-प्रबन्ध-काव्य, (२) लघु प्रबन्ध-काव्य। रुद्रट ने तीसरा भेद क्षुद्र काव्य का भी बतलाया जिसमें निश्चित ही लघु प्रबन्ध के विस्तार की अपेक्षा कम विस्तार अपेक्षित था। कविराज विश्वनाथ ने महाकाव्य, काव्य और खण्ड काव्य इन तीन वर्गों में प्रबन्ध काव्य को वर्गीकृत किया। लक्षण तथा उदाहरण से स्पष्ट पता चलता है कि रुद्रट द्वारा निर्दिष्ट लघु-प्रबन्ध-काव्य और आचार्य विश्वनाथ द्वारा उल्लिखित काव्य समान कोटि के प्रबन्ध काव्य हैं, किन्तु

---

१. साहित्य दर्पण ६।३२८ ।

लक्षण के प्रमाण में दिये गये उदाहरण भ्रम उत्पन्न करते हैं। आचार्य विश्वनाथ ने खण्ड-काव्य के उदाहरण रूप में 'मेघदूत' का नामोल्लेख किया है और रुद्रट के टीकाकार नमिसाधु ने 'मेघदूत' को लघु प्रबन्ध काव्य का उदाहरण माना है। इस प्रकार लक्षण के आधार पर जहाँ लघु प्रबन्ध काव्य और काव्य (आचार्य विश्वनाथ द्वारा उल्लिखित) एक रूप लगते हैं, उदाहरण से खण्ड-काव्य और लघु प्रबन्ध-काव्य की एकरूपता सिद्ध होती है।

**हिन्दी में खण्डकाव्य की अवधारणा**

हिन्दी में 'खण्ड-काव्य' शब्द खड़ी बोली की काव्य रचना के साथ प्रचलित और प्रसिद्ध हो गया। द्विवेदी युग के कुछ कवियों ने तो अपनी काव्य रचना का नाम देने के साथ ही उसके खण्ड-काव्य होने का भी उल्लेख कर दिया। कुछ ने खण्ड-काव्य के साथ 'प्रेम-रस-पूर्ण' या 'लोक कथा पर आधारित' जैसे विशेषणों का भी प्रयोग किया है। किन्तु हिन्दी के रचनाकारों और आलोचकों में प्रबन्ध-काव्य के केवल दो भेदों को ही मान्यता मिल सकी—१. महाकाव्य, २. खण्ड-काव्य। कविराज विश्वनाथ का 'काव्य' नामक भेद लगभग लुप्त हो गया। इधर विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने प्रबन्ध काव्य के भेदों पर विचार करते हुए इस तीसरे प्रबन्ध भेद को एकार्थ-काव्य की संज्ञा दी और पहली बार उन्होंने प्रबन्ध काव्य के महाकाव्य, एकार्थ काव्य और खण्ड काव्य ये तीन भेद माने।[१]

हिन्दी में खण्ड-काव्य की स्थिति, उसके लक्षण तथा स्वरूप निर्धारण सम्बन्धी मान्यताओं को समझने के लिए यहाँ उन प्रमुख आलोचक विद्वानों के मतों पर विचार कर लेना आवश्यक है जिन्होंने प्रबन्ध-काव्य के भेदों अथवा केवल खण्ड-काव्य पर विचार किया है। गुलाबराय ने 'काव्य के रूप' में साहित्य के समानार्थी के रूप में 'काव्य' शब्द का प्रयोग करते हुए उसके श्रव्य और दृश्य दो भेद किये हैं। फिर उन्होंने श्रव्य काव्य के दो भेद—मुक्तक और प्रबन्ध माने। पुनः उन्होंने प्रबन्ध काव्य के दो भेद किये—(१) खण्ड काव्य और (२) महाकाव्य। इस प्रकार गुलाबराय के अनुसार प्रबन्ध काव्य के केवल दो ही भेद होते हैं—खण्ड काव्य और महाकाव्य। इनके मध्यवर्ती किसी भेद की कल्पना उन्होंने नहीं की।

खण्डकाव्य की परिभाषा देते हुए गुलाब राय लिखते हैं—'खण्डकाव्य में प्रबन्ध काव्य का सा तारतम्य तो रहता है किन्तु महाकाव्य की अपेक्षा

उसका क्षेत्र सीमित होता है। उसमें जीवन की वह अनेकरूपता नहीं रहती जो कि महाकाव्य में होती है। उसमें कहानी और एकांकी की भाँति घटनाओं के लिए सामग्री जुटाई जाती है।'[1] उन्होंने अपनी परिभाषा के प्रमाण में कविराज विश्वनाथ द्वारा दिये गये खण्ड काव्य के प्रसिद्ध लक्षण को भी उद्धृत किया है। इस लक्षण की व्याख्या गुलाब राय जी ने इस प्रकार दी है अर्थात् खण्ड काव्य एक देश या अंश का, आजकल की भाषा में, एक प्रधान घटना का अनुसरण करता है, जैसे—'मेघदूत'।

डा० भगीरथ मिश्र ने 'हिन्दी काव्य-शास्त्र का इतिहास' और 'काव्य शास्त्र' नामक अपनी दोनों पुस्तकों में काव्य-भेद पर विचार करते हुए प्रबन्ध-काव्य के अन्तर्गत खण्ड काव्य पर विचार किया है। प्रथम ग्रन्थ में तो उन्होंने प्रबन्ध काव्य के केवल दो भेद—महाकाव्य और खण्ड-काव्य ही माने हैं।[2] किन्तु दूसरे ग्रन्थ 'काव्य शास्त्र' में पद्य-काव्य के विवेचन में उन्होंने प्रबन्ध-काव्य का विशेष वर्गीकरण किया है। पद्य काव्य की उन्होंने तीन कोटियाँ मानी हैं। १. प्रबन्ध, २. निबन्ध, ३. निर्बन्ध। तत्पश्चात् इन्होंने प्रबन्ध काव्य के दो भेद निर्दिष्ट किये—१. महाप्रबन्ध, २. खण्ड प्रबन्ध या खण्ड-काव्य। महाप्रबन्ध के तीन भेद माने हैं—१. पुराण, २. आख्यान, ३. महाकाव्य।

डा० मिश्र ने खण्ड-काव्य के दो भेद किये हैं—

१. संघात अथवा एकार्थ खण्ड—वह काव्य जिसमें एक ही प्रकार के छन्द में घटना या दृश्य का वर्णन किया जाता है।
२. अनेकार्थ खण्ड काव्य—जिसमें अनेक प्रकार के छन्दों में विविध भावों के साथ जीवन के एक अंश का चित्रण होता है। महाकाव्य के समान इसका विस्तार नहीं होता।

इसी प्रकार हिन्दी के प्रायः सभी आलोचकों ने प्रबन्ध-काव्य के दो ही भेद माने हैं। महाकाव्य और खण्ड-काव्य। केवल आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने बंध के आधार पर प्रबन्ध और मुक्तक इन दो भेदों का उल्लेख करने के बाद प्रबन्ध-काव्य के तीन भेद बताये हैं—१. महाकाव्य, २. खण्ड काव्य, ३. एकार्थ काव्य। एकार्थ काव्य नामक तीसरे भेद को मिश्र जी द्वारा मान्यता देने का आधार भी कविराज विश्वनाथ द्वारा 'काव्य' नामक तीसरे मध्यवर्ती प्रबन्ध भेद का उल्लेख किया जाना है। काव्य के भेद करके एक

---

१. काव्य के रूप : गुलाब राय, एम. ए., चतुर्थ संस्करण १९५८, पृ० ११।

को फिर केवल काव्य के नाम से अभिहित करना संगत नहीं प्रतीत होता। इसलिए ही ऐसा लगता है कि 'एकार्थं प्रवणैः' के आधार पर उन्होंने इसको 'एकार्थ काव्य' के नाम से अभिहित किया। 'काव्य' के एक भेद के रूप में काव्य को मान्यता देना विचित्र सा लगने के कारण ही सम्भवतः हिन्दी समीक्षा की परम्परा में यह प्रबन्ध भेद उपेक्षित होकर समाप्त हो गया है। इस भेद का समाहार भी आलोचकों ने खण्ड-काव्य के अन्तर्गत ही कर दिया। विभिन्न आलोचकों द्वारा खण्ड-काव्य का लक्षण निर्धारित करते हुए उसकी जो परिभाषा दी गई है, वह इसका प्रमाण है। खण्ड-काव्य के प्रसंग में कविराज विश्वनाथ का प्रमाण देते हुए भी विद्वानों ने 'एक देशीय' पर ही विशेष बल दिया है। 'काव्यस्येक देशीय' भी 'काव्य' नामक प्रबन्ध-भेद के साथ ही उपेक्षित हो गया। एकदेशीय का अर्थ एक घटना या एक दृश्य मान लिया गया। गुलाब राय जी का मत ऊपर दिया जा चुका है। अन्य विद्वानों के मतों को ध्यान से देखने पर भी इसी निष्कर्ष की पुष्टि होती है।

**खण्ड काव्य : विविध मत**

डा० भगीरथ मिश्र के अनुसार खण्डकाव्य में कथावस्तु सम्पूर्ण न होकर उसका एक अंश ही होती है। प्रायः जीवन की एक महत्त्वपूर्ण घटना या दृश्य का मार्मिक उद्घाटन होता है और अन्य प्रसंग संक्षेप में रहते हैं। मिश्र जी ने भी प्रमाण में आचार्य विश्वनाथ को उद्धृत करते हुए काव्य के एक देश, एक अंश का अनुसरण करने वाले काव्य को खण्ड काव्य की संज्ञा देना उचित माना है। मिश्र जी के अनुसार इसमें कथा संगठन आवश्यक होता है, सर्गबद्धता नहीं। इसमें भी वस्तु वर्णन, भाववर्णन एवं चरित्रचित्रण किया जाता है पर कथा विस्तृत नहीं होती—जैसे 'पार्वती मंगल', 'जयद्रथ वध', 'पंचवटी' आदि में।[1]

अन्यत्र मिश्र जी खण्ड-काव्य में महाकाव्य के सभी अंगों के समायोजन के स्थान पर उसके एकाध अंग की योजना आवश्यक मानते हैं। इससे ऐसा लगता है कि उनके मतानुसार खण्ड-काव्य महाकाव्य का एकदेशानुसारी होता है। साथ ही यदि काव्य चरित्र प्रधान है तो डा० भगीरथ मिश्र के अनुसार उसमें किसी पुरुष के जीवन का कोई अंग ही वर्णित होता है, पूरी जीवनगाथा नहीं। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र की भी खण्ड काव्य के सम्बन्ध में बहुत कुछ इसी प्रकार की धारणा है। उनके अनुसार महाकाव्य के ही ढंग

१. काव्य शास्त्र : डा० भगीरथ मिश्र, वि० वि० प्रकाशन, द्वि० सं० १९६३,

पर जिस काव्य की रचना होती है पर जिसमें पूर्ण जीवन न ग्रहण करके खण्ड जीवन ही ग्रहण किया जाता है, उसे खण्ड काव्य कहते हैं।[1] अपनी बात को स्पष्ट करते हुए उन्होंने बतलाया है कि यह खण्ड जीवन इस प्रकार व्यक्त किया जाता है जिससे वह प्रस्तुत रचना के रूप में स्वतः पूर्ण प्रतीत हो—खण्ड काव्य का विस्तार भी थोड़ा होता है। एकार्थ-काव्य की भाँति पूर्ण जीवन का कोई उद्दिष्ट पक्ष उसमें नहीं होता।[2]

इस प्रकार मिश्र जी के अनुसार महाकाव्य, एकार्थ काव्य और खण्ड-काव्य में वर्ण्य विषयगत अन्तर यह है कि महाकाव्य में तो पूर्ण जीवन को लेकर कवि काव्य-रचना करता है। एकार्थ काव्य में पूर्ण जीवन का कोई उद्दिष्ट पक्ष रहता है और खण्ड-काव्य में पूर्ण जीवन के स्थान पर खण्ड जीवन का वर्णन होता है किन्तु इससे एकार्थ काव्य और खण्ड-काव्य का अन्तर बहुत स्पष्ट नहीं होता। 'पूर्ण जीवन का उद्दिष्ट पक्ष' और 'खण्ड-जीवन में अन्तर कर पाना' कठिन होता है। सम्भवतः मिश्र जी का अभिप्राय यह हो कि एकार्थ-काव्य में पूर्ण जीवन तो रहता है किन्तु उसका अभिप्रेत या प्रतिपाद्य जीवन की सर्वांगता न होकर उसका कोई एक उद्दिष्ट अंग होता है, जबकि खण्ड-काव्य में काव्य-वस्तु के आधार रूप में जीवन के एक खण्ड को लेकर ही कवि काव्य रचना में प्रवृत्त होता है। संस्कृत साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् पं० बल्देव उपाध्याय भी महाकाव्य के संदर्भ से ही खण्ड-काव्य को परिभाषित करते दिखाई देते हैं और लगता है कि वे भी कविराज विश्वनाथ के 'काव्यस्य एक देशानुसारि' का व्यापक अर्थ लेते हुए खण्ड-काव्य को महा-काव्य का एक देशानुसारी रूप मानते हैं। उनकी स्पष्ट धारणा है कि 'वह काव्य जो मात्रा में महाकाव्य से छोटा परन्तु गुणों में उससे कथमपि शून्य न हो खण्ड काव्य कहलाता है।'[3]

उपाध्याय जी के कथन से ऐसा लगता है कि वे महाकाव्य और खण्ड-काव्य में केवल मात्रा भेद मानते हैं, गुण-भेद नहीं। गुणों से उनका अभिप्राय यदि काव्याभिव्यंजन के गुणों से हो तो दूसरी बात है। मात्रा में महाकाव्य से छोटा होने के लिए जीवन के किसी एक अंश या खण्ड का ही वर्णन आवश्यक नहीं है, जैसा कि रुद्रट ने कहा है। जीवन के विभिन्न पक्षों के

---

१. हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास : डा० भगीरथ मिश्र, पृ० ४२१।
२. वाङ्मय-विमर्ष : आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० ४६।
३. संस्कृत आलोचना—द्वितीय खण्ड : बलदेव उपाध्याय, पृ० ६२।

असमग्र वर्णन द्वारा भी यह लघुता आ सकती है। सम्भवतः उपाध्याय जी का अभिप्राय रुद्रट द्वारा निर्दिष्ट लघु प्रबन्ध-काव्य के लक्षणों से ही है। उपाध्याय जी की तरह कुछ अन्य विद्वान् भी मानते हैं कि 'महाकाव्य के एक अंश का अनुसरण करने वाला काव्य, महाकाव्य के लिए आवश्यक वस्तुओं में से जिसमें सबका समावेश न हो और भी अपेक्षया छोटे जीवन क्षेत्र का प्रबन्ध चित्र उपस्थित करे, वह खण्ड काव्य है।'[1]

हिन्दी विश्वकोश के अनुसार—'जो काव्य सम्पूर्ण लक्षण युक्त न हो, खण्ड काव्य है।'[2] सम्पूर्ण लक्षण से क्या तात्पर्य है, यह स्पष्ट नहीं है। लगता है अभिप्राय महाकाव्य के ही सम्पूर्ण लक्षणों से है। इस प्रकार यहाँ भी उसे खण्ड-काव्य की संज्ञा देने का संकेत है जिसमें महाकाव्य के सभी लक्षण न होकर केवल कुछ लक्षण हों। कुछ अन्य विद्वान् भी इस मत के हैं कि खण्ड-काव्य में महाकाव्य के गुण तो विद्यमान रहते हैं किन्तु इस अन्तर के साथ कि खण्ड काव्य में एक ही घटना होती है और उसमें मानव-जीवन के एक ही पहलू पर प्रकाश डाला जाता है। इस अन्तर के साथ उसमें महाकाव्य के अन्य गुण पूर्णतया वर्तमान रहते हैं।[3] लेकिन यह अन्तर इतना बड़ा है कि इससे महाकाव्य के अन्य गुण अप्रभावित नहीं रह सकते। इस कथन से भी ऐसा लगता है कि जैसे महाकाव्य के गुणों से युक्त किन्तु उसमें एक भाग, एक देश या एक पक्ष तक ही अपने को सीमित रखने वाले काव्य को ये विद्वान् खण्ड-काव्य मानते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि कथ्य के सीमित होते ही रूप और शिल्प भी बदल जाता है। इससे तो ऐसा लगता है जैसे खण्ड काव्य एक देशीय होते हुए भी महाकाव्य की उदात्तता, गरिमा और रूपगत तथा शिल्पगत विशिष्टता से युक्त होता है। यदि इन आलोचकों का यह अभिप्राय हो तो यह न केवल भ्रामक बल्कि त्रुटिपूर्ण भी है। डा० शकुन्तला दुबे का यह कथन इस संदर्भ में महत्त्वपूर्ण है कि 'खण्ड काव्य के खण्ड शब्द का यह अर्थ कदापि नहीं कि वह बिखरा हुआ अथवा किसी महाकाव्य का एक खण्ड है, प्रत्युत् यह खण्ड शब्द उस अनुभूति के स्वरूप की ओर संकेत करता है, जिसमें जीवन अपने सम्पूर्ण रूप में कवि को न प्रभावित कर आंशिक या खण्ड रूप में प्रभावित करता है। महाकाव्य के अन्य सभी

---

१. साहित्य शास्त्र का पारिभाषिक शब्द कोष : राजेन्द्र द्विवेदी, पृ० ८० ।
२. हिन्दी विश्व कोष : सम्पादक नगेन्द्रनाथ वसु, पृ० ७०९ ।

गुणों से वह युक्त नहीं होता।'[1] डा० दुबे ने दोनों का अन्तर स्पष्ट करते हुए उन तत्त्वों की ओर संकेत किया है जिनका महाकाव्य में होना तो आवश्यक रहता है किन्तु खण्ड-काव्य में उनका अभाव रहता है। उनके अनुसार—'खण्ड काव्य का रचयिता महाकाव्यकार की भाँति युग को कोई महत् उपदेश नहीं देता। साथ ही वह ऐसा वर्णनात्मक प्रबन्धकाव्य है जिसमें कवि धीरे-धीरे कथा का आरम्भ और विकास करता है। खण्ड काव्य में कथांश या कथासूत्र का होना परमावश्यक है। इस कथा के लिए महाकाव्य की कथा की भाँति ख्यात या इतिहास प्रसिद्ध होना अनिवार्य तत्त्व कदापि नहीं। साथ ही खण्ड काव्य में कथा संगठन उतना सुव्यवस्थित भी नहीं मिलेगा जितना महाकाव्य में मिलता है। उसमें प्रासंगिक कथाओं का प्रायः अभाव ही रहता है। उसकी कथा सर्गों में होकर गूँथी जा सकती है और उसके बिना भी उसका प्रणयन हो सकता है।'[2] इस अन्तर को स्पष्ट करने के साथ ही खण्ड काव्य के स्वरूप के सम्बन्ध में उनकी धारणा है कि 'खण्ड काव्य प्रलम्बकालाश्रयी क्षणों की अनुभूति की अभिव्यंजना है—खण्डकाव्य यद्यपि जीवन के एक अंग को लेकर चलता है तथापि वह अपने में पूर्ण होता है और उसकी अनुभूति भी पूर्ण होती है।'[3]

इसमें सन्देह नहीं कि खण्डकाव्य में महाकाव्य जैसा कोई महत् उद्देश्य नहीं होता और उसकी कथा का भी ख्यात होना आवश्यक नहीं, किन्तु महाकाव्य की कथा भी ख्यात या इतिहास प्रसिद्ध ही हो, यह आवश्यक नहीं। रुद्रट के द्वारा महाकाव्य का उत्पाद्य और अनुत्पाद्य दो भेदों में वर्गीकरण इसका प्रमाण है। उत्पाद्य महाकाव्य से स्पष्ट अभिप्राय है कि इसमें कथा का आधार काल्पनिक होता है। जहाँ तक कथा संगठन का प्रश्न है वह खण्ड काव्य में महाकाव्य से अधिक होना चाहिए। उद्देश्य के निर्दिष्ट या सीमित अथवा एकदेशीय होने के कारण कथा-विकास में एकोन्मुखता और संगठन आवश्यक है। अप्रासंगिक कथाओं का अभाव भी इस सुसंगठन में योग देता है। प्रलम्बकालाश्रयी क्षणों की अनुभूति और 'जीवन के अंग' समानार्थी नहीं माने जा सकते। अतः ऐसा लगता है कि डा० दुबे यह कहना चाहती हैं कि खण्ड काव्य में या तो जीवन के एक अंग का वर्णन होता है

१. काव्य रूपों का मूल स्रोत और उनका विकास : डा० शकुन्तला दुबे, पृ० १४३।
२. वही, पृ० १४३–१४७।
३. वही, पृ० १४३।

या ऐसी अनुभूति का चित्रण होता है जिसकी अवधि काल सीमा दृष्टि से विस्तृत हो। इस प्रकार अनुभूतियों के अनुक्रम और तारतम्य से युक्त पद्यात्मक या गीतात्मक रचना को भी खण्डकाव्य कहा जा सकता है।

'हिन्दी साहित्य कोष' में डा० ब्रजेश्वर वर्मा ने महाकाव्य के संदर्भ में प्रबन्ध काव्य के भेदों और उनके स्वरूप-निर्धारण का प्रयास किया है। उनके अनुसार वही महाकाव्य, प्रबन्ध काव्य माना जायेगा जिसमें महत् उद्‌देश्य, महच्चरित्र, समग्र युग जीवन का चित्रण, गरिमामयी और उदात्त शैली आदि महाकाव्य के सभी गुण पाये जायें। जिन प्रबन्ध काव्यों में महाकाव्य के उपर्युक्त लक्षण नहीं मिलते, वे चाहे आकार में बड़े हों या छोटे आठ से कम सर्ग वाले हों या अधिक सर्ग वाले महाकाव्य नहीं माने जायेंगे। ऐसे प्रबन्ध काव्य दो प्रकार के होते हैं—एक तो वे जिनमें किसी व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन का चित्रण तो होता है पर समग्र युग जीवन का चित्रण नहीं होता और न महाकाव्य के अन्य सभी लक्षण पाये जाते हैं। दूसरे वे जिनमें जीवन का खण्ड दृश्य चित्रित होता है और जो कथा-वस्तु की लघुता तथा उद्‌देश्य की सीमाओं के कारण बृहदाकार तथा महान् नहीं बन पाते। इसमें प्रथम प्रकार के प्रबन्ध काव्य को एकार्थ काव्य और दूसरे को खण्ड काव्य कहना उचित ही है।[1]

डा० वर्मा ने इस विवेचन में महाकाव्य के स्वरूप को ध्यान में रखकर महाकाव्येतर प्रबन्ध काव्यों के दो वर्ग किये हैं। खण्ड काव्य को उन्होंने प्रबन्धकाव्य का लघुतम रूप माना है। महाकाव्य सम्बन्धी जिस अवधारणा को डा० वर्मा ने आधार बनाया है, वह शुद्ध भारतीय शास्त्रीय लक्षणों वाली नहीं है। महाकाव्य सम्बन्धी भारतीय और पाश्चात्य मतों को ध्यान में रखकर ये लक्षण निर्धारित किये गये हैं। खण्ड काव्य की तरह महाकाव्य के लक्षण-निर्धारण में भी सभी विद्वान् एकमत नहीं हैं। कुछ शास्त्रीय परम्परा में निर्दिष्ट लक्षणों का होना ही महाकाव्य के लिए अनिवार्य मानते हैं और कुछ निर्धारित लक्षणों के मूल में निहित दृष्टिकोण पर बल देते हैं। लक्ष्य ग्रन्थ के कारण भी अवधारणाओं को बदलना पड़ता है। हिन्दी में जो उदात्त और श्रेष्ठ प्रबन्धात्मक रचनायें लिखी गयी हैं, वे मात्र शास्त्रीय लक्षणों के आधार पर महाकाव्य नहीं सिद्ध होंगी। महाकाव्य सम्बन्धी पाश्चात्य विद्वानों के मतों ने भी आधुनिक हिन्दी समीक्षा को प्रभावित किया है। अतः स्वाभाविक है कि यदि खण्ड काव्य या एकार्थ काव्य के स्वरूप

---

१ हिन्दी साहित्य कोष—भाग १ : सं डा० वर्मा, खण्ड काव्य, पृ० २७३।

ी अवधारणा महाकाव्य के स्वरूप से संदर्भित है तो महाकाव्य के सम्बन्ध ं विचार बदलने के साथ प्रबन्ध काव्य के अन्य भेदों का स्वरूप-निर्धारण ी उससे प्रभावित हो। अतः यहाँ संक्षेप में इस बात पर भी विचार कर ना उचित है कि पाश्चात्य काव्य-शास्त्र में महाकाव्य के अतिरिक्त अन्य केन प्रबन्धात्मक काव्य रूपों को मान्यता दी गई है और उनके संदर्भ ने ब्रण्ड काव्यों के स्वरूप-निर्धारण को किसी सीमा तक प्रभावित किया है या नहीं।

**पाश्चात्य दृष्टिकोण**

अंग्रेजी में काव्य के स्वरूप भेद पर जो भी विचार हुए हैं उनका सार या निष्कर्ष यह है कि काव्य मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं या हो सकते हैं— (१) विषयीप्रधान (सब्जेक्टिव), (२) विषयप्रधान (आब्जेक्टिव)। विषयी प्रधान काव्य के लिरिक, मेडिटेटिव्ह एण्ड फिलासिफिकल, ओड, एलिजी, एपिस्ल, सेटायर और सॉनेट भेद किये गये। विषय प्रधान काव्य को आख्यानक (नेरेटिव) और नाट्यात्मक दो प्रकार का माना गया है। कुछ आलोचकों ने इस वर्ग को केवल आख्यानक काव्य की संज्ञा से अभिहित किया और इसके भेद के रूप में गाथा, छन्दोबद्ध रोमान्स, महाकाव्य और नाट्यात्मक काव्य को माना। काव्य रूपों के ये भेद अपने समय के लक्ष्य ग्रन्थों को ध्यान में रखकर बनाये गये हैं। यदि व्यापक दृष्टि से विचार किया जाय तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि भारतीय परम्परा में जिसे प्रबन्धात्मक रचना कहा गया है, अंग्रेजी में उसी को आख्यात्मक काव्य माना गया। उद्देश्य, विषय और शैली की उदात्तता से पूर्ण विस्तृत आख्यात्मक कविताओं को महाकाव्य की संज्ञा दी गई, रोमांचक तत्त्वों की प्रधानता से युक्त रचनायें रोमांचक-आख्यानक-काव्य मानी गईं। लोक प्रसिद्ध गाथाओं के छन्दोबद्ध काव्य रूप से गाथा-काव्य का विकास हुआ, किन्तु प्रायः सभी पाश्चात्य विद्वान् इससे सहमत हैं कि महाकाव्य में रोमांचक-काव्य और गाथा-काव्य के तत्त्व भी वर्तमान रहते हैं और कई ऐसे आख्यानक-काव्य भी हैं जो इनमें से किसी वर्ग में ठीक से नहीं आ पाते। जिस प्रकार महाकाव्य की परिभाषा और उसके लक्षण निर्धारण में आधुनिक युग में नये सिरे से विचार करना पड़ा है, उसी प्रकार आख्यानक काव्य के सम्बन्ध में भी व्यापक दृष्टि से विचार किया गया है।

आख्यानक काव्य की सीमा अब बहुत व्यापक मानी जाती है और

इसके अन्तर्गत अब रचनाओं में मात्र कुछ विशिष्ट वर्ग ही नहीं आते हैं।[1] कोई आख्यानक कविता विभिन्न घटनाओं को लेकर अपने कथानक को मोड़ देती और परिवर्तित करती हुई आगे बढ़ सकती है। वह अपने चरित्रों को आन्तरिक शक्ति-सामर्थ्य या बाह्य शारीरिक संघर्षों के सन्दर्भ में उद्‌घाटित कर सकती है अथवा वह किसी क्रिया की किसी स्थिति विशेष का चित्रण करते हुए उसके प्रारम्भ, उसके संश्लिष्ट अग्रसरण या परिणाम को दिख सकती है। अंग्रेजी में 'एनक आर्डन' और वर्ड्‌सवर्थ के 'सोहराब एण्ड रुस्तम खण्डकाव्य कहे जा सकते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि कविराज विश्वनाथ द्वारा निर्दिष्ट खण्डकाव्य का लक्षण ही हिन्दी में उसके स्वरू निर्धारण का मूल आधार है किन्तु 'एक देशानुसारि' की व्याख्या में कुछ विद्वानों ने उसे महाकाव्य का एक देशानुसारी माना है जबकि कविराज विश्वनाथ ने स्पष्ट रूप से उसे 'काव्य' का 'एक देशानुसारी' कहा है औ इसीलिए उन्होंने केवल काव्य का लक्षण ही दिया है। हिन्दी की व्यावहारिक समीक्षा में 'काव्य' नामक यह तीसरा भेद मान्य और प्रचलित नह हुआ परिणामस्वरूप खण्डकाव्य में बहुत अंशों तक काव्य अथवा एकार्थकाव्य के लक्षण और उसकी विशेषताएँ भी अन्तर्मुक्त हो गईं। सर्गबद्धता तथा सभी सन्धियों की योजना का आवश्यक न होना, किसी एक अर्थ (आधुनिक शब्दावली में लक्ष्य की एकोन्मुखता) का उद्दिष्ट होना आदि जिन्हें विश्व नाथ ने 'काव्य' का लक्षण माना, हिन्दी में खण्ड-काव्य के ही लक्षण के रू में स्वीकृत हुए। आधुनिक युग में हिन्दी में खण्ड काव्यों के स्वरूप निर्धार पर पाश्चात्य आख्यानक-काव्य-परम्परा का भी प्रभाव पड़ा। उल्लेख्य है कि पाश्चात्य आख्यानक काव्यों जैसे किसी वर्ग की शास्त्रीय परम्परा न हो के कारण उनसे प्रभावित इस वर्ग की रचनाएँ भी सामान्यतः खण्डकाव्य के अन्तर्गत मान ली गईं।

इस प्रकार भारतीय शास्त्रीय परम्परा से लेकर अब तक खण्डकाव सम्बन्धी विभिन्न दृष्टिकोणों और खण्डकाव्य के रूप में लिखे गये लक्ष्य ग्रंथ

---

१. "We see a hint at least of the wide range of the narrativ and dramatic structure of poetry... ... ... Seen in the ligh the terms 'narrative' and 'dramatic' become very broad i their application and can not be restricted to just a fe special types of writing." Exploring Poetry–M.L. Rosentha A. J. M. Smith, Third Publication, Macmilan Company 1959, pp 28.

को ध्यान में रखकर विचार करने पर खण्डकाव्य के स्वरूप की निम्नलिखित विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं—

१. खण्डकाव्य में युग-जीवन अथवा व्यक्ति-जीवन के एक खण्ड या पक्ष-विशेष का ही चित्रण होता है। किन्तु इस खण्ड-जीवन का प्रस्तुतीकरण इस ढंग से होता है कि वह अपने आप में सम्पूर्ण लगता है।

२. परिवेशगत अथवा जीवनगत अंश के अनुरूप वह सर्गबद्ध या सर्गहीन हो सकता है।

३. जीवन के एक पक्ष को लेने के कारण सभी सन्धियों की योजना खण्ड काव्य में नहीं होती।

४. कथानक में एकात्मक अन्विति और कसाव अधिक होता है। इसी से इसमें प्रायः प्रासंगिक और अन्तर्कथाओं के लिए अवकाश नहीं होता। कहानी की तरह इसमें उद्देश्य और प्रभाव की एकोन्मुखता होती है, उपन्यास की तरह प्रभाव की समग्रता नहीं।

५. जहाँ तक जीवन के खण्ड या पक्ष-विशेष की बात है, उसकी कोई लघुतम सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती। यही कारण है कि हिन्दी में आख्यानमूलक लघु-काव्य भी खण्डकाव्य की सीमा में समेट लिये गये हैं।

६. इसमें कथा में एकदेशीयता होती है और महाकाव्य के समान तारतम्य होते हुए भी अनेक सर्गों, विविध छन्दों, विभिन्न रसों एवं प्रकृति चित्रण आदि का समावेश आवश्यक नहीं है।

७. इसके नायक के लिए धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीर ललित या धीर प्रशान्त होना अनिवार्य नहीं है। किसी भी वर्ग का कैसा भी पात्र इसका नायक हो सकता है।

८. चतुर्वर्ग—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में से किसी एक फल की सिद्धि भी जरुरी नहीं है। यत्र-तत्र गीतों का प्रयोग भी इसमें किया जा सकता है।

९. यह मात्र इतिवृत्तात्मक और वर्णनात्मक भी हो सकता है। भाव और कला का वैभव इसका अपरिहार्य गुण नहीं।

## द्वितीय अध्याय

# द्विवेदी युग : पृष्ठभूमि और युगीन परिवेश

### काल सीमा

आधुनिक हिन्दी कविता के विकास-क्रम में भारतेन्दु-युग के परवर्ती और छायावाद युग के पूर्ववर्ती रचना-काल को द्विवेदी युग के नाम से अभिहित किया जाता है। द्विवेदी-युग नामकरण से ही स्पष्ट है कि इस युग में किसी प्रवृत्ति विशेष के स्थान पर आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का साहित्यिक व्यक्तित्व ही केन्द्रीय निदेशक और मूल प्रेरणास्रोत था। द्विवेदी जी के नाम पर नामकरण होने के कारण इसकी काल-सीमा के सम्बन्ध में मतभेद होना तो नहीं चाहिए, फिर भी कुछ मतभेद मिलता है। सामान्यत: सन् १९०० ई० से १९२० ई० तक के काल को अधिकांश विद्वानों ने द्विवेदी युग माना है। इस काल निर्धारण का मुख्य आधार है 'सरस्वती' पत्रिका का प्रकाशन और द्विवेदी जी द्वारा उसका सम्पादन। सन् १९०० ई० में 'सरस्वती' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ, १९०३ ई० में द्विवेदी जी उसके सम्पादक बने और १९२० ई० तक उसके सम्पादन का दायित्व-निर्वाह उन्होंने किया। द्विवेदी जी ने अपने युग का साहित्यिक संस्कार और मार्ग-दर्शन मुख्यत: इसी पत्रिका के माध्यम से किया, इसलिए यदि द्विवेदी जी के सम्पादन-काल को आधार मानें तो १९०३ ई० से १९२० ई० तक और यदि सरस्वती में द्विवेदी जी की प्रेरणास्रोत रचनाओं के प्रकाशन को आधार मान लें तो १९०० ई० से १९२० ई० तक द्विवेदी युग का प्रसार माना जा सकता है। यही कारण है कि कुछ विद्वान द्विवेदी युग का प्रारम्भ १९०० ई० के स्थान पर १९०३ ई० ही मानना अधिक उपयुक्त समझते हैं। डा० उदयभानु सिंह का यह कथन प्रमाण रूप में लिया जा सकता है कि 'संवत् १९६० में वे 'सरस्वती' के सम्पादक हुए। उन्होंने एक प्रभविष्णु और सफल सेनापति की भाँति हिन्दी के शासन की बागडोर अपने हाथ में ली। यहीं से अराजकता-युग का अन्त और द्विवेदी-युग का प्रारम्भ हुआ'।[1]

इसके विपरीत जो विद्वान् तीन वर्ष और पहले से इस युग के प्रारम्भ पर बल देते हैं, उनका तर्क है कि द्विवेदी जी 'सरस्वती' के सम्पादक अवश्य

१९०३ ई० में बने, किन्तु 'सरस्वती' का सम्पादन ग्रहण करने के बाद नहीं, बल्कि 'सरस्वती' के प्रकाशन के साथ ही अपनी रचनाओं द्वारा उन्होंने काव्य के नवोन्मेष के लिए आह्वान प्रारम्भ कर दिया था। जनवरी १९०० ई० में 'सरस्वती' के प्रथम अंक में ही उनकी दो रचनाएं क्रमशः 'नैषध चरित चर्चा और सुदर्शन' तथा 'द्रौपदी-वचन-वाणावली' प्रकाशित हुई और वे प्रमुख लेखक के रूप में उससे जुड़ गये। १९०० ई० की 'सरस्वती' के जून अंक में द्विवेदी जी की चुनौती भरी प्रसिद्ध कविता 'हे कविते' प्रकाशित हुई जिसमें द्विवेदी जी ने रीतिकालीन कविता की एकांगिता और ब्रजभाषा में होनेवाली समस्यापूर्तियों पर व्यंग करते हुए सच्ची कविता का अह्वान किया—

'सुरम्य रूपे ! रसराशि रंजिते !  
विचित्र वरणाभरणे कहाँ गई ?  
अलौकिकानन्द विधायिनी महा-  
कवीन्द्र कान्ते ! कविते ! अहो कहाँ ?

उसी वर्ष जुलाई की 'सरस्वती' में उनका 'कवि कर्त्तव्य' शीर्षक प्रसिद्ध लेख भी प्रकाशित हुआ जो नयी काव्य-चेतना का एक प्रकार से प्रारम्भिक घोषणा-पत्र है। इस लेख ने काफी हलचल पैदा की। यह शुभ संयोग ही था कि द्विवेदी जी 'सरस्वती' के प्रकाशन के ठीक तीन वर्ष बाद उसके सम्पादक भी बन गये। अतः यदि द्विवेदी जी के साहित्यिक व्यक्तित्व के प्रभाव को आधार माना जाय तो यह प्रभाव सरस्वती के प्रकाशन के साथ ही असर करने लगा था। यही कारण है कि अधिकांश विद्वान द्विवेदी-युग का प्रारम्भ सन् १९०० से मानना अधिक उपयुक्त समझते हैं। इस सम्बन्ध में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का यह मत भी द्रष्टव्य है, 'यही इस शताब्दी के आरम्भिक बीस वर्षों के साहित्य की साधारण रूप-रेखा है। एक पीढ़ी समाप्त हो रही थी और दूसरी का उदय हो रहा था। नये के आगमन का पूर्वाभास और पुरानी की विलम्बित छाया कभी-कभी कुछ वर्षों का समय घेर लेती है। इस कारण हमें नये के आगमन और पुराने के अवसान की ठीक तिथि निर्धारित करने में कठिनाई भी हो जाती है। परन्तु सन् १९१९ ई० में समाप्त होने वाला प्रथम महायुद्ध और सन् १९२० के आसपास भारतीय राजनीति में गांधी जी का प्रवेश, दो ऐसे स्मारक हैं

लेने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं है।'[1] इस प्रकार यदि १९१९ या १९२० से नये साहित्यिक उन्मेष अर्थात् छायावाद का प्रारम्भ माना जाता है तो १९०० से १९२० ई० तक का काल द्विवेदी-युग की काल-सीमा है।

डा० सुधीन्द्र भी द्विवेदी-युग का काल-प्रसार २० वर्ष ही मानते हैं और लगता है २० वर्ष की अवधि पर विशेष ध्यान रखते हुए वे सन् १९०१ को द्विवेदी-युग की प्रारम्भिक सीमा निर्धारित करते हैं। 'हिन्दी कविता में युगान्तर' की प्रस्तावना में वे लिखते हैं, 'इसी बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ के दो दशकों की कविता का यह अध्ययन प्रस्तुत करते हुए मुझे आन्तरिक प्रसन्नता हो रही है। बीसवीं शताब्दी के ये बीस वर्ष वस्तुतः खड़ी बोली कविता के विकास के बीस वर्ष हैं।'[2] इस प्रस्तावना में ही २० वर्ष की काल-सीमा उन्होंने १९०१ से १९२० स्पष्ट कर दी है। वस्तुतः यदि १९०० से १९२० तक इस युग का प्रसार माना जाता है तो काल-सीमा २१ वर्ष हो जाती है। सम्भवतः इसीलिए १९०१ से द्विवेदी-युग का प्रारम्भ मानकर उन्होंने २० वर्ष की काल सीमा स्थिर की है। किन्तु 'हिन्दी कविता का क्रान्ति युग' में उन्होंने १९०० से १९२० तक द्विवेदी-युग का प्रसार माना है। उनके शब्दों में 'ईसा की बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण, (१९००–१९२०) द्विवेदी-काल की हिन्दी कविता, द्विवेदी जी के इसी 'कबि कर्त्तव्य' स्वप्न की पूर्ति है।'[3] अतः डा० सुधीन्द्र भी सन् १९०० ई० से ही द्विवेदी-युग का प्रारम्भ मानते हैं। अगर एक वर्ष कम करने की जरूरत ही हो तो १९२० को विचारणीय माना जा सकता है, क्योंकि १९२० से ही छायावाद का भी प्रारम्भ माना जाता है और प्रायः वही विद्वान् मानते हैं जो १९२० तक द्विवेदी-युग की काल-सीमा मानते हैं।

द्विवेदी-युग की प्रारम्भिक सीमा के सम्बन्ध में विशेष मतभेद नहीं है। हिन्दी साहित्य क्षेत्र में पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रवेश की तिथि को आधार मानने पर प्रारम्भ काल को १९०० से ४–५ वर्ष पूर्व ले जाना होगा। इसी तरह द्विवेदी जी द्वारा 'सरस्वती' के सम्पादन का महत्व देने पर ३ वर्ष बाद से इस युग का प्रारम्भ होगा। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने एक प्रकार से १९०० से पूर्व से ही इस साहित्यिक अभ्युत्थान का प्रारम्भ मानकर

---

१. आधुनिक साहित्य, आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी, पृ० २०।

२. हिन्दी कविता में युगान्तर–प्रस्तावना।

उसका विवेचन किया है और डा० उदयभानु सिंह, रामरतन भटनागर आदि ने १९०३ को इस काल का प्रारम्भिक वर्ष माना है। सच्चाई यह है कि किसी भी साहित्यिक युग का काल-निर्धारण इतिहास की तरह सुनिश्चित तिथि से नहीं हो पाता, २-४ वर्ष का अन्तर सामान्य बात है। काव्यगत प्रवृत्तियाँ न तो अचानक प्रकट हो जाती हैं और न तो किसी समय विशेष पर बिलकुल समाप्त हो जाती हैं। जैसा कि वाजपेयी जी ने कहा है कि नये के आगमन का पूर्वाभास और पुराने की विलम्बित छाया कुछ वर्षों का समय घेर लेती है। १९०० से ही द्विवेदी युग के प्रारम्भ को अधिक मान्य समझते हुये भी यह कहा जा सकता है कि सन् १९०० के दो तीन वर्ष पूर्व से ही यदि कोई द्विवेदी-युग का प्रारम्भ मानने का आग्रह करता है तो उससे द्विवेदी युगीन काव्य के मूल्यांकन में कोई व्यतिक्रम या व्याघात नहीं उत्पन्न होता। कभी-कभी लेखन और प्रकाशन-काल में भी समय का अन्तर पड़ जाता है।

सन् १९०० से द्विवेदी-युग का आरम्भ मानने के सम्बन्ध में प्रारम्भ ही विचार व्यक्त कर दिया गया है। सम्भवतः उसी तर्क के आधार पर हिन्दी के अधिकांश विद्वानों ने यहीं से इस युग का प्रारम्भ माना है। डा० सुधीन्द्र, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के अतिरिक्त डा० केशरीनारायण शुक्ल,[१] डा० श्रीकृष्णलाल,[२] डा० भोलानाथ,[३] डा० राममूर्ति त्रिपाठी,[४] डा० शंभुनाथ सिंह[५] आदि ने १९०० से द्विवेदी-युग का प्रारम्भ माना है। डा० केशरी-नारायण शुक्ल ने 'सरस्वती' के प्रकाशन-काल को ही आधार बनाया है। उनके अनुसार 'धीरे-धीरे ब्रजभाषा का पक्ष दुर्बल पड़ता गया और खड़ी बोली के समर्थक विजयी हुये। सन् १९०० में 'सरस्वती' (जिसका उद्देश्य खड़ी बोली का उत्थान था) के जन्म से यह विजय स्थायी हो गई।'[६] वास्त-विकता यह है कि 'सरस्वती' के प्रकाशन के समय से ही खड़ी बोली में द्विवेदी

---

१. आधुनिक काव्यधारा, पृ० १०१।

२. आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृ० २।

३. आधुनिक हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि १९००-१९५०, पृ० ८२।

४. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३३४।

५. हिन्दी काव्य की सामाजिक भूमिका, पृ० १७३।

जी की प्रेरक रचनायें प्रकाशित होने लगी थीं, उसके पहले उनकी रचनायें मुख्यतः ब्रजभाषा में थीं या ब्रजभाषा मिश्रित थीं। इसलिए 'सरस्वती' के प्रकाशन-काल को ही सामान्यतः द्विवेदी-युग का प्रारम्भिक वर्ष मान लिया गया है। इसका प्रमाण यह भी है कि बहुत से लेखकों-आलोचकों द्वारा इसे अब निर्विवाद तथ्य के रूप में काव्य-समीक्षा में स्वीकार कर लिया गया है।

प्रारम्भिक सीमा की तरह ही द्विवेदी-युग की समाप्ति कब मानी जाय, इस सम्बन्ध में भी कुछ मत-भिन्नता है। अधिकांश विद्वान् सन् १९२० ई० तक इस युग का प्रसार मानते हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि १९२० ई० तक द्विवेदी जी सरस्वती के सम्पादक रहे और उसके माध्यम से लेखकों को प्रेरणा देते रहे। दूसरा कारण यह है कि १९२० ई० के आसपास ही छायावादी काव्य-पद्धति की रचनायें प्रकाश में आने लगी थीं। निराला की प्रसिद्ध रचना 'जुही की कली' १९२० के पूर्व ही प्रकाशित हो चुकी थी। पंत की 'वीणा' और 'ग्रन्थि' से बदलती काव्य प्रवृत्ति का परिचय मिलने लगा था। 'पल्लव' (१९२०–२१) के प्रकाशन ने तो हलचल ही मचा दी। जिस 'भूमिका' के साथ उसका प्रकाशन हुआ, उससे साहित्य के सुधी व्यक्तियों का अपरिचित और अप्रभावित रह पाना संभव नहीं था। अतः सन १९२० के बाद सन् १९२५ या उससे भी आगे द्विवेदी-युग को खींचना तर्कपूर्ण प्रतीत नहीं होता। वाजपेयी जी का यह मत अधिक ग्राह्य है कि 'जब यह बात सच है कि जो लोग द्विवेदी जी के सम्पर्क में आये, उन्होंने उनका मंत्र ले लिया और जिन पर द्विवेदी जी की लेखनी चल गई, वे कला की शब्दावली में 'द्विवेदी कलम' के लेखक हो गये, तब क्यों न बीस वर्षों की सम्पादित 'सरस्वती' पर द्विवेदी-काल का लेबल लगाकर रख दिया जाय?'[१]

जो लोग द्विवेदी जी के लेखन-कार्य प्रारम्भ करने (सन् १८९६) से लेकर उनकी मृत्यु (सन् १९३८) तक का काल द्विवेदी-युग मानते हैं,[२] उनके मत की अग्राह्यता पर कदाचित् विचार करने की भी अब आवश्यकता नहीं रह गई है। आश्चर्य यही है कि उन्होंने द्विवेदी-युग का प्रारम्भ उनके जन्म से ही क्यों नहीं माना। १९३८ में तो छायावाद-युग समाप्तप्राय था और

---

१. हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी : आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ० ३।

२. 'सन् १८९६ से (जब उन्होंने प्रथम बार लेखनी चलाई थी) सन् १९३८ तक (जब उन्होंने इस संसार से विदा ली) का समय द्विवेदी-युग कहा

प्रगतिवादी तथा अन्य काव्य-प्रवृत्तियों का विकास प्रारम्भ हो गया था। द्विवेदी जी के लेखन-काल से प्रारम्भ मानने में तो विशेष आपत्ति नहीं हो सकती, किन्तु उनकी मृत्यु तक इस युग का प्रसार मानना इसलिए भी उचित नहीं है कि उनका लेखन और निर्देशन दोनों 'सरस्वती' का सम्पादकत्व छोड़ने के बाद शिथिल हो गये थे। अन्य प्रेरक शक्तियाँ प्रबल हो गई थीं, अतः उनका निर्देशन उनके बाद प्रभावी भी नहीं होता। इसीलिए अधिकांश विद्वान् सन् १९०० से १९२० ई० तक द्विवेदी-युग का प्रसार मानते हैं। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के अतिरिक्त डा० सुधीन्द्र, डा० केशरीनारायण शुक्ल, डा० दीनदयालु गुप्त, डा० शंभुनाथ सिंह, डा० भोलानाथ, डा० राममूर्ति त्रिपाठी आदि ने १९२० ई० तक द्विवेदी-युग की काल-सीमा को मान्यता देकर इस युग पर विचार किया है।[1]

उन विद्वानों के मत अवश्य ही विचारणीय हैं जो १९२० के दो-तीन वर्ष पूर्व की द्विवेदी युग की समाप्ति मानते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस उत्थान की अन्तिम सीमा सन् १९१८ तक मानी है। किन्तु उन्होंने इसका प्रारम्भ भी सन् १९०० ई० से निश्चित किया है। जिन आलोचकों ने सन् १९२० से पूर्व ही द्विवेदी-युग की समाप्ति मानी है, उन्होंने प्रायः शुक्ल जी के मत का ही अनुसरण किया है। छायावादी ढंग की रचनाओं के प्रकाशन को ध्यान में रखने पर एक-दो वर्ष अन्तर रखा भी जा सकता है, किन्तु जैसा कि प्रारम्भ में कहा गया है साहित्यिक काल-निर्धारण में लचीला-पन आ ही जाता है, कट्टरता से किसी निश्चित तिथि या वर्ष का निर्देश प्रायः संभव नहीं हो पाता। छायावादी ढंग की रचनायें सन् १९२० से पहले छिटपुट रूप में भले ही प्रकाशित हो गई हों लेकिन ये काव्य-प्रवृत्ति या काव्यान्दोलन के रूप में सन् १९२० के बाद ही परिलक्षित हुईं। नयी काव्य-प्रवृत्ति को उभरने और प्रकाशित करने में भी दो-तीन वर्ष का समय लग जाना बहुत सामान्य और स्वाभाविक है। दूसरी ओर जब तक द्विवेदी जी 'सरस्वती' के सम्पादक रहे, उनके साहित्यिक व्यक्तित्व का प्रभाव अन्य किसी भी प्रभाव से अधिक था। यही कारण है कि छायावादी कवियों की रचनायें उनके सम्पादन-काल में 'सरस्वती' में स्थान नहीं पा सकीं, यह अवसर उनके सम्पादकत्व छोड़ने के बाद ही उन्हें मिल पाया। इसलिए १९२० तक द्विवेदी-युग का प्रसार मानना अधिक तर्कपूर्ण और उचित प्रतीत होता है।

---

१. देखिए—द्विवेदी-युग के प्रारम्भिक वर्ष के प्रमाण में पूर्व उल्लिखित इनके ग्रंथ और पृष्ठ संख्या।

प्रस्तुत प्रबन्ध में सामान्यतः इस काल-सीमा में समाविष्ट खण्ड-काव्यों का विवेचन और मूल्यांकन किया गया है। किन्तु क्योंकि कोई युग विशेष किसी व्यक्ति की आयु सीमा की भाँति रेखांकित और एकदम समाप्त नहीं होता, अतः सिद्धान्ततः सन् १९०० से १९२० ई० तक द्विवेदी-युग की काल-सीमा मानते हुये भी द्विवेदी युगीन प्रवृत्तियुक्त उन खण्ड काव्यों को भी इसमें ले लिया गया है जो इस काल-सीमा के दो-तीन वर्ष बाद तक प्रकाशित हुए।

**पृष्ठभूमि**

अंग्रेजी राज्य की स्थापना, अंग्रेजों के संपर्क और अंग्रेजी भाषा के कारण १९वीं शताब्दी के प्रारम्भ से इस देश में एक नया सांस्कृतिक मोड़ आया। यह पुनर्जागरण, नवोन्मेष और विद्रोह का काल था। नवीनता और आधुनिकता से युक्त यह परिवर्तन सन् १८५० ई० तक स्पष्ट लक्षित होने लगा था। यह सांस्कृतिक उन्मेष संक्रान्तिकालीन मूल्क-बोध और पुनरुत्थान-वादी दृष्टिकोण से गुजरता हुआ अन्त में विद्रोही स्वर में बदल गया। हिन्दी साहित्य में यही स्वर भारतेन्दु-युग, द्विवेदी-युग और छायावाद-युग के साहित्य में मुखरित हुआ।

सन् १८५० के बाद का काल भारत में अनेक हलचलों का काल था। इस काल में सामाजिक और धार्मिक सुधार, नवीन शिक्षा, सांस्कृतिक जागरण, राजनीतिक गतिविधि, आर्थिक ढाँचे का विघटन और राष्ट्रीय जागरण के सम्बन्ध में जितनी क्रियाशीलता और हलचल दिखलाई पड़ती है, इसके पहले कभी नहीं थी। इस युग का इतिहास अंग्रेजों द्वारा भारत के सामाजिक-आर्थिक शोषण का इतिहास है, मुख्यतः आर्थिक शोषण का। अंग्रेजों के शासन और उनकी नीति के परिणामस्वरूप एक ओर सामन्तवाद और पुराणपंथी संस्कृति का ह्रास हो रहा था और दूसरी ओर मध्यवर्गीय बौद्धिक-वैज्ञानिक और राष्ट्रीय संस्कृति का विकास हो रहा था। ये दोनों प्रवृत्तियाँ इस युग में एक साथ चलती हुई दिखाई पड़ती हैं। इस प्रकार १९वीं शती का उत्तरार्द्ध, विश्वासों के संघर्ष और साम्राज्यवाद के प्रभुत्व का काल है। इस युग में एक ओर तो सामन्तवाद तथा पुराणपंथी लोग सांस्कृतिक और सामाजिक क्षेत्र में यथास्थिति बनाये रखने के लिए प्रयत्नशील थे और दूसरी ओर ऐसे मध्य वर्ग का उदय हो रहा था जो वैज्ञानिक आविष्कारों तथा पाश्चात्य-शिक्षा से लाभ उठाकर एक नयी पूँजीवादी संस्कृति का विकास

सामन्तवाद के साथ ही साम्राज्यवाद का विरोध करने को विवश होना पड़ा। अतः यह युग (सन् १८५० से १९०० ई० तक) दो विचारधाराओं की संक्रान्ति का काल है। यह संक्रान्ति धर्म, राजनीति और दर्शन के क्षेत्र में ही नहीं, साहित्य और कला के क्षेत्र में भी दिखलाई पड़ी। हिन्दी कविता में एक ओर सन् १८५० के बाद रीतिकालीन (सामन्ती) प्रवृत्ति ह्रासोन्मुख रूप में चलती रही, दूसरी ओर आधुनिक प्रवृत्ति का प्रारम्भिक रूप भी दिखाई पड़ने लगा। आधुनिक हिन्दी-काल का प्रारम्भिक चरण 'भारतेन्दुयुग' इसी का प्रतिफलन है। इस तथ्य को ठीक-ठीक समझने के लिए इस काल की राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक परिस्थितियों पर विचार कर लेना आवश्यक है।

**राजनीतिक स्थिति**

सन् १८५७ के विद्रोह से भारत की राजनीतिक स्थिति में नया मोड़ आया। इसने एक ओर जहाँ भारतीयों में निराशा की भावना उत्पन्न की, वहीं दूसरी ओर संघर्ष करने के उनके संकल्प को भी दृढ़ किया। अंग्रेजों के लिए यह विद्रोह एक चुनौती के रूप में था। यद्यपि इस विद्रोह का नेतृत्व सामन्तवर्ग ने किया, तथापि इसमें स्थितियों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। धर्म के खतरे ने इन्हें उत्तेजित कर दिया था। दूसरी ओर डलहौजी की कठोर नीति के कारण जनता में आक्रोश और क्षोभ उत्पन्न हो रहा था। संगठन, एकता, त्याग और जनान्दोलन के अभाव में यद्यपि यह विद्रोह सफल नहीं हो सका, तब भी इसका बहुत व्यापक प्रभाव पड़ा। झाँसी की रानी, तात्या टोपे और कुँवर सिंह की वीरता की कहानी जनता में फैल गई। ये विद्रोही नेता जनता के आदर्श नायक बन गये। मध्यवर्ग के शिक्षित सम्प्रदाय पर भी इसका प्रभाव पड़ा, विशेष रूप से तब जब कि विदेशों के समाचार-पत्रों में अंग्रेजों की दमन-नीति की आलोचना हुई। अंग्रेजों के ऊपर भी इस विद्रोह और उसकी प्रतिक्रिया का प्रभाव पड़ा। वे अपने शासन को और चुस्त तथा सुदृढ़ बनाने के लिए साम, दाम, दण्ड, भेद से काम लेने लगे। इस विद्रोह के कारण ईस्ट इण्डिया कम्पनी का राज्य भी समाप्त हुआ। विद्रोह की समाप्ति के बाद सन् १८५८ ई० में लार्ड केनिंग ने इलाहाबाद के दरबार में महारानी विक्टोरिया का घोषणा-पत्र सुनाया जिसके अनुसार भारत पर कम्पनी राज्य समाप्त करके उसे ब्रिटिश-राज्य के अधीन कर दिया गया। इस घोषणा-पत्र में कहा गया कि अब वाइसराय सरकार के

असन्तोष को दूर करने के लिए उनके साथ की गई सन्धियों के पालन का आश्वासन दिया गया और इससे नि:सन्तान राजाओं को गोद लेने का भी अधिकार मिल गया। शासन की धर्म निरपेक्षता की नीति भी इस घोषणा-पत्र में घोषित की गई। इस घोषणा-पत्र के परिणामस्वरूप कम्पनी राज्य के अधिकारियों और उनकी नौकरशाही के बर्बर व्यवहार से लोगों को मुक्ति मिली, साथ ही ब्रिटिश सरकार और पार्लियामेन्ट से जनता का सीधा सम्बन्ध स्थापित हुआ। इस घोषणा पत्र से भारतीयों में यह विश्वास उत्पन्न हुआ कि वे अपना दुःख-दर्द सीधे ब्रिटिश सरकार से निवेदित कर सकते हैं। ब्रिटिश राज्य का अंग बन जाने के कारण उन्हें यह भी आशा हुई कि ब्रिटेन के नागरिकों को जो अधिकार और सुख-सुविधायें प्राप्त हैं, सम्भवतः वे उन्हें भी मिल जाँय, किन्तु यह भ्रम अधिक दिनों तक नहीं बना रह सका। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की राजभक्तिपरक कविताओं और बाद में देशभक्ति के रूप में उनके बदले तेवर में उन दोनों स्थितियों को देखा जा सकता है।

सन् ५७ के विप्लव को दबाने के बाद अंग्रेजी शासन भारत में अपनी जड़ें मजबूत करने के प्रयास में विशेष रूप से लग गया। इसके लिए उसने प्रशासनिक सुधार के साथ देशी राज्यों को शक्तिहीन करने का भी प्रयत्न किया। लार्ड केनिंग ने प्रशासनिक सुधार की दिशा में प्रयास किया, साथ ही शिक्षा और न्याय के क्षेत्रों में भी सुधार किये। केनिंग ने ही मैकाले की नवीन शिक्षापद्धति को कार्यान्वित किया जिसके परिणामस्वरूप प्रत्येक प्रान्त में शिक्षा विभाग और अनेक राजकीय विद्यालय खोले गये। लार्ड केनिंग के के बाद जान लार्रेंस (सन् १८६८ से ६९ ई० तक), लार्ड मेन्टो (१८६९ से १८७२ ई० तक), लार्ड नार्थ कुक (सन् १८७२ से १८७६ ई० तक), लार्ड लिटन (सन् १८७६ से १८८० ई० तक), लार्ड रिपन (१८८० से १८८४ ई० तक), लार्ड डफरिन (१८८४ से १८८८ तक) और लैंस डाउन (१८८८ से १९०१ तक) भारत के वाइसराय हुए। इन वाइसरायों ने शान्ति बनाये रखने और उत्तेजक कार्यवाही न करने की नीति का अनुसरण किया, किन्तु इन वाइसरायों के समय में अफगानिस्तान से बराबर संघर्ष होता रहा जिसका सारा व्यय भारतीय जनता को उठाना पड़ रहा था। इसी स्थिति को लक्ष्य करके भारतेन्दु ने लिखा —'फंसि भारत जर्जर भयो, काबुल युद्ध अकाल' या 'भारत-कोष विनास को हिय अति ही अकुलात।'

इसी बीच बर्मा और तिब्बत को भी ब्रिटिश राज्य में मिलाने या उसे अपने प्रभुत्व में रखने के लिए कार्रवाई की गई। सन् १८८२ में बर्मा राज्य

के सभी अधिकार समाप्त कर दिये गये और सन् १८८५ में उसे ब्रिटिश राज्य का अंग बना लिया गया। १९०४ ई० में तिब्बत पर ब्रिटिश प्रभुत्व स्थापित करने के प्रयास में युद्ध हुआ। ग्यान्तसा और लासा पर अंग्रेज सेना का कब्जा हो गया। लासा से समझौते के परिणामस्वरूप भारत को कोई विशेष लाभ नहीं हुआ, किन्तु इन सब कार्यों का व्यय भारतीय जनता को उठाना पड़ा। ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार और व्यापार की रक्षा के लिए अपार धन व्यय किया जा रहा था, विशेष रूप से ऐसे समय में जबकि भारतीय जनता अकाल और सूखे से बुरी तरह ग्रस्त थी।

जैसा कि प्रारम्भ में कहा गया है विक्टोरिया के घोषणा-पत्र से उत्पन्न भ्रम अधिक दिनों तक नहीं रह सका, फिर भी इस घोषणा ने भारतीयों में एक विश्वास अवश्य उत्पन्न किया जिसके परिणामस्वरूप भारतेन्दु जैसे सजग कवियों ने भी स्वामिभक्ति या राजभक्ति प्रकट की। मिस्र और अफगान युद्धों में विजय को उन्होंने यवनों पर आर्यों की विजय माना। २२ सितंबर सन् १८८२ में मिस्र-विजय के सम्बन्ध में 'विजयिनी विजय पताका या वैजयन्ती' में उन्होंने इस प्रकार अपने भावोद्‌गार प्रकट किए—

स्वामिभक्ति किरतज्ञता दरसावन हित आज,
छाड़ि प्रान देखहिं खरो, आरज-बंस समाज।

इसी प्रकार ड्यूक आफ एडिनबरा और प्रिंस आफ वेल्स के स्वागत में भी उन्होंने कवितायें लिखीं।[1] प्रिंस आफ वेल्स के भारत आगमन पर उन्होंने इन शब्दों में स्वागत किया—

मन मयूख हरखित भये भये दुरित तब दूरि,
राज कुंवर नवघन सरस भारत जीवन मूरि।[2]

राजभक्ति का यह स्वर कितना प्रबल था, यह इसी बात से समझा जा सकता है कि राजकुमार के आगमन की तुलना भारतेन्दु जी ने रामचन्द्र के अयोध्या वापस आने से की है—

जिमि रघुबर आये अवध जिमि रजनी लहि चंद।
तिमि आगमन कुमार के कासी लह्यो अनन्द॥

वस्तुतः इस राजभक्ति का उद्देश्य प्रशंसा द्वारा भारतवर्ष और उसके नागरिकों के लिए सुख और सुविधा पाना था, किन्तु इसके साथ ही वे

---

१. भारतेन्दु ग्रंथावली : ब्रजरत्नदास, पृ० ८०४।
२. सुमनांजलि और बालबोधिनी, खण्ड ३, संख्या ६, आषाढ़ सं० १९३३।

आर्थिक शोषण और देश-दुर्दशा से अनभिज्ञ नहीं थे। इसलिए इस राजभक्ति के साथ देशभक्ति का स्वर भी सुनाई पड़ता है। उन्हें बाद में लगने लगता है कि सुख-सुविधाओं का नाटक और आश्वासन आर्थिक शोषण का बहाना मात्र है। उनकी प्रसिद्ध व्यंगात्मक पहेली इसका उदाहरण है—

भीतर भीतर सब रस चूसै, हंसि हंसि कै तन मन धन मूसै।
जाहिर बातन में अति तेज, क्यों सखि साजन नहिं अंगरेज।

तात्पर्य यह कि अंग्रेजों से सुख-सुविधा पाने का भ्रम टूटते ही असन्तोष की भावना बढ़ने लगी। यह असन्तोष क्रान्तिपूर्ण विद्रोह का रूप न ग्रहण कर ले, इसे ध्यान में रखकर अंग्रेज शासकों की सहमति से ह्यूम साहब ने कुछ भारतीयों को साथ लेकर सन् १८८५ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की। सर ह्यूम इस संस्था के संस्थापक अवश्य थे किन्तु उनका नियंत्रण इस पर नहीं रहा। यह बुद्धिजीवियों के आकर्षण का केन्द्र बन गई। प्रशासनिक सुधार की माँग के साथ शासन में भारतीयों को अधिक से अधिक अधिकार दिलाना इस संस्था का प्रारम्भिक उद्देश्य था। कांग्रेस ने सन् १८९१ में व्यवस्थापिका सभाओं के विस्तार और चुनाव द्वारा सदस्यों के निर्वाचन की माँग की। किन्तु सन् १८९२ में ब्रिटिश पार्लियामेन्ट में भारतीय शासन में सुधार के लिए जो कानून पास हुआ, उसमें भारतीयों को बहुत कम अधिकार दिये गये। कांग्रेस ने इस पर अपना असंतोष प्रकट किया। फिर भी अंग्रेजों ने प्रशासन में भारतीयों को हिस्सा देकर उन्हें संतुष्ट करने की दिशा में इस बीच स्थानीय स्वायत्त शासन सम्बन्धी कानून के द्वारा प्रयास किया। इस कानून के अनुसार विभिन्न नगरों और जिलों में जिला परिषदें स्थापित की गईं और भारतीयों को प्रशासन में कुछ न कुछ हिस्सा मिला। कांग्रेस में प्रारम्भ में उदारवादी लोगों का प्रभुत्व था जो सुधारवादी दृष्टिकोण और संवैधानिक पद्धति में विश्वास रखते थे। इस पर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, उमेशचन्द्र बनर्जी, दादाभाई नौरोजी, महादेव गोविन्द रानाडे और गोपालकृष्ण गोखले जैसे उदारवादी नेताओं का विशेष प्रभाव था। यह उदारवादी परम्परा १९०५ ई० तक चलती रही, यद्यपि १८९० में लोकमान्य तिलक जैसे उग्रवादी विचारक इसमें आ गये थे। इन उदारवादी नेताओं का लक्ष्य मुख्यत: प्रशासनिक अधिकारों और उच्च सरकारी नौकरियों में भारतीयों को अधिक से अधिक भाग दिलाना तथा अपनी माँगों के माध्यम से सुधार ले आना था। यही कारण है कि इस काल में राजभक्ति और देशभक्ति का सामंजस्यपूर्ण स्वर सुनाई पड़ता है और कवि तथा साहित्यकार

भी इससे अप्रभावित नहीं रह सके हैं। किन्तु सन् १९०० के बाद उग्रवादी राष्ट्रीय विचारधारा ने बल पकड़ा। सुधारवादी सामंजस्यवादी नीति में इनकी आस्था नहीं रह गई थी। इस विचारधारा के नेता लोकमान्य तिलक हुए जिन्होंने स्वतंत्रता को जन्मसिद्ध अधिकार घोषित किया। अन्य स्वतंत्र होने वाले देशों के उदाहरण ने उनके इस विचार को बल दिया कि भारतीय भी अंग्रेजों की दासता से मुक्ति पा सकते हैं। तिलक ने इसी दिशा में कार्य आरम्भ किया। इसी समय महामारी और अभाव-अकाल का भी देश को सामना करना पड़ा। तिलक ने इस अवसर का लाभ उठाया। सन् १८९६ में दक्षिण में किसानों की लगानबन्दी का आन्दोलन शुरू किया। पूना में एक कलक्टर और एक लेफ्टिनेन्ट की हत्या हो गई और तिलक को गिरफ्तार कर लिया गया, उन्हें राजद्रोही माना गया। भारतीय राजनीति में यहां से सीधी काररवाई की नीति का प्रारम्भ हुआ और उग्रवादी चेतना बलवती होती गई। उग्रवादी आन्दोलन के जोर पकड़ने का मुख्य कारण अंग्रेजों द्वारा भारतीयों के हित की उपेक्षा और उनकी माँगों की निरन्तर अवहेलना थी। लाला लाजपत राय जैसे लोगों को ब्रिटेन से लौटने पर यह मानना पड़ा कि भारत की समस्या की ओर ध्यान देने का ब्रिटेन की संसद और वहाँ के नागरिकों को अवकाश ही नहीं है। माँग, निवेदन, विनय के बदले में उत्तरोत्तर शोषण और दमन ही भारतीयों को मिला। सन् १८९४ में इटली पर अबीसिनिया की विजय और १९०५ ई० में रूस पर जापान की विजय ने अफ्रीकी-एशियायी हीनता की भावना को दूर किया और यह आत्म विश्वास उत्पन्न किया कि अंग्रेज भगाये जा सकते हैं। भारतीयों में राजनीतिक परिपक्वता और आत्मविश्वास उत्तरोत्तर बढ़ता गया।

### सामाजिक और आर्थिक स्थिति

अंग्रेजों का एक प्रमुख उद्देश्य भारत का आर्थिक शोषण करना भी था। प्रारम्भ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के माध्यम से और सन् १८५७ के बाद ब्रिटिश राज्य द्वारा सीधे यह शोषण कार्य किया गया। यह एक साम्राज्यवादी देश द्वारा दूसरे देश का शोषण था। इस काल में देश में यातायात के साधनों की व्यापक व्यवस्था की गई। रेलवे लाइन देश में बिछाई जाने लगी, तार और डाक की व्यवस्था की गई। इसका उद्देश्य जहाँ एक ओर धन-दोहन था, वहीं दूसरी ओर सेना को सुगमता और शीघ्रता से एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाना भी था। इन व्यवस्थाओं से शासन व्यवस्था को सुदृढ़ किया, किन्तु इससे देश को एकता के सूत्र में बाँधने का भी अवसर मिला,

बिखरे हुए सम्पर्क-सूत्रों को जोड़ने में रेल, डाक-तार व्यवस्था ने महत्त्वपूर्ण योग दिया। कम्पनी राज्य की समाप्ति के बाद व्यक्तिगत उद्योग की दिशा में विकास हुआ। ब्रिटेन के उद्योगपति अपनी पूँजी भारत में लगाने लगे, कई ब्रिटिश कम्पनियाँ खुल गईं। रेल, चाय, कोयला, वस्त्र आदि के उद्योगों का विशेष प्रसार हुआ। बंगाल के चाय, जूट और नील का व्यवसाय उत्तरोत्तर बढ़ता गया। कई ब्रिटिश बैंक खुले। इस प्रकार ब्रिटिश पूँजी के विस्तार के लिए सभी प्रकार के प्रयास किये गये। इस बीच कई प्रकार के कर भी लगाये गये। इन सब का कृषि पर भी हानिकर प्रभाव पड़ा। किसानों की स्थिति दयनीय हो गई। देश में अन्न की ऐसी कमी हो गई कि बाहर से अन्न मँगाना पड़ा। अकाल ने कृषि-व्यवस्था को और जर्जर कर दिया। सन् १८५१ से १९०० ई० के बीच ३४ बार अकाल पड़े जिसमें दो करोड़ व्यक्ति मर गये।[1]

**सांस्कृतिक पुनर्जागरण**

**ब्रह्मसमाज**—सम्पूर्ण १९वीं शती अपनी धार्मिक-सांस्कृतिक चेतना और पुनर्जागरण के लिए चिरस्मरणीय रहेगी। सन् १८२८ में राजा राममोहन राय ने 'ब्रह्म समाज' की स्थापना की। धार्मिक प्रयास होते हुए भी सामाजिक और सांस्कृतिक जागरण की दिशा में इस समाज की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। ईसाई बनाने का जो अभियान अंग्रेज मिशनरियों ने आरम्भ किया, उस पर इस समाज ने अंकुश का कार्य किया। उन्होंने बहुत विवेक के साथ ईसाई धर्म से हिन्दू धर्म की रक्षा का दायित्व-निर्वाह किया। धार्मिक होते हुए भी राजा राममोहन राय का यह प्रयास कितना व्यापक था, यह उनके इस कथन से ही स्पष्ट है कि 'मुझे यह कहते हुए दुःख होता है कि हिन्दुओं की वर्तमान धर्म-व्यवस्था ऐसी है कि जिससे उनके राजनीतिक हितों की पूर्ति नहीं हो सकती। उनके भी विभाजन और उप-विभाजन को जन्म देने वाली असंख्य बातें हैं। जातिप्रथा ने उन्हें राजनीतिक चेतना से पूरी तरह वंचित कर दिया है। अगणित कर्मकाण्डों तथा संस्कारों एवं सिद्धिकरण के नियमों ने उन्हें कठोर और साहसपूर्ण कार्यों के अयोग्य बना दिया है। मेरे विचार से आवश्यक है कि कम से कम उनके राजनीतिक और सामाजिक कल्याण के लिए उनके धर्म में कुछ परिवर्तन होने चाहिए।'[2]

---

१. हिन्दी काव्य की सामाजिक भूमिका : डा० शंभुनाथ सिंह, पृ० १६०।

२. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास—नवम् भाग, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, सं० २०३४ वि०, पृ० ६।

(६१४६)
(पुस्तकालय)



स्पष्ट है कि धार्मिक सुधार का उद्देश्य सामाजिक और राजनीतिक कल्याण था। इसलिए उन्होंने उपनिषदों के ब्रह्मवाद का सहारा लेकर एकेश्वरवाद का प्रचार किया। साथ ही ईसाईयों की प्रार्थना-पद्धति से प्रेरणा लेकर सामूहिक प्रार्थना-पद्धति अपनाई। राजा राममोहन राय धार्मिक रूढ़ियों और अंधविश्वासों के कट्टर विरोधी थे। उनके 'ब्रह्म समाज' की धार्मिक मान्यतायें तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरूप व्यावहारिक भी थीं। उन्होंने मूर्ति-पूजा तथा हिन्दू धर्म की अन्य बुराइयों का विरोध किया। वास्तव में वे धार्मिक नेता न होकर धर्म के माध्यम से सामाजिक जीवन में परिवर्तन ले आने वाले मनीषी थे। बाल-विवाह, सती प्रथा को समाप्त करने की दिशा में उन्होंने महत्त्वपूर्ण प्रयास किया। अंग्रेजी साहित्य, पाश्चात्य संस्कृति और सभ्यता का उन्होंने गहन अध्ययन किया था, इसलिए उनके दृष्टिकोण में पाश्चात्य और भारतीय संस्कृति का समन्वित रूप दिखलाई पड़ता है। भारतीय जनता को शिक्षित करने और उसमें युगानुरूप नई चेतना उत्पन्न करने की दिशा में उन्होंने कई महत्वपूर्ण कार्य किये। आधुनिक शिक्षा प्रणाली को प्रतिष्ठित करने में उनका योग है। कलकत्ता के आस-पास विभिन्न श्रेणियों के विद्यालयों की स्थापना में उनका सर्वाधिक योगदान रहा। इस प्रकार 'ब्रह्मसमाज' के माध्यम से न केवल धर्म के क्षेत्र में बल्कि समाज, संस्कृति और शिक्षा के क्षेत्र में भी नयी चेतना उत्पन्न करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया गया।

**आर्य समाज**—राजा राममोहन राय के बाद भारतीय सांस्कृतिक चेतना को नयी दिशा और नयी गति देकर पुनः जाग्रत करने का कार्य स्वामी दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना द्वारा किया। उन्होंने वेदों का गहन अध्ययन किया, उनकी नयी व्याख्या की और वैदिक धर्म के उद्धार के लिए आन्दोलन किया। सन् १८७५ में उन्होंने आर्य समाज की स्थापना की। स्वामी दयानन्द का धार्मिक आन्दोलन भी तत्कालीन परिस्थितियों को ध्यान में रखकर चलाया गया सामाजिक और सांस्कृतिक आन्दोलन था। अप्रत्यक्ष रूप से सामाजिक राजनीतिक चेतना से भी यह युक्त था। ब्रह्म समाज के आन्दोलन पर पश्चिमी प्रभाव होने के कारण जनता में उसका प्रचार-प्रसार अधिक नहीं हो सका, किन्तु आर्य समाज का व्यापक प्रभाव पड़ा। वस्तुतः आर्य समाज हिन्दू आदर्श का प्रतिष्ठापक था और इसे व्यापक बनाने के लिए स्वामी दयानन्द ने इसे आर्यधर्म कहा। आर्य समाज को एक क्रान्तिकारी सामाजिक आन्दोलन कहा जा सकता है। हिन्दू धर्म को उसकी संकीर्णता से बाहर निकालने का मुख्य श्रेय इसे प्राप्त है। ब्रह्म की एकता,

जातिगत समानता, आत्मा की स्वतंत्रता, स्त्री-पुरुष समानता, विधवा विवाह आदि का उपदेश देने के साथ ही स्वामी जी ने छुआछूत, जन्मजात जाति प्रथा, अवतारवाद, भाग्यवाद, मूर्ति-पूजा, बाल-विवाह आदि धार्मिक और सामाजिक रूढ़ियों पर प्रहार किया और उन्हें समाप्त करके हिन्दू जाति में जातीय गौरव की भावना उत्पन्न करने का स्तुत्य प्रयास किया। ज्ञान को रूढ़ियों की संकुचित सीमा में बाँधने के वे विरोधी थे, पाश्चात्य ज्ञान-स्रोतों के ग्रहण के वे विरोधी नहीं थे, किन्तु उनका मत था कि उन्हें ग्रहण करते हुए भी शिक्षा-पद्धति भारतीय होनी चाहिए, भारतीयता और भारतीय सांस्कृतिक परम्परा का त्याग उन्हें ग्राह्य नहीं था। यद्यपि वे गुजराती थे, पर उन्होंने अपनी पुस्तकें हिन्दी में लिखीं, हिन्दी को राष्ट्र की भाषा माना, स्वदेश-धर्म, स्वदेशी वस्तु के ग्रहण और प्रयोग पर जोर दिया। आत्मा की स्वतंत्रता का उद्घोष करते हुए उन्होंने स्वराज्य का महत्त्व बतलाया। इस प्रकार आर्य समाज ने सामाजिक और सांस्कृतिक जागरण के माध्यम से राष्ट्रीयता के प्रचार का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। आर्य समाज ने धार्मिक और सामाजिक सुधार के लिए संगठित और व्यवस्थित आन्दोलन किया जो हिन्दुओं में जातीय-गौरव की भावना और एकता उत्पन्न करने में सहायक हुआ। उनके शुद्धि-आन्दोलन ने हिन्दुत्व को निश्शेष होने से बचाया। स्थान-स्थान पर विद्यालयों और महाविद्यालयों की स्थापना द्वारा ऐसे युवकों का समुदाय तैयार किया गया जो देश में सामाजिक और सांस्कृतिक क्रांति उत्पन्न कर सकें। राष्ट्रीय भावना के विकास में भी आर्य समाज की महत्त्व-पूर्ण भूमिका रही।

**रामकृष्ण मिशन**—ब्रह्मसमाज और आर्य समाज ने जातीय भावना, सामाजिक सुधार और राष्ट्रीय चेतना को जाग्रत करने की दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य अवश्य किया, किन्तु वे परम्परावादी हिन्दू जाति की धार्मिक-सांस्कृतिक भावना को बहुत संतुष्ट नहीं कर सके। यह कार्य स्वामी विवेकानन्द ( सन् १८६२-१९०२ ) ने किया। उन्होंने हिन्दू धर्म और भारतीय वेदान्त दर्शन को उसके मूल रूप में पुनरुज्जीवित किया। धार्मिक परम्पराओं में विश्वास रखने वाले हिन्दुओं में आत्मविश्वास उत्पन्न करने में स्वामी विवेकानन्द के विचारों और व्याख्यानों ने बहुत योग दिया। अपने गुरु रामकृष्ण परमहंस के आदर्शों के प्रचार के लिए उन्होंने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की, जिसने आर्य समाज की तरह ही सामाजिक, सांस्कृतिक चेतना के साथ राष्ट्रीय जावना को उद्बुद्ध करने का महत्त्वपूर्ण

कार्य किया। इन्होंने साधना और त्याग द्वारा मानव कल्याण और समाज सेवा का उपदेश दिया। विवेकानन्द ने विश्व में भारतीय अध्यात्म और दर्शन की श्रेष्ठता प्रतिपादित करने का व्रत लिया। उन्होंने अंग्रेजी का ज्ञान प्राप्त करने के साथ ही संस्कृत के ग्रन्थों का भी गहन अध्ययन किया था। अतः देश-विदेश सर्वत्र भ्रमण करते हुए उन्होंने हिन्दू-धर्म और भारतीय दर्शन के माहात्म्य की जैसी प्रस्थापना की, वह कोई अन्य नहीं कर सका। सन् १८९२ में होने वाले विश्व-धर्म-सम्मेलन में अद्वैतवाद की विद्वत्तापूर्ण व्याख्या करके उन्होंने विद्वानों को चमत्कृत कर दिया। भारतीय आध्यात्मवाद में विदेशियों की भी आस्था बढ़ने लगी और अनेक विदेशी उनके शिष्य हो गये। एक प्रकार से स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय धर्म-दर्शन और संस्कृति की विजय पताका सारे संसार में फहरा दी। इससे भारतीयों की हीन भावना से मुक्ति दी। आत्मा को ईश्वर का स्थान देकर उन्होंने मानव मात्र की एकता का उपदेश दिया। जातिगत संकीर्णता और साम्प्रदायिकता से हिन्दू धर्म को मुक्त करके मानव धर्म के रूप में उसे प्रतिष्ठित किया। वे समग्र भाव से हिन्दू धर्म को प्रतिष्ठित करने वाले ऐसे मनीषी थे जिन्होंने भारत के गौरव और आत्मविश्वास को परम्परावादी ढंग से पुनः स्थापित किया। लोकमंगल उनका लक्ष्य था और उनका धर्म मानव मात्र के अभ्युदय में विश्वास रखता था। आत्मा की मुक्ति के साथ भौतिक स्वातंत्र्य, शारीरिक स्वतंत्रता के महत्त्व की भी उन्होंने आवाज उठाई। स्वदेश-प्रेम और देश-भक्ति के लिये उनके विचार प्रेरणा-स्रोत बन गये। उग्रवादी और क्रान्तिकारी नेता भी उनके विचारों से प्रभावित हुए। इस सम्बन्ध में उन्होंने निर्भ्रान्त घोषणा की—'भावी ५० वर्षों तक हमारा मूल मंत्र होगा, यही हमारी भारत माता है, तब तक मस्तिष्क से अन्य देवी-देवताओं को हटा देना चाहिये। भारत माता एक ऐसा ईश्वर है जो जाग्रत है और उसके कर, नाक और श्रवण चतुर्दिक व्याप्त हैं, उसमें सभी कुछ समाया हुआ है।' राष्ट्रभक्ति को उन्होंने ईश्वरीय माहात्म्य का पद दिया और रामकृष्ण मिशन के माध्यम से सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में सेवा, निष्ठा और भारतीयता की जो परम्परा चली, वह युगों तक धर्म के द्वारा मानव और राष्ट्रीय अभ्युत्थान के लिये प्रेरणा प्रदान करने का कार्य करती रहेगी।

**थियोसोफिकल सोसाइटी**—सन् १८७९ में थियोसाफिकल सोसाइटी की स्थापना से भी भारतीय अध्यात्म के प्रचार के साथ सर्व धर्म समन्वय

का महत्त्वपूर्ण कार्य प्रारम्भ हुआ। ईसाई मिशनरियों की तरह विवेकानन्द और थियोसाफिकल सोसायटी ने भी सारी दुनिया में भारतीय आदर्श और उसके आध्यात्मिक माहात्म्य का प्रचार किया। साम्प्रदायिकता से मुक्त यह संस्था भी मानव मात्र के कल्याण में विश्वास रखती थी। श्रीमती ऐनी बेसेण्ट ने इस संस्था को प्राण-शक्ति दी। भारत के सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक अभ्युत्थान में इस संस्था ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। ऐनी बेसेण्ट आध्यात्मिक नेता ही नहीं रहीं, उन्होंने कांग्रेस का भी सन् १९१० से १९२० ई० तक नेतृत्व किया। इस प्रकार यद्यपि यह संस्था ब्रह्म-विद्या के ज्ञान के लिये स्थापित हुई, किन्तु यह भारतीय बुद्धिजीवियों को जीवन के विविध क्षेत्रों में प्रेरणा देती रही। शिक्षा के क्षेत्र में भी इस संस्था का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा और आज भी इसकी अनेक संस्थायें शिक्षा क्षेत्र की आदर्श मानी जाती हैं।

विभिन्न व्यक्तियों, क्षेत्रों और सम्प्रदायों द्वारा चलाये गये इन धार्मिक आन्दोलनों ने भारतीय मानस को बहुत दूर तक प्रभावित किया। इस धार्मिक, सांस्कृतिक आन्दोलनों ने राष्ट्रीय जागरण की ऐसी लहर उत्पन्न की जिसने उत्तर से लेकर दक्षिण तक समस्त भारत भूमि को आप्लावित कर दिया।

किसी भी देश का साहित्ययुगीन परिस्थितियों से अप्रभावित नहीं रह सकता। उपर्युक्त राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों तथा धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक आन्दोलनों ने बुद्धिजीवी संवेदनशील साहित्यकारों को भी बहुत अधिक प्रभावित किया। यह प्रभाव भारतेन्दु-युग में स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। धार्मिक और सांस्कृतिक पुनर्जागरण का तो और भी दूरगामी प्रभाव पड़ा। भारतेन्दु-युग के साहित्य में यह प्रभाव लक्षित होने लगा था, किन्तु इसका व्यापक और गहरा प्रभाव द्विवेदी-युग के साहित्य पर भी पड़ा। द्विवेदी-युग की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक परिस्थिति में बहुत कुछ भारतेन्दु युगीन परिस्थितियों का ही परिवर्धित रूप है। धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक आन्दोलनों का जो क्रम १९वीं शती के उत्तरार्द्ध में प्रारम्भ हुआ, उसका पूर्ण और व्यापक प्रतिफलन २०वीं शती के प्रारम्भिक दशकों में विशेष रूप से दिखलाई पड़ा। द्विवेदी युगीन साहित्य में व्याप्त जातीय भावना, स्वातंत्र्य-चेतना और पुनर्जागरण के सही मूल्यांकन के लिये इस पृष्ठभूमि से परिचित होना आवश्यक है।

परिस्थितियों में परिवर्तन के साथ ही साहित्य में आमूल परिवर्तन

नहीं होता। साहित्य इसे धीरे-धीरे आत्मसात् करता है। यही कारण है कि भारतेन्दु युग में साहित्य में सामंजस्यवादी दृष्टिकोण बना रहता है। रीतिकालीन परम्परा और प्रभाव से बिलकुल मुक्त हो जाना संभव नहीं था, इसलिये एक ओर जहाँ इस युग में रीतिकालीन प्रवृत्तियाँ मिलती हैं, वहीं दूसरी ओर तत्कालीन नये परिवेश के प्रति जागरूकता दिखलाई पड़ती है। वस्तुतः वह ऐसा संक्रान्ति का युग था जिसमें काव्य-विषय, काव्य-रूप, छंद, भाषा तथा सामाजिक, राजनीतिक दृष्टिकोण सभी में मूल्यों की संक्रमणशीलता दृष्टिगत होती है। यद्यपि इस युग में ब्रजभाषा ही काव्य की प्रमुख भाषा थी, तथापि गद्य रचना खड़ी बोली में होने लगी थी। युगीन परिवेश की अभिव्यक्ति के लिए गद्य विधा सबसे सशक्त माध्यम है। संभवतः इसी लिये भारतेन्दु युग में हिन्दी गद्य का प्रारम्भ हुआ। कविता की भाषा में भी परिवर्तन के बीज इसी युग में पड़ गये। परम्परागत ब्रजभाषा को अपनाते ए भी इस युग के कवियों ने अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक भावना को खड़ी बोली में व्यक्त करने का प्रयास किया। ब्रजभाषा काव्य में भी रीतिकाल जैसी विषय की संकीर्णता नहीं रह गई। राष्ट्रीयता, समाज सुधार, शिक्षा, अतीत गौरव को भी अपने ब्रजभाषा काव्य का अनेक कवियों ने विषय बनाया। ह्रासोन्मुख रीतिकालीन श्रृंगारिक प्रवृत्तियाँ बिलकुल समाप्त नहीं हुईं, लेकिन उनके साथ श्रृंगार और प्रेम के सुरुचिपूर्ण प्रसंगों और दशाओं के चित्रण की ओर ध्यान दिया गया। प्रेम और सौन्दर्य को सच्चाई के साथ स्वस्थ रूप में लिया गया। परम्परागत छन्दों के साथ नवीन छन्दों का भी आविर्भाव हुआ। हास्य और व्यंग की शैली को अपनाया गया, विशेष रूप से अंग्रेजी राज्य पर प्रहार के लिये यह शैली बहुत प्रभावपूर्ण सिद्ध हुई। लोक प्रचलित छन्दों-कजली, लावनी आदि का भी विविध विषयों और भावों की अभिव्यक्ति के लिये प्रयोग किया गया। इन छन्दों का प्रयोग कवियों की लोकवादी चेतना का प्रमाण है। इनके माध्यम से इन्होंने जनता से जुड़ने की प्रक्रिया अपनाई। इस लोकवादी प्रवृत्ति के कारण इस काल की कविता में वैसी कृत्रिमता और अतिरंजना नहीं दिखलाई पड़ती, जैसी रीतिकाल में मिलती है। बोलचाल की भाषा का भी प्रयोग किया गया। इस प्रकार विषय, छन्द, भाषा सभी में परिवर्तन के लक्षण इस युग में दिखलाई पड़ने लगे जिसका पूर्ण परिपाक द्विवेदी-युग में हुआ।

राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों का भी प्रभाव कवियों पर पड़ा। जैसा कि पहले कहा गया प्रारम्भ में तत्कालीन राजनीतिक नेताओं के

स्वर में ही कवियों ने राजभक्ति दिखलाई और उसके द्वारा अपना प्राप्य पाने की आशा की, किन्तु यह भ्रम जल्दी ही भंग हो गया और राजभक्ति का स्थान देशभक्ति ने ले लिया। आर्थिक शोषण के विरोध में भी कवितायें लिखी गईं। आर्थिक शोषण, बौद्धिक और सांस्कृतिक परतंत्रता की निन्दा करते हुए अपनी भाषा, अपने धर्म और जातीय गौरव के अभ्युदय का आह्वान किया गया—

वस्त्र, कांच, कागज, कलम चित्र खिलौने आदि,
आवत सब परदेश सों नितहिं जहाजन लादि।
परदेशी की बुद्धि अरु वस्तुन की करि आस,
परबस ह्वै कब लौं कहो रहिहो तुम ह्वै दास॥
+ + +
निज भाषा, निज धरम, निज मान करम व्यौहार,
सबै बढ़ावहु बेगि मिलि, कहत पुकार पुकार॥[1]

तत्कालीन सामाजिक और मानवीय स्थिति कवियों की दृष्टि से ओझल नहीं हो सकी। अकाल, महंगाई और अनेक करों के कारण जनता की उत्तरोत्तर बिगड़ती स्थिति का इस काल के अनेक कवियों ने चित्रण किया। प्रतापनारायण मिश्र ने लिखा—

मंहगी और टिकस के मारे हमहिं क्षुधा पीड़ित तन छाम,
सागपात लों मिलै न जिय भर लेबो वृथा दूध को नाम।[2]

कवियों ने प्राचीन गौरव को भी स्मरण किया और उन राजाओं की दुर्दशा पर चिन्ता व्यक्त की जो अंग्रेजी परवशता में अपना समस्त गौरवशाली वैभव खो चुके थे। धार्मिक और सामाजिक आन्दोलनों के द्वारा धार्मिक मतभेद, जातिप्रथा, ऊँच-नीच भेद, बहुविवाह, बाल-विवाह, विधवा विवाह निषेध आदि रूढ़ियों और कुरीतियों का विरोध प्रारम्भ हुआ। वह कविता में और सशक्त रूप में मुखरित हो उठा। इस सामाजिक स्थिति का यथार्थ चित्र भारतेन्दु जी ने प्रस्तुत किया—

रचि बहुविधि के वाक्य पुरानन मांहि घुसाये,
शैव शाक्त वैष्णव अनेक मत प्रगट चलाये।
जाति अनेकन करी नीच अरु ऊंच बनायो।
खानपान सम्बन्ध सबन सों बरजि छुड़ायो।

१. भारतेन्दु ग्रन्थावली, भाग २ : ब्रजरत्न दास, पृ० ७३८।
२. तृप्त्यन्ताम : प्रतापनारायण मिश्र, पद १६।

जन्म पत्र विधि मिले ब्याह नहिं होन देत अब ।
बालकपन में व्याहि प्रीति बल नास कियो सब ।
करि कुलीन के बहुत व्याह बल बीरज मार्‌यो ।
विधवा ब्याह निषेध किये विभिचार प्रचार्‌यो ॥[1]

भारतेन्दु के साथ भारतेन्दु-मण्डल के प्रायः सभी कवियों ने सामाजिक बुराइयों, आर्थिक शोषण, जातीय गौरव और स्वदेश प्रेम आदि पर कवितायें लिखीं। निष्कर्ष यह कि सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिस्थितियों का चित्रण भारतेन्दु युग के कवियों ने निर्भीकता पूर्वक किया ।

**द्विवेदी-युगीन परिस्थितियाँ**

द्विवेदी युगीन धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिस्थितियाँ बहुत अंशों तक १९वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों का ही विकसित और विस्तृत रूप है। इसीलिए द्विवेदी युगीन दृष्टिकोण और काल प्रवृत्तियों को समझने के लिए १९वीं शती के अन्तिम वर्षों की स्थितियों और काव्य-दृष्टि की जानकारी आवश्यक है। तत्कालीन परिस्थितियों के परिणामस्वरूप जो जागरूकता और लोकवादी दृष्टि भारतेन्दु युग के अन्तिम वर्षों में उत्पन्न हुई थी, वह १९वीं शती का अन्त होते-होते सजग भारतीयों के लिए प्रेरणा-स्रोत बन गई और २०वीं शती में उसका सुदृढ़ और विकसित रूप सभी क्षेत्रों में दिखलाई पड़ने लगा। भारतेन्दु युग तक रीतिकालीन काव्य प्रवृत्ति का ह्रासोन्मुख अवशेष रह गया था, किन्तु द्विवेदी-युग में वह पूरी तरह समाप्त हो गया। काव्य-विषय, भाव, भाषा, छन्द सभी में जो परिवर्तन भारतेन्दु युग में प्रारम्भ हुआ था, उसने द्विवेदी युग में आकर एक स्पष्ट रूप ग्रहण कर लिया। गद्य की भाषा तो खड़ी बोली हो ही चुकी थी, काव्य भाषा के रूप में भी उसे प्रतिष्ठा मिल गई। भारतेन्दु युग में पुनरुत्थानवादी प्रवृत्ति की जो गूँज सुनाई पड़ती थी, वह द्विवेदी युग का प्रमुख स्वर बन गई। जातीय भावना और स्वाभिमान इस युग के कवि-मानस को आन्दोलित करने लगी। रीतिकालीन काव्य-संस्कार इस युग में छूटता चला गया। ब्रजभाषा का आकर्षण कुछ कवियों तक ही सीमित रह गया, किन्तु ब्रजभाषा-काव्य में भाषा, छन्द आदि तक ही परम्परा-निर्वाह किया गया। काव्य-विषय, प्रतिपादन शैली, दृष्टिकोण इनमें भी वैसा ही दिखलाई पड़ता है, जैसा कि खड़ी बोली के काव्यों में। लोकोन्मुखता का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि

१. भारत दुर्दशा : भारतेन्दु हरिश्चन्द्र।

इस युग में प्रबन्ध काव्यों, विशेष रूप से खण्ड काव्यों की जितनी रचना हुई उतनी अन्य किसी युग में नहीं। १९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में उत्पन्न होकर २०वीं सदी तक पूर्ण विकसित धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक चेतना को अभिव्यक्ति देने के लिए प्रबन्ध ही सशक्त माध्यम हो सकते थे, अतः मुक्तकों से अधिक प्रबन्धात्मक रचनाओं की ओर इस युग के कवियों का झुकाव हुआ। जातीय गौरव और पुनरुत्थान की प्रेरणा के लिए प्राचीन भारतीय साहित्य, पौराणिक और ऐतिहासिक आख्यान तथा महान् आदर्श चरित्रों को लेकर बृहत्, लघु सभी प्रकार के प्रबन्ध-काव्य लिखे गये। यहाँ संक्षेप में उन परिस्थितियों पर भी विचार कर लेना आवश्यक है जिनके कारण द्विवेदी युग में भारतीय जागरण सुस्थिर हो गया और पुनर्जागृति तथा नवोत्थान के लिए युगीन परिवेश के अनुरूप कवियों और अन्य साहित्यकारों ने अपनी काव्य प्रतिभा का उपयोग किया।

**राजनीतिक परिस्थितियाँ**

१९वीं शताब्दी के अन्त तक अंग्रेजों की साम्राज्यवादी और शोषण नीति का परिचय मिलने लगा और धीरे-धीरे यह भ्रम टूट गया कि राजभक्ति द्वारा कुछ विशेष पाया जा सकता है। इस समय तक कांग्रेस का लक्ष्य भी शासन में सहयोग और प्रतिनिधित्व की माँग तक ही मुख्यतः सीमित था। उदारपंथियों का कांग्रेस पर प्रभुत्व था। किन्तु इस बीच कई ऐसी घटनायें घटीं, जिनका भारतीयों पर गहरा प्रभाव पड़ा। सन् १९०१ में महारानी विक्टोरिया की मृत्यु हो जाने से अंग्रेजी शासन के प्रति लोगों में विश्वास समाप्त होने लगा। इस बीच अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी कई ऐसी घटनायें हुईं। जिनसे भारतीय आत्मविश्वास और राष्ट्रीय संघर्ष को बल मिला। सन् १८९६ में अबीसिनियां द्वारा इटली की पराजय और १९०५ में रूस पर जापान की विजय ने भारतीयों में उत्साह और आशा का संचार किया। अफ्रीका का बोअर युद्ध, यूनानियों की तुर्कों द्वारा पराजय तथा पूर्वी देशों में ईसाइयों की हत्या से भारतीयों को लगने लगा कि अंग्रेजों को भी भारत से हटाया जा सकता है। १९०० के बाद अंग्रेजों की शोषण और दमन नीति भी बढ़ गई। इसका प्रभाव काँग्रेस पर भी पड़ा। २०वीं शताब्दी के प्रारम्भ में ही कांग्रेस में उग्र दल के नेताओं का प्रभाव बढ़ने लगा। तिलक, लाला लाजपत राय, सुरेन्द्र नाथ बनर्जी और विपिनचन्द्र पाल ने अंग्रेजों का उग्र विरोध शुरू किया। बंगाल में बढ़ती राष्ट्रीय भावना को देखकर अंग्रेजों ने बंग-विभाजन का कुचक्र अपनाया। बंगाली राष्ट्रीय एकता को भंग करने के

लिए पहले पूर्वी बंगाल के बहुसंख्यक मुसलमानों को बहकाया गया और उसमें सफलता न मिलने पर १९०५ ई० में बंग-भंग की घोषणा कर दी गई। कांग्रेस के नेताओं ने इसका विरोध किया। १९०५ में बंग-भंग आन्दोलन हुआ। ७ अगस्त को सम्पूर्ण बंगाल में जगह-जगह सभायें आयोजित की गईं। गोखले के क्रांतिकारी विचारों का प्रभाव जनता पर पड़ा और इस आन्दोलन ने स्वदेशी वस्तुओं को अपनाने और विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार को मुख्य लक्ष्य बनाया। लोगों ने मन्दिरों में विदेशी वस्तुओं के परित्याग की प्रतिज्ञा की। लार्ड कर्जन ने दमन नीति जारी रखी और प्रशासनिक सेवा में भारतीयों के सहयोग को यह कहकर ठुकरा दिया कि जातिगत पैतृक श्रेष्ठता के कारण अंग्रेज ही सिविल सेवाओं के लिए उपयुक्त हैं। भारत के भीतर और विदेश में अंग्रेजों के विरुद्ध प्रचार बढ़ता गया। सन् १९०७ में लाला लाजपत राय को बन्दी बना लिया गया। इंग्लैण्ड में मदनलाल ढींगरा और दामोदर सावरकर ने अंग्रेजी शासन का विरोध किया। सावरकर को तो काले पानी की और ढींगरा को गोली चलाने के अपराध में फाँसी की सजा दी गयी। आन्दोलन इतना उग्र हो गया कि हिंसात्मक तरीकों को अपनाकर अंग्रेजी-राज्य को समाप्त करने का प्रयास भी उत्साही युवकों ने प्रारम्भ कर दिया।

उत्तरोत्तर बढ़ती उग्रता का एक परिणाम यह हुआ कि लार्ड कर्जन को भारत छोड़कर वापस जाना पड़ा। उसके स्थान पर लार्ड मिण्टो नये वाइसराय बनाये गये। उधर 'स्वतंत्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है' का नारा भारतीय स्वातंत्र्य प्रेमियों का महामंत्र बन गया। कलकत्ते के कांग्रेस अधिवेशन में इस स्वातंत्र्य मंत्र की घोषणा के बाद तो कांग्रेस की एकमात्र माँग 'स्वराज्य प्राप्ति' ही हो गई। सुविधा, शासन सुधार, प्रशासन में भाग आदि माँगें महत्त्वहीन हो गईं। 'स्वदेशी' और 'स्वराज्य' भारतीय राष्ट्रीय चेतना के प्रतीक बन गये। कांग्रेस में उदारपंथियों और उग्रपंथियों का मत-भेद बढ़ता गया। यह मतभेद इतना बढ़ गया कि कई बार अवांछित संघर्ष होते-होते बचा। इस स्थिति का लाभ उठाकर अंग्रेजों ने नरम दल के लोगों का महत्त्व बढ़ाने के लिये 'मिण्टो मारले सुधार' कानून द्वारा शासन में सुधार किये। वाइसराय और प्रान्त की प्रबन्ध समिति में एक-एक भारतीय प्रतिनिधि लिया गया। किन्तु इस प्रतिनिधित्व के चुनाव में ही साम्प्रदायिकता का विष बो दिया गया। इसके साथ ही उग्रपंथियों और क्रान्तिकारियों का कठोरता से दमन किया गया। इस दमन चक्र की प्रतिक्रियास्वरूप सन् १९१२ में लार्ड हार्डिंग पर बम फेंका गया। क्रान्तिकारियों की उग्रता और

अंग्रेजों का प्रतिरोधात्मक दमन निरन्तर बढ़ता ही गया। सन् १९१५ में गोखले की मृत्यु के बाद से कांग्रेस में भी उग्रदल का प्रभाव बढ़ता गया। तिलक और श्रीमती ऐनी बेसेन्ट ने 'होमरूल लीग' की स्थापना की जिसने भारतीयों में नये उत्साह का संचार किया। अंग्रेज जितनी नृशंसता से आन्दोलन को कुचलने का प्रयास करते रहे, उतनी ही उग्रता और तीव्रता से भारतीय स्वाधीनता का आन्दोलन बढ़ता रहा।

इस बीच अंग्रेजों की साम्प्रदायिक फूट की नीति के परिणामस्वरूप सन् १९०६ में मुस्लिम लीग की स्थापना हुई और सन् १९०७ में करांँची में उसका प्रथम अधिवेशन हुआ। १९११ ई० में भारत की राजधानी कलकत्ता के स्थान पर दिल्ली हो गई और बंग-भग समाप्त कर दिया गया। सन् १९१४ में प्रथम महायुद्ध छिड़ गया। इसी समय अफ्रीका से सत्याग्रह आन्दोलन का अनुभव लेकर गांधी जी भारत आये। गांधी जी ने महायुद्ध में अंग्रेजों द्वारा भारतीयों के सहयोग की माँग का समर्थन किया। उन्होंने भारतीय जनता से युद्ध में सहयोग का अनुरोध किया। अंग्रेजों ने भी अपनी स्वार्थ-पूर्ति के लिये इस समय उदार और नरम नीति का अनुसरण किया। इस नरम-नीति ने फिर यह भ्रम उत्पन्न किया कि सम्भवतः अंग्रेजों का हृदय-परिवर्तन हो गया है। सन् १९१६ में गांधी जी और पं० मदनमोहन मालवीय ने मजदूरों को बाहर भेजने की प्रथा का विरोध किया, १९१७ ई० में अपनी नरम-नीति का परिचय देते हुए अंग्रेजों ने इसे मान लिया। इसी बीच सन १९१६ में खिलाफत आन्दोलन शुरू हुआ। तुर्की के विरुद्ध अंग्रेजों के युद्ध के कारण भारतीय मुसलमान नाराज थे। इस आन्दोलन में अंग्रेजों ने मौलाना शौकत अली और मौलाना मुहम्मद अली को गिरफ्तार कर लिया। सन् १९१६ में लखनऊ में हुई मुस्लिम लीग की सभा ने हिन्दू-मुस्लिम एकता पर बल दिया, किन्तु यह एकता की भावना सामयिक समझौता मात्र थी। अंग्रेजों ने साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व देकर जो साम्प्रदायिक विष बो दिया था, वह बढ़ता ही गया।

हिन्दुओं की सांस्कृतिक पुनरुत्थान की भावना के साथ अंग्रेजों की फूट नीति के कारण मुसलमान पृथकतावादी दृष्टिकोण अपनाने लगे। उन्होंने अपना अलग राजनीतिक संगठन ही नहीं बनाया, वे स्वतंत्र साहित्यिक, धार्मिक और शैक्षणिक संस्थाओं की भी माँग करने लगे। अलीगढ़ में उनके लिये अलग विद्यालय इसी का परिणाम था। इस साम्प्रदायिक पार्थक्य

के कारण कांग्रेस में मुसलमानों की संख्या घटती गई और इसी के कारण सन् १९१६ में कांग्रेस को मुस्लिम लीग से समझौता करना पड़ा।

प्रथम महायुद्ध (सन् १९१४–१९१८ ई०) में अंग्रेजों की सहायता इस आशा से की गई थी कि अंग्रेज भारत को स्वतंत्र कर देंगे। सन् १९१९ में युद्ध समाप्त हुआ। स्वराज्य के स्थान पर उपहार स्वरूप मिला 'रोलेट एक्ट' जिसके अनुसार बिना मुकदमा चलाये किसी को गिरफ्तार किया जा सकता था। इन कानूनों को वापस लेने का गाँधी जी का सारा प्रयास निष्फल रहा। तब उन्होंने सत्याग्रह आन्दोलन चलाया और ६ अप्रैल १९१९ को सारे देश में यह आन्दोलन फैल गया। सन १९१४ में ही तिलक भी माडले जेल से छूटकर आये और उन्होंने पूना में 'होमरूल लीग' की स्थापना की। ऐनी बेसेन्ट ने मद्रास में इसका अखिल भारतीय केन्द्र स्थापित किया। इंग्लैण्ड में 'सहायक होमरूल लीग' गठित किया गया। स्वराज्य प्राप्ति की चेतना बढ़ती गई, सारे देश के युवकों पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा। होमरूल लीग ने भाषा के आधार पर प्रान्तों का विभाजन स्वीकार किया। प्रान्तों का पुनर्निर्माण और तिरंगा इसी की देन है।

सन् १९१९ में अपने व्यापक सत्याग्रह आन्दोलन द्वारा गांधी जी ने भारतीय राजनीति में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रारम्भ की। सत्याग्रह आन्दोलन जितना व्यापक और तीव्र होता गया उतना ही अंग्रेजों का प्रतिशोधात्मक, दमनात्मक रवैया भी उग्र होता गया। देशभर में दंगे होने लगे। सन् १९१९ में अमृतसर में गांधी-तिलक विवाद हुआ और वे एक दूसरे से अलग हो गये। भारतीय राजनीति में गाँधी जी का प्रभाव पड़ा और यहीं से गांधी-युग की शुरुआत होती है। आन्दोलनों और दमनात्मक कार्रवाई की उग्रता के परिणामस्वरूप जलियांवाला हत्या काण्ड हुआ जिसमें पंजाब के गवर्नर डायर ने कई हजार निहत्थे लोगों को गोलियों से भुनवा दिया। अगस्त सन् १९२० में तिलक दिवंगत हो गये। सन् १९२० में ही असहयोग आन्दोलन ने सार्वजनिक रूप ले लिया जिसे कांग्रेस ने सन् १९१९ में देशभर में नयी कौंसिलों के विरोध द्वारा प्रारम्भ किया था। असहयोग आन्दोलन की घोषणा १ अगस्त सन् १९२० को की गई और सितम्बर के कांग्रेस अधिवेशन में उसे स्वीकार कर लिया गया। विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार और सरकारी उपाधियाँ लौटाने का कार्यक्रम इसके अन्तर्गत प्रारम्भ किया गया।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में जैसा कि पहले कहा गया नरम-गरम

दोनों प्रकार के लोग थे। दूसरी ओर उन क्रान्तिकारियों का दल था जो हिंसा द्वारा भारत की स्वतंत्रता के लिये संघर्ष कर रहे थे। वैसे उदारपंथियों में भी हिंसात्मक क्रान्ति और अहिंसात्मक पद्धति में विश्वास रखने वाले दो प्रकार के लोग थे। हिंसात्मक क्रान्ति में विश्वास रखने वालों में बंगाली अधिक थे। जैसा कि डा० शंभुनाथ सिंह ने लिखा है—इसका कारण यह था कि 'बंगाल में दुर्गा शक्ति की प्रतीक हैं। रामकृष्ण परमहंस ने भी दुर्गा की उपासना द्वारा ही सर्वधर्मसमन्वय तथा सांस्कृतिक पुनरुत्थान का उपदेश दिया था। गरम दल के लोगों ने भारत-माता को दुर्गा के रूप में मानकर हिंसात्मक तरीकों से उसे दुष्टों के हाथ से मुक्त करना आवश्यक समझा। नरम दल वाले भी इस धार्मिकता से दूर नहीं रह सके। 'वन्दे मातरम्' उनका मंत्र हुआ और राष्ट्रीयता को उन्होंने ईश्वरीय वस्तु समझ लिया।[१]'

इस प्रकार सन् १९२० तक भारतीय राजनीति में संघर्ष और आन्दोलन का रूप उग्र होने के साथ ही व्यापक भी हो गया। स्वतंत्रता के लिये प्राणों की आहुति देने वालों की संख्या बढ़ती गई और 'स्वदेशी' तथा 'स्वराज्य' की चेतना जनता की नस-नस में इस तरह व्याप्त हो गई कि किसी भी दमन द्वारा उसे समाप्त करना असम्भव हो गया। दमन के साथ यह चेतना और बढ़ती ही गई। इसी राजनीतिक वातावरण में द्विवेदी-युग का साहित्य लिखा गया। राजनीतिक क्षेत्र में कांग्रेस ने जो कार्य प्रारम्भ किया, जन-मानस को आन्दोलित करने में जो भूमिका अदा की, वही भूमिका 'सरस्वती' पत्रिका को प्रमुख साहित्यिक-मंच बनाकर द्विवेदी-युग के कवियों और साहित्यकारों ने की। पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी इस साहित्यिक आंदोलन के नेता और सूत्रधार बने।

**आर्थिक और सामाजिक परिस्थिति**—१९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से अंग्रेजों द्वारा भारत के आर्थिक शोषण का जो क्रम प्रारम्भ हुआ, वह उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। जैसा इसके पहले बताया गया है, भारतेन्दु जी ने इस शोषण और आर्थिक दुर्व्यवस्था की चर्चा बार-बार की। ब्रिटिश उद्योगपतियों को अपनी पूंजी लगाने और ऊँचा लाभ पाने का स्वर्णिम अवसर मिल गया था। यातायात की सुविधा प्राप्त होने से यूरोपीय देशों से आयात-निर्यात शुरू हो गया था और उद्योग-धंधों का विकास होने लगा

---

१. हिन्दी काव्य की सामाजिक भूमिका : डा० शंभुनाथ सिंह, पृष्ठ १७६।

था। सूती वस्त्र और जूट की कई मिलें खुल गईं, कोयले की खानें भी खोदी जाने लगीं। जहाँ तक ब्रिटिश पूंजी का प्रश्न है, ऐसा अनुमान है कि सन् १९१४ में लगभग ४५ करोड़ की ब्रिटिश पूँजी रेल, बीमा, बैंक और चाय के व्यापार में लगी हुई थी। इस व्यापार का सारा लाभ सीधे इंग्लैण्ड जाता था। इस काल में देशी व्यापारियों ने भी उद्योग-धंधों में पूँजी लगाई। अंग्रेजों की अनिच्छा के बावजूद देशी उद्योग धंधों का विकास होने लगा और प्रारम्भ में निर्यात आयात से अधिक था। भारतीय-उद्योग को हतोत्साहित करने के लिये विदेशी माल पर जब आयात कर लगाया गया, भारतीय मिलों के कपड़ों पर भी ३॥ प्रतिशत कर लगा दिया गया। फिर भी औद्योगिक विकास का क्रम जारी रहा। जमशेदपुर में टाटा कम्पनी की स्थापना हुई तथा अन्य क्षेत्रों में कागज, साबुन, सीमेन्ट, चावल, आटा, चीनी, दियासलाई आदि के कारखाने खोले गये। सन् १९०० तक ही लगभग १९३ सूती मिलें खुल गई थीं। १९०४ ई० में सीमेन्ट का कारखाना खोला गया, किन्तु अंग्रेज भारत का औद्योगिक विकास नहीं चाहते थे, इसलिये उन्होंने निरन्तर कर लगाये रखकर इसमें बाधा उत्पन्न करने का प्रयास किया। परिणामस्वरूप जितना औद्योगिक विकास होना चाहिये था, नहीं हो सका, फिर भी सूती कपड़े और जूट के उद्योग का कुछ सीमा तक विकास हुआ।

भारत मुख्यतः कृषि प्रधान देश रहा और इस काल में भी कृषि ही अर्थ का मुख्य स्रोत और आधार थी। विदेशी सरकार ने अपने स्वार्थ के लिये इस व्यवस्था पर भी प्रहार किया और जमींदारी प्रथा शुरू की। भूमिहीन मजदूरों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती गई। लगान और मालगुजारी की निरन्तर वृद्धि के फलस्वरूप किसान की दशा अधिक दयनीय होती गई, वह कर्जदार हो गया और अन्ततोगत्वा उसकी जमीन के मालिक वे महाजन हो गये जो सूद पर उन्हें कर्ज देते थे। खेती से लगान प्राप्त करने वालों की संख्या में संयुक्त प्रान्त (वर्तमान उत्तर प्रदेश) में ४६ प्रतिशत की वृद्धि हुई और पंजाब में यह संख्या सन् १९११ से १९२१ ई० तक सवा छः हजार से बढ़कर ११ हजार के लगभग हो गई।[1]

साइमन कमीशन की रिपोर्ट के अनुसार तो कहीं-कहीं जमींदार और खेतिहर किसान के बीच पचास से अधिक उपजीवी मध्यस्थ थे जो किसानों

---

१. इण्डिया टु डे : रजनी पाल दत्त।

के श्रम के शोषण द्वारा मौज करते थे। भारतीय किसान इसके कारण कर्ज से कितना दब गया, इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि मद्रास प्रान्त में सन् १९११ में एडवर्ड मैक्लेगन ने इस ऋण के ३ अरब रुपये होने का अनुमान लगाया है जो एम० एल० डार्लिंड के अनुसार सन् १९२३–२४ ई० में लगभग ६ अरब पहुँच गया।[1] जैसा कि प्रसिद्ध अर्थ-शास्त्री शाह और खंबाना ने लिखा है इस समय स्थिति यह थी कि भारत में औसत आय इतनी निम्न हो गई थी कि प्रति तीन व्यक्तियों में से केवल दो को भोजन मिल सकता था।[2]

उपर्युक्त स्थिति को ध्यान में रखकर ही स्वदेशी आन्दोलन शुरू किया गया। गृह उद्योग-धंधे निरन्तर समाप्त होते जा रहे थे। कांग्रेस ने इन्हें भी पुनरुज्जीवित करने का प्रयास किया। सन् १९०५ में प्रारम्भ किया गया स्वदेशी आन्दोलन राष्ट्रीयता का सूचक होने के साथ ही भारतीय औद्योगिकों को बढ़ावा देने का भी प्रयास था। अंग्रेज भारत का औद्योगिक विकास नहीं चाहते थे। अतः पूँजीपति वर्ग ने कांग्रेस का समर्थन करना शुरू कर दिया।

आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन और थियोसोफिकल सोसायटी ने धार्मिक आन्दोलनों के माध्यम से सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन को बहुत दूर तक प्रभावित किया था। इनका प्रभाव बीसवीं शताब्दी में और अधिक बढ़ा। धार्मिक सद्भाव, जातिगत समानता, सामाजिक कुरीतियों के त्याग के साथ ही जातीय गौरव और भारतीय सांस्कृतिक अभ्युत्थान की भावना इस काल में और बलवती हुई। प्राचीन इतिहास, साहित्य और संस्कृति के शोध की दिशा में इस काल में जो महत्त्वपूर्ण कार्य किये गये, उन्होंने भारतीयों को जातीय अभिमान और देश की महान् सांस्कृतिक परम्परा का बोध कराया और उनमें एक नवीन आत्मविश्वास का संचार किया। बनारस में 'शासकीय संस्कृत महाविद्यालय' की स्थापना ने प्राचीन संस्कृत-वाङ्मय के अध्ययन और शोध का मार्ग प्रशस्त किया। बंगाल में 'रायल एशियाटिक सोसायटी' ने प्राचीन संस्कृति, भाषा और इतिहास के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण शोध-कार्य प्रारम्भ किया। खुदाई से प्राप्त प्राचीन शिलालेखों से भी प्राचीन भारतीय इतिहास पर प्रकाश पड़ा। कर्नल कनिंघम के प्रयास से पुरातत्त्व

---

१. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, पृ० ३५२।
२. द वेल्थ एण्ड टैक्सेबिल कैपेसिटी आफ इण्डिया : शाह और खंबाना, १९२४, पृ० ५५३।

विभाग की स्थापना हुई। इस विभाग की ओर से हड़प्पा, मोहनजोदड़ों, राजगृह, तक्षशिला, सारनाथ आदि स्थानों की खुदाई की गई जिससे प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति के विषय में महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हुई। अजन्ता, एलौरा की चित्रकला और ताजमहल की वास्तुकला, बौद्ध और गुप्तकालीन मूर्तिकला की उत्कृष्टता को सारे संसार में मान्यता मिली। अनेक प्राचीन ग्रन्थों की खोज हुई। पाश्चात्य विद्वानों ने प्राचीन संस्कृत साहित्य में रुचि ली और विदेशी भाषा-साहित्य से ज्ञानवर्धक तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया। इस प्रकार प्राचीन ज्ञान भण्डार और सांस्कृतिक स्रोतों के अनुसन्धान ने पुनरुत्थान की उस प्रवृत्ति को और बल दिया जो द्विवेदी-युग की प्रधान प्रवृत्ति रही।

उपर्युक्त राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवेश ने द्विवेदी-युग के साहित्य को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से बहुत अधिक प्रभावित किया। यह प्रभाव इस युग की प्रायः सभी साहित्य-विधाओं में दिखलाई पड़ता है। द्विवेदी-युग के पूर्व मुक्तकों की प्रधानता थी, किन्तु मुक्तक के माध्यम से परिवेशगत व्यापक चेतना की अभिव्यक्ति नहीं हो सकती थी, प्रबन्ध-काव्य ही इसके सशक्त माध्यम हो सकते थे। यही कारण है कि इस युग में खण्डकाव्यों की अधिकाधिक रचना हुई। द्विवेदी-युग के कवि इस सम्पूर्ण परिवेशगत चेतना के प्रति सजग दिखलाई पड़ते हैं और उनकी यह सजगता उनकी रचनाओं में स्पष्ट परिलक्षित है। कुछ कवियों ने तो इस चेतना से प्रभावित होकर अपनी बात कहने के लिये ही किसी कथा विशेष या चरित्र विशेष का चयन कर खण्डकाव्य लिखे।

निष्कर्ष यह कि इन स्थितियों से कवियों का दृष्टिकोण ही नहीं बदला बल्कि उनकी काव्यगत मान्यताएँ भी बदल गईं। द्विवेदी-युगीन खण्डकाव्यों के वस्तु-चयन, भावबोध, छन्द, भाषा आदि सभी को इस युगीन परिवेश ने प्रभावित किया।

●

तृतीय अध्याय

# द्विवेदी युगीन खण्डकाव्यों का परिचयात्मक विवरण

## ( काल क्रमानुसार )

द्विवेदी-युग में लिखे गये विभिन्न खण्डकाव्यों का संक्षिप्त परिचयात्मक विवरण उनके कथा स्रोतों के उल्लेख सहित काल-क्रम के अनुसार इस अध्याय में प्रस्तुत किया जा रहा है। द्विवेदी-युग की अवधि को सन् १९०० ई० से १९२० ई० तक मानते हुए भी यहाँ उन सभी प्राप्त खण्डकाव्यों को समाहित किया गया है जो सन् १९२३ ई० तक प्रकाशित हुए, क्योंकि किसी व्यक्ति के जन्म और मृत्यु की निश्चित तिथि के सदृश किसी युग विशेष का आरम्भ और अवसान एक निश्चित तिथि पर नहीं माना जा सकता। उसकी प्रवृत्तियाँ कुछ वर्ष बाद तक विद्यमान रहती हैं, साथ ही लेखन के उपरान्त कृति के प्रकाशन में भी २–३ वर्ष का समय लग जाना सामान्य बात है। इस युग में अनुवाद की विशेष प्रवृत्ति रही और अंग्रेजी तथा बंगला आदि भाषाओं के कई काव्यों के अनुवाद भी हुए। अतः सामान्य जानकारी के लिए मौलिक खण्डकाव्यों के उपरान्त उपलब्ध अनूदित खण्डकाव्यों का परिचय भी यहाँ दिया जा रहा है।

### श्री सदाशिव विवाह

रणछोड़ जी दीवान कृत 'श्री सदाशिव विवाह' काव्य के प्रकाशक कहानजी धर्म सिंह हैं। सन् १९०१ ई० में यह गजानन प्रिंटिंग प्रेस बम्बई से मुद्रित हुआ। काव्य की भाषा ब्रज है परन्तु इसकी प्रस्तावना गुजराती भाषा में लिखी हुई है। इसकी कुल पृष्ठ संख्या ५३ है। इसमें बिना बुलाये सती के अपने पिता दक्ष के घर जाने, यज्ञ में भस्म होने और फिर पार्वती के रूप में जन्म लेकर शिव के साथ विवाह करने की प्रख्यात कथा है। पौराणिक आख्यान पर यह आधारित है।

### सावित्री उपाख्यान

'सावित्री उपाख्यान' खण्डकाव्य के रचयिता प्रसिद्ध नारायण सिंह हैं। इसका प्रकाशन सन् १९०२ ई० में लेखक ने स्वयं पगही, डाकखाना धानापुर (गाजीपुर) से करवाया। इसमें कुल तैंतालिस पृष्ठ हैं। सम्पूर्ण कथा ९ 'प्रतिभा' में विभाजित है। इसका कथानक सावित्री सत्यवान की प्रसिद्ध पौराणिक कथा पर आधारित है। सावित्री ने यह जानते हुए भी कि सत्य-

वान की आयु केवल एक वर्ष शेष है, सत्यवान से विवाह किया और अपने अखण्ड विश्वास तथा पति-परायणता के बल पर यमराज से अपने पति को छुड़ा ही नहीं लिया, अपितु अपने सास-ससुर को गया हुआ राज्य और आँखों की ज्योति पुनः दिलवा दी। 'सावित्री उपाख्यान' का कथा-स्रोत महाभारत है।

**प्रेमेश्वर विरद-दर्पण**

'प्रेमेश्वर विरद दर्पण' के रचयिता बाबू राम नारायण ब्रह्म भट्ट मुख्तार हैं। यह सन् १९०४ ई० में ऐंग्लो इण्डियन प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित हुआ। इसमें द्रौपदी चीरहरण की प्रख्यात कथा विविध छन्दों में ब्रजभाषा में लिखी गई है। इसमें कुल ७८ पृष्ठ हैं। इसकी कथा का स्रोत महाभारत है।

**हल्दीघाटी का युद्ध**

'हल्दीघाटी का युद्ध' काव्य के लेखक ठाकुर लाल बहादुर सिंह हैं और प्रकाशक पं० श्यामसुन्दरलाल त्रिपाठी हैं जिन्होंने इसका प्रकाशन 'भारतभूमि यंत्रालय' काशी से संवत् १९६५ वि० में करवाया। १६ पृष्ठों के इस काव्य के आरंभ में कवि ने खड़ी बोली में छद रचने की बात कही है किन्तु इसमें शुद्ध खड़ीबोली का प्रयोग नहीं है। ब्रजभाषा-शब्दावली का बाहुल्य है। राणा प्रताप सिंह के व्यवहार से अपमानित महसूस कर मानसिंह अकबर की सेना को साथ लेकर हल्दीघाटी के मैदान में युद्ध करने जाता है। यही ऐतिहासिक घटना इस काव्य का आधार है। काव्य के अन्त में कवि ने अपना परिचय दिया है।

**इन्दुमती परिणय**

प्रस्तुत खण्डकाव्य पं० खुन्नामल शर्मा द्वारा रचा गया है। इसका प्रकाशन काल सन् १९०६ ई० (वि० संवत् १९६३) है। ब्रजभाषा में लिखे गये इस खण्डकाव्य में कुल १५५ पृष्ठ हैं। यह पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दो खण्डों में विभाजित है। प्रत्येक खण्ड में १०-१० तरंग हैं। इसमें महाराजा अज और इन्दुमती के परिणय की प्रख्यात कथा है। रघुवंश की महिमा से लेकर इन्दुमती अज का परिणय और इन्दुमती के प्राणांत पर अज के विलाप आदि की समस्त कथा लगभग वही है जो परम्परा से चली आ रही है और जिसका कालिदास के 'रघुवंश' में विस्तार से वर्णन किया गया है। खण्ड-काव्य होने के कारण इसमें मुख्य कथा तो अज और इन्दुमती परिणय की ही है किन्तु सम्पूर्ण ख्यात कथा को कहने का लोभ संवरण न कर पाने के

कारण कवि ने प्रारम्भिक पाँच तरंगों में रघु-वंशावली, विश्वजित यज्ञ, कौत्स प्रसंग आदि का वर्णन भी कर दिया है। 'इन्दुमती परिणय' पौराणिक आख्यानमूलक काव्य है।

**भाग्य-चक्र**

'भाग्य-चक्र' खण्डकाव्य बलिया भरसर निवासी श्री रामचरित सिंह 'बल्लभ' की कृति है जिसका प्रकाशन संवत् १९६३ में कलकत्ता से हुआ। इसमें कुल ५२ पद हैं, पृष्ठ संख्या ११ है। खड़ी बोली के इस खण्डकाव्य की कथा कल्पना प्रसूत है। एक सिद्धान्तवादी, ईमानदार निर्धन पथिक को जंगल में रात हो जाती है। वहाँ एक तपस्वी से उसकी भेंट होती है जो उसकी करुण गाथा सुनकर उसे एक छिपे खजाने को दिखाते हैं। वह पराया धन लेने से अस्वीकार कर देता है, तभी उसकी दृष्टि उसके तल में लिखे एक आलेख पर पड़ती है जिससे पता चलता है कि यह धन उसी के पूर्वजों का है। भाग्य-चक्र से वह पल भर में धनी हो जाता है। कृति विशेष काव्यत्वमय नहीं है, सामान्य वर्णनात्मक प्रबन्ध काव्य है।

**वीर प्रताप**

लाला भगवानदीन रचित 'वीर प्रताप' का प्रकाशन सर्वप्रथम 'सरस्वती' के १९०८ ई० के अक्टूबर अंक में हुआ। बाद में इसका प्रकाशन 'लक्ष्मी' के सम्पादक लाला भगवान दीन ने स्वयं माधोप्रसाद भारत प्रेस बनारस द्वारा सचित्र खण्डकाव्य के रूप में करवाया। इसमें एक ही सर्ग में पूरी कथा कह दी गई है। राणा प्रताप की हल्दी घाटी के युद्ध से सम्बन्धित ऐतिहासिक प्रख्यात कथा को कवि ने अपने काव्य का आधार बनाया है। इस २१ पृष्ठीय काव्य का कथानक जैसा जोशीला है, वैसा ही जोशीला शब्दों का तेवर कवि ने इसे दिया है। भाषा खड़ी बोली है पर फड़कती शब्दावली में उर्दू शब्दों का बाहुल्य है। जीर्ण-शीर्ण अवस्था में प्राप्त इस खण्डकाव्य के प्रकाशन काल के उल्लेख वाला पृष्ठ फटा होने पर भी इसका द्विवेदी युगीन होना असंदिग्ध है, क्योंकि लाला भगवानदीन रचित पुस्तकों में इसी काल में इसका उल्लेख है।

**हल्दी घाटी की लड़ाई**

इसका द्वितीय संस्करण माणिक कार्यालय, ९४ मिश्र पोखरा, काशी से संवत् १९६२ (सन् १९०५) में प्रकाशित हुआ। इसमें लेखक का नाम मुखपृष्ठ पर नहीं है पर पुस्तक के अन्तिम दोहे में 'माणिक' नाम दिया हुआ है

जिससे यह किसी 'माणिक' नामधारी कवि की रचना प्रतीत होती है। प्रारम्भ में राणा प्रताप की वंशावली का संक्षिप्त वर्णन है, फिर मानसिंह का राणा प्रताप के यहाँ आना और भोजन उनके साथ में न करने पर अपमानित होकर जाना तथा हल्दी घाटी का युद्ध होना आदि इसकी प्रमुख घटनाएँ हैं। आल्हा पद्धति से युद्ध का सजीव वर्णन इसकी विशेषता है। विविध छन्दों में रचे गये २४ पृष्ठीय इस खण्डकाव्य की भाषा ब्रज है जो खड़ीबोली की ओर उन्मुख प्रतीत होती है।

**रंग में भंग**

राजस्थान के इतिहास पर आधारित इस खड़ी बोली के खण्डकाव्य के रचयिचता श्री मैथिलीशरण गुप्त हैं। यह उनकी पहली रचना है जो पहले 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई और फिर परिवर्धित रूप में सन् १९०९ में पुस्तक के रूप में आई। बूंदी और चित्तौड़ के दो राजपूत राजाओं राणा वर सिंह व राना खेतल के वीर दर्प और स्वाभिमान की कथा इसमें वर्णित है जिसमें विवाह के समय ही राजकवि वारु जी की एक उक्ति के कारण दोनों ओर से खड्ग खिच गये। वर राणा खेतल मारे गये और उल्लासमय वातावरण में रंग में भंग हो गया। यह पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दो भागों में विभाजित है। उत्तरार्द्ध में नकली किले की कथा है।

**जयद्रथ वध**

'जयद्रथ वध' खण्डकाव्य के रचयिता राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त हैं। यह संवत् १९६७ वि० (सन् १९१० ई०) में प्रकाशित हुआ। इसके अब तक ६० संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। इसका प्रकाशन 'साहित्य सदन' चिरगाँव, झाँसी से हुआ है। पृष्ठसंख्या ९४ है। इसका कलेवर सात सर्गों में विभाजित है। कौरवराज दुर्योधन के कहने पर गुरु द्रोण ने चक्रव्यूह रचा था। अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु व्यूह तोड़कर जब उसमें प्रविष्ट हो गया तो छल से जयद्रथ ने उसे मार डाला। इस पर अर्जुन ने जयद्रथ का वध करके अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। यह पौराणिक कथा है जिसका स्रोत महाभारत है। महाभारत के द्रोण-पर्व की अभिमन्यु वध-पर्व से लेकर जयद्रथ-वध पर्व तक की कथा इस खण्डकाव्य में विस्तार से दी गई है।

**प्रेम पथिक**

श्री जयशंकर प्रसाद कृत खण्डकाव्य 'प्रेम पथिक' संवत् १९६२ में

ब्रजभाषा में लिखा गया था जिसका कुछ अंश 'इन्दु' के प्रथम भाग में प्रकाशित हुआ। आठ वर्ष बाद संवत् १९७० वि० में खड़ी बोली में उसी का परिवर्तित, परिवर्धित तुकान्तविहीन रूप भारतीय भण्डार, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित किया गया। इस ३२ पृष्ठीय सर्ग विहीन प्रेम-काव्य का आधार काल्पनिक है। किशोर और चमेली बचपन में साथ रहे। दोनों एक दूसरे को प्रेम करने लगे, किन्तु चमेली का विवाह अन्यत्र हो गया। वह अपने पति से सुखी नहीं रही और शीघ्र विधवा भी हो गई। एकाकी चमेली एक दयालु वृद्ध की जमींदारी में कुटिया बनाकर रहने लगी। वहीं अनायास एक पथिक जा पहुँचा जो किशोर था—दोनों का प्रेम फिर पनपने लगा। इसका अंगी रस श्रृंगार है। ताटंक छन्द के आधार पर ३० मात्राओं के अतुकान्त छन्द का सर्वत्र प्रयोग हुआ है। कवि ने प्रेम को अत्यन्त उदात्त प्रभु का स्वरूप माना है।

**करुणालय**

श्री जयशंकर प्रसाद कृत 'करुणालय' खण्डकाव्य सर्वप्रथम संवत् १९६९ (फरवरी १९१३ ई०) में 'इन्दु' पत्रिका के कला ४, खण्ड १, किरण २ में प्रकाशित किया गया। पाँच वर्ष बाद यह 'चित्राधार' के प्रथम संस्करण में समाविष्ट हुआ और संवत् १९२८ में स्वतंत्र पुस्तक के रूप में सामने आया। स्वयं प्रसाद जी की सूचना के अनुसार यह दृश्य-गीति-काव्य के ढंग पर लिखा गया है। इसकी कथोपकथनात्मक पद्य कथा नाटक का आभास देती है। प्रख्यात पौराणिक कथा, राजा हरिश्चन्द्र का अपने पुत्र रोहित की बलि दे देने का वचन देकर भी उसका पालन न करना इस काव्य का आधार है। इसमें पाँच दृश्य हैं, भाषा खड़ी बोली है। अंगी रस करुण है। कवि ने तुकान्तविहीन मात्रिक छन्द का प्रयोग किया है।

**दयानन्द जीवन-काव्य**

'दयानन्द जीवन-काव्य' के रचयिता हरिदत्त वर्मा (पसिका निवासी आजमगढ़) हैं। इसका प्रकाशन काल सन् १९१३ ई० है और प्रकाशक खुसाल भाई पटेल, सरस्वती पुस्तकालय गिरगाँव, बाम्बे हैं। आरम्भ में ४८ पृष्ठ की भूमिका है। इसके अतिरिक्त काव्य में २८८ पृष्ठ हैं। ऋषि दयानन्द के जन्म से लेकर मृत्यु तक का जीवन चरित्र, कवित्त, सवैया, दोहा, सोरठा, चौपाई, छन्दों में वर्णित है। आरम्भ में जन्म से लेकर २१ वर्ष की उम्र तक की कथा भजनों द्वारा कवि ने कही है। घर से निकलने के पहले दिन से मृत्यु तक की बाद की गाथा दोहा, चौपाई आदि के

माध्यम से वर्णित की गई है। यहीं से वास्तव में कवि ने कथा का आरम्भ किया लगता है, क्योंकि यहीं से कवि ने दोहा संख्या १ से आरंभ किया है। अन्तिम दोहा संख्या ६०० है। इसके बीच-बीच में कवित्त, चौपाई, शैर, सोरठा, छन्द, सवैया जो भी दिये हैं, उनकी अलग से सख्या नहीं दी है। इसका कथा स्रोत इतिहास है।

**बूढ़े का ब्याह**

'बूढ़े का ब्याह' देवरी निवासी सैयद अमीर अली 'मीर' द्वारा रचित अनमेल विवाह के दुष्परिणामों पर लिखा गया एक शिक्षाप्रद खण्डकाव्य है। काल्पनिक कथा पर आधारित इस काव्य का प्रकाशन अक्टूबर १९१४ ई० में जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई द्वारा किया गया। इसकी भाषा खड़ी बोली है जिसमें देशज और तद्भव शब्दों का पुट है। इसमें पचपन वर्षीय बूढ़े धनीराम के साथ दस वर्षीया किशोरी चम्पा का विवाह होता है। अतृप्त चम्पा छबीले के साथ घर से भाग जाती है। इस धक्के से वृद्ध की मृत्यु हो जाती है और बाद में दारुण कष्ट उठा कर चम्पा भी दम तोड़ देती है। ४८ पृष्ठ के इस काव्य का अंगी रस श्रृंगार है।

**मेवाड़ गाथा**

श्री लोचन प्रसाद पाण्डेय कृत 'मेवाड़ गाथा' राजस्थान के इतिहास पर आधारित है। इसके प्रकाशक श्री हरिदास वैद्य, कलकत्ता हैं। इसका प्रकाशन काल सन् १९१४ ई० है। इसकी प्रधान कथा महाराणा प्रताप से सम्बद्ध है। किन्तु साथ ही उनसे पहले या बाद के प्रख्यात राजपूत चरित्रों का वर्णन भी है जिसमें राजसिंह, उनके ज्येष्ठ पुत्र भीम सिंह, राणा रत्न सिंह आदि प्रमुख हैं। यह खण्डकाव्य १२ उपखण्डों या शीर्षकों में विभाजित है। इसमें कुल ७८ पृष्ठ हैं। वीर रस प्रधान इस खण्ड काव्य का स्रोत मेवाड़ का इतिहास है।

**महाराणा का महत्व**

श्री जयशंकर प्रसाद कृत खण्ड-काव्य 'महाराणा का महत्व' का प्रकाशक भारती भण्डार (बनारस सिटी) है। सर्वप्रथम जून १९१४ ई० में यह 'इन्दु' पत्रिका के कला ५, खण्ड १, किरण ६ में प्रकाशित हुआ। सन् १९२८ में इसका स्वतंत्र रूप से प्रकाशन हुआ। यह सर्गविहीन खण्डकाव्य है। इसमें कुछ राजपूतों द्वारा अब्दुर्रहीम खानखाना की बेगम को बन्दी बनाकर राणा प्रताप के सामने ले जाने की और महाराणा का ससम्मान उसे उसके

पति तक पहुँचवा देने की कथा है। कथा का स्रोत मेवाड़ का राजपूती इतिहास है।

**शकुन्तला**

श्री मैथिलीशरण गुप्त कृत 'शकुन्तला' के कुछ अंश 'सरस्वती' में प्रकाशित होने के उपरान्त सन् १९१४ ई० में यह खण्डकाव्य पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित हुआ। इसका प्रकाशन साहित्य सदन चिरगाँव, झाँसी से हुआ है। इसमें राजा दुष्यन्त और शकुन्तला की प्रख्यात पौराणिक कथा है। साम्य के कारण यह काव्य कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' की प्रतिध्वनि सा लगता है। पूरी कथा दस शीर्षकों—(१) जन्म और बाल्य-काल, (२) दर्शन, (३) पत्र, (४) अवधि, (५) अभिशाप, (६) विदा, (७) त्याग, (८) स्मृति, (९) कर्तव्य और (१०) मिलन—में विभाजित है। काव्य का अंगी रस श्रृंगार है। पर्यवसान भी मिलन के साथ होता है। करुण सहयोगी रस है प्रेम का निरूपण करते हुए इस ४८ पृष्ठीय काव्य में कवि ने भारतीय नारी की सांस्कृतिक चेतना को उजागर किया है। खड़ी बोली के इस काव्य में कहीं-कहीं संस्कृत बहुल भाषा भी प्रयुक्त है।

**पतिव्रतादर्श**

श्री रामशरण लाल गोविल जो रामशरण गुप्त 'शरण' के नाम से रचना करते रहे, का काव्य 'पतिव्रतादर्श' सन् १९१४ से १९१७ तक पहले कानपुर से प्रकाशित 'श्री कान्यकुब्ज हितकारी' पत्रिका में धारावाहिक रूप में छपा। फिर यह पुस्तक रूप में प्रकाशित हुआ। यह दो खण्डों—पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध—में विभाजित है। इसका व्यवस्थापक 'शरण ग्रन्थमाला' कार्यालय श्री उम्मेद स्कूल जोधपुर (राजस्थान) है। परिमार्जित खड़ी बोली के इस काव्य के पूर्वार्द्ध में ११० छन्द और पचास पृष्ठ हैं। उत्तरार्द्ध में १११ से २०० तक छन्द और ४६ पृष्ठ हैं। यह पौराणिक आख्यान पर आधारित है जिसमें निषध के राजा नल और उनकी पतिव्रता रानी दमयन्ती की प्रख्यात कथा है। अंगी रस श्रृंगार है।

**मौर्य विजय**

इस खण्ड काव्य के रचयिता श्री सियारामशरण गुप्त हैं। संवत् १९७१ वि० में इसका प्रकाशन साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी द्वारा हुआ। परिमार्जित खड़ी बोली का यह ३२ पृष्ठों का काव्य तीन सर्गों में विभाजित है। मौर्य काल इसके कथानक का आधार है। सिकन्दर के सेनापति सिल्यूकस के साथ चन्द्रगुप्त मौर्य का युद्ध, सिल्यूकस की पराजय और फिर सिल्यूकस

की बेटी एथेना के साथ चन्द्रगुप्त मौर्य का विवाह होना ही इसकी प्रमुख घटनाएँ हैं। सम्पूर्ण काव्य में भारत के गौरव-गान पर कवि की दृष्टि केन्द्रित है।

**चारण**

'श्रीवर' के नाम से लिखा पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी का 'चारण' खण्डकाव्य संवत् १९७१ वि० में इण्डियन प्रेस प्रयाग से प्रकाशित हुआ। ब्रज-अवधी मिश्रित खड़ी बोली के इस चालीस पृष्ठों वाले काव्य में बारह परिच्छेद हैं। इस काव्य का नायक तो काल्पनिक है, किन्तु वह जिन वीरों, वीरांगनाओं की यशगाथा गाता है, वे राजपूती इतिहास के हैं। इस प्रकार इस काव्य का कलेवर राजपूती इतिहास से सम्बद्ध है। सिरोही वासी वीर विजय सिंह राजपूत शिकार के लिए जाता है, पर रास्ता भटक कर वृद्ध चारण के पास पहुंच जाता है। चारण अपना वीर काव्य विजय सिंह को गाकर सुनाता है और भावावेश में चेतनाहीन हो जाता है। इसके माध्यम से कवि ने कई ऐतिहासिक वीर चरित्रों पर प्रकाश डाला है और पाठकों में देश-प्रेम की चेतना जगाई है।

**प्रणवीर प्रताप**

श्री गोकुल चन्द्र शर्मा रचित 'प्रणवीर प्रताप' खण्ड काव्य के द्वितीय संस्करण का प्रकाशन साहित्य सदन अलीगढ़ द्वारा संवत् १९७४ वि० में किया गया। प्रथम संस्करण सम्वत् १९७२ में प्रकाशित हुआ था। इसकी कथा का आधार सम्राट् अकबर के साथ महाराणा प्रताप के युद्ध का ऐतिहासिक आख्यान है। यह खड़ी बोली में लिखा गया है। इस सर्गहीन काव्य में २०२ छन्द हैं।

**भारतीय दृश्य**

'भारतीय दृश्य' के रचयिता और प्रकाशक विश्वनाथ ठाकुर हैं। इसका मुद्रण प्रताप प्रेस, कानपुर द्वारा सन् १९१५ ई० में हुआ। यह २० पृष्ठों का काव्य पाँच खण्डों में विभाजित है। इसमें ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों का प्रयोग है। कथा ऐतिहासिक घटना पर आधारित है। सन् १७९२ ई० में एक मुसलमान सरदार अब्दुल्ला खाँ ने पंजाब प्रान्त के एक क्षत्रिय सरदार को बन्दी बनाया और मरवा दिया। यह समाचार पाने पर महाराणा रणजीत सिंह अब्दुल्ला खाँ पर और दुष्टता को अवलम्ब देने वाले हर दुष्ट व्यक्ति पर क्रुद्ध होते हैं।

**प्रेम पथिक**

'प्रेम पथिक' श्री हरिप्रसाद द्विवेदी 'वियोगी हरि' की संवत् १९७२ वि० में लिखी रचना है। इसे प्रेम पुजारी, प्रेम मन्दिर, आरा ने प्रकाशित किया और इसका मुद्रण बाबू विश्वम्भर नाथ भार्गव के प्रबन्ध से स्टैन्डर्ड प्रेस, प्रयाग में हुआ। इसकी भाषा में खड़ी बोली और ब्रज का मिश्रण है। यह शिखरिणी छन्द में लिखा गया है। काल्पनिक कथा पर आधृत इस काव्य में एक कामी और स्वार्थलिप्त पुरुष स्वप्न-वश अपने इष्ट के दर्शन के लिये प्रीतमपुरी की यात्रा का पथिक बनता है और अनेक कठिनाइयों को पार करता हुआ अपनी अटूट लगन के कारण आत्म-ज्ञान की प्राप्ति करता है।

**भगतिन बिल्लैया :**

'भगतिन बिल्लैया' के रचयिता श्री हरद्वार प्रसाद गुप्त हैं। इसका प्रकाशन काल संवत् १९७३ वि० है और प्रकाशक साहित्य प्रचारक समिति, गौरा, बरहज गोरखपुर है। इस सर्ग विहीन काव्य में ३३ पृष्ठ हैं और कुल १२९ पद हैं। इसका कथानक एक पुरानी लोक कथा पर आधारित है जिसे काल्पनिक कहा जा सकता है। एक पेड़ के कोटर में एक अन्धा गिद्ध रहता था। उसी कोटर में रहने वाली चिड़िया उसके लिए खाना जुटा देती थी और वह उनके बच्चों की रखवाली करता था। अचानक एक चालाक बिल्ली वहाँ आई जिसने चुपचाप चिड़ियों के बच्चों को खाया। वह दिखावे के लिए भगतिन बनी रही और बूढ़े गिद्ध पर सारा दोषारोपण कर दिया जिससे गिद्ध को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा। बोल-चाल की सामान्य खड़ी बोली में लिखा गया यह उपदेशात्मक आदर्शोन्मुख खण्डकाव्य कवि का प्रथम प्रयास है।

**किसान**

श्री मैथिलीशरण गुप्त कृत 'किसान' खण्डकाव्य का प्रकाशन संवत् १९७३ वि० में हुआ। साहित्य प्रेस, चिरगाँव, झाँसी इसके प्रकाशक हैं। प्रार्थना, गार्हस्थ्य, देशत्याग, फिजी प्रत्यावर्तन आदि विभिन्न शीर्षकों में विभाजित इस काव्य में अड़तालीस पृष्ठ हैं। यह आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है। काल्पनिक कथानक लेकर तत्कालीन विषम परिस्थितियों और किसानों की दयनीय स्थिति एवं दुर्दशा का चित्रण कवि ने काव्य के नायक कलुआ किसान और नायिका उसकी साध्वी पत्नी कुलवन्ती के माध्यम से किया है। फिजी और अन्य देशों में कुलीगीरी आदि में फँसे

प्रवासी भारतीयों के शोषण और उनके परित्राण के लिये किये गये प्रयासों का चित्रण इसमें किया गया है।

**अनाथ :**

श्री सियारामशरण गुप्त रचित 'अनाथ' खण्डकाव्य का प्रकाशन साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी से हुआ। जैसा कि पुस्तक के अन्त में पृष्ठ ३३ पर अंकित है इसका रचनाकाल कार्तिक संवत् १९७४ वि० है। करुण रस प्रधान खड़ी बोली के इस ३३ पृष्ठ वाले खण्डकाव्य का कथानक काल्पनिक है। एक गरीब किसान मोहन और उसकी युवा पत्नी यमुना अपने पुत्र मुरलीधर की बीमारी और भूख से पीड़ित अवस्था को देखकर बहुत दुःखी है। दूसरा छोटा बच्चा भी भूखा है। मोहन एकमात्र बचा लोटा गिरवी रखकर चून लाता है, पर चौकीदार और कान्सटेबिल की ज्यादती से वह भी बिखर जाता है। मोहन बेगार में पकड़ लिया जाता है, इसका बेटा दम तोड़ देता है एवं उसकी पत्नी शराब में चूर काबुली वाले पठान द्वारा बेइज्जत की जाती है। यह समाचार पा दौड़कर आता हुआ मोहन ठोकर खाकर गिर पड़ता है और उसकी वहीं मृत्यु हो जाती है। कवि ने इस काव्य के माध्यम से तत्कालीन समाज की कई विषम स्थितियों पर प्रकाश डाला है।

**उषा हरण :**

'उषा हरण' के लेखक रामदत्त राय शर्मा हैं। इसका प्रकाशन काल संवत् १९७४ वि० और प्रकाशक सद्ग्रन्थमाला कार्यालय है। पृष्ठ संख्या ६२ है। यह पुराणों में वर्णित बाणासुर की पुत्री उषा और श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध की प्रणय कथा पर आधारित है। उषा स्वप्न में एक सुन्दर युवक को देखकर उस पर मुग्ध हो जाती है और उससे प्रेम करने लगती है। बाद में उसकी सखी चित्ररेखा उस युवक अनिरुद्ध को पलंग समेत उषा के पास उठा लाती है। दोनों गंधर्व-विवाह कर लेते हैं। बाणासुर जब इस तथ्य से अवगत होता है तो क्रोध में आकर अनिरुद्ध की सहायता करने श्रीकृष्ण स्वयं पहुँचते हैं। अनिरुद्ध की विजय होती है और बाणासुर उषा का विवाह अनिरुद्ध से कर देता है। ब्रजभाषा में लिखित इस खण्डकाव्य का स्रोत पुराण है।

**मिलन :**

श्री रामनरेश त्रिपाठी के प्रथम खण्ड काव्य 'मिलन' का प्रकाशन संवत् १९७४ (सन् १९१७ ई०) में हुआ। हिन्दी मन्दिर, प्रयाग द्वारा इसका प्रकाशन किया गया। इसके कथानक का आधार कल्पना है। परतंत्र भारत

की तत्कालीन सामाजिकता में स्वाधीनता के लिए ललक और जागरूकता लाने एवं कर्तव्य-बोध की प्रेरणा फूँकने में इस प्रेम कथा मूलक काव्य का महत्वपूर्ण स्थान है। आनन्द और विजया देश सेवा में प्रवृत्त होते हैं,अचानक नाव उलट जाने से दोनों अलग हो जाते हैं। एक मुनि को दोनों अलग-अलग अचेतावस्था में मिलते हैं, वह उन्हें होश में ले आता है और दोनों को देश सेवा के लिए प्रेरित करता है। दोनों कष्ट उठाकर देश सेवा करते हैं। भारतीय विदेशी आक्रमणकारियों पर विजय प्राप्त करते हैं। अन्त में मुनि स्वर्गवासी हो जाते हैं और आनन्द तथा विजया का मिलन होता है। इस खण्ड काव्य में राष्ट्रीयता, गांधी-दर्शन और नारी शक्ति का उदात्त स्वरूप निखरा है। पाँच सर्गों में विभक्त परिमार्जित खड़ी बोली के इस उत्कृष्ट काव्य का अंगी रस श्रृंगार है। घटना वैचित्र्य और नाटकीय संवादों से परिपूर्ण इस काव्य का प्रमुख स्वर देश प्रेम है।

**अभिमन्यु का आत्मदान :**

यह खण्डकाव्य श्री कमला प्रसाद वर्मा द्वारा लिखा हुआ है। इसका प्रकाशन संवत् १९७५ वि० में महाराज की ड्योढ़ी, पटना से हुआ। सात सर्गों में विभाजित इस रचना में कुल २४ पृष्ठ हैं। इस खड़ी बोली के काव्य का आधार महाभारत की अभिमन्यु-वध की प्रख्यात कथा है। अंगी रस करुण है।

**मैथिली मंगल**

'मैथिली मंगल' के रचयिता स्व० पं० शुकलाल प्रसाद पाण्डेय हैं। इसका लेखनकाल सन् १९१८ कहा जाता है। पुस्तक के मुखपृष्ठ पर द्विवेदी-कालीन खण्डकाव्य छपा है। डा० बलदेव प्रसाद मिश्र ने इसकी भूमिका में लिखा है कि 'हिन्दी के इस अंचल के साहित्यिक इतिहास में यह ग्रन्थ निश्चय ही महत्वपूर्ण स्थान रखता है और इसका अब तक का अप्रकाशन पूरे साहित्य जगत का एक बड़ा दुर्भाग्य ही कहा जा सकता है। इस ग्रन्थ का प्रकाशन लिखे जाने के लगभग ५२ वर्ष उपरान्त मध्य प्रदेश शासन साहित्य परिषद्, भोपाल द्वारा सन् १९७१ में किया गया। २५३ पृष्ठों का यह वृहत् खण्डकाव्य १० सर्गों—(१) साकेत, (२) बारात, (३) विवाह, (४) कोहबर, (५) कुँवर कलेवा, (६) जेवनार, (७) विदा, (८) अयोध्या गमन, (९) प्रमोद, (१०) दाम्पत्य—में विभाजित है। इसकी भाषा खड़ी बोली है। अंगी रस श्रृंगार है। इस काव्य की कथा रामायण के जानकी विवाह संदर्भ पर आधारित है।

**देव दूत :**

'देवदूत' खण्डकाव्य की रचना पं० रामचरित उपाध्याय ने द्विवेदी-युग में की। चैत्र, संवत् १९७५ वि० में श्री नाथूराम प्रेमी, प्रोप्राइटर हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई से इसका प्रकाशन हुआ। खड़ी बोली का यह काव्य पूर्व भाग और उत्तर भाग में विभाजित है। एक भारतीय अपने पुण्य के बल से देवलोक पहुँच गया, पर उसे अपने देश भारत के सामने देवलोक भी फीका लगा। उसने अपना संदेश लाने ले जाने के लिए एल देवदूत को भारत भेजा। खड़ी बोली का यह सम्पूर्ण काव्य उत्कट राष्ट्र प्रेम से ओतप्रोत है।

**आत्मार्पण**

श्री द्वारिका प्रसाद गुप्त 'रसिकेन्द्र' कृत 'आत्मार्पण' खण्डकाव्य संवत् १९७५ में प्रथम बार प्रकाशित हुआ। इसका प्रकाशन गंगा पुस्तक माला कार्यालय, २९-३० अमीनाबाद पार्क, लखनऊ द्वारा हुआ। द्वितीय संस्करण संवत् १९८५ में निकला। परिमार्जित खड़ी बोली में लिखे गये इस काव्य में पाँच सर्ग एवं बासठ पृष्ठ हैं। भारत में मुगलकालीन राजपूती इतिहास से सम्बद्ध औरंगजेब और उदयपुर के राणा राजसिंह के राजकुमारी प्रभावती को लेकर परस्पर युद्ध की घटना इस खण्डकाव्य के कथानक का आधार है। रूपगढ़ के राजा विक्रम सिंह की इकलौती कन्या प्रभावती के सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर औरंगजेब उससे शादी करना चाहता है। वह अपनी रक्षा के लिए उदयपुर के राणा राजसिंह से निवेदन करती है। राजसिंह उसे वचन देता है और सरदार चूड़ावत के बलिदान और अपने शौर्य से मुगल सेना को पराजित कर प्रभावती से परिणय कर लेता है। वीर रस प्रधान इस काव्य का कलेवर नारी के त्याग, देश प्रेम और राष्ट्रीयता की भावना से ओत-प्रोत है।

**विकट भट :**

श्री मैथिलीशरण गुप्त कृत १६ पृष्ठीय इस खण्डकाव्य मूलक पद्य कथात्मक काव्य के संवत् २००३ वि० तक चार संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। यह साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी से प्रकाशित है। अतुकान्त रूप में रचित खड़ी बोली के इस काव्य में पूरी कथा एक सर्ग में ही कह दी गई है। इसका सम्बन्ध मारवाड़ के जोधपुर राज्य के इतिहास से है। जोधपुर के मद्यप राजा विजयसिंह से हुई बातचीत को पोकरण के स्वाभिमानी सरदार

देवीसिंह ने मान-सम्मान का प्रश्न बनाकर अपनी प्राणाहुति कर दी, पर वह झुका नहीं। यही कथा का सारांश है।

**गर्भरण्डा रहस्य**

'गर्भरण्डा रहस्य' के रचयिता पं० नाथूराम शंकर शर्मा 'शंकर' हैं। श्री हरिशंकर शर्मा हरदुआगंज, अलीगढ़ द्वारा इसका प्रकाशन सन् १९१९ में हुआ। सेठ केसरी दास द्वारा नवल किशोर प्रेस, लखनऊ से इसे मुद्रित किया गया। इसमें ८३ पृष्ठ हैं। खड़ी बोली के इस सर्गहीन काव्य में कुल ३०२ छंद हैं। यह काल्पनिक कथा पर आधारित है। गर्भवती लीला अपने विधवा होने के योग को टालने के लिए ज्योतिषी के कहने में आकर गर्भस्थ कन्या का विवाह एक मरणासन्न बालक से करके उसे गर्भ में ही राँड़ कर देती है। कन्या कमला के युवा हो जाने पर भी उसकी माँ उसे विधवा मानकर उसकी शादी नहीं करती और उसके कामशमन के लिए पहले वल्लभ सम्प्रदाय में उसे दीक्षा दिलाती है, फिर तीर्थयात्रा पर हरिद्वार ले जाती है। यह काव्य सामाजिक मान्यताओं और अन्धविश्वास पर एक करारा व्यंग्य है जिसमें विधवाओं की समस्या पर प्रकाश डाला गया है।

**पथिक :**

श्री रामनरेश त्रिपाठी रचित 'पथिक' खण्डकाव्य का प्रकाशन नवभारती, इलाहाबाद द्वारा किया गया। इसका लेखनकाल संवत् १९७७ है। पाँच सर्गों में विभाजित परिमार्जित खड़ी बोली का यह काव्य काल्पनिक कथानक पर आधारित है। एक पथिक जो प्रकृति से बेहद प्रेम के कारण अपनी पत्नी तक को छोड़ आता है, एक साधु द्वारा लोक सेवा में प्रवृत्त होता है। देश भ्रमण करने के बाद जब वह राजा को देश और प्रजा की शोचनीय अवस्था के विषय में जानकारी देता है तो राजा कुपित हो उसे बंदी बनाकर प्राण दण्ड दे देता है। उसकी पत्नी और बच्चा भी मारे जाते हैं। इस पर प्रजा विद्रोह करती है और राजा को देश निकाला दे देती है। क्रूर शासन का अन्त होता है। प्रजा पथिक की प्रतिमा को पूजती है और उसकी याद में आँसू बहाती है। प्रस्तुत काव्य द्वारा त्रिपाठी जी ने अराजकता के प्रति विद्रोह का भाव जगा तत्कालीन पराधीन भारत में स्वातंत्र्य चेतना का नया मंत्र फूँका। चारित्रिक दृष्टि से अत्यन्त उत्कृष्ट इस काव्य का अंगी रस शृंगार है, करुण और शान्त सहयोगी रस हैं। यह काव्य अपनी भाव-व्यंजना और चित्रोपम वैशिष्ट्य के कारण स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति की प्रारम्भिक कृति कहलाने का अधिकारी है।

**वीर बाला :**

द्विवेदी युगीन खण्डकाव्य 'वीर बाला' का प्रकाशन भार्गव पुस्तकालय, गायघाट काशी द्वारा हुआ। इसके मुद्रक बाबू काशी प्रसाद भार्गव, भार्गव भूषण प्रेस, काशी हैं। प्राप्य खण्डकाव्य में लेखक का नाम वाला पृष्ठ फटा है। नागरी प्रचारिणी सभा पुस्तकालय में खोजबीन करने पर पुस्तक के क्रमांश के अनुसार इसे द्विवेदी-युग में प्रकाशित बतलाया गया। इसमें ८५ पृष्ठ हैं और यह आठ सर्गों—(१) विपिन, (२) शस्त्रालय, (३) स्वयंवर, (४) वियोग, (५) वियोग-सन्ताप, (६) चिता, (७) युद्ध, (८) मिलन—में विभाजित है। इसमें एक काल्पनिक कथा है। कनकगढ़ के राजा इन्द्रसेन की पुत्री शान्ता स्वयंवर द्वारा राजपूत युवक वीरेश से विवाह करती है। शिकार खेलने जाने में वीरेश भटक कर एक छलिया राजकुमारी के फंदे में फँस जाता है। मौके पर शान्ता जाकर उसे बचा लेती है। संयोगवश वीरेश की अपने पिता राजा अजय से भेंट हो जाती है, वे वीरेश को युवराज बना देतें हैं और शान्ता को पुत्रवधू के रूप में स्वीकार कर लेते हैं। विविध छन्दों में लिखे गये इस काल्पनिक कथा पर आधारित इस सुखान्त काव्य का अंगी रस शृंगार है।

**सत्याग्रही प्रह्लाद :**

खड़ी बोली के इस काव्य के रचयिता श्री तुलसीराम शर्मा 'दिनेश' हैं। इसका मुद्रण कामर्शियल प्रेस, जुही, कानपुर से सन् १९२० ई० में हुआ। इसमें कुल ४८ पृष्ठ हैं। भक्त प्रह्लाद की विख्यात कथा इसका उपजीव्य है। इसका स्रोत पौराणिक आख्यान है।

**रसाल वन :**

पं० गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' कृत 'रसाल वन' खण्डकाव्य का प्रकाशन संवत् १९७७ वि० में हुआ। इसे सुश्री प्रेमलता देवी, प्रेम मंदिर, आरा ने प्रकाशित करवाया। मुद्रण श्री अपूर्व कृष्ण बोस द्वारा इण्डियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग में हुआ। २३ पृष्ठों के इस कल्पनाश्रित काव्य का विभाजन-'कालिन्दी तीर' और 'विपद घटा' दो खण्डों में किया गया है। प्रथम खण्ड में काव्य की नायिका विमला यमुना के किनारे घने वन में जब अकेली पड़ी रो रही होती है, तब अचानक उसकी अपने पिता से भेंट हो जाती है। द्वितीय खण्ड में विमला की सखी नलिनी और ललिता के पारस्परिक संवाद द्वारा कवि ने विमला पर किये गये सास-ननद के अत्या-

चारों पर प्रकाश डालते हुए इस विषम सामाजिक स्थिति का चित्र खींचा है। अंगी रस करुण है। परिमार्जित खड़ी बोली के इस काव्य में अलंकार योजना का अपना वैशिष्ट्य है।

**भंग में रंग :**

'भंग में रंग' के रचचिता पं० अम्बिका दत्त त्रिपाठी, खेमीपुर, आजमगढ़ हैं। प्रकाशक साहित्य सागर सइथाकलां, जौनपुर हैं। प्रकाशन का संवत् १९७८ वि० है। सर्गहीन पूरी कथा १५१ पदों और ३६ पृष्ठों में कही गयी है। इसमें सावित्री सत्यवान की प्रख्यात पौराणिक कथा है।

**चित्तौड़ विध्वंस :**

इस काव्य के रचयिता श्री काली प्रसाद शास्त्री 'श्रीकर' हैं। यह पं० मेवालाल शुक्ल, शुक्ल प्रेस, एलनगंज, प्रयाग से प्रकाशित हुआ। खड़ी बोली के १४ पृष्ठों के इस सर्गविहीन खण्ड काव्य में कुल ४८ पद हैं। इसकी कथा मेवाड़ के इतिहास पर आधारित है। गुजरात के यवन शासक मुजफ्फर का वंशज बहादुर पृथ्वीराज चौहान के वंशज महाराज विक्रम पर चढ़ आया। इस युद्ध में चित्तौड़ विक्रम के हाथ से चला गया। महारानी जवाहिर भी युद्ध में काम आई। यह समाचार सुनकर स्वधर्म की रक्षा के लिये तेरह हजार क्षत्राणियों ने जौहर-व्रत किया। इस काव्य का अंगी रस वीर है, वर्णन चित्रोपम है।

**वीरांगना वीरा**

जमुनीपुर निवासी ठाकुर भगवत सिंह 'विशारद' द्वारा रचे गये खण्ड-काव्य 'वीरांगना वीरा' के प्रकाशक श्री महालचन्द बयेद, प्रोप्राइटर ओसवाल प्रेस, १९ सीनागोग्र स्ट्रीट, कलकत्ता हैं। खड़ी बोली में लिखे गये इस सर्गहीन काव्य में कुल ५२ पृष्ठ और २०६ छन्द हैं। इसका कथानक मेवाड़ के इतिहास पर आधारित है। मेवाड़ के महाराजा उयद सिंह के २५ रानियाँ थीं, पर कठिन कार्यों में सदैव वे अपनी उपपत्नी वीरांगना वीरा से ही परामर्श लेते थे। सम्राट् अकबर ने महाराणा को राजकर अदा करने का आदेश भेजा। वीरा ने राणा को राजकर न देने की राय दी। राजकर न देने पर जब अकबर की सेना से युद्ध हुआ, तब उदयसिंह के युद्ध में घिर जाने पर वीरा स्वयं पुरुष वेश धारण कर युद्धस्थल में उतरी और वीरतापूर्वक शत्रुओं के पंजे से राणा उदयसिंह को छुड़ा लाई। राष्ट्रीयता से पूर्ण यह वीर काव्य चरित्र प्रधान है।

**गावतरण :**

'गंगावतरण' जगन्नाथ प्रसाद रत्नाकर की ब्रजभाषा की कृति है, जिसे गाजी के उद्गम से उनके हरिद्वार तक पहुँचने का वर्णन करके समाप्त र कवि ने १५ जून सन् १९२१ ई० को महारानी जगदंबादेवी अवधेश्वरी ो भेंट किया। महारानी ने प्रसन्न होकर इस खण्डकाव्य पर 'रत्नाकर' ी को एक हजार रुपये का पारितोषिक दिया जिसे उन्होंने काशी नागरी चारिणी सभा को दान कर दिया। बाद में मित्रों के आग्रह और महारानी की आज्ञा से रत्नाकर जी ने इसमें सगर कुमारों को तारने तक की कथा और लिखी तथा सन् १९२३ में इसे पूरा किया। इसमें त्रयोदश सर्ग और कुल १२३ पृष्ठ हैं। काव्यत्व की दृष्टि से यह एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है। इसकी कथा का स्रोत वाल्मीकि रामायण है।

**कीचक वध :**

'कीचक वध' बाबू शिवदास गुप्त 'कुसुम' द्वारा रचित वीर रस पूर्ण सचित्र खण्डकाव्य है। इसका प्रकाशन श्री रामलाल वर्म्मा, प्रोप्राइटर वर्म्मन प्रेस, और आर० एल० वर्म्मन एण्ड को०, ३७१ अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता द्वारा संवत् १९७८ वि० में हुआ। खड़ी बोली में लिखा यह खण्डकाव्य ५ सर्गों में विभाजित है। इसकी कुल पृष्ठ संख्या ५६ है। इसकी कथा का आधार महाभारत है। इसमें अज्ञातवास के समय पाण्डवों और द्रौपदी का रानी सुदेषणा और राजा विराट के यहाँ काम करना और कीचक द्वारा द्रौपदी से छेड़छाड़ करने पर भीम द्वारा कीचक-वध की प्रख्यात कथा है। काव्य का पर्यवसान वीर रस में हुआ है।

**कंस वध**

'कंस वध' खण्डकाव्य के रचयिता श्री श्यामलाल पाठक हैं। इसका प्रकाशन संवत् १९७८ में सरस्वती सदन भालदारपुरा, जबलपुर से हुआ। इसकी कथा सात सर्गों में ६६ पृष्ठों में सन्निहित है। खड़ी बोली में लिखित इस काव्य का स्रोत श्रीमद्भागवत है। दुराचारी कंस के अत्याचार बढ़ने पर देवकी के गर्भ से जन्म लेकर अवतारस्वरूप कृष्ण के द्वारा कंस का वध करने की पौराणिक कथा इसमें वर्णित है।

**वसुमती :**

श्री दिवाकर प्रसाद शास्त्री कृत 'वसुमती' खण्डकाव्य का लेखन काल संवत् १९७८ वि० से पूर्व का है। पुस्तक में यह सूचना दी गई है कि

'वसुमती' का सर्वप्रथम प्रकाशन संवत् १९७८ वि० में कोरोनेशन बुकडिपो भागलपुर द्वारा हुआ, किन्तु संवत् १९८२ वि० में प्रथम बार इसके प्रकाशन का सर्वाधिकार लहरी बुकडिपो काशी को दे दिया गया, जहाँ से श्री दुर्गा-प्रसाद खत्री द्वारा इसे पुनः प्रकाशित किया गया। इसकी भूमिका के लेखक डा० सम्पूर्णानन्द हैं। एक दन्त कथा पर आधारित ४३ पृष्ठों के इस खण्डकाव्य का कथानक अर्द्ध ऐतिहासिक है। एक मनचला पठान नवयुवक मसऊद कन्दहारी श्रावस्ती की गोपकन्या वसुमती के रूप पर मोहित हो उसे जबरदस्ती विवाह करना चाहता है, पर श्रावस्ती नरेश सोहिल देव और उसका मंगेतर चन्द्रशेखर उसकी रक्षा करते हैं। इस युद्ध में मसरुद और चन्द्रशेखर दोनों मारे जाते हैं। वसुमती चन्द्रशेखर के शव को लेकर सती हो जाती है। अतुकान्त शैली और परिमार्जित खड़ी बोली में लिखे गये इस काव्य में पाँच सर्ग हैं। इसके छन्द विधान, बिम्ब योजना और अभिव्यंजना का सौष्ठव उल्लेखनीय है।

**दिल्ली पतन :**

इसे श्री काली प्रसाद शास्त्री, चिलौलीय (उन्नाव) ने लिखा और भारती भण्डार, दालमण्डी, कानपुर ने सन् १९२१ ई० में प्रकाशित किया। इसमें १६ पृष्ठ और कुल ५५ पद हैं। दिल्लीपति पृथ्वीराज द्वारा संयोगिता के हरण से क्रोधित होकर जयचन्द ने मुहम्मद गोरी को दिल्ली पर फिर आक्रमण को उकसाया और उसे मदद दी जिससे दिल्ली का पतन हो गया। यही कथा का मुख्यांश है। इस काव्य का कथा-स्रोत इतिहास है।

**अम्बरीष :**

श्री रामनारायण चतुर्वेदी बी० ए० द्वारा लिखित इस खण्डकाव्य का प्रकाशन सन् १९२१ में मंगलायतन, ३१३, बादशाह मंडी, प्रयाग द्वारा किया गया। इसमें कुल ४८ पृष्ठ हैं। भाषा खड़ी बोली है। भक्त अम्बरीष की प्रख्यात कथा को ग्यारह सर्गों में विभक्त किया गया है। हर सर्ग का लम्बा सा शीर्षक संस्कृत में दिया गया है। यह काव्य पौराणिक आख्यान पर आधृत है।

**वीर हमीर :**

सन् १९२२ में डा० रामकुमार वर्मा ने 'वीर हमीर' केवल १६-१७ वर्ष की अल्पायु में लिखा। यह 'कृत्तिका' जो कवि के काव्य-वैभव के सिंहावलोकन के रूप में सन् १९६६ ई० में श्री रामेश्वर दयाल, चन्द्रलोक प्रकाशन ७३ दरभंगा कालोनी, इलाहाबाद–२ से प्रकाशित हुई, में पृष्ठ २०७

से २५१ तक संकलित है। इस कृति में 'वीर हमीर' के प्रकाशन का वर्ष सन् १९२२ अंकित है। इसमें ४४ पृष्ठ हैं और कुल १० सर्ग–(१) शरणागत, (२) वाग्युद्ध, (३) तैयारी, (४) उत्कर्ष, (५) युद्ध, (६) निराशा, (७) मिलन और बिदा, (८) विजय और भूल, (९) जौहर, (१०) सर्वनाश–शीर्षक बद्ध हैं। यह खण्डकाव्य यवन शासक अलाउद्दीन खिलजी के शासनकाल की ऐतिहासिक घटना पर आधारित है। अलाउद्दीन खिलजी का अपराधी एक मंगोल वीर हमीर की शरण में आता है। उसकी रक्षा करने में वीर हमीर अपना सर्वस्व निछावर कर देते हैं। भाषा शुद्ध खड़ी बोली है। अंगी रस वीर है।

**पद्मिनी :**

श्री लोकनाथ सिलाकारी कृत काव्य 'पद्मिनी' का प्रकाशन सन् १९२२ में हुआ। इसमें कुल ३० पृष्ठ और ११६ पद हैं। भाषा खड़ी है। इसमें मेवाड़ के इतिहास पर आधृत अलाउद्दीन खिलजी द्वारा पद्मिनी से विवाह की इच्छा करने और पद्मिनी के द्वारा जौहर करने की विख्यात कथा है।

**देव सभा**

श्री रामचरित उपाध्याय कृत यह काव्य हरिशंकर शर्मा, हरदुआगंज, अलीगढ़ द्वारा सन् १९२२ ई० में प्रकाशित किया गया। इसमें दो बैठकें हैं और आज्ञा अंश को परिशिष्ट के रूप में जोड़ा गया है। पहली और दूसरी बैठकों में ६६-६६ पद हैं और 'आज्ञा' में कुल २८ पद हैं। खड़ी बोली के इस ग्रन्थ में कुल पृष्ठ संख्या ८३ है। कथा काल्पनिक है। एक बार देवताओं की सभा जुड़ती है जिसमें एक भारतीय अपने देश में विदेशियों के कुशासन का हवाला देकर उसकी दशा को सुधारने के लिए भारत जाने की इच्छा प्रकट करता है, इस पर इन्द्र स्वयं वहाँ जाने को तत्पर होते हैं। पर सभापति विष्णु अपने परिषदों को देश की दशा सुधारने को भेजकर भारतीय को तसल्ली देते हैं। कवि ने अंग्रेजी शासन और अंग्रेजों के दुर्गुणों पर प्रकाश डाला है।

**द्रौपदी स्वयंवर**

यह श्री रामजी पाण्डेय 'शंकर शर्मा' आर्या कृत है जिसका प्रकाशन सन् १९२२ ई० में भ्रमर पुस्तकमाला, बेरुआ, डाकखाना–सण्डीला, जिला हरदोई द्वारा किया गया। सण्डीला जिला हरदोई के कुमार महेश्वर वत्स सिंह को इसका प्रचारक रखा गया। इसमें कुल १४ पृष्ठ हैं। मालिनी छन्द

में द्रौपदी के स्वयंवर की प्रख्यात कथा कवि ने कही है। खड़ी बोली का यह काव्य पौराणिक आख्यान पर आधारित है।

**सुहराब और रुस्तम :**

श्री विद्याभूषण 'विभु' रचित 'सुहराब और रुस्तम' खण्डकाव्य का प्रकाशन संवत् १९८० वि० में कला कार्यालय, प्रयाग द्वारा हुआ। खड़ी बोली में लिखा गया यह काव्य आठ सर्गों में विभक्त है जिन्हें कवि ने उच्छ्वास कहा है—(१) प्रयाग, (२) युद्ध निदेश, (३) चर-सन्देश, (४) परिचय, (५) मल्लयुद्ध, (६) सुहराब की मृत्यु, (७) रुस्तम रुदन, (८) तहमीना विलाप तथा मृत्यु। इस काव्य की कथा का आधार फारसी के महाकवि फिर्दौसी की सुप्रसिद्ध रचना 'शाहनामा' है जो फारस के इतिहास से सम्बन्धित है। तहमीना का पुत्र सुहराब अपने पिता रुस्तम को ढूँढने निकलता है और रुस्तम को बिना पहिचाने उससे मल्ल युद्ध करता है। युद्ध में रुस्तम सोहराब को मार देता है। यह पता चलने पर कि सुहराब उसी का बेटा है, वह बहुत दुखी होता है। वह बेटे का शव अपनी पत्नी तहमीना के पास ले जाता है। इस दुःख से तहमीना प्राण त्याग कर देती है। इस काव्य में करूण रस का अच्छा परिपाक हुआ है। ५० पृष्ठीय इस खण्डकाव्य का कथा स्रोत फारस का इतिहास है।

**देवल देवी :**

पहाड़ गाँव, जालौन निवासी श्री विद्या प्रेमी दीनानाथ 'अशंक' रचित 'देवल देवी' खण्डकाव्य का प्रकाशन संवत् १९८० वि० में हुआ। इसके प्रकाशक पं० सुदर्शनाचार्य बी० ए०, गृहलक्ष्मी कार्यालय, प्रयाग हैं। खड़ी बोली के इस ५३ पृष्ठीय काव्य का कथानक राजपूती इतिहास से लिया गया है जो पाँच सर्गों में विभाजित है। वीर क्षत्राणी देवलदेवी के पुत्र आल्हा-ऊदल महोबा के दो प्रसिद्ध वीर थे। महोबा के राजा ने अपनी किसी व्यक्तिगत नाराजगी से उन्हें महोबा छोड़ने का आदेश दे दिया, किन्तु पृथ्वीराज के महोबा पर आक्रमण करने पर फिर उन्हें बुलाया। आल्हा-ऊदल फिर महोबा जाने हो तैयार न थे, इस पर वीरमाता देवलदेवी ने उन्हें अपनी जन्मभूमि की रक्षा के लिये जाने को ललकारा। देवल देवी जैसी माँ की प्रेरणा से उन दोनों ने वीरगति को प्राप्त होकर भी महोबा को बचा लिया। इस काव्य का प्रमुख रस वीर है।

**उषा काल :**

'उषा काल' आनन्दि प्रसाद श्रीवास्तव की कृति है। यह सन् १९२३

ई० में लिखी गई और इसका प्रकाशन सन् १९२७ ई० में रामनारायन लाल, पब्लिशर और बुक्सेलर, इलाहाबाद के द्वारा हुआ। इसकी भाषा खड़ी बोली है और पृष्ठ संख्या ७२ है। कथा कल्पना पर आधारित है। यह कथा तीन सर्गों—(१) मृगया, (२) कक्ष, (३) कारागार में बँटी है। तीसरे सर्ग में एक उपसर्ग उपसंहार दिया गया है। एक राजा व उसका अंतरंग मित्र मृगया के लिए जाते हैं। वहीं दोनों में एक साधु की बात को लेकर झंझट हो जाता है। दोनों लड़ पड़ते हैं। नरेन्द्र के वार से राजा मरणासन्न हो जाता है, पर साधु की बूटी से जी जाता है। नगर में आकर राजा नरेन्द्र को मृत्युदण्ड देता है, परन्तु फाँसी का फन्दा कच्चे सूत का बनवाकर अपने राजा और मित्र दोनों के कर्त्तव्य को निभा लेता है। नरेन्द्र बच जाता है। राजा और प्रजा सभी आनन्दित और सन्तुष्ट होते हैं। इसमें कवि ने व्यक्तिगत और समष्टिगत कई दृष्टिकोणों से जीवन पर प्रकाश डाला है।

**शान्ति प्रताप**

'शान्ति प्रताप' खण्डकाव्य पं० अलगूराय 'आनन्द' (आनन्द कुल भूषण) की कृति है। इसका प्रकाशन श्री हरगोविन्द भार्गव द्वारा वि० संवत् १९८० में हुआ। इस काव्य की भाषा ब्रज है। इसकी कथा नौ सर्गों में विभाजित है। पुस्तक में कुल ९७ पृष्ठ हैं। यह खण्डकाव्य काल्पनिक कथा पर आधारित है। काव्य का नायक प्रताप एक सदाचारी ज्ञानी पुरुष है जो पद्मा के प्रेमपाश में पड़कर भटक जाता है। अन्त में सद्बुद्धि आने पर शत्रुओं को पराजित करता है और काव्य की नायिका अपनी पत्नी शान्ति को प्राप्त करता है। नायक नायिका के नाम के आधार पर ही काव्य का नामकरण कवि ने किया है। लोक भाव, लोक भाषा और लोक संस्कृति का गहरा पुट इस काव्य की विशेषता है। कवि ने विभिन्न छन्दों का प्रयोग किया है, अतुकान्त छन्द भी प्रयुक्त है।

**धर्मवीर हकीकतराय :**

ठाकुर गदाधर सिंह भृगुवंशी ने खड़ी बोली में 'धर्मवीर हकीकतराय' खण्डकाव्य की रचना द्विवेदी युग में की जिसका प्रकाशन स्वयं लेखक ने संवत् १९८० में प्रभुपुर, डाकखाना रामगढ़, काशी से किया। यह काव्य ४८ पृष्ठों में चौदह शीर्षकों—(१) मंगलाचरण, (२) कथामुख, (३) माता पिता परिचय, (४) वार्तालाप अमरसिंह, (५) जन्मोत्सव, (६) नागरी पढ़ना तथा धर्मावरण चढ़ना, (७) पाठशाला, (८) बागमल का भवन, (९) न्यायघर गमन, (१०) न्याय घर, (११) लाहौर न्यायालय, (१२) वध स्थान आदि में विभाजित है। कुल पद संख्या १७८ है। सत्रहवीं शताब्दी के

मुसलमान शासकों के समय की एक ऐतिहासिक घटना को कवि ने इस काव्य का आधार बनाया है। बागमल खत्री का सुपुत्र हकीकतराय अपने वैदिक धर्म को छोड़कर किसी प्रकार धर्म परिवर्तन कर मुसलमान होने को तैयार नहीं होता। हँसते-हँसते जल्लादों द्वारा अपनी गर्दन धड़ से अलग करवा लेता है। कथा के अन्त में ग्रंथकार ने अपना परिचय दिया है।

**स्वतंत्रता पर वीर बलिदान**

इस खण्डकाव्य के रचयिता रघुनन्दन प्रसाद शुक्ल हैं। इसका प्रकाशन सन् १९२३ ई० में पं० गोविन्द प्रसाद शुक्ल, ३२/1 बुलानाला, काशी द्वारा हुआ। मुद्रण सरस्वती प्रेस, बनारस में किया गया। यह सर्गविहीन काव्य है। पृष्ठ संख्या २८ और पद संख्या १११ है। भाषा खड़ी बोली है। इसकी कथा रूस में अत्याचारी जार के शासन से सम्बद्ध घटना पर आधृत है। इसमें काव्यत्व नहीं के बराबर है। अतः इसे इतिवृत्त मात्र कहा जा सकता है।

इन मौलिक खण्डकाव्यों के अतिरिक्त कुछ अनूदित खण्डकाव्य भी सामने आये जिन्होंने तत्कालीन सामाजिक चेतना को प्रभावित किया। अनुवादों के लिए भी उस समय के कवियों ने उन्हीं ग्रन्थों का चयन किया जो जनसामान्य को आदर्श की ओर उन्मुख करने वाले थे। चरित्र-निर्माण में सहायक थे और जिनसे पाठक कुछ उपदेश ग्रहण कर सकते थे। इन अनुवादों में कवियों की मौलिकता की छाया भी मिलती है। कुछ अनुवाद भाषा और छन्द की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। श्रीधर पाठक, गुप्त जी, नाथूराम शंकर एवं लाला सीताराम बी० ए० के अनूदित काव्य उल्लेखनीय हैं।

## अनूदित खण्ड-काव्य

काल क्रमानुसार अनूदित खण्ड-काव्यों का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है—

**कुमार संभव भाषा**

महाकवि कालिदास के संस्कृत ग्रंथ 'कुमार सम्भवम्' का भाषा छन्दों में यह अनुवाद लाला सीताराम बी० ए० (सैकिन्ड मास्टर बनारस कालिज) ने किया जिसका प्रथम संस्करण संवत् १९५७ वि० में किशोर ब्रदर्स, २०३ मुट्ठीगंज, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित हुआ। इसमें पार्वती जी के जन्म, तपस्या और विवाह की कथा है। यह काव्य सोरठा, दोहा, चौपाई, कवित्त

आदि विभिन्न छन्दों में ब्रजभाषा में है। यह एक श्रेष्ठ अनुवाद है। इसमें अलंकारों का अपना सौष्ठव है। उदाहरण के लिए कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं—

सोइमीं शंकर जारि अनंगा। कीन्हों उमा मनोरथ भंगा।
गिरिजा रूप तुच्छ करि जाना। जो नहिं सक्यो मोहि ईसाना।
सुन्दर छबि जानहिं तिय सोई। देखत प्रियहिं लुभावैं सोई।

\+ \+ \+

एक उदाहरण और—

बिकसित कंज सरिस दृग जाके। यदपि सिंगार व्यर्थ अंग ताके।
तहँ काजल कह मंगल जानी। उमा नयन मंह दीन्ह सयानी।
विकसित कुसुमलता की भाँती। जगमगात नछत्र संग राती।
चक चकई संग सरित समाना। भई धारि भूषण बिधि नाना ॥[1]

**श्रान्त पथिक**

गोल्डस्मिथ के 'द ट्रेवलर' का 'श्रान्त पथिक' शीर्षक से श्रीधर पाठक द्वारा किया गया अनुवाद है जिसका प्रकाशन सन् १९०२ ई० में हुआ। भ्रमण करने के बाद थककर एक यात्री आल्पस पर्वत की ऊँची चोटी पर बैठ कर आत्मिक सुख की खोज करता है। उसे बाकी सारे लोग जो स्वदेश गौरव को सबसे अच्छा मानते हैं सुखी नहीं लगते, क्योंकि उसकी दृष्टि में सच्चा सुख आत्मिक सुख है। यह एक सामान्य अनुवाद है।

**ऊजड़ ग्राम**

यह काव्य इंगलैण्ड के प्रख्यात कवि गोल्डस्मिथ के 'डिजर्टेड विलेज' का अनुवाद है जिसे पं० छंगामल चतुर्वेदी ने, जो मैनपुरी में मिशन हाई स्कूल में अंग्रेजी के अध्यापक थे, किया। यह अनूदित खण्डकाव्य सन् १९०१ में विश्वकर्मा प्रेस, मथुरा द्वारा प्रकाशित हुआ। इसमें २६ पृष्ठ हैं। 'ऊजड़ ग्राम' नाम से 'डिजर्टेड विलेज' का अनुवाद श्रीधर पाठक का भी है, किन्तु उसका प्रकाशन द्विवेदी युग से पूर्व सन् १८८९ ई० में ही हो गया था।

**श्रीकृष्ण चन्द्र चन्द्रिका**

'श्रीकृष्ण चन्द्र चन्द्रिका' गणेश सिंह द्वारा अनूदित खण्डकाव्य है। इसमें श्रीमद्भागवत के द्वादश स्कंध की कथा कवित्त, दोहा, चौपाई आदि मनहरण छन्दों में वर्णित की गई है। इसके प्रकाशक श्री खेमराज श्रीकृष्ण

---

१. कुमार संभव भाषा—सातवाँ सर्ग, संस्करण सातवाँ संवत् १९८०, पृ० २९।

दास, बम्बई हैं और मुद्रक श्री वेंकटेश्वर ( स्ट्रीम ) यन्त्रालय, बम्बई है। इसमें १५६ पृष्ठ हैं। इसका प्रकाशन काल ज्येष्ठ संवत् १९५८ है। यह ब्रजभाषा में लिखा गया है।

**किरातार्जुनीय भाषा**

'किरातार्जुनीय भाषा' लाला सीताराम बी० ए० द्वारा किया गया महाकवि भारवि के प्रसिद्ध संस्कृत ग्रन्थ 'किरातार्जुनीय' का ब्रजभाषा में अनुवाद है। इसका प्रकाशन संवत् १९५८ (सन् १९०१) में इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद द्वारा हुआ। ९ सर्गों में, १०५ पृष्ठों में कवि ने अर्जुन की तपस्या और फिर उसकी अस्त्र प्राप्ति की कथा कही है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

माया रचे गेह जहँ नाना। ज्वलत रत्न जहँ दीप समाना।
इन्द्रचाप सम रंग सुहाए। जहँ तोरन अति रुचिर बनाए।
वन विहार लालस हियधारी। सो पुर प्रीति तजी सुर नारी।

**कुमार सम्भव सार**

'कुमार सम्भव सार' अनूदित खण्डकाव्य पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा महाकवि कालिदास प्रणीत 'कुमार सम्भवम्' के १७ सर्गों में से प्रथम पाँच सर्गों को ही सर्वश्रेष्ठ मानकर उनका छन्दों में किया गया अनुवाद है। तृतीय और पंचम सर्ग का शब्दशः अनुवाद किया गया है। प्रथम, तृतीय और चतुर्थ सर्ग के अनुवाद में उनका आशय मात्र लिया है। प्रथम सर्ग में ३६ पद, दूसरे में ३६, तीसरे में ७६, चौथे में ३४ और पाँचवें में ८७, कुल २६९ छन्दों के इस अनुवाद में कथा का एक सार्थक अंश आ गया है और वह समर्थ खण्डकाव्य बन गया है। यह संवत् १९०२ में काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा तारा यन्त्रालय काशी से प्रकाशित हुआ। इसकी भाषा खड़ी बोली है जिसमें ब्रज के शब्द भी आ गये हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

सम्मुख ही उस भाँति शम्भु ने कामदेव का करके दाह,
कर दी विकल साथ ही उसके निज विषयक गिरिजा की चाह।
अतः उमा ने रम्य रूप को धिक्कारा बहुबार लजाय,
वही सुघरता सफल समझिये जो प्रियतम को सकै लुभाय।

**दुर्गा-विजय**

श्री मुकुटलाल 'रंग जी' कृत 'दुर्गा-विजय' अनूदित खण्डकाव्य मार्कण्डे

पुराणान्तर्गत श्री दुर्गा सप्तसती का दुर्गापाठ का उल्था है। इसके प्रकाशक भी श्री मुकुटलाल हैं और मुद्रक श्री अकलूलाल, बिहार बन्धु यन्त्रालय, बाँकीपुर हैं। ११० पृष्ठों के इस काव्य-ग्रन्थ का प्रकाशन संवत् १९६२ (सन् १९०५ ई०) में हुआ। यह दोहा, सोरठा आदि विभिन्न शब्दों में है। आरंभ में देव-स्तुति के दोहे हैं। यह अवधी भाषा में है। बानगी स्वरूप इसका एक दोहा प्रस्तुत है—

बिपत हरन दुख दमन तम, करि सम आनन जासु,
गन नायक दायक सुमति, बन्दौ पायन तासु ॥ (पहला दोहा)

**वीर होरेशस**

श्री रघुनाथ प्रसाद कपूंर द्वारा अनूदित यह काव्य मैकाले के 'होरेशस' का अनुवाद है। इसमें इटली देश के रोम नगर की एक ऐतिहासिक घटना है। यह श्री रघुनाथ कपूर द्वारा संवत् १९६९ (सन् १९१२) में जानकी प्रसाद वर्मा, जगद्विनोद प्रेस, अलीगढ़ से मुद्रित कराया गया। १७ पृष्ठों का यह लघु काव्य खड़ी बोली में है। इसमें कवित्व विशेष नहीं है। उदाहरण के लिये निम्नलिखित छंद द्रष्टव्य है—

नाटकों में वीर के, अभिनय बड़े ही चाव से,
खेलते हैं लोग अब तक, एक अनोखे भाव से।
रोम में लोगों को है अभिमान उसके नाम पर,
सेतु की रक्षा करी जिसने हथेली जान धर।

—पद ९०, पृ० १७

**विरहिणी ब्रजांगना**

'विरहिणी ब्रजांगना' अनूदित खण्डकाव्य बंगीय कविश्रेष्ठ माइकेल मधुसूदन के 'ब्रजांगना' नामक काव्य का अनुवाद है। मैथिलीशरण गुप्त जी ने 'मधुप' उपनाम से इसका अनुवाद खड़ी बोली में किया। इसका मुद्रण एवं प्रकाशन साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी से हुआ। पहली आवृत्ति संवत् १९७१ में और षष्ठावृत्ति संवत् १९९३ में निकली। इसमें ४३ पृष्ठ हैं। वंशीध्वनि, जलधर, यमुनातट आदि मूल काव्य के अठारहों खण्ड 'मधुप' जी ने इसमें रखे हैं। 'वंशीध्वनि' प्रथम खण्ड में मूल में ६ पद हैं, उनको गुप्त जी ने ९ पदों में अनुवाद किया है। कहीं-कहीं शब्दों को ज्यों का त्यों ले लिया है, जैसे—'अनाया अतिथि' 'आमि तोमार' का अनुवाद कवि ने किया है—'मैं तव अतिथि अनाया हूँ।' 'यमुना पुलिने आमि भूमि

एकाकिनी' का 'आज अकेली फिरती थी यमुना के तीर।' वंशी की ध्वनि के लिये 'निनाद' शब्द लिया है। डा० उमाकान्त ने इसे अविकल अनुवाद कहा है। राधा के विरह का एक मर्मस्पर्शी उदाहरण द्रष्टव्य है—

'हे सखि ! यह यौवन-धन अपना दूँगी प्रियतम को उपहार।
यह मस्तक-सिन्दूर आग सा बन जावेगा चन्दन सार।
देखूँगी दस इन्दु नखों में करके जीवन सफल अहा।
मागूँगी चिर-प्रेम रूप वर जो मन में है समा रहा॥

—वसन्त सर्ग, पद ५, पृ० ४३

**श्री सत्यनारायण की कथा**

'श्री सत्यनारायण की कथा' छन्दोबद्ध रचना श्री सत्यनारायण व्रत कथा का अवधी भाषानुवाद है। अनुवादक पं० रामचन्द्र शर्मा, लश्कर, ग्वालियर हैं। इस पुस्तक का प्रकाशन पं० नथपाल शर्मा, शर्मा प्रिंटिंग प्रेस, भरतपुर द्वारा संवत् १९७१ वि० में हुआ। आरम्भ राम की वन्दना से होता है। इसमें सोरठे, दोहे, चौपाई आदि विभिन्न छन्दों का प्रयोग है। उदाहरण स्वरूप एक चौपाई द्रष्टव्य है—

जो व्रत कर पूजहिं सब आशा। तासु नाम विधि सुनहु मुनीषा।
सत नारायण जाकर नामू। अखिल सौख्य दायक विश्रामू।

चौपाई १८, पृ० ३

**देशभक्त होरेशस**

'देशभक्त होरेशस' श्री सत्यनारायण कविरत्न द्वारा लार्ड मेकाले की अंग्रेजी रचना का ब्रजभाषा में किया गया अनुवाद है जिसके द्वारा कवि ने राष्ट्रीय भावना को जगाया है। यह सर्गहीन खण्डकाव्य है। इटली के रोम नगर के अन्यायी राजा टारक्वीनस सुपरबस को जब वहाँ की प्रजा ने सपरिवार रोमनगर से बाहर निकाल दिया तो उसने क्लूजियम के राजा लार्सपोरसेना को साथ लेकर टाइबर नदी के इस पार रोमन लोगों के जेनिकुलम नामक किले पर आक्रमण कर दिया। देशभक्त होरेशस ने अपनी जान की बाजी लगाकर अपने दो साथियों के साथ पुल के फाटक पर ही उसे रोक रखा। इतने में रोमन लोगों ने पुल तोड़ डाला। राजा पुल नहीं पार कर सका। वीर होरेशस नदी में कूद गया और सौभाग्य से बच गया। इसमें युद्ध का वर्णन सशक्त है। कवि ने इसमें ब्रज और अवधी मिश्रित क्रियापद प्रयोग किये हैं। ब्रजभाषा में देशभक्ति की बहुत कम रचनायें हुई हैं, उनमें यह उल्लेखनीय है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित छन्द प्रस्तुत हैं—

उमड़ रही रजघटा घुमड़ि, घनघोर मचावत।
विकट बवण्डर की बादल लों चुटिया धावत।।[1]

+ + +

तिह प्रहार स्यों गिर्‌यो वीर ल्यूनेश धरनि पै।
मनहु तड़ित ताड़ित बलूत अलवरनश गिरि पै।।[1]

**वायस विजय**

'वायस विजय' पंडित विष्णु शर्मा द्वारा रचित संस्कृत के नीति ग्रंथ 'पंचतंत्र' के तृतीय प्रकरण काकोलूकीय' का हिन्दी में पद्यानुवाद है। यह मूलतः नीति काव्य है। लेखक पं० नाथूराम शंकर शर्मा 'शंकर' हैं। इसका प्रकाशन हरिशंकर शर्मा, हरदुआगंज, अलीगढ़ द्वारा संवत् १९७६ में किया गया। इस पुस्तक का मूल विषय है कि शत्रु के साथ किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए, किन्तु बीच-बीच में कवि ने अनेक कथाओं एवं उपकथाओं द्वारा राज-धर्म और राजनीति पर प्रकाश डाला है। राजा और मंत्रियों के कर्तव्य, त्रियाचरित्र पर भी विचार प्रस्तुत किये हैं। अनुवाद की दृष्टि से यह एक श्रेष्ठ प्रयास है। समसामयिक समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए नीति वाक्यों के माध्यम से उस समय की सामाजिक एवं राजनीतिक विषम स्थितियों पर कवि ने व्यंग्य किया है। देश की परतंत्रता कवि को खटकती है। नीति के द्वारा अंग्रेज शत्रुओं का पतन कवि का अभीष्ट है। नीति-दिग्दर्शन के साथ देश की परम्परा पर भी कवि की दृष्टि गई है। निम्न छन्द में कवि जैसे अंग्रेजों को चेतावनी देता है—

रहा न रावण सा अभिमानी, रहे न राम लोक अभिराम।
रहा न कोई कौरव-कुल में, रहे न अर्जुन-गुरु-घनश्याम।
खोटे और खरे सब खाये, काल-व्याल ने बदन-पसार।
ऐसा सोच प्रजा पर प्यारे, करना पूरा पूरा प्यार।

—शंकर सर्वस्व, पृ० १३९

'वायस विजय' के अन्त में जब कौओं की विजय होती है, शंकर भारतीयों की विजय के प्रति आस्थावान दिखाई देता है। जैसे कौए जीत गये, एक दिन भारतवासी भी विजय प्राप्त करेंगे और स्वतंत्र होंगे—

शत्रु नाश कर आय बिराजो, बरगद पर कौओं की पाँति।
हे शंकर, क्या हम न हंसेंगे, देख भारतोदय इस भाँति।

१. देशभक्त होरेशस : पं० सत्यनारायण कविरत्न, पृ० ७।

उजबकपन से उल्लू हारे, चतुराई से जीते काग ।
पाठक-चंचरीक समझेंगे इस प्रसंग को पद्म-पराग ।
—शंकर सर्वस्व, पृ० १४०

इसकी भाषा अत्यन्त प्रभावमयी एवं सशक्त है। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

जहाँ न आदर है चतुरों का, पूजे जाते हैं मतिहीन ।
वास विलास वहाँ करते हैं, भय, दुर्भिक्ष, मरण यह तीन ।
—वायस विजय, पृ० २०

**पलासी का युद्ध**

यह बंगीय कवि नवीन चन्द्र सेन के 'पलाशिर युद्ध' का हिन्दी अनुवाद है जिसे 'मधुप' उपनाम से मैथिलीशरण गुप्त ने किया। यह साहित्य-सदन, चिरगाँव (झाँसी) द्वारा सन् १९२० ई० में प्रकाशित हुआ। इसमें कुल १३० पृष्ठ हैं। इसमें प्लासी के युद्ध की प्रसिद्ध ऐतिहासिक कथा है जो पाँच सर्गों में विभक्त है। इसकी भाषा खड़ी बोली है। दो उदाहरण प्रस्तुत हैं—

आती तमोराशि में है क्षीण दीप्तिधारा सी,
टूट कर नभ से गिरी है एक तारा सी।[1]
चाँदी की चाँदनी न होगी दो ही दिन की,
डूबेगी आन्तरिक राज्य-लालसा ब्रिटिन की।[2]

**भोज-प्रबन्ध**

सुप्रसिद्ध नीति ग्रन्थ 'भोज-प्रबन्ध' के अनुवादक ठाकुर रामयश सिंह तहसीलदार हैं। इसका प्रकाशन संवत् १९७९ में राम गोविन्द त्रिवेदी, शुकदेवराम, बाबू जित्तू प्रसाद रामसुन्दर, ५४ सुकिया स्ट्रीट कलकत्ता द्वारा हुआ। श्री महादेव प्रसाद सेठ, बालकृष्ण प्रेस, १३ शंकर घोष लेन, कलकत्ता द्वारा इसका मुद्रण किया गया। कुल पृष्ठ संख्या ७८ है। यह दो भागों—प्रथम और द्वितीय में विभाजित है। इसमें महाराज भोज का प्रख्यात जीवन चरित्र कथाबद्ध है। भाषा खड़ी बोली है। यह एक इतिवृत्तात्मक काव्य है। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

बस धर्म्म ही केवल सदा संसार में प्रियमित्र है।
जो मरण के उपरान्त भी सब प्राणियों का हित है।

---

१. पलासी का युद्ध—प्रथम सर्ग, पृ० ५।
२. पलासी का युद्ध—द्वितीय सर्ग, पृ० ४१।

तनु नष्ट होने पर सुवन, माता, पिता, दारा सभी।
कोई नहीं होते सहायक धर्म्म ही होता तभी ॥[1]

**मेघदूत**

महाकवि कालिदास के प्रसिद्ध संस्कृत ग्रन्थ 'मेघदूत' का अनुवाद भदैनी (बनारस) निवासी पं० केशव प्रसाद मिश्र ने किया जो विजया दशमी संवत १९८० को भारत कला परिषद, काशी के आयोजन से साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी द्वारा प्रकाशित हुआ। यह अनुवाद खड़ी बोली में है। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

वनपति ने सेवा में बेसुध एक यक्ष पर कोप किया,
उसे वर्ष पर प्रिया विरह का, पद महत्व हर शाप दिया।
"तब उस बेचारे ने डेरे रम्य रामगिरि पर डाले,
जो सीता मज्जन से शुचि जल और घनी छाया वाले।"

इस प्रकार इस युग में एक ही घटना या चरित्र को वर्ण्य विषय बनाकर कई-कई खण्डकाव्य लिखे गये। हर कवि ने अपने-अपने ढंग से तत्कालीन आदर्शोन्मुख और उपदेशात्मक प्रवृत्ति को विस्तार देते हुए अपेक्षित वस्तु का चयन कर रचना की। सुविधा के लिए कथा-स्रोतों के आधार पर इन खण्ड-काव्यों का विवेचन पौराणिक खण्डकाव्य, ऐतिहासिक खण्डकाव्य एवं काल्पनिक खण्डकाव्य नामक अध्यायों में स्वतन्त्र रूप से आगे किया जा रहा है।

●

१. भोज प्रबन्ध : ठाकुर रामयश सिंह, प्रथम सर्ग, पृ० १५।

चतुर्थ अध्याय

# पौराणिक खण्डकाव्य

जैसा कि तीसरे अध्याय में कहा गया, द्विवेदी-युग में अनेक ऐसे खण्ड-काव्य लिखे गये जिनका कथानक रामायण, महाभारत तथा पुराण कथाओं से लिया गया। इन काव्यों को पौराणिक खण्डकाव्य की संज्ञा दी जा सकती है। रामायण-महाभारत को यद्यपि भारतीय परम्परा में इतिहास माना गया है, किन्तु यहाँ नामकरण की सुविधा के लिए इन्हें भी पुराणों के अन्तर्गत रखा जा सकता है, क्योंकि कई पुराण ऐसे हैं जिनमें ऐतिहासिक प्रसंगों की भी चर्चा की गई है। प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति के शोध की दृष्टि से वे अत्यन्त महत्वपूर्ण भी माने जाते हैं। प्रागैतिहासिक युग के इतिहास, विशेष रूप से सांस्कृतिक इतिहास के अन्वेषण और शोधन की दृष्टि से रामायण-महाभारत के साथ ही पुराणों का भी अपना महत्व रहा है। वस्तुतः मिथक और इतिहास की अलग-अलग अवधारणा भारतीय साहित्य में कभी नहीं रही। मिथक से इतिहास को और इतिहास से मिथक को अलग कर पाना कठिन है। इसीलिए भारतीय परम्परा में पुराणों की अवधारणा में मिथक और इतिहास दोनों का मिश्रण है। इन्हें पुराणैतिहास कहना अधिक उपयुक्त है, किन्तु यदि किसी एक नाम से अभिहित करना हो तो इन्हें पौराणिक आख्यान कहा जा सकता है और इन पर आधृत काव्य को पौराणिक काव्य की संज्ञा दी जा सकती है। यहाँ द्विवेदी युगीन निम्नलिखित पौराणिक खण्डकाव्यों का रचना-क्रम से विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है—

श्री सदाशिव विवाह–१९०१ ई०
सावित्री उपाख्यान–१९०२ ई०
प्रेमेश्वर विरददर्पण–१९०४ ई०
इन्दुमती परिणय–१९०६ ई०
जयद्रथ-वध–१९१० ई०
करुणालय–१९१३ ई०
शकुन्तला–१९१४ ई०
पतिव्रतादर्श–१९१४ ई०
उषाहरण–१९१७ ई०
अभिमन्यु का आत्मदान–१९१८ ई०
मैथिली-मंगल–१९१८ ई०
सत्याग्रही प्रह्लाद–१९२० ई०
भंग में रंग–१९२१ ई०
गंगावतरण–१९२१ ई०
कीचक-वध–१९२१ ई०
कंस-वध–१९२१ ई०
अम्बरीष–१९२१ ई०
द्रौपदी स्वयंवर–१९२२ ई०

**श्री सदाशिव विवाह**

रणछोड़ जी दीवान कृत 'श्री सदाशिव विवाह' में सती पार्वती के शिव के साथ परिणय की पौराणिक कथा है। सती अपने पिता दक्ष के यहाँ यज्ञोत्सव में बिना बुलाये, शिव की इच्छा न होने पर भी कनखल चली जाती हैं। वहाँ अपने पति का अपमान सहन न कर पाने पर वह यज्ञ-कुण्ड में भस्म हो जाती हैं। परिचारक जब शिव को यह समाचार देते हैं तो वे क्रुद्ध हो उठते हैं और रौद्र रूप धारण करते हैं। सब भयभीत हो जाते हैं। फिर सती पार्वती के रूप में जन्म लेती हैं और पार्वती एवं शिव का विवाह होता है।

पारम्परिक विधि से काव्य के आरंभ में कवि ने गणेश वन्दना, देवताओं की वन्दना एवं शिव-वन्दना की है। कवि का उद्देश्य इस पौराणिक-आख्यान द्वारा शिव-पार्वती के माहात्म्य वर्णन के साथ इस उपदेश का सम्प्रेषण भी है कि बिना बुलाये किसी के घर यहाँ तक कि अपने पिता के घर भी नहीं जाना चाहिए। शिव सती से कहते हैं—

उर नेह नहिं जिन जाउ उमा,
छल देखत प्रान रहै न छमा।
बिन मान सुधा विष तैं जु बुरी,
नहिं आदर तौ सुरलोक जरी।[1]

इसका प्रधान रस शृंगार है। रति-दाम्पत्य वर्णन के साथ सती और पार्वती का रूप वर्णन भी कवि ने किया है। उदाहरणार्थ—

सुबर्न कीर नासिका कि दीप की प्रकासिका
उसास कंज वासिका किंधो सरोज नाल है,
मयंक कै किसोर है, किंधों रबी द्वि ओर है,
जटीय चित्त चोर है, किंधो सलोन गाल है।[2]

शृंगार के साथ रौद्र, भयानक आदि भी सहयोगी रस के रूप में आये हैं। परिचारकों द्वारा सती के यज्ञ-कुण्ड में भस्म होने की बात ज्ञात होते ही शिव क्रुद्ध हो उठे। उनके इस रौद्र रूप का कवि ने अच्छा चित्र खींचा है—

उठे ज्वाल के भभूके देखो रूप हरजू के,
भीम नाद सिंगी फूकै मानो मेघ गरजै।

---

१. श्री सदाशिव विवाह—पद ३४, पृ० ८।
२. वही, पद १५४, पृ० ४०।

कंठी रव कंठ हूके गल माल मुण्ड सू के,
खाय नीर ससि टूके ग्रीव दंड लरजै।
मख दच्छ करो भू के भूत जाय पाक बू के,
दिनकर में अलूके त्राहि त्राहि बरजै।
हरकी जो सेव चूके दूत जम आइ ढूके,
नरक से कवि न मूके योन योन सरजै॥[1]

रौद्र को प्रभावी बनाने के लिए कवि ने कवित्त चक्र बंध की आयोजना की है। काव्य की भाषा ब्रज है जिसमें खड़ी बोली के भी प्रयोग हुए हैं। कहावतों और मुहावरों के प्रयोग नगण्य हैं। 'हरकी जो सेव चूके' आदि में खड़ी-बोली का प्रयोग परिलक्षित है। इस इतिवृत्तात्मक कृति में काव्यत्व विशेष नहीं है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा अलंकारों का ही अधिक प्रयोग है। उपमान प्रायः रूढ़ हैं, उदाहरणार्थ—

मराल चाल बीसरी, छिनाइली महेसरी।
तज्यौ गुमान रीसरी, चुगै सदाइ कांकरी।[2]

इस प्रकार इस खण्डकाव्य ने देश के अतीत गौरव पर प्रकाश डाला, साथ ही ब्रजभाषा में खड़ी बोली को स्थान देकर उसका मार्ग भी प्रशस्त किया।

**सावित्री उपाख्यान**

प्रसिद्धनारायण सिंह रचित 'सावित्री उपाख्यान' नौ प्रतिभा में विभक्त एक पौराणिक कथामूलक खण्डकाव्य है। सावित्री सत्यवान की प्रसिद्ध कथा इस काव्य का उपजीव्य है। ख्यात रूप में ही यह कथा प्रस्तुत की गई है, कल्पना का उपयोग कहीं नहीं किया गया है। निःसंतान मद्र नरेश अश्वपति को दैवी मान्यता के बाद कन्यारत्न के रूप में सावित्री की प्राप्ति होती है। विवाह योग्य होने पर राजा वर की तलाश करते हैं किन्तु उन्हें कोई योग्य वर नहीं मिल पाता। तब दूसरे विधान द्वारा सावित्री स्वयं पिता की आज्ञा से वर-चयन के लिए निकलती है और सत्यवान का वरण करती है। नारद मुनि द्वारा यह बताये जाने पर भी कि सत्यवान की आयु मात्र एक वर्ष शेष है, वह सत्यवान को मनसा वरण कर लेने के कारण उसी से विवाह करती है। एक वर्ष बाद लकड़ी काटते समय सत्यवान अचानक शिरः-शूल

१. श्री सदाशिव विवाह–पद ५४, पृ० १४।
२. श्री सदाशिव विवाह–पृ० ३८।

से पीड़ित होता है और तुरन्त मर जाता है। जब सत्यवान को यम ले जाता है तब सावित्री पीछा करती है और उसका साथ तब तक नहीं छोड़ती जब तक कि वरदान पाकर वह न केवल सत्यवान को पुनः जीवित करा लेती है, बल्कि बूढ़े सास-ससुर का राज्य और उनकी दृष्टि भी अपनी बुद्धि-कौशल से प्राप्त कर लेती है।

काव्य-रचना के उद्देश्य और कथा के चयन के सम्बन्ध में भूमिका में अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए कवि ने स्वयं लिखा है–'स्त्रियों के सच्चरित्र होने में भी प्रधान साधन उनका निज धर्म पालन ही है और उनके निज धर्म का मुख्य अंग पतिव्रत है, जिस व्रत में इस ग्रन्थ की नायिका सावित्री दीक्षित है। यदि हमारे देश में पुरुष स्त्री गण इस सावित्री को अपने हृदय में यथोचित स्थान दे दें और सच्चे रूप में इसका आदर करेंगे तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूंगा।'

इस प्रकार 'सावित्री उपाख्यान' के माध्यम से पति-भक्ति और नारी-धर्म की दीक्षा या उपदेश देना कवि का अभिप्रेत है। अतः ऐसे काव्य में उपदेशात्मकता की प्रवृत्ति और नीतिधर्म परक दृष्टिकोण की प्रधानता स्वाभाविक है। द्विवेदी युगीन यह प्रवृत्ति इस काव्य में भी आद्यन्त दिखलाई पड़ती है। अन्य काव्यों की तरह इस प्रवृत्ति का प्रारम्भ इस काव्य में भी मंगलाचरण या वन्दना से ही होता है—

जो प्रभु स्वतः चराचर जग पालत चित लाई।
सत्यधर्म को रूप गुप्त पुनि प्रगट लखाई।
जाके पथ गहि लहत सबै जन रुचिर चारिफल।
ताकौ हिय धरि सावित्री यश बरनों अविकल।[1]

यह नीति-परक उपदेशात्मक प्रवृत्ति काव्य में बीच-बीच में भी दिखलाई पड़ती है। अवसर मिलते ही कवि उत्तम पतिव्रता नारी का लक्षण बताने का लोभ नहीं रोक पाता है—

जे उत्तम पतिव्रता नारि तिनके मन मांही।
पति विभिन्न कोउ अन्य पुरुष जगती तल नाहीं।[2]

इसी प्रकार लोगों में बढ़ती स्वार्थ प्रवृत्ति पर प्रहार करता हुआ कवि कहता है—

---

१. सावित्री उपाख्यान–वन्दना प्रथम पद।
२. वही, पंचम प्रतिभा, पद ४०, पृ० २४।

छन्दों का भी प्रयोग किया गया है। छन्द परिवर्तन के द्वारा छन्द वैविध्य का उदाहरण भी कवि ने प्रस्तुत किया है।

कलात्मकता और काव्यात्मकता की दृष्टि से भी यह काव्य परम्परा और नवीनता के संधिकाल का एक अच्छा उदाहरण है। एक ओर जहाँ इतिवृत्तात्मक कथन है, वहीं दूसरी ओर आलंकारिकता की प्रवृत्ति भी कम नहीं। अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा अलंकारों का प्रयोग कवि ने काव्य में पूरी तरह किया है। उदाहरणार्थ—

अनुप्रास— दास दुरिजाय तो दराज दुनियाँ है भरी
एक के सुथान में हजार जन जूटि हैं।
हीरन की हार हाथी हौदा हवेली हय
आज हटि जाय काल्हि फेरि आय टूटि हैं।

करम कलाप, कल कीरति कवित्त कला
काल गाल परि तत्काल सुथ उठि हैं।
सरद समै के ससिमंडल सरिस सदा
सज्जन सपूत को सनेह किमि छुटि हैं।[1]

किन्तु अलंकार-विधान में नवीनता नहीं है, पारम्परिक उपमानों के ही प्रयोग किये गये हैं। इन उपनामों का प्रयोग कहीं उपमा तो कहीं प्रतीप और कहीं उत्प्रेक्षा में किया गया है। प्रतीप के इस प्रयोग को उदाहरणस्वरूप ले सकते हैं—

मुख-पंकज की दुति देखत ही
जलजात लजात थिरात नहीं।
चख चंचल खंजन मान हरे
अरुणाधर हैं मुस्कान भरे ॥[2]

मुख-कमल की शोभा देख कमल नहीं ठहर पाता, चंचल नेत्रों के सामने खंजन स्वयं फीका पड़ जाता है। इस प्रकार उपमेय की गुणवत्ता के सामने उपमान को तुच्छ दिखाकर प्रसिद्ध नारायण सिंह जी ने कई स्थानों पर प्रतीप की योजना की है।

---

१. सावित्री उपाख्यान–सप्तम प्रतिभा, पद ४४, पृ० ३४।
२. वही, सप्तम प्रतिभा, पद ४४, पृ० ३४।
३. वही, प्रथम प्रतिभा, पद २५-२६, पृ० ३।

द्विवेदी युगीन प्रवृत्ति के अनुसार कवि ने प्रकृति वर्णन उद्दीपन रूप में न करके उसे नीति और उपदेश के उद्बोधक के रूप में प्रस्तुत किया है—

फूले विटपन जानि भँवर गुंजार करत हैं।
शीलवन्त के भये सुजस आपुहिं पसरत हैं।
कहुँ तरु शाखा झुकी, प्रचुर मधुफल के लागे।
मनहुँ सिखावत जनहिं नवहु पानिपु के जागे।
तहाँ एक सुविशाल शाल को वृक्ष मनोहर।
जनु प्रभु पहँ बिनवत नृपजस ऊंचे उठाय कर ॥[1]

इसे पढ़कर पाठक अपने को जैसे प्रकृति के बीच खड़ा पाता है। वह इस दृश्य से साक्षात्कार जैसा सुख अनुभव करता है। फलों से लदी झुकी शाखाएँ, गुंजार करते भौंरे, विशाल शाल का वृक्ष जो मानो शाखाओं रूपी हाथ उठाकर राजा का यशगान कर रहा हो, सब चित्त प्रसादक हैं।

निष्कर्ष यह है कि 'सावित्री-उपाख्यान' एक समर्थ खण्डकाव्य होने के साथ ब्रज से खड़ी बोली की ओर बढ़ने के लिये मार्ग बनाने के रूप में विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

**प्रेमेश्वर विरद दर्पण**

बाबू राम नारायण ब्रह्मभट्ट मुख्तार कृत 'प्रेमेश्वर विरद दर्पण' में द्रौपदी चीर हरण की प्रख्यात कथा है। दुर्योधन की सभा में खड़ी द्रौपदी की पुकार प्रेमेश्वर कृष्ण के विरद के लिए जैसे चुनौती है, वह दौड़े चले आते हैं और उसका चीर बढ़ाते हैं।

काव्य का प्रमुख रस शृंगार है। विभिन्न स्थितियों को कवि ने चित्रित किया है। ब्रजभाषा के इस काव्य में खड़ी बोली और संस्कृत के प्रयोग भी हैं। दोहा, सवैया, लावनी के साथ बीच-बीच में भजन व संस्कृत के श्लोकों का समावेश भी हुआ है। रचना इतिवृत्तात्मक है। भाषा शैली के उदाहरणस्वरूप निम्नलिखित दोहा लिया जा सकता है—

सुनि दुर्योधन के बचन चल्यो दुशासन दौर।
द्रुपद सुता ढिग जाय यों बोल्यो बचन कठोर ॥
जीत्यो कौरव द्यूत में परी युधिष्ठिर हारि।
तू दुर्योधन मन बसी चलु संग मेरे नारि ॥[2]

---

१. सावित्री उपाख्यान—पंचम प्रतिभा, पद ८, ९, १०, पृ० २१।
२. प्रेमेश्वर विरद दर्पण, पृ० १६।

इस रचना में काव्यत्व नगण्य है, किन्तु इसमें अन्तर्निहित आस्था का स्वर मन पर सीधे प्रभाव डालता है। कुटिल कर्मियों की मानसिकता को सामने लाने के साथ ही कवि ने विश्वास की शक्ति का प्रभाव भी दिखलाया है। भरी सभा में अपमान होने पर सब तरफ से निराश और निरावलम्ब द्रौपदी प्रेमेश्वर कृष्ण के विरद की दुहाई देती है और उसे सहारा मिलता है। उस युग में काव्य को लोक-प्रिय बनाने में इस कृति का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

**इन्दुमती परिणय**

पं० खुन्नामल शर्मा कृत खण्डकाव्य 'इन्दुमती परिणय' रघुवंश की महिमा एवं महाराज रघु के पुत्र राजा अज और इन्दुमती परिणय के पौराणिक आख्यान पर आधारित है। कवि ने पारम्परिक गणपति वन्दना एवं मंगलाचरण से काव्य का प्रारम्भ किया है। विशाल कलेवर के इस खण्डकाव्य की कथा को कवि ने पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध में विभाजित किया है। दोनों में दस-दस तरंग हैं। पूर्वार्द्ध में पहिली तरंग में कौशिक वंशावतंस विदर्भाधिराज महाराज भोज का यदुवंश से सम्बन्ध वर्णित है। दूसरी तरंग में श्री रघुवंश की महिमा का वर्णन है। तीसरी तरंग में महाराजा दिलीप के पुत्र राजा रघु द्वारा दसों दिशाओं को विजय करने के उपरान्त विश्वजित यज्ञ सम्पूर्ण करने पर अपने समस्त भंडार को दान कर देने का उल्लेख है। चतुर्थ तरंग में ब्रह्मचारी कौत्स, महाराज रघु के पास अपनी गुरु दक्षिणा प्राप्त करने की इच्छा से आते हैं। महाराज रघु उन्हें प्रचुर धनराशि देते हैं और कौत्स रघु को पुत्रवान होने का आशीर्वाद देते हैं। पाँचवीं तरंग में राजकुमार अज के जन्म, जन्म के संस्कार और उत्सव का वर्णन कवि ने विस्तार से किया है। छठीं तरंग में अज की बाल-क्रीड़ाओं और विद्या-प्राप्ति के प्रसंग हैं। सातवीं तरंग में महाराज रघु अपने गुरु की सम्मति से अज को युवराज घोषित करते हैं और समस्त अवधपुरवासी उनके कल्याण की कामना करते हैं। आठवीं तरंग में युवराज अज को राजा भोज की सहोदरा इन्दुमती का स्वप्न में दर्शन होता है। वह वाटिका में बैठी होती है। उस अतीव सुन्दरी का दर्शन उन्हें क्षण मात्र के लिए ही होता है। इन्दुमती की छबि तिरोहित हो जाने पर अज व्याकुल हो जाते हैं और विलाप करते हैं। नवीं तरंग में युवराज अज इन्दुमती के स्वयंवर में सम्मिलित होने के लिए जाते हैं। मार्ग में उनकी क्रीड़ा एवं प्रियम्वद का शाप से उद्धार करने का वर्णन है। दसवीं तरंग में कवि ने युवराज अज के विदर्भ भ्रमण का विवरण

दिया है। यहाँ कवि पूर्वार्द्ध की समाप्ति कर देता है और उत्तरार्द्ध में पुनः दस तरंगों में आगे की कथा कहता है।

उत्तरार्द्ध की पहली तरंग में इन्दुमती स्वयंवर में युवराज अज को वरण करती है। दूसरी तरंग में स्वयंवर के उत्सव का रोचक वर्णन करते हुए कवि ने महाराज रघु के दूत का अयोध्यापुरी को प्रस्थान दिखाया है। तीसरी तरंग में अयोध्या से बारात का आगमन होता है और इन्दुमती का परिणय अज से हो जाता है। चौथी तरंग में विवाह की धूमधाम तथा इन्दुमती के विदा होने का प्रसंग है। पाँचवीं तरंग में स्वयंवर में पराजित हुए क्रुद्ध राजा लोग युवराज अज से युद्ध करते हैं। छठीं तरंग में उन शत्रु राजाओं को पराजित कर अज का सकुशल अयोध्या पहुँच जाना और वहाँ नव युगल का अभिनन्दन कवि ने दिखाया है। सातवीं तरंग में युवराज अज का राज्याभिषेक करके महाराज रघु वन को प्रस्थान करते हैं। आठवीं तरंग में अज के राज्य का वर्णन एवं उनको पुत्र प्राप्ति का उल्लेख है। नवीं तरंग में अज के पिता महाराज रघु के स्वर्गवास, अज द्वारा मृतक-क्रियाओं का सम्पादन, इन्दुमती के साथ उद्यान में अज का घूमने जाना और वहाँ अकस्मात् सुकुमारी इन्दुमती के पुष्पमाल के छू जाने से दैवात मृत्यु हो जाने के वर्णन के साथ ही कवि ने इन्दुमती के वियोग में राजा अज का हृदय विदारक विलाप प्रस्तुत किया है। दसवीं अन्तिम तरंग में कवि ने कुलगुरु वशिष्ट के तप में आसीन होने के कारण उनके एक शिष्य द्वारा इन्दुमती की अकाल मृत्यु से उद्विग्न राजा अज को उपदेश दिलवाया है। आठ वर्ष काल क्षेपण के बाद अपने पुत्र दशरथ को राज्याभिषेक कर अपनी पत्नी के शोक से निरन्तर अधीर महाराज अज के वैकुण्ठ वास आदि घटनाओं का वर्णन करते हुए शर्मा जी ने अपने काव्य का समापन किया है।

सामान्यतः द्विवेदी युग के काव्यों में स्वदेश प्रेम और राष्ट्रीयता का स्वर मुखर हुआ है, किन्तु इस कृति में ऐसा नहीं है। कवि का उद्देश्य जनता में राष्ट्रीय उद्‌बोधन नहीं भारत के प्रागैतिहासिक राजवैभव, नीति, रामायण से पूर्व के उज्ज्वल राजचरित्रों और सुरुचिपूर्ण वातावरण की झांकी दिखाना प्रतीत होता है। द्विवेदी युग के आरम्भ में ही रचा गया होने के कारण भी लगता है इसमें स्वातन्त्र्य-अर्जन की वह झंकार नहीं आने पाई जो बाद में उस युग की एक सामान्य प्रवृत्ति बन गई। भारतीय संस्कृति को उजागर करने के लिए ही जैसे कवि आरंभ में रघुवंश की महिमा को वर्ण्य विषय बनाकर चला है।

प्रथम तरंग के प्रथम पद में ही कवि का कथन है—

अहह धन्य यदु वंश कहाँ लौं तुव यश गावौं।
करणी तोर अतोल मनन कौं किहि बल आवौं॥
श्रोतन के सन्तोष हेत इक बात सुनावौं।
कहँ समरथ जो देव कृष्ण कौ बल दरसावौं॥

यह यदुवंश की कीर्ति को इतना महान मानता है कि उसे पूर्णतया प्रकट करने में स्वयं को असमर्थ मानता है। काव्य का पर्यवसान शृंगार रस में होता है, अतः अंगी रस शृंगार है। स्वप्न में युवराज अज के इन्दुमती के दर्शन के साथ ही इस कृति में शृंगार का उदय होता है। सुन्दरी इन्दु पर अज की स्वप्न में ही दृष्टि पड़ने का उल्लेख करते हुए कवि लिखता है कि—

पड़ी नृपति की दृष्टि दृगनि चक चौंधा आयौ।
भूलि गयो सब ध्यान ज्ञान निज अंग बिसरायौ॥
मन मन करत विचार रूप सब भाँति मनोहर।
धन्य विधाता तोहि रचे जग महिं अस सुन्दर॥
उत नारिहु की दृष्टि परी रघु सुत के ऊपर।
दृष्टि दृष्टि तें मिलत गिरे मूर्छित अवनी पर॥[1]

स्वयंवर के समय इन्दुमती के रूप का वर्णन करते हुए कवि को समुचित उपमान नहीं मिलते। उसकी नायिका इतनी सुन्दर है कि उपमान उसकी शोभा के सामने निरर्थक प्रतीत होते हैं—

किहि सन उपमा देंउ कहों मैं यदि मृग नयनी।
तोष नहीं चित लहत कहौं मैं यदि गज गमनी॥
उपमा यहू अजोग कहौं मैं यदि पिक बयनी।
कहँ पिक, गज औ हरिन कहाँ यह सुखमा अयनी॥[2]

इन्दुमती के केस, नासिका, मुख, दाँत, अधर, ग्रीवा, कुच, कटि आदि की उपमा देता है[3] और साथ में कहता है—इन सब की उपमा देने से इन्दुमती की क्या बड़ाई होती है—'कहाँ बड़ाई होय' अर्थात् ये सारे उपमान फीके हैं, इन्दुमती के योग्य नहीं। इन्दुमती के अज को जयमाल डालते समय का चित्र कवि ने एक पंक्ति में खींचा है—

---

१. इन्दुमती परिणय—अष्टम तरंग, पृ० ३५।
२. वही, उत्तरार्द्ध प्रथम तरंग, पृ० ५३–५४।
३. वही, पृ० ५८–५९।

'जस चाँदनि चंद मिलत इन्दुमति भेंटी अज को।'

संयोग श्रृंगार का एक और चित्र प्रस्तुत है—

मम दृग चातक भाँति स्वाति अज गौरव बूंदा।
कै चकोर मम नैन चन्द चाहत सुख रूंदा॥[1]

विवाह से एकदम पहिले अज के लिए इन्दुमती कहती है कि मेरे नयन चातक हैं और अज उसके लिये स्वाति की महिमामयी बूंद हैं, मेरे नयन चकोर हैं जो चाँद का सुख चाहते हैं।

विप्रलम्भ श्रृंगार में शर्माजी ने पूर्वराग का हृदय-स्पर्शी वर्णन किया है। स्वप्न-भंग के कारण प्रिया से वियोग होने पर अज अधीर होता है—

नहीं अब नींद हू आवै, दरस प्रिय कौ जौ चख पावै।
कहाँ जाऊँ किसे पूँछू मुझे को हाल बतलावै ?
मनोहर चित्त हरन मूरति कमल नयनी सुभग सूरत।
कहाँ हौ गुप्त हे प्यारी ! यहाँ तव दास अति आरत।[2]

सहयोगी रूप में करुण, रौद्र, वीर, वीभत्स आदि रस भी इस काव्य में प्रतिपादित हुए हैं।

इन्दुमती की दैवात मृत्यु हो जाने पर अज का दारुण विलाप करुण रस का उद्रेक करता है—

हाय प्रिया ! हे प्राण-प्रिया ! तुम क्यों नहीं मो दिशि हेरौ ?
घोर नींद अस क्यों तुम सोई ? कित चलि कियौ बसेरौ ?
हाय वल्लभा ! तुम बिन मोकौं पल हौ मनौ बुगेरौ।
सो तुम बिन मैं आज जियत जिय तजै न क्यों तन मेरौ ?[3]

इन्दुमती-स्वयंवर में हारे राजाओं के अज से युद्ध वर्णन में वीर, रौद्र और वीभत्स रस की निष्पत्ति हुई है।[4] वात्सल्य विरह का भी मार्मिक चित्रण काव्य में उस समय हुआ है जब इन्दुमती विवाह के उपरान्त विदा होती है, वह विचलित होकर कहती है—

आज नहरवा छूट्यौ जात।

---

१. इन्दुमती परिणय–उत्तरार्द्ध, तृतीय तरंग, पृ० ८०।
२. वही, पूर्वार्द्ध, अष्टम तरंग, पृ० ३६।
३. वही, उत्तरार्द्ध, नवम्, तरंग पृ० १३७।
४. इन्दुमती परिणय–उत्तरार्द्ध, पंचम तरंग, पृ० ९५-९६।

कब ह्वै हैं प्रिय बन्धुन दर्शन, चित व्याकुल ह्वै जात।
नीर बिना कहुँ मीनहुँ जीवत, हा ! हा ! मोरे तात ॥[१]

इन्दुमती के पुष्पमाल के छूने भर से उसकी मृत्यु हो जाने में अद्‌भुत रस का संचार होता है, जब कवि कहता है—

निरखत छवि, ह्वै विह्वल, घोर निद्रा बस सोई।
बदन तजी निज कान्ति अंग निज सुखमा गोई ॥[२]

पुष्प-माल की छवि को निरखत ही वह चिर निद्रा में निमग्न हो गई और उसकी कान्ति लुप्त हो गई, इसमें वैचित्र्य है। कहीं-कहीं अनुभावों का अत्यन्त सूक्ष्म चित्रण कवि ने किया है, जैसे जयमाल लिये इन्दुमती बारी-बारी से जब एक-एक राजा को देखती हुई आगे बढ़ती है—सखियाँ भी बढ़ती चलती हैं। अज के पास आकर इन्दुमती ठिठक गई—उसकी सखी आगे बढ़ने को हुई तो—

करि कटाक्ष मृग नयनि कोप युत ताकों बरज्यौं।[३]

भाषा ब्रज है जिसमें यत्रतत्र खड़ी बोली के शब्द भी आ गये हैं, जैसे—'पड़ी नृपति की दृष्टि' (पृ० ३५), 'भ्रमर रंग के केश' (पृ० ५४) आदि। विविध छन्दों, यथा—रोला, शोभन, चान्द्रायण, त्रिभंगी, हरिप्रिया, दंडक, हरिगीतिका, शिखरिणी, दौवे, चतुष्पदा, दोहा, सोरठा आदि का प्रयोग कवि ने किया है। बीच-बीच में लोक रुचि का ध्यान रखते हुए भजन, ठुमरी, सोहर, बधावा आदि विभिन्न राग-रागिनियों के उल्लेख सहित स्वतंत्र रूप में कवि ने प्रस्तुत किये हैं। उदाहरणार्थ राग जयतिश्री में 'जगतपति कहाँ तव ध्यान' सोहर के बोल हैं—

तव-पटरानी ललना जायौ, आई मैं गुन गान।
बरस हजारी राज करै शुभ, जुग जुग जीवै लाल,
प्रजा पालि दुख हरै दुखिन के, सब विधि रहे निहाल ॥[४]

अलंकारों में शर्मा जी ने अर्थालंकारों का ही प्रयोग अधिक किया है, जिनमें उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, सन्देह, प्रतीप, अपह्नुति आदि प्रमुख हैं। 'स्वयंवर सभा' में उपस्थित राजाओं एवं इन्दुमती के रूप-वर्णन में रूढ़

१. इन्दुमती परिणय—उत्तरार्द्ध, चतुर्थ तरंग, पृ० ८९।
२. वही, नवम् तरंग, पृ० १३४।
३. वही, प्रथम तरंग, पृ० ५६।
४. वही, पूर्वार्द्ध, पंचम तरंग, पृ० २१।

उपमानों का प्रयोग विशेष हुआ है। केशों के लिये भ्रमर, नासा के लिये शुक, आनन को अम्बुज, ग्रीवा को कम्बु कहना परम्परागत है।[1] प्रयुक्त अलंकारों के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

उपमा— काहि न खोलत पलक चलहि पूतरि चखु अन्तर,
पद्म पद्मिनी बीच फिरहिं गुंजत जस मधुकर।
अहह भाग कब लखै दंत छबि युत मृदु मुसुकनि,
अरुण पल्लवन माहिं विराजत जस हिम के कन।[2]

सन्देह— दशन दामिनी ज्योति किधौं मोती मानिक सम।[3]

प्रतीप— इन्दुमती छबि पेखि पुष्प निज छबि बिसराई,
अंग मृदुलता निरखि लता मन माहिं लजाई।[4]

दृष्टान्त— राहु ग्रसत जनु चन्द लगति नभ चाँदनि फीकी,
तस मलीन मुख युक्त लसी सुखमा अंग तीकी।[5]

राहु के चन्द्रमा को ग्रस जाने से जैसे नभ में चाँदनी फीकी हो जाती है, उसी प्रकार उसके अंग की सुषमा मुख के मलीन हो जाने से फीकी हो गई है। दृष्टान्त द्वारा कवि ने पुष्पमाल छू जाने से निर्जीव पड़ी देह की स्थिति का सही अधिक से अधिक चित्र प्रस्तुत करने की चेष्टा की है।

पुराणों के अनुसरण पर कुछ असामान्य बातें जैसे जयघोष का आकाश छू लेना, आकाश से पुष्प बरसना आदि भी कवि ने अपनायी है, जैसे—'जय की ध्वनि नभ लौं बढ़ी' (पृ० ८४)। द्विवेदी युगीन काव्य व्यंजक शब्द जैसे अहह, अहा, हाय, हा आदि का प्रयोग भी कवि ने किया है।

जीवन में विसंगतियाँ होती हैं, एक का सुख दूसरे का दुख हो सकता है आदि सार्वजनीन तथ्यों पर भी कवि की दृष्टि गई है।[6] नीतिवादी, उपदेशात्मक और उद्‌बोधक उक्तियाँ कवि की भावधारा को दिग्दर्शित करती हैं, जैसे—

तेहू नाशे काल नस्यौ क्रमशः तिन नामा,

---

१. इन्दुमती परिणय—उत्तरार्द्ध, प्रथम तरंग, पृ० ५४।
२. वही, पूर्वार्द्ध, अ० तरंग, पृ० ४३।
३. वही, उत्तरार्द्ध, प्रथम तरंग, पृ० ५४।
४. वही, उत्तरार्द्ध, नवम् तरंग, पृ० १३३।
५. वही, पृ० १३४।
६. वही, पंचम तरंग, पृ० ९३।

रे मन अजहूँ चेत यही तेरौ परिणामा ।[1]

नियति में भी कवि की आस्था है ।[2] जिस मानव-देह को देवता भी पाने को तरसते हैं, इसे पाकर इसका उचित उपयोग करना चाहिए—

मानुस देह अमोल देव हूँ याको तरसें।
ताहि पाय यह उचित लगावैं चित जन हरि सें ।[3]

अन्तिम पद में हिन्दुओं की इस मान्यता को कि 'स्वर्ग में सुख मिलता है और पहिले मृत्यु को प्राप्त हुए प्रिय से बाद में दिवंगत आत्मा जाकर भेंट करती है', कवि ने अभिव्यक्ति दी है—

तजत देहि झट रघुसुवन पावन तीर्थ प्रभाव,
अमर अंग लहि यान चढ़ि पहुँचे जहँ सुर राव ।
पहिले हू ते अधिक हरि उपवन लीलागार,
कान्तिवती निज प्रिया संग लागे करन बिहार ।[4]

इस प्रकार इस काव्य में कवि ने भारत के गौरवशाली अतीत का भव्य चित्र प्रस्तुत किया है । इसमें भारतेन्दु युगीन परम्परा का आग्रह अधिक है । फिर भी ब्रजभाषा में खड़ी बोली का प्रयोग कर और महाराज अज के उत्तम चरित्र और प्रजापालन की सद्वृत्ति को दिखाकर शर्मा जी ने साहित्य और समाज को प्रेरणा दी ।

**जयद्रथ-वध**

'जयद्रथ-वध' मैथिलीशरण गुप्त का बहुचर्चित खण्डकाव्य है । अतः यहाँ बहुत संक्षेप में इस पर विचार किया जा रहा है । सात सर्गीय इस खण्डकाव्य में जयद्रथ द्वारा अभिमन्यु-वध की महाभारत से उद्धृत प्रख्यात कथा है । कवि ने कथा को अधिक विस्तार नहीं दिया है, अन्य प्रासंगिक कथाएँ भी साथ नहीं चलतीं ।

नायक अर्जुन तथा प्रतिनायक जयद्रथ हैं । अर्जुन में धीरोदात्त नायक के सभी गुण हैं । वह भावुक, वत्सल एवं वीर हैं । उसके माध्यम से कवि ने अन्याय के प्रति रोष और प्रतिकार की भावना को बल दिया है । दुष्ट का

---

१. इन्दुमती परिणय—उत्तरार्द्ध, सप्तम तरंग, पृ० १०८ ।
२. वही, प्रथम तरंग, पृ० ५७ ।
३. वही, सप्तम तरंग, पृ० ११० ।
४. वही, दशम तरंग, पृ० १५५ ।

येन-केन-प्रकारेण नाश करना उचित है, यह उपदेश भी इस कृति में अन्तर्निहित है। न्याय का समर्थन, सत्य का प्रतिपादन एवं शील का निरूपण कवि का अभीष्ट है। प्रथम सर्ग में शृंगार और वीर रस की मार्मिक व्यंजना की गई है। अभिमन्यु के वध से उत्पन्न शोक की परिणति करुण रस में हुई है। इसमें भाव-पक्ष समृद्ध है। कवि ने मार्मिक प्रसंगों को पहिचाना है। वीर और करुण रस उभर कर आये हैं। पति के वध पर उत्तरा का विलाप हृदय द्रावक है। 'हे प्राण! फिर अब किस लिए ठहरे हुए हो तुम अहो।'[1] पाठक को रुला देता है। सहयोगी रूप में शृंगार, रौद्र, वीभत्स, भयानक और शान्त रस भी विद्यमान हैं। गंगा, कैलाश-पर्वत और अर्द्ध रात्रि के प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन प्रभावपूर्ण है।

काव्य की भाषा खड़ी बोली है जिसमें लोकोक्तियों और मुहावरों का बाहुल्य है। यत्रतत्र मुहावरों का तत्समीकरण कवि ने किया है, जैसे आँखों के तारे के लिए दृगों का तारा, धरती फटना के स्थान पर मही फटना आदि। बाल बाँका न होना, मुँह मोड़ना, धैर्य खोना, पत्ता हिलना आदि प्रयोगों ने भाषा के प्रवाह और सहजता में वृद्धि की है। भाषा में देशज प्रयोग, जैसे—धारियो, बिसारियो, भगाईयो, लगाइयो आदि भी हैं। तुक के लिए कहीं-कहीं शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा भी है, जैसे प्रकट का प्रकटित। रौद्र, वीर और वीभत्स का समावेश होने से इसमें ओज गुण व्याप्त है। शृंगार बर्णन में प्रसाद और माधुर्य भी है। अलंकारों का अच्छा प्रयोग है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास, यमक आदि द्विवेदी युगीन सामान्य प्रचलित अलंकारों के अलावा, सन्देह, विशेषोक्ति, अर्थान्तरन्यास, उदाहरण आदि भी प्रयुक्त हैं। हरिगीतिका छन्द ने काव्य को विशेष गति दी है, छन्द भंग नहीं के बराबर है। अधिकतर कवि ने अभिधात्मक शैली में अपनी बात कही है, पर कहीं-कहीं प्रयोजनवती लक्षणा और सारोपा लक्षणा को भी अपनाया है। 'उत्तरा विलाप' में सहचरी और अनुचरी के प्रयोग द्वारा अभिधामूलक शाब्दी व्यंजना का प्रयोग द्रष्टव्य है—

जो सहचरी का पद मुझे तुमने दया कर था दिया,
वह था तुम्हारा इसलिए प्राणेश! तुमने ले लिया।
पर जो तुम्हारी अनुचरी का पुण्य पद मुझको मिला,
है दूर हरना तो उसे, सकता नहीं कोई हिला॥[2]

---

१. जयद्रथ-वध, पृ० २२।
२. जयद्रथ वध, पृ० २३।

इस प्रकार निष्काम कर्त्तव्य, ईश्वर-भक्ति और अपने नियतिवादी एवं आध्यात्मिक दृष्टिकोण को सामने रखते हुए गुप्त जी ने द्विवेदी युगीन वृत्तियों के अनुसार इस पौराणिक आख्यान द्वारा संकल्प शक्ति और साहस द्वारा अन्याय के प्रतिकार का सन्देश दिया है।

**करुणालय**

इसके रचयिता श्री जयशंकर प्रसाद हैं। इस काव्य को कुछ आलोचकों ने गीति नाट्योन्मुख काव्य कहा है, किन्तु नाट्य तत्त्व होते हुए भी इसमें काव्यत्व है और कथा भी है। अतः यह खण्डकाव्य है। ख्यात पौराणिक वृत्त के आधार पर कवि ने इसमें नाटकीय पद्धति से दृश्यों का विभाजन किया है और कथा-वस्तु का आरोह-अवरोह भी उसी क्रम से रखा है। इसमें पाँच दृश्य हैं। यह बिना किसी मंगलाचरण या प्रस्तावना के नाटकीय ढंग से आरम्भ होता है। राजा हरिश्चन्द्र अपने सेनापति ज्योतिष्मान के साथ नौका-विहार कर रहे हैं, अचानक घोर गर्जना होती है। नाव रुक जाती है। आकाशवाणी होती है कि राजा पाखण्डी है जिसने अपने पुत्र की बलि का वचन देकर भी उसका पालन नहीं किया। वरुणदेव राजा से पुत्र बलि का वचन ले लेते हैं, राजा कहता है—

देव ! जन्मदाता हूँ फिर भी अब नहीं,
देर करूँगा, बलि देने में पुत्र की।[1]

दूसरे दृश्य में रोहित वन में घूमते हुए अपने पिता की आज्ञा के प्रति विरोध की भावना प्रकट करता है। यहाँ व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य की भावना को महत्त्व देकर कवि ने अनुचित के प्रति क्रान्ति का संदेश दिया है, यथा—

वरुणदेव हो या कि दैत्य, वह कौन है ?
क्या उसको अधिकार हमारे प्राण पर,
क्या वह इतनी सार्वजनिक सम्पत्ति है,
नहीं, नहीं 'वह मेरा है', वह स्वत्व है।[2]

इसमें धर्म कर्म में इन्द्र और वरुण की परस्पर प्रतिद्वन्द्विता पर कवि ने प्रकाश डाला है। बलि को अमानवीय क्रूरता कहा है और अपरोक्ष रूप में कर्म का संदेश दिया है।

तृतीय सर्ग में अकाल का दृश्य है। मुनि अजीगर्त अपनी पत्नी तारिणी

---

१. करुणालय : प्रसाद, तृतीय संस्करण, सं० २०१८ वि०, पृ० १५।
२. वही, पृ० १७।

की सहमति से अपने पुत्र शुनःशेप को रोहित को सौ गायों के एवज में बेच देते हैं, मुनि का कथन है—

तो मध्यम सुत दे देना स्वीकार है,
बलि देने के लिए एक नर-मेध में।

चौथे दृश्य में रोहित शुनःशेप को अपने पिता हरिश्चन्द्र के सामने नर-बलि देने के लिए प्रस्तुत कर देता है। वशिष्ठ भी इसे मान लेते हैं।

पाँचवें दृश्य में अबोध बालक शुनःशेप राजा हरिश्चन्द्र, वशिष्ठ, रोहित, होता आदि के सामने बलि हेतु यूप से बँधा है। वशिष्ठ पुत्र शक्ति वध कार्य अस्वीकार कर देता है। सौ गायें और लेकर अजीगर्त मुनि शुनःशेप की बलि देने को तैयार हो जाते हैं, तब शुनःशेप अपने पिता के लिए आहत स्वर में कहता है—'हाय! तुम्हारी करुणा को भी क्या हुआ, जो न दिखाती स्नेह पिता का पुत्र से।' वह उस परमेश्वर 'करुणालय' को पुकारता है—

हे हे करुणासिन्धु, नियन्ता विश्व के
त्राहि त्राहि करुणालय, करुणा संग में
रखो, बचा लो, विनती है पद पद्म में।[1]

अचानक विश्वामित्र मुनि आते हैं और इस जघन्य कर्म के लिए वशिष्ठ की भर्त्सना करते हैं। उसी समय सुव्रता आती है, वह बताती है कि वह विश्वामित्र की पत्नी हैं और उसी से यह पुत्र है। विश्वामित्र उसे स्वीकार कर लेते हैं। राजा हरिश्चन्द्र सुव्रता को दासीपन से छुटकारा दे देते हैं। प्रसाद जी यहाँ विश्वामित्र के द्वारा अपनी बात कहते हैं—

क्योंकि अधम है क्रूर आसुरी यह क्रिया
यह न आर्य-पथ है, दुस्तर अपराध है।[2]

'विश्व के आधार' जयगान के साथ ही इस काव्य का अन्त होता है। इस काव्य में संवादों को प्रमुखता मिली है। पर कवि ने वशिष्ठ, विश्वामित्र, अजीगर्त तीनों मुनियों के चरित्रों की वास्तविकता को दिखाकर मुनियों के असली रूप को उजागर किया है। नरबलि का विरोध विश्वामित्र के चरित्र को ऊँचा उठाता है। नायक के रूप में अवश्य रोहित उपस्थित है पर इस काव्य का उद्देश्य शुनःशेप ही सार्थक करता है।

१. करुणालय : प्रसाद, तृतीय संस्करण, सं० २०१८, पृ० २७।
२. वही, पृ० ३२।

द्विवेदी युगीन विशेष प्रवृत्ति उपदेशात्मकता इसमें स्पष्ट परिलक्षित है। कवि ने तत्कालीन समाज में मानवीयता को जगाने की चेष्टा की है—वह उसके गलत काम को धिक्कारता है—

आज प्रलोभन भय तुझसे करवा रहे,
कैसे आसुर कर्म ! अरे तू क्षुद्र है।[1]

यह अहिंसा और सत्य की स्थापना का प्रयत्न है। ईश्वर में आस्था भी इसमें परिलक्षित है—

सम स्वर से सब करो स्तवन, उस देव का
जो परिपालक है इस पूरे विश्व का।[2]

भाषा खड़ी बोली है, किन्तु उसमें अन्य भाषाओं के शब्द भी हैं और तद्‌भव एवं ग्रामीण प्रयोग भी हैं, जैसे—चलें चलो जी, हूजिये, जाके आदि। तत्सम शब्दावली यथा—यूप, स्वर्ण खचिता, पुलिन, तरंगायित, दुस्तर, तिलोदक, मध्यम आदि भाषा को सौष्ठव प्रदान करती है—

चलो सदा चलना ही तुमको श्रेय है,
खड़े रहो मत, कर्म्म-मार्ग विस्तीर्ण है।[3]

चलती हुई भाषा के प्रयोग हैं—

अपनी आवश्यकता का अनुचर बन गया,
रे मनुष्य ! तू कितने नीचे गिर गया।[4]

कुछ व्याकरण की त्रुटियाँ भी मिलती हैं, जैसे—'यह राजा पाखण्ड है,' 'प्रकृति चित्रपट-सा दिखलाती'।

नाटकीयता ने काव्य की गंभीरता को नष्ट किया है। तुकान्तविहीन मात्रिक छन्द में इसकी रचना हुई है जिसमें वाक्य रचना के अनुसार विराम चिह्न दिये गये हैं। उदाहरण स्वरूप यह अंश लिया जा सकता है—

सांध्य नीलिमा फैल रही है, प्रान्त में
सरिता के। निर्मल विधु बिम्ब विकास है,

---

१. करुणालय : प्रसाद, तृतीय संस्करण, पृ० १०
२. वही, द्वितीय संस्करण, पृ० २१।
३. वही, पृ० २५।
४. वही, पृ० २०।

जो नभ में धीरे-धीरे है चढ़ रहा ।
प्रकृति सजाती आगत-पतिका रूप को ।[1]

अलंकारों का अच्छा प्रयोग है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि पर ही विशेष बल है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

अपह्नुति— धूल नहीं यह पैरों में है लग रही।
समझो यही विभूति लिपटती है तुम्हें।[2]

विशेषण विपर्यय— विकल पीड़िता प्राण।[3]

मानवीकरण— मलयानिल अपने हाथों पर है धरे
तुम्हें लिये जाता है अच्छी चाल से।[4]

कुछ सार्वकालिक सत्यों को भी कवि ने अभिव्यक्ति दी है, जैसे—

चलने वाला पीछे को ही छोड़ता
सारी बाधा और आपदा वृन्द को।[5]

इस काव्य का अंगी रस करुण है। वात्सल्य शृंगार के भी दर्शन होते हैं। माधुर्य और प्रसाद गुण हैं। कवि ने एकेश्वरवाद (वरुण की विचारधारा) एवं आत्मवाद ( इन्द्र की वैचारिकता ) का द्वन्द्व दिखाकर मानवीय गुणों को प्रख्यापित किया है। राजकुमार रोहित द्वारा पितृ-आज्ञा पर तर्क-वितर्क कर अपना स्वतंत्र मत स्थापित करना तथा शुनःशेप का अपने पिता की आज्ञा पर आँख मींच कर बलि का विरोध न करना चरित्र विषयक विशेषताओं पर कवि ने मनोवैज्ञानिक रूप से प्रकाश डाला है। इसमें मानवता, दया और परोपकार का स्वर मुखर है। इसमें धर्म के नाम पर होने वाले अत्याचारों की भर्त्सना है। प्रसाद पर बौद्ध धर्म का कितना गहरा प्रभाव था, इसमें इसकी झलक मिलती है।

ऋषि-मुनियों द्वारा नरबलि का विरोध सामने लाकर तत्कालीन परिवर्तित विचारधारा को प्रस्तुत किया कि कहीं-कहीं इतना प्रबल दारिद्र्य था कि जीवन-निर्वाह की व्यवस्था के लिए सन्तान तक बेंच दी जाती थी।

---

१. करुणालय : प्रसाद, द्वितीय संस्करण, पहिला पद, पृ० १।
२. वही, पृ० १९।
३. वही, पृ० २३।
४. वही, पृ० १३।
५. वही, पृ० ८।

इस प्रकार यह खण्डकाव्य कवि के जीवन-दर्शन को प्रकाशित तो करता है, किन्तु परिपक्व रचना नहीं है, इसे प्रयोगात्मक और स्थिति-दिग्दर्शक काव्य कहा जा सकता है ।

**शकुन्तला**

श्री मैथिलीशरण गुप्त कृत खण्डकाव्य 'शकुन्तला' कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' पर आधारित है । पूर्व चर्चित होने के कारण यहाँ संक्षेप में ही इसका विवेचन किया जा रहा है । महाभारत में वर्णित राजा दुष्यन्त और अप्सरा मेनका की कन्या शकुन्तला की प्रख्यात कथा इसका उपजीव्य है । दस शीर्षकों में विभाजित इस काव्य की कथावस्तु में क्रमिक विकास और संगठन का पर्याप्त निर्वाह न होने के कारण कुछ विद्वान इसे मात्र पद्यात्मक प्रबन्ध ही मानते हैं । इसमें भारतीय नारी की सांस्कृतिक चेतना का भव्य दर्शन होता है । नारी की मर्यादा, ममता, दया, करुणा, क्षमाशीलता, कर्त्तव्यनिष्ठा एवं पातिव्रत्य को अपनी वैचारिक भूमि पर कवि ने सिद्ध किया है । मानव-मन की मूल प्रवृत्ति प्रेम की, मनोवैज्ञानिक आधार पर अभिव्यंजना, एक पौराणिक अन्तर्कथा के उद्घाटन द्वारा मानवीय अनुभूतियों और संस्कारों तथा नारी के उज्ज्वल पक्ष का प्रस्तुतीकरण इस काव्य का उद्देश्य है ।

प्रेम-व्यंजना से ओत-प्रोत इस काव्य का प्रमुख रस शृंगार है । संयोग-शृंगार, वियोग-शृंगार एवं वात्सल्य-जनित विरह के मर्मस्पर्शी चित्र कवि ने खींचे हैं । विदा सर्ग में ऋषि कण्व का वात्सल्यजन्य विरह द्रष्टव्य है—

वेदी खुदती देख हरिण शृंगों के मारे—
बेटी, कह कर किसे बुलाऊँगा मैं द्वारे ।[1]

माधुर्य और प्रसाद गुण से पूरा काव्य सराबोर है । द्विवेदी युग में शृंगार का वर्णन जिस मर्यादित ढंग से किया गया, वही इसमें रूप-वर्णन में भी है । एक उदाहरण प्रस्तुत है—

थे चांचल्य विहीन लोचन खुले सौन्दर्य के सद्म यों—
पीते थे मकरन्द भृंग सुख से पाके खिल पद्म ज्यों ।
था ऐसा वपु बन्दनीय उसका स्वर्गीय शोभा-सना—
मानो लेकर सार भाग शशि का हो भार-द्वारा बना ।[2]

---

१. शकुन्तला—तेरहवाँ संस्करण, पृ० २६ ।
२. वही, पृ० २० ।

'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' की तरह श्रृंगार के वर्णन में गुप्तजी मुखर न होकर दो पंक्तियों में किनारा कर गये हैं, यथा—

> कार्म्य-कथन-सा दृश्य किया जा सकता कैसे ?
> समझेंगे बस वही मिलें जो सहसा ऐसे ।[1]

काव्य की भाषा सौष्ठव युक्त सरस और परिमार्जित खड़ी बोली है जिसमें ब्रजभाषा का पुट भी यत्र-तत्र है। कवि ने गागर में सागर भरा है। अभिधात्मक शैली में कहीं-कहीं भाषा तत्सम शब्दावली से बोझिल भी हो गई है।[2] साथ ही ग्राम्य स्पर्श भी उसमें है।[3] असहज और जिसे भद्दी तुक भी कहा जा सकता है, ऐसे कुछ प्रयोग जैसे कुड़क कर, घुड़ककर[4] आदि भी यत्र-तत्र आ गये हैं। मुहावरे जैसे—छाती फटना, दोष मन में लाना, डेरे डालना, कुछ का कुछ होना आदि भी अपने सहज रूप में प्रयुक्त हुए हैं। अलंकारों में अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, सन्देह, भ्रान्तिमान, विभावना, स्वाभावोक्ति आदि का सुन्दर प्रयोग हुआ है। इस काव्य में कवि की संवाद-पटुता भी मिलती है।[5]

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि शकुन्तला के पदों में कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' के श्लोकों का अनुवाद सा प्रतीत होता है, जैसे—

> घट वहन से स्कंध नत थे और करतल लाल,
> उठ रहा था श्वास-गति से वक्ष देश विशाल।
> श्रवण पुष्प परिग्रही था स्वेद-सीकर-जाल,
> एक कर से थी संभाले, मुक्त-काले बाल।[6]

> स्त्रतांसावतिमात्र लोहित तलौ बाहू घटोत्क्षेपणा-
> दद्यापि स्तनवेपथुं जनयति श्वासः प्रमाणाधिकः।
> स्त्रस्तं कर्णशिरीषरोधि वदने धर्मम्मसां जाल कं,
> कन्धे स्त्रंसिनि चैक हस्तयमिताः पर्याकुलाः मूर्द्धजा ॥[7]

---

१. शकुन्तला—तेरहवाँ संस्करण, पृ० १६।
२. वही, पृ० २८।
३. वही, पृ० ३१।
४. वही, पृ० ४५।
५. वही, पृ० ४७।
६. वही, पृ० १०।
७. अभिज्ञान शाकुन्तलम, अंक १, श्लोक ३२।

इस प्रकार का भावानुवाद या भाव साम्य कई स्थलों पर है, जैसे शकुन्तला में अभिशाप सर्ग में पृष्ठ १९ (नवम् आवृत्ति) पर दुर्वासा का कथन—'चिन्ता में—तज्यो' कालिदास के अंक चार, श्लोक 'विचिन्तयन्ती—कृतामित्र' में भाव साम्य है। कहीं-कहीं दोनों में शब्द साम्य भी है, जैसे—

मुक्त है सर्वत्र ही भवितव्यता का द्वार।[1]
भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र।[2]

कालिदास से साम्य होने पर भी स्वतन्त्र रूप में इसका अपना महत्त्व है। 'शकुन्तला' द्विवेदी युग की उन रचनाओं में से है जिन्होंने खड़ी बोली के परिष्कार में बहुत योगदान दिया।

**पतिव्रतादर्श**

'पतिव्रतादर्श' श्री रामशरण लाल गोविल जिन्होंने साहित्य रचना रामशरण गुप्त 'शरण' के नाम से की, का लिखा हुआ है। यह पौराणिक आख्यान पर आधारित खण्डकाव्य है जो पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दो खण्डों में कुछ वर्ष के अन्तराल से प्रकाशित हुआ। इसमें निषध के राजा नल और उनकी पतिव्रता रानी दमयन्ती की कथा है। पूर्वार्द्ध की कथा इस प्रकार है—

राजा भीमसेन की पुत्री दमयन्ती का विवाह निषध (वर्तमान कुमायू प्रदेश) के राजा वीरसेन के पुत्र नल के साथ सोल्लास सम्पन्न हुआ था। बारह वर्ष तक उन्होंने सुखद दाम्पत्य और राजसुख भोगा। राजा नल जुए के शौकीन थे। उनका छोटा भाई पुष्कर उनकी समृद्धि से ईर्ष्या करता था। एक दिन पुष्कर के साथ जुए में वे अपना समस्त राजपाट हार गये। दमयन्ती ने अपने पुत्र और पुत्री दोनों को ननिहाल भेज दिया। स्वयं राजा नल के साथ राज्य छोड़कर वन को चल दी। वन में राजा नल ने दमयन्ती को भी अपने मायके जाने को कहा पर वह तैयार नहीं हुई। इस पर नल जी कड़ा करके उसे सोती छोड़कर चले गये—यह सोचकर कि मुझे न पाकर यह अपने पिता के घर चली ही जायगी। आँख खुलने पर रानी दमयन्ती नल को न पा बहुत दुःखी हुई। जंगल में उसे एक अजगर जिस समय निगलने ही जा रहा था कि एक बहेलिए ने उसे तीर मार कर दमयन्ती की जान बचाई, पर थोड़ी देर में वह बहेलिया दमयन्ती के साथ बलात्कार पर उतर आया। दमयन्ती ने आर्त स्वर से भगवान् को पुकारा। बहेलिये का स्वयं का वार

१. शकुन्तला—तेरहवाँ संस्करण, पृ० ९।
२. अभिज्ञान शाकुन्तलम्, अंक १, श्लोक १६।

उसे लग गया और वह मर गया। आगे जाने पर दमयन्ती को कुछ बनजारे मिले जो उस पर तरस खाकर अपने साथ उसे नदी के पार ले गये, पर वहाँ कुछ हाथियों ने उत्पात मचाकर संकट उपस्थित कर दिया। वे लोग उसे अभागिनी समझकर उसे वहीं सोती छोड़कर भाग गये। जब दमयन्ती की आँख खुली तो उसने अपने सामने अश्व पकड़े एक नरपति को खड़े देखा जिसने उसे बहिन कहकर आश्वस्त किया, वह उस नरपति चेदिराज के साथ नगर को चली गई जहाँ राजा की माता ने उसे अपनी बेटी की तरह रखा और वह वहाँ मायके की तरह चेदिराज की बहिन सुनन्दा के साथ रहने लगी।

उत्तरार्द्ध की कथा—उत्तरार्द्ध के आरम्भ में कवि ने राजा नल को अपनी दशा पर सोच करते दिखाया है। वे दमयन्ती के विरह में विदग्ध हैं। जंगल में आग लग जाती है। आग से वे एक नाग को बचाते हैं, वह उन्हें ही लिपट कर डस लेता है, उनकी सारी देह काली पड़ जाती है। वे फिर भिक्षुक रूप में दमयन्ती को पाने की आशा में जंगल-जंगल घूमते हैं। एक दिन उनका पुराना रथ-चालक वार्ष्णेय मिल जाता है, वह उन्हें बिना पहिचाने उनकी दशा पर तरस खाकर उन्हें अयोध्या ले आता है। विरह विदग्धा दमयन्ती चेदिराज के यहाँ नल के दर्शन की आशा में साधु-सन्तों को भोजन बाँटने लगी। एक दिन एक वृद्ध ने उसे पहिचाना (बिन्दी के जन्मजात चिह्न से) चेदिराज की माँ दमयन्ती की मौसी ही थीं। उन्होंने दमयन्ती को उसके मायके कुण्डिनपुर भिजवा दिया। वहाँ पहुँच उसने नल की खोज में चर भेजे। एक दिन एक चर ने सूचना दी कि अवध के राजभवन में वाहन का वाहक बाहुक दमयन्ती की बात सुनकर रोने लगा। दमयन्ती को सन्देह हुआ, उसने अपने स्वयंवर का झूठा समाचार भेजकर अवध के राजा ऋतुपर्ण को अगले दिन ही बुलवाया। नल बहुत अच्छे रथवान थे, उनके सिवा कोई इतनी जल्दी अवध से रथ लेकर कुण्डिनपुर नहीं पहुँच सकता था। जब राजा को बाहुक वहाँ अगले दिन ले आया तो दमयन्ती ने दासी द्वारा पुत्र को वहाँ भेजा। बाहुक के रंग ढंग से पता चल गया कि वह राजा नल हैं। दमयन्ती ने अपनी स्वयंवर की चाल नल को बता दी कि उसे पहचानने की वजह से यह झूठ बोला गया था। नल दमयन्ती का मिलन हो गया। पुष्कर को जुए में फिर हराकर उन्होंने अपना राजपाट प्राप्त कर लिया और सुख से राज्य करने लगे।

इसके उत्तरार्द्ध खण्ड की कथा—(१) रूप विचार, (२) अयोध्या-प्रवास, (३) विरहिणी का चित्र, (४) बिन्दु वर्णन, (५) नल की खोज, (६) स्वयंवर

सन्देश, (७) प्रेम प्रभाव, (८) उपसंहार शीर्षकों में विभाजित है।

द्विवेदी युगीन अन्य कवियों की भाँति 'शरण' जी ने भी एक आदर्श कथानक चुना है जो सामान्य जन को कर्तव्य ज्ञान और सीख दे सके। उन्होंने भूमिका में स्वयं लिखा है—

'अपने पूर्वजों की कीर्ति ही हमको ऊँचा उठा सकती है। दमयन्ती के पतिव्रत पर अनेक पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं—इसका पठन-पाठन, आबाल-वृद्ध सबको, वे चाहे स्त्री हों या पुरुष अत्यन्त ही लाभ पहुँचायेगा, इसमें मुझे रत्ती भर भी सन्देह नहीं है।' विषय प्रवेश के तीसरे छन्द में भी स्वदेश प्रेम और राष्ट्रोत्थान की यही भावना है—

किन्तु स्वदेशोत्थान और निज जाति बड़ाई—
है मेरा उद्देश्य, इसी से हुई ढिठाई।
बस जिससे जब जैसे बने, भारत भ्रात ! उठाइये।
इस 'दमयन्ती' औ 'शरण' को यही समझ अपनाइये।

बीच में भी एक स्थान पर कवि ने फिर इसी बात को लिखा है—

भारत-यश-उद्यान-प्रपोषक-सुखद लताओ,
पातिव्रत की प्रबल प्रभा को जगत जताओ।
ज्यों भारतीय रवि रश्मि का पुनि संसार प्रसार हो,
हाँ शरण कहो वह सत्कथा-सुख सुबुद्धि संचार हो।[1]

इसी के अनुसार स्थान-स्थान पर नीति, आदर्श और उपदेश को समेटता कथानक प्रभावशाली ढंग से विकसित होता चला है। कथा में तारतम्य एवं रोचकता है। भारतीय काम-शास्त्र में निहित कथावस्तु की पाँचों कार्यावस्थाओं का निर्वाह कवि ने किया है।

परम्परागत 'ईश वन्दना' से काव्य का आरम्भ हुआ है। विष्णु, शिव, राम, सरस्वती, गणेश सभी की वन्दना कवि ने की है।[2]

इस काव्य का अंगी रस शृंगार है। वियोग शृंगार का अच्छा परिपाक हुआ है। यथा—

प्राणनाथ ! वह अटल प्रतिज्ञा सप्तपदी की—
विस्मृत क्यों हो गई ? चूक क्या है दासी की ?

---

१. प्रतिव्रतादर्श—पद ५३, पृ० २७।
२. वही, पद १, २, पृ० १।

जिस पर रखते हाथ, नाथ ! निशि राजसदन में
'भीरु प्रिया' क्यों वही तजी हा निर्जन बन में ?[१]

प्रवासी नल आलम्बन, विलाप अनुभाव, स्मृतियाँ, निर्जन वन उद्दीपन, आवेग, विषाद, मोह आदि संचारी भाव हैं।

वह सुन्दरि तन छीन, दीन, जलहीन, मीनवत—
तरफरात जब लखी-रुके नभ में पारावत।[२]

× × ×

बन बन खोजति फिरति, सघन तिमिरावृत मग में
कंकर, कंटक, कुशा, कुचरते, कोमल पग में।[३]

दमयन्ती का मछली की भाँति नल के विरह में तड़पना, कंकड़ों और काँटों से भरे रास्तों में अपने प्रिय की खोज में भटकना उसकी विरह वेदना को प्रकट करता है।

दमयन्ती को देखकर चेदिराज की माँ के मन में सहज वात्सल्य उमड़ पड़ता है, यथा—

अश्रु पोंछकर, खड़ी सुनन्दा देख वहाँ पर
वृद्धा बोली गद्‌गद हो 'आ पुत्रि ! अंक भर।'[४]

× × ×

युग सहोदरा खेलो अजिर, रुचिर युगल लतिका मिलो,
सुख-सुरभित नित प्रासाद हो, प्रेम प्रसून द्वय खिलो।[५]

रचना में व्याप्त प्रसाद और माधुर्य गुण काव्य के सौंदर्य में वृद्धि कर देते हैं। बेटी को छाती से लगाकर उसकी आँसू भरी आँखों को पोंछना वात्सल्य रस का उद्रेक करता है—

सचमुच माता हृदय कमल से उस युवती को
चिपटाकर मुख पोंछ रही थी वह धरती को
थी देख रही, दृग से बही धार मही पर, और सब
चुपचाप चित्र से थे खड़े, स्वर्ग बना वह ठौर सब।

---

१. पतिव्रतादर्श–पद ३१, पृ० १६।
२. वही, पद ३३, पृ० १७।
३. वही, पद ३४, पृ० १७।
४. वही, पद १०७, पृ० ४९।
५. वही, पद १०८, पृ० ४९।

भूखी प्यासी वन में मारी-मारी फिरती विरह विदग्धा कोमलांगी दमयन्ती का चित्र कवि ने प्रस्तुत किया है—

तीन दिवस तक हा ! पानी भी हाथ न आया।
क्षुधा तृषा से क्षीण हुई वह कोमल काया।[1]

दमयन्ती के वियोग में नल का विलाप भी अत्यन्त मार्मिक है—

प्राण प्रिये ! मम हिये नित्य तुम वास किये हो,
होता उर न विदीर्ण, क्योंकि सुख-आश दिये हो।
पर बिन देखे दर्श, दुखी दृग द्रवते दर दर—
व्यर्थ हुई हा दृष्टि, सृष्टि सब रही तिमिर भर।
सब समझ बूझ जाती रही,
नहीं सूझता पन्थ भी—
भगवन्त ! दुःख वा देह का,
नहीं कहीं क्या अन्त भी।[2]

प्रकृति के दृश्यों पर भी कवि की दृष्टि गई है, किन्तु प्रकृति के प्रस्तुत दृश्यों की अपेक्षा उनके अप्रस्तुतों की योजना में उसका मन विशेष रमा है—

क्रमशः बीती निशा उषा की वेला आई,
गगन फिरी तिमिरारि, भानु की राज दुहाई।
शुभ स्वर्ण पताका विजय की नभ में थी फहरा रही,
वा प्रकृति पीतपट पहनती, पपी पूजते जा रही।[3]
अथवा प्राची दिशा देखकर रबि को आता,
हर्षोत्फुल्लित हुई, अतः मुख रक्त दिखाता।[4]

पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दोनों में 'शरण' जी ने षटपदी छन्द का प्रयोग किया है। चौबीस मात्राओं के प्रथम चार पद रोला छन्द के और अट्ठाइस मात्राओं के दो पद उल्लाला छन्द के प्रयोग करते हुए यह षटपदी छन्द चला है। छन्द भंग नहीं के बराबर है।

'पतिव्रतादर्श' की भाषा खड़ी बोली है जिसमें ब्रज के शब्द सम्मिलित हो गये हैं। उदाहरणार्थ—

---

१. पतिव्रतादर्श—उत्तरार्द्ध, पद १२, पृ० ६।
२. वही, छन्द ११५, पृ० ३।
३. वही, पद ७६, पृ० ३७।
४. वही, पद ७७, पृ० ३७।

पति दर्शन हित अमित विपति सहती रोती पुनि
जो साँचौ मम नेह, मिलहिं पति अस हिय में गुनि
बन बन खोजति फिरति, सघन तिमिरावृत मग में,
कंकर, कंटक, कुशा, कुचरते कोमल पग में।[1]

बीस वर्षीय अल्पायु में कवि ने स्वयं भूमिका में लिखा है कि प्रारम्भ में मेरी योग्यता अब से बहुत कम थी, इसीलिए अनेक स्थानों पर ब्रजभाषा और खड़ी बोली की खिचड़ी हो गयी है। उर्दू के शब्द जैसे गुल, महलात तथा अंग्रेजी के जैसे हौविटज़र आदि का प्रयोग भी किया है। भाषा उत्तरोत्तर सुधरती गई है और अन्त तक आते-आते भाषा में काफी परिमार्जन आया है। कवि का शब्द ज्ञान अच्छा है, साथ ही क्लिष्ट शब्दावली का प्रयोग कर पांडित्य के प्रदर्शन की भावना जो उस समय के प्रायः सभी कवियों में मिलती है, 'शरण' जी में भी है जिससे कहीं-कहीं दुरूह भाषा के जाल में भाव उलझ कर रह जाता है, उदाहरण स्वरूप—

वृद्ध विरागी वेष, एक जन बोला तरुतर
अद्रि देव ज्यों स्वयं प्रश्न का देते उत्तर–
अबले ! क्यों संताप विवश यों तापित होती
पति-वियोग आतुरी चातुरी क्या सब खोती
यह सुखच दुःख भ्रमते हुए, चक्र, बक्र, भव-यान के
है 'शरण' कदापि न सालते यदि चख चसमा ज्ञान के।[2]

कवि को स्वयं यह भान है कि भाषा क्लिष्ट है, अतः उसने सभी क्लिष्ट शब्दों के साथ नीचे उनका अर्थ भी दिया है। 'ईश विनयाष्टक' के आरम्भ के दो छन्द कवि ने नितान्त संस्कृत में ही लिखे हैं[3] जो उसकी विद्वता के परिचायक हैं।

द्विवेदी युगीन प्रवृत्ति के अनुसार कवि ने सम्बोधन शैली का प्रयोग किया है और मात्राओं की पूर्ति के लिये कहीं-कहीं शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा भी है, जैसे–नाथ का नाथा, पति का पती, तुम्हारे का तुम्हरे, कठिन का कठिना, गला का गल आदि। हाय, हा, रे, अरे, अहो, वत्स, मम आदि का प्रयोग भी तत्कालीन प्रभाव के अनुसार किया है।

---

१. पतिव्रतादर्श–पद ३४, पृ० १७।
२. वही, पद ६०, पृ० ३०।
३. वही, पद ४३, ४४, पृ० २१-२२।

बोया वृक्ष बबूल, आम्रफल क्योंकर चखते।[१]
कर कंगन, आरसी नहीं—प्रत्यक्ष देखिये[२]

आदि कहावतों और तमाचा मारना, लदर-पदर भागना, चित्र से खड़े होना आदि मुहावरों का प्रयोग भी हुआ है। शब्दों के कुछ ग्रामीण प्रयोग जैसे—टिल्लाते आदि और तद्भव शब्द जैसे—छीन (क्षीण), बिहूलसी (विह्वल सी), अवशि (अवश्य) आदि को भी काव्य में स्थान मिला है।

'शरण' जी की प्रवृत्ति अलंकारों में विशेष रमी है। अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा, भ्रान्तिमान, मानवीकरण आदि अलंकारों का अच्छा प्रयोग कवि ने किया है जो निम्न उदाहरणों से स्पष्ट है—

अनुप्रास— नल था गुणनिधि भूप—किन्तु यह दोष बड़ा था—
पासे परम पिशाच प्रबल पल्ला पकड़ा था।[3]
चला चली में चित्त-चपल चंचल चोरी से—
वहीं रह गया, गया न नल संग बरजोरी से।[४]

उत्प्रेक्षा— चली चारु चख चपल चहूँधा चकित चलाती,
मानो मनसिज मीन युगल जल खोज लगाती।[५]

संदेह— वा जल में रवि-संचार हित, अरुण वरुण से लड़ रहा,
था अथवा वाड़व वारि में, वायु वेग से बढ़ रहा।[६]

उपमा— बैठी थी, था केशपाश पर सव्येतर कर
यथा प्रफुल्लित पद्म पड़ा हो पुष्पलिहों पर।[७]

कुछ नये उपमान अवश्य लिये हैं पर वे सुरुचिपूर्ण न होने से रस भंग ही करते हैं—

था नीरव केवल हृदय वह द्रुत-गति से अति धड़कता,
है यथा क्लांकथकुण्डल कभी कड़ी कूक से कड़कता।[८]

---

१. पतिव्रतादर्श—पद ३०, पृ० १५।
२. वही, पद १०५, पृ० ४८।
३. वही, पूर्वार्द्ध, पद ९, पृ० ५।
४. वही, पद २३, पृ० १२।
५. वही, पद ५८, पृ० २९।
६. वही, पद ७७, पृ० ३७।
७. वही, पद ८७, पृ० ४१।
८. वही, पद ८७, पृ० ४१।

यहाँ घड़ी के कुण्डल की कूक कोई अच्छा चित्र उपस्थित नहीं करती।

'पतिव्रतादर्श' में भाग्यवाद,[1] कुरीतियों की भर्त्सना,[2] राष्ट्र प्रेम,[3] ईश्वर में आस्था एवं भक्ति[4] आदि विचारधाराओं का समावेश तत्कालीन युगीन प्रभावों और कवि की अपनी मान्यताओं का प्रतिफल ज्ञात होता है। नारी के प्रति कवि की भावना है—

नारी चित्र समुद्र छुद्र नर क्या पहिचाने।
मन्मथ माया मूर्ति! मनुज मनुजाद न माने।।
नारी-निन्दक! शान्त! नारि नर की जननी है,
सेवा प्रेमात्सर्ग भाव से नारि बनी है।[5]

सौंदर्य-वर्णन में कवि ने परम्परागत उपमानों का ही प्रयोग प्रायः किया है।[6] इस काव्य को आद्यन्त पढ़ने पर ऐसा लगता है कि कवि में अनुभूति की तीव्रता तो है किन्तु अपना रचना-कौशल दिखाने की ललक भी है, इसी व्यामोह ने कहीं-कहीं उसके काव्य के प्रभाव को शिथिल किया है। पूर्वार्द्ध से उत्तरार्द्ध की भाषा में अधिक निखार है। इस खण्ड में तद्भव शब्द नहीं के बराबर हैं।

कवि ने उत्तरार्द्ध में भी भारत में धर्माचार और प्रजा सेवी राजाओं के आविर्भाव की कामना की है,[7] जैसा कि काव्य का शीर्षक है, कवि ने पातिव्रत्य पर विशेष बल दिया है। अन्त में भी उसने प्रभु से प्रार्थना की है—

हों ललनाएं करुणामयी,
सभी सुनन्दा सी यहाँ।
आदर्श पतिव्रत का बढ़े,
दमयन्ती जन्मी जहाँ।[8]

---

१. पतिव्रतादर्श—पद १२, पृ० ६।
२. वही, पद १० पृ० ५।
३. वही, पद ३, पृ० २।
४. वही, पद ३६, पृ० १८।
५. वही, उत्तरार्द्ध, पद १८३, पृ० ३७।
६. वही, पद १०१, पृ० ४६।
७. वही, पद १३५, पृ० १३।
८. वही, पद १९९, पृ० ४५।

अन्तिम दो सौवें पद में कवि ने युगीन प्रवृत्ति के अनुसार ही अपना परिचय देते हुए उत्तरार्द्ध की समाप्ति की है। आदर्श और उपदेश-परक यह खण्डकाव्य द्विवेदी युग की एक उत्कृष्ट कृति है जिसने खड़ी बोली के विकास में योगदान दिया।

**उषा-हरण**

श्री रामदत्त राय शर्मा रचित 'उषा-हरण' पौराणिक आख्यान पर आधारित ब्रजभाषा में लिखा हुआ एक सुन्दर प्रबन्ध है। कवि ने स्वयं प्रस्तावना में लिखा है—

प्रेरति ऊषा-प्रेम मति, विवश करति गुण-गान।
पतिव्रत भूषित विमल तेहि, यह प्रबंध मम जान।

इसमें उषा और अनिरुद्ध के प्रेम की कथा है जो पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दो खण्डों में की गई है। बाणासुर की पुत्री उषा जगज्जननी पार्वती से विद्या प्राप्त करने पहुँची। वहाँ उसने पार्वती जी को शिव के साथ जब विहार करते देखा तो उसके मन में भी अपने पति के साथ इसी प्रकार विहार करने की इच्छा जाग्रत हुई। भवानी ने उसके मनोभाव जानकर उसे वरदान दिया कि उसका पति उसे स्वप्न में दिखलाई देगा और वह उसे ढुँढ़वाकर उसके साथ विहार कर सकेगी। घर लौटकर उषा एक दिन पार्वती-प्रदत्त इसी वरदान के विषय में सोच रही थी कि उसे नींद आ गई और उसने स्वप्न में देखा कि एक अति सुन्दर नवयुवक उसका हाथ पकड़ उसके साथ प्रेमालाप करने लगा है। उषा के लज्जा करने पर उसने विविध प्रेमालाप द्वारा उसका संकोच दूर कर दिया। उषा विभोर हो गई और उसी प्रेम जन्य मुग्धावस्था में उसने अपने प्रियतम अनिरुद्ध को प्यार करना चाहा कि उसकी निद्रा भंग हो गई। उसने देखा कि अपनी सेज पर वह अकेली थी। अनिरुद्ध की छवि और प्रेमालाप की सुधि में विरहाकुल वह अधीर हो उठी। उसकी असह्य व्यथा देखकर उसकी अंतरंग सखी, बाणासुर के सचिव की कन्या चित्ररेखा ने जोर देकर उससे इसका कारण पूछा। सखी से अपना प्रेम छिपाना उचित न समझकर उषा ने उसे अनिरुद्ध से अपने प्रेम के विषय में सारी बात बता दी और कहा कि जिसे मैंने स्वप्न में अपना पति मान लिया है, अब उसके सिवा किसी से परिणय नहीं कर सकती। जिससे उषा ने प्यार किया, उसकी छवि के अतिरिक्त उषा को उसके नाम और ठिकाने का कोई ज्ञान न था। चित्ररेखा ने अपने चित्रकला-

नैपुण्य का उपयोग यहाँ किया और त्रैलोक्य के समस्त सुन्दर राजकुमारों का चित्र अंकित कर उसे अपने प्रियतम को पहिचान लेने को कहा। उषा ने सूरत पहिचानी तो चित्ररेखा ने बताया कि उसका प्रिय यदुवंशावतंश भगवान कृष्ण का पौत्र अनिरुद्ध है। वे द्वारिकापुरी में रहते हैं जिसका रक्षा सदा चक्रसुदर्शन करता है और वहाँ प्रविष्ट होने की सामर्थ्य किसी में भी नहीं है। उषा के उदास होने पर चित्ररेखा ने उसे सान्त्वना दी और अपने इष्टदेव का ध्यान करके वह द्वारिकापुरी गई और अनिरुद्ध को पलंग सहित उसी रात उषा के पास पहुँचा दिया। दोनों का मिलन हुआ और दोनों ने गन्धर्व विवाह कर लिया। जब यह बात उषा के पिता बाणासुर को ज्ञात हुई तो उसने अपनी सेना द्वारा उषा का महल घेर लिया। अनिरुद्ध और बाणासुर का घोर संग्राम हुआ और अन्त में ब्रह्मशर चलाकर बाणासुर ने अनिरुद्ध को बांध लिया। यहीं इस काव्य का पूर्वार्द्ध समाप्त होता है।

उत्तरार्द्ध खण्ड में उषा और अनिरुद्ध के वियोग का वर्णन है, जिसमें अपने पौत्र अनिरुद्ध के ब्रह्मशर से बाँधे जाने का समाचार नारद मुनि द्वारा जब कृष्ण को मिला तो उन्होंने यादव सेना के साथ बाणासुर की राजधानी शोणितपुर पर चढ़ाई कर दी। जैसा कि शिव ने बाणासुर से उस समय कहा था—जब वह वरदान के बाद स्वयं शिव से ही युद्ध करने को या उनके द्वारा बताए किसी सुभट से युद्ध करने को अधीर हो रहा था कि जब कृष्ण अवतार लेंगे तो तुम्हारी सहस्र भुजाओं के बल का भार वे हरण करेंगे—इस समय बाणासुर और श्रीकृष्ण का घमासान युद्ध हुआ।

युद्ध में शंकर ने अपने भक्त बाणासुर की सहायता की। श्रीकृष्ण ने अपने सुदर्शन चक्र से बाणासुर की चार भुजाएँ छोड़कर बाकी सारी भुजाएँ काट डालीं और भगवान् कृष्ण की विजय हुई। भगवान् भूतनाथ ने अपने भक्त बाणासुर के समस्त अपराध श्रीकृष्ण से क्षमा कराये और बाणासुर ने बहुत अनुनय विनय कर उषा का विवाह अनिरुद्ध से कर दिया।

'उषा-हरण' खण्डकाव्य का आधार श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध का प्रख्यात कथानक है। कवि ने अपनी ओर से एकाध स्थान पर नवीन उद्भावना कथा में की है और उसे अपने ढंग से संजोया है, जैसे—चित्ररेखा को सचिव-सुता बताना और उसका चील रूप धर कर अनिरुद्ध की खोज में जाना और

उसे ढूँढ़कर लाने का प्रयत्न करना। नारद का मिलना और उनके युक्ति बताने पर साधु का वेश धारण कर पुरी में प्रवेश करना।

कथानक सुगुम्फित है—निरन्तर क्रम बद्धता और रोचकता कहीं खंडित नहीं हुई है। प्रारम्भ में उषा द्वारा स्वप्न में अपने प्रिय के दर्शन हैं, फिर उसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न है। सखी के प्रयास द्वारा प्राप्त्याशा है और भगवान कृष्ण की सहायता से युद्ध में विजय नियताप्ति है। वाणासुर द्वारा अनिरुद्ध के साथ उषा का विवाह किया जाना फलागम है। इस प्रकार कवि ने कथावस्तु की कार्यावस्थाओं का समीचीन निर्वाह किया है।

रचना का उद्देश्य नैतिक आदर्श और सात्विक प्रेम की अभिव्यक्ति है। कवि ने भूमिका में स्वयं लिखा है—'यह पुस्तक रचने की हमारी आन्तरिक मनोकामना यही है कि युवक तथा युवतियाँ इसे पढ़ विमल गंगाजल रूपी दम्पत्ति प्रेम से समस्त दूषित भावों को हृदय से धोकर एक दूसरे की मूर्ति स्थापित करें और अपने गार्हस्थ्य जीवन का आनन्दोपभोग करें।' हिन्दू गार्हस्थ्य जीवन के माहात्म्य, पति-पत्नी के प्रेम के सात्विक आदर्श प्रेम का उद्घाटन और चित्रण कवि ने इस कथा के माध्यम से किया है। प्रस्तावना छन्दोबद्ध है जिसमें लेखक ने आत्महीनताद्योतन की परम्परा का निर्वाह किया है—

हौं मतिमन्द गँवार अति नहिं कछु काव्य हुं स्थान,
पुनि किमि रचना सुभग मम, सुजन करहु अनुमान।

काव्य का प्रारम्भ शिव-शिवा-वन्दना से होता है। वाणासुर शिव से वरदान माँगता है—

'अजय अमर रणदेव सबै जग होऊँ अति बलमाना।'

'उषाहरण' का अंगीरस श्रृंगार है। कवि ने भूमिका में स्वयं माना है—'इसमें श्रृंगार की भरमार है किन्तु युवावस्था में चित्र श्रृंगारोपासक हो ही जाता है—श्रृंगार काव्य का प्रधान अंग है किन्तु उसे सात्विक प्रेममय होना चाहिए।'

'उषाहरण' में काव्य की सात्विक प्रेम निरूपित धारा निरन्तर प्रवहमान है। रूप वर्णन का यह दृष्टान्त विशेष उल्लेखनीय है—

सजि धजि सैन्य नृपति तव यौवन, ऊषा अंगन छायो।
कुचन भवन निज कियेउ सुहावन, कोक गुमान दुरायो।

विविध रंग पर लसत मनोहर, मनुह बसन्त सुहायो।
कंचुकि लता गौर तन छायेऊ, कनक तरु रुचि भायो ॥[1]

बाणासुर द्वारा छोड़े गये ब्रह्मशर-पाश में अनिरुद्ध के जकड़ जाने पर उषा शोक विह्वल हो मूच्छित हो जाती है—

लखि प्रीतम वश पाश, उषा व्याकुल अवनि परि।
मूच्छित किय अति त्रास, चेत नहीं कछु देह तेहि।[2]

अपने प्रिय के कष्ट और विरह के कारण उषा की दशा शोचनीय हो गई—

चली पिया ढिग करति विलापा, भूषण सब बिखराये।
गिरत अश्रु जल मानहु मोती, उर मोती मिलि जाये ।।[3]

वियोग शृंगार के और भी सुन्दर चित्र शर्मा जी ने प्रस्तुत किये हैं, यथा—

विरह व्यथित तन निशिदिन छीजत, ललित सुभग सुकुमारा।
× × ×
पिय वियोग जनु अनल विरह यहि हृदय दाह दुख पाई।
ऊषा मन अति विकल, साँस जनु अग्नि-शिखा लहराई।

प्रिय के विरह से सुन्दर सुकुमार तन का दिन दिन कृशकाय होना, साँसों का अग्नि शिखा सदृश लहराना आदि एक पूरा चित्र उपस्थित करता है। माधुर्य और प्रसाद गुण से ओतप्रोत काव्य की यह सरस धारा मन को अभिसिक्त करती चलती है।

सहायक रस के रूप में वीर रस प्रमुखतः 'बाणासुर-अनिरुद्ध युद्ध' और 'बाणासुर-कृष्ण युद्ध' स्थल पर विशेष दृष्टव्य है—

देव विकल लखि प्रगट पराक्रम तब अनिरुद्ध दिखाये।
शिला चक्र सम फेरि चहूँ दिशि, शर तेहि काटि गिराये।
इतहि बाँध लइ सैन्य अपारा, दैत्य भयंकर वेषा।
उत अनिरुद्ध एक रण राजत, प्रलयकाल जनु शेषा।[4]

बाणासुर-कृष्ण के युद्ध के निम्नलिखित चित्र में वीभत्स का परिपाक हुआ है—

१. उषाहरण : रामदत्त राय शर्मा, पृ० ५।
२. वही, पृ० ३२।
३. वही, पृ० ३२।
४. वही, पृ० ५९।

हलधर कृष्ण हनत दोउ सेना, मचि चहुँ हाहाकारा।
गिरहिं सुभट लइ मुण्ड प्रेतगण, गावहिं विविध प्रकारा।
योगिन खप्पर रुधिर पियहिं, भरि मुदित परम सुखमानी।
श्याम वेश पर छटा रक्त कर, फुहरति अतिहि सुहानी॥[१]

'उषाहरण' काव्य के छन्दों में वैविध्य है। सामान्यत: २८ मात्राओं का छन्द प्रयुक्त है, पर बीच-बीच में दोहा, सोरठा, सवैया का प्रयोग दृष्टव्य है।

प्रस्तुत काव्य में शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों का ही सुन्दर समावेश है। कवि को अलंकार प्रिय हैं और उसने उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अनुप्रास, प्रतीप, सन्देह आदि अलंकार का प्रयोग किया है। उषा के नख-शिख वर्णन में प्रयुक्त रूढ़ उपमानों की छटा उल्लेखनीय है जिसमें कवि ने विभिन्न अलंकारों की माला ही गूँथ दी है—

भूषण विविध सजेउ सब अंगन, मनहु पुष्प बहु छायो।
गाल गुलाब, बिम्बफल अधरन, निज सौन्दर्य लजायो।
रूप राशि शर छवि भरिवारी भँवर नितम्ब लखाई।
केहरि कटि रखवार उदर शुभ रेखा बीच सुहाई।
कँदलि खम्भ जंघ तट सोहत, कटि किंकिणि खग बोलें।
मन्द मन्द गति सजति मराली, पद पंकज जनु डोलैं।
बार सिवार, मीन छवि नयन, कोइलि कंठ लजायो।
यह ऋतुराज सुभग सर पायेउ, यौवन राज सुहायो।
भौंह कमान नयन शर तीक्षण, लइ नृप करत अखेटा।
लखि रतिनाथ हिये निज हारो, परेउ जु तासु चपेटा॥[२]

इस प्रकार वसन्त के सांगरूपक द्वारा कवि ने पाठकों को उषा के यौवन को प्रत्यक्ष कराया है।

ब्रज-भाषा में लिखे गये इस खण्डकाव्य में भाषा सर्वत्र भाव की अनुगामिनी रही है, जैसे—बाण द्वारा दबे पाँव अपनी सुता के महल पर जाकर देखने के वर्णन में—

इक दिन बाण सहस भुजधारी, दबे पाँव गृह जाई।
जोरी निरखि बुद्धि भई भोरी, अनुपम सुन्दरताई॥[३]

---

१. उषाहरण, पृ० ५२।
२. वही पृ० ५।
३. वही पृ० २६।

'बुद्धि भई भोरी' इतने से ही स्थिति का पूरा चित्र पाठक की कल्पना में उतर आता है।

इस खण्डकाव्य की भूमिका विशेष द्रष्टव्य है। तत्कालीन रुचि और सोचने के ढंग का इससे पता चलता है। ब्रजभाषा के पक्षधर पं० रामदत्त राय शर्मा ने भूमिका में एक स्थान पर लिखा है—

'आजकल कितने ही हिन्दी के विद्वान् ब्रजभाषा से नाक-भौं सिकोड़ते और खड़ी बोली की कविता का अयौक्तिक पक्षपात करते हैं। हमारे कहने का तात्पर्य कदापि यह नहीं कि खड़ी बोली की कविता की न जाये अथवा वह कविता ही नहीं।'

'किन्तु यदि आप उसे भी अलंकारादि गुणों से भूषित करने का प्रयत्न करें तो यह और अच्छा है।'

फलतः शर्मा जी ने भी खड़ी बोली के शब्दों और क्रियापदों—जैसे, पहुँची, देखी, रही हो आदि का प्रयोग किया है।

प्रस्तुत विवेचन से यह स्पष्ट है कि भाव और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से यह एक उत्कृष्ट काव्य है जिसने उस युग में काव्य की ओर लोक-रुचि को आकृष्ट तो किया ही, खड़ी बोली का मार्ग-दर्शन भी किया।

**मैथिली-मंगल**

पं० शुकलाल प्रसाद पाण्डेय रचित खण्डकाव्य 'मैथिली-मंगल' में कवि के इष्टदेव राघवेन्द्र सरकार के विवाह-वैभव का वर्णन है। उनके इस काव्य में राम के जीवन के मात्र एक प्रसंग को कथा का आधार बनाया गया है—राम का जानकी के साथ विवाह। विवाह के पहले धनुष-भंग और स्वयंवर का वर्णन काव्य में नहीं दिया है। मिथिला के राजा जनक अपनी कन्या का विवाह राम के साथ करने का प्रस्ताव अपने दो अनुचरों से अयोध्या के राजा दशरथ के पास भेजते हैं। दशरथ बारात सजाकर जनकपुरी लाते हैं। वहाँ सोल्लास विधिपूर्वक विवाहोत्सव सम्पन्न होता है। राजा दशरथ के चारों पुत्रों को मिथिला की चार राजकुमारियाँ ब्याह दी जाती हैं और दशरथ चारों युगलों और सम्बन्धियों और मित्रों सहित साकेत पहुँचते हैं। साकेत में चारों ओर हर्ष का, आमोद-प्रमोद का उल्लासमय वातावरण रहता है। सीता राम के आदर्श और सुखी दाम्पत्य जीवन के कुछ चित्र भी कवि ने दिखाये हैं और अन्त में देशोद्धार की प्रार्थना अपने राम से की है।

इस संक्षिप्त कथा को दस सर्गों में विभक्त कर एक एक प्रसंग को कितने

ही ढंगों से वर्णन करके कवि ने कलेवर को विस्तार दिया है। राम-जानकी के वर्णन में कवि का मन बेहद रमा है। कथा सुगुम्फित और प्रवाहमयी है जो पाठक में ऊब नहीं पैदा होने देती। अपने रचना-कौशल से कथानक में कवि ने दो प्रसंग और जोड़कर पूरी राम कथा कह देने का प्रयत्न किया है।

नवम् सर्ग 'प्रमोद सर्ग' में माता की इच्छा जानकर राम ने देवताओं को 'राम-विवाह' का पूरा नाटक अभिनीत करने का संकेत किया है और इस प्रकार पूर्व सूत्र को जोड़ते हुए उसमें ताड़का-वध, यज्ञ-संरक्षण, अहिल्योद्धार, धनुर्भंग आदि रामायण के अधिकांश प्रसंग दिखा दिये हैं।

दसवें सर्ग 'दाम्पत्य सर्ग' में सीता के मुख से उनके एक स्वप्न का विवरण कहला दिया है जिसमें सीता का हरण, राक्षस-राज रावण का वध, राम का पुनः राज्याभिषेक और नृपोपदेश से सीता का त्याग आदि का संकेत है। इस प्रकार चतुराई से पाण्डेय जी ने रामचरित का उत्तरार्द्ध भी अपने काव्य में समाहित कर लिया है। बीच-बीच में हास-परिहास और रोचकता लाने के लिए कवि ने 'कोहवर-सर्ग', 'कुँवर-कलेवा' और 'जेवनार' में सीता की सहेलियाँ, नाई और नाइन आदि द्वारा मीठी गालियाँ सुनवाई हैं। नारद जी का हुड़दंगी नाच, मंथरा के साथ मजाक, गुरु का नकली वेष बनवाकर अपनी सखी और उसके पति का मान-मोचन तथा देहातों में प्रचलित रीति-रिवाजों आदि के वर्णन से कवि ने काव्य में रोचकता को बनाए रखा है। बारात, व्यंजनों आदि के वर्णन में सामन्ती प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। यह वर्णन कवि केशव का स्मरण दिलाता है।

अध्ययन और श्रवण के द्वारा कवि के अन्तर्मन पर विभिन्न राम-कथाओं के जो प्रभाव अप्रत्यक्ष रूप में विद्यमान रहे हैं, वे इस रचना में स्थान-स्थान पर अनायास प्रकट हुए हैं, जैसे राम, जानकी तथा अन्य तीनों भाइयों के रूप-वर्णन में, प्रातःकाल राम को जगाने की विधि, विवाह के समय हास-परिहास स्वरूप गालियों के प्रणयन आदि में।

काव्य का आरम्भ परम्परागत ईश वन्दना से हुआ है—

'लाखों प्रणाम सभक्ति हैं उन मैथिली-श्रीराम को'

काव्य का पर्यवसान श्रृंगार में हुआ है। अंगी रस श्रृंगार ही है। सहयोगी रस हास्य, भक्ति, करुण आदि हैं। कवि ने संयोग-श्रृंगार को ही विशेष रूप से चित्रित किया है। रूप-सौन्दर्य-वर्णन के कुछ सुन्दर चित्र 'मैथिली-मंगल' के 'मोद सर्ग' में उपलब्ध हैं, उदाहरणार्थ—

श्रुति-प्रान्त-मण्डित स्वर्ण-कुण्डल सुछवि-मण्डल लोल थे,
मानो स्वजन-मन-शिशु झुलाने हेतु युग हिण्डोल थे।
कल कण्ठ में कण्ठाभरण, कटि प्रान्त में थी करधनी,
थे रणित नूपुर पद-युगों में, ध्वनि भुवन-मन-मोहनी ।[1]

+ + +

नवनीत-सी थी देह कोमल, वर्ण चम्पक-सा रहा,
दशनावली-छवि थी मनोरम कुन्द कुसुमों-सी महा।
भृकुटी-धनुष में हर्ष की डोरी ललित थी तन रही,
लज्जा विनय-छवि-मूर्ति माता मैथिली थीं बन रही ।।[2]

रूप के इस सजीव वर्णन से आँखों के सामने अलंकृत सीता का भव्य छवि साकार हो उठती है, यही कवि की सार्थकता है। 'विवाह सर्ग' में भी जब सीता सजकर विवाह-मण्डप में जाने को तैयार होती हैं, कवि ने उनके रूप का बहुत सुन्दर वर्णन किया है। उनके रूप के आगे मणि की माला, दीप की ज्योति, कलाधर की कौमुदी, कंज की कथा सभी कुछ तुच्छ है।[3] इसी सर्ग में विवाह मण्डप में बैठी सीता के रूप का अत्यन्त हृदयहारी वर्णन कवि ने किया है।[4]

कवि ने राम के चरणों का जो वर्णन किया है, वह द्रष्टव्य है—

यौवन-गज बाँधने योग्य दृग-भोग्य मनोज्ञ जघन थे,
सब लायक रघुनायक के गति दायक चारु चरण थे।[5]

वर्णन-सौष्ठव के साथ यहाँ गतिदायक विशेषण में जो श्लेषात्मकता है, वह द्रष्टव्य है—चरण गतिशील तो होते ही हैं, वे चरण सद्गति देने वाले भी हैं।

श्रृंगार-वर्णन के अन्तर्गत दाम्पत्य प्रेम के मर्यादित चित्र ही प्रस्तुत किये हैं। श्रृंगार के सर्वांग चित्रण के स्थान पर इतिवृत्तात्मक शैली में प्रेम की गहनता की अभिव्यक्ति की गई है—

---

१. मैथिली मंगल—मोद सर्ग, छन्द ६४, पृ० २१०।
२. वही, छन्द ६६, पृ० २११।
३. वही, विवाह सर्ग, छन्द ३४, पृ० ५७।
४. वही, छन्द १०५ से १०९, पृ० ६९-७०।
५. वही, पृ० १६०।

राम सीता में रमे थे, जानकी प्रभु में रमी,
सिन्धु-सुरसरि-सम्मिलन में थी नहीं कोई कमी।
प्रभु बिना जनकात्मजा को, जानकी बिन राम को,
एक क्षण भी चैन नहिं थी, युग समझते याम को ॥[1]

'कोहवर सर्ग' में भी युवतियों के अंग-प्रत्यंग, हाव-भाव, क्रीड़ाओं के वर्णन में कवि ने कुशलता का परिचय दिया है—

कोई अंचल को कर चंचल काम-पताका बना फहरा रही थी।
+ + +
कोई हार घिरे हुए काम के कन्दुकों को हँसती थहरा रही थी।
+ + +
आधे खुले हुए आधे मुंदे हुए थे उनके मद-मत विलोचन।
देह समुद्र में शुभ्र जवानी का ज्वार किया करता था सुक्रीड़न ॥[2]

श्रृंगार के अतिरिक्त हास्य में भी कवि का मन रमा है। 'कुँवर कलेवे' के समय गालियाँ गवाकर कवि ने लोक परम्परा का तो निर्वाह किया ही है, साथ ही राम को सामान्य मानव के रूप में चित्रित कर विनोद का रंग भी भर दिया है। मुख मोड़-मोड़ कर हँसती हुई निपुण युवती सालियाँ राम से प्रश्न पूँछती हैं—

वह पहले माँ रही आपके बाप की,
बड़ी बनी माता है अब प्रभु आपकी।
मम ननद रानी की है जननी वही,
शीघ्र आपकी होयेगी धरनी वही।
+ + +
नाते में वह भावी कान्ता आपकी,
होती जाती, श्वश्र, माता आपकी।
रसिकराज, हे कोशल-चन्द्र बतायेंगे,
विकट समस्या को किस विध सुरझायेंगे ?[3]

हास्य के प्रसंग में जानकी जब सबसे पहिले खाना बनाने रसोई में गईं तो उनकी एक ननद द्वारा की गई ठिठोली द्रष्टव्य है—

---

१. दाम्पत्य सर्ग—मैथिली मंगल, छन्द ३६, पृ० २३१।

२. मैथिली मंगल—कोहवर सर्ग, छन्द १७ से २१, पृ० ७६-७७।

३. मैथिली मंगल—कुंवर कलेवा सर्ग, ११३-११४, पृ० ११६-११७।

भाभी ! नमक यह है इसे तुम डाल देना क्षीर में,
ये हैं करेले, छोड़ देना रायता औ खीर में।
यह गुड़ इसे तुम भाजियों में छोड़ देना सत्य ही,
मत भूल जाना, डाल देना दाल में भी यह दही।[1]

हास्य का एक प्रसंग निम्न पद में उद्धृत किया गया है—

एक सुदामा ने जामा को राम के,
पलंग-वसन में बाँध दिया बहु दाम के।
जाने को प्रभु उठे कमल धर हाथ में,
खिचकर जाने लगा वसन भी साथ में।[2]

जानकी की भाभी सिद्धि राम से कहती हैं कि प्राणप्रिय ननद को तो आप ले ही चुके, अब क्या इसके वस्त्र को ले जाकर अपनी और हमारी हँसी करायेंगे। इस हास्य विनोद का भी कवि ने कौशल-पूर्वक भक्ति में पर्यवसान कर दिया है—

ले जाना हो, भवासक्ति ले जाइये,
दे जाना हो, प्रेम भक्ति दे जाइये।[3]

काव्य में ऐसे कई स्थल हैं जहाँ पाठक का मन भक्ति में निमग्न हो जाता है, जैसे मुनि के द्वारा भक्ति प्राप्ति का सदुपाय पूछने पर राम जब उन्हें उत्तर देते हैं तब कण-कण भक्तिमय हो उठता है और कवि के साथ पाठक भी मानने लगता है—

हो हरे ! आगम-निगम के कथित प्रभु-सत्तम तुम्हीं,
हो महत्तम से महत्तम, प्रथम पुरुषोत्तम तुम्हीं।
भुवन-भयहारी तुम्हीं, द्विज-देव हितकारी तुम्हीं,
रावणारी, जग-विहारी, धर्म्म-धुरधारी तुम्हीं॥[4]

वात्सल्य जन्य विरह का परिपाक उस समय हुआ है, जब मैथिली अपने माता-पिता के गृह से विदा होती है। सीता जी की माँ सुनयना अधीर होकर कहती है—

---

१. मैथिली मंगल—प्रमोद सर्ग, छन्द ७४, पृ० २१२।
२. वही, छन्द १४८, १४९, पृ० १२२-१२३।
३. वही, प्रमोद सर्ग, छन्द १५०।
४. वही, दाम्पत्य सर्ग छन्द १५७, पृ० २५१।

तू थी मेरे कर्म्म मार्ग की दीपक-शिखा उदारा,
तेरे बिना हुई मैं अन्धी, जीवन भी अँधियारा।
इस घर में कर मुझे अकेली बेटी तू जाती है,
तव-वियोग पीड़ा की औषधि कुछ न दृष्टि आती है ॥[1]

सुनयना जब अपने ही खून के अंश, अपनी जाई बेटी से विदा के समय कहती है कि इस दुखिया माँ को भूल मत जाना तो वात्सल्य का स्रोत उमड़ पड़ता है—

दृग-पथ में तव कलित कान्ति औ शान्ति सदा झूलेंगी,
तेरी फूलझड़ी सी बातें नित्य शूल हूलेंगी।
कभी कभी देना अति मीठी चीठी-कुशल-लपेटी,
दुखिया माँ को भूल न जाना नेहमयी हे बेटी ॥[2]

'चीठी कुशल लपेटी' की मार्मिक व्यंजना हर बिछुड़ते स्नेही को बुरी तरह झकझोर कर रख देती है, यही कवि की सफलता है।

प्रकृति के भी कुछ अत्यन्त सुन्दर चित्र प्रस्तुत काव्य में दर्शनीय हैं, यथा—

निज हृदय-मोहन को मुदित हो प्रेमयुक्त निहार के,
सित चीर पहना हंस निशा ने श्याम वस्त्र उतार के।
फिर क्या, निशामय शशि हुआ, शशि मय निशा-रानी हुई,
क्रीड़ा लगे करने परस्पर अमृत-रस सानी हुई ॥[3]

बहती थी वायु शुचि शीतल, सुगन्ध, मन्द, नाचतीं लताएँ,
भृङ्ग पुंज गीत गाते थे।
पिक-कुल कूक, प्रिया कण्ठ की कराके सुध, सबके उरों में,
प्रेम-सिन्धु उमगाते थे ॥[4]

यहाँ प्रकृति रस निष्पत्ति में उद्दीपक है।

काव्य की भाषा परिमार्जित खड़ी बोली है, जिसे संस्कृतनिष्ठ टकसाली भाषा कहा जा सकता है। कहीं-कहीं संस्कृत के तत्सम रूपों का ऐसा प्रयोग किया गया है कि उसकी संरचना हिन्दी में संस्कृत जैसी लगने लगती है—

शुभांगिनी कान्चन किरीटिनी सुधा-स्यन्दिनी,
प्राची वनिता-स्नुषा उषा उदयाद्रि-नन्दिनी।[5]

---

१. मैथिली मंगल—विदा सर्ग, छन्द ११७, पृ० १६८।
२. वही, विदा सर्ग, छन्द ११९, पृ० १६८।
३. वही, साकेत सर्ग, पद १३०, पृ० २४।
४. वही, विवाह सर्ग, पद ४५, पृ० ५९।
५. मैथिली मंगल—बारात सर्ग, पद ९, पृ० २८।

किन्तु कहीं-कहीं शब्दों के तद्भव रूप का प्रयोग भी किया है, जैसे—लला, उचारी, फुल्ल, सुचाली, फूलझड़ी आदि। अन्य लोक भाषाओं के शब्द जैसे—बिकानी, नाके, लों, विजना, कूजना, पनही, सानी आदि का और आंचलिक शब्दों जैसे—खूँदी, खोंचा, शुल्क (भाड़ा), रेग (न रेग में ली है धरित्री कुमारी–पृ० ८३) आदि का प्रयोग भी किया है। तुकान्त और छन्द की रक्षार्थ भी कहीं-कहीं शब्दों में विकृति आई है, जैसे नहिं आदि। कहीं-कहीं व्याकरण का दोष भी है, जैसे—'एक क्षण भी चैन नहिं थी' (पृ० २३१), पुल्लिग 'चैन' के लिए स्त्रीलिंग की क्रिया प्रयोग की गई है, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि भाषा में प्रवाह और ध्वन्यात्मकता है। खड़ी बोली के उस आरंभिक काल में इस प्रकार की काव्यात्मक भाषा का प्रयोग विशेष उल्लेखनीय है। हर सर्ग में अलग-अलग छन्दों के प्रयोग कवि की विद्वता प्रकट करते हैं।

कवि ने अलंकारों के प्रयोग अधिक किये हैं, किन्तु वह लादे हुए प्रतीत न होकर स्वाभाविक और सौन्दर्य में वृद्धि करते हुए ही प्रतीत होते हैं। कवि का मन उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, प्रतीप, सन्देह में विशेष रूप से रमा है। अलंकार निरूपण में यह विशेषता है कि अलंकारों की मालाएँ गूँथ दी गई हैं, जैसे उपमा की यह छटा—

कमल तुल्य दृगवन्त, सुकेशी धन-कलाप-से,
सुभ्रू शोभित मदन-महीपति चारु चाप-से।
पुण्डरीक-से खिले, पुष्प-तरु-तुल्य छबीले,
रसिक भ्रमर-से, ऋतु वसन्त के सदृश रंगीले।
वस्त्राभूषण से सज युवक, हँसते, अलि-से गूँजते,
वर-यात्रा लखने को चले मत्त हस्ति-से झूमते।[1]

इसी प्रकार से कवि ने निम्नलिखित पद में रूपकों की झड़ी ही लगा दी है—

मुख-कंज, सारी नील जल, नख सीप, केश सिवार हैं,
दृग मीन, चक्र उरोज, भौंहें चल तरंग, अपार हैं।
सहगामिनी नदियाँ सखीगण, नाभि है भ्रमरावली,
नूपुर मराल मनोज्ञ हैं, वक-पंक्तियाँ हारावली।[2]

---

१. मैथिली मंगल–बारात सर्ग, छन्द ७६, पृ० ४४।
२. वही, साकेत सर्ग, छन्द ९, पृ० ४।

सरयू-वर्णन के लिए नारी को अप्रस्तुत रूप में प्रस्तुत किया गया है। अलंकारों के निम्नलिखित उदाहरण कवि की विद्वता और काव्य-प्रतिभा का दिग्दर्शन कराते हैं—

सन्देह—नभ-सर में क्या विकसा है दिव्य पारिजात,
अथवा मनोज गोल नेत्र जगती का है।
प्रकृति नटी का किंवा घी का दिव्य दीपक है,
रोरी का ही टीका किंवा प्राची रमणी का है।[1]

प्रतीप—कंज भी सरों में हार मन में लजा के छिपे,
कुन्दन भी लेता छिपा नीर में स्वप्राण है।
देख यह हाल, ठीक जँचता यही है आली !
सीता का ही मुख, सीता मुख के समान है।[2]

उत्प्रेक्षा और
अनुप्रास—मैथिली-मुख मृदुल मंजुल अति अमल अरविन्द था,
राम-मन, उसके लिए मानो मनोज्ञ मलिन्द था।[3]

संवाद-चातुर्य कम कवियों में उपलब्ध होता है, किन्तु श्री शुकलाल प्रसाद पाण्डेय में यह वैशिष्ट्य भी विद्यमान है। अभिप्रेत का सहज संप्रेषण संवादात्मक शैली में पाण्डेय जी ने प्रभावपूर्ण ढंग से किया है। उदाहरण के लिए एक दृष्टान्त पर्याप्त है—

कैसे अरविन्द होते ? जैसे होते बिम्बाफल,
कैसे बिम्बाफल ? जैसे हे सखी ! प्रवाल हैं।
कैसे हैं प्रबाल होते ? होते ज्यों गुलाब पुष्प,
कैसे हैं गुलाब ? जैसे सीता धर लाल हैं।।[4]

अनुभूति और अभिव्यक्ति का सिद्ध यह कवि अप्रत्यक्ष रूप से स्थल-स्थल पर नीति और उपदेश की संजीवनी भी पिलाता चला है। द्विवेदी युगीन कवियों की विशेष प्रवृत्ति के अनुसार ही मैथिली के विदा-प्रसंग पर उसकी भाभी के माध्यम से कवि ने नारी जाति को पतिव्रता का उपदेश भी दिया है, यथा—

---

१. मैथिली मंगल–विवाह सर्ग, छन्द १२, पृ० ५४।
२. वही, छन्द १००, पृ० ६८।
३. वही, दाम्पत्य सर्ग, छन्द २८, पृ० २२९।
४. वही, विवाह सर्ग, छन्द १०३, पृ० ६९।

पति ही प्रेम प्रभाकर, पति ही नारि-सौख्य के आकर,
रमणी-जीवन-रण सेनापति, पति ही शान्त सुधाकर।
पति ही धर्म्म-कर्म, जीवन मणि, इष्ट सेव्य पति ही है,
पति ही ब्रह्मा, पति ही हरि हैं, महादेव पति ही हैं ॥[1]

पति-गृह जाती ननद को भाभी के द्वारा दी गई शुभ-कामना उल्लेखनीय है—

दिन मोती के सम मंजुल हों, रातें रम्य रुपहली,
प्रति प्रातः मंगल प्रभात हो, सन्ध्या सदा सुनहली।
दम्पति के जीवन में अनुदिन हों हीरे की घड़ियाँ,
श्वास-श्वास सुख औ सुहास की झड़ा करें फुलझड़ियाँ।[2]

कवि यह तो मानता है कि—

नर औ नारी, अति ही भारी सृष्टि-शक्ति हैं दोनों,
सुनिये लेकिन एक अपर बिन हैं अपूर्ण वे दोनों।[3]

फिर भी नारी को उसने विशेष महत्व दिया है। उसकी महिमा में वह कहता है—

स्त्री बिन नृपति भिखारी, वन गृह है, श्मशान सम आँगन,
सद् गृहिणी पा देव सम बनता गृह नन्दन वन।
ललना मुख में प्रभा अलौकिक लाकर विधि भर देते,
सुकृति जन उसका आश्रय ले, स्वर्ग-मार्ग लख लेते।[4]

अछूतोद्धार पर भी कवि की लेखनी चली है,[5] लोक सेवा और देश-सेवा का भाव, भारत माँ की दीन-हीन अवस्था का भाव भी मुखर हुआ है। यथा—

जो न रहता नित्य उद्यत देश-सेवा अर्थ है,
उस मनुज का विश्वतल पर जन्म लेना व्यर्थ है।[6]
राष्ट्र प्रति अनुरक्ति है मम चरण प्रति अनुरक्ति है,
जन-जनार्दन भक्ति ही मम मोक्ष दात्री भक्ति है।[7]

---

१. मैथिली मंगल—विदा सर्ग, छन्द ५६, पृ० १५८।
२. वही, विदा सर्ग, छन्द ४२, पृ० १५६।
३. वही, छन्द ९४, पृ० १६४।
४. वही, छन्द ९६, पृ० १६४।
५. वही, दाम्पत्य सर्ग, छन्द ९१-९२, पृ० २४०।
६. मैथिली मंगल—दाम्पत्य सर्ग, पृ० २४६।
७. वही, पृ० २४९।

कवि के इस काव्य की अन्तिम पंक्ति भी इसी भाव से अनुप्राणित है—

जन्म प्रभु ! लीजे पुनः द्रुत, देश जर्जर-प्राय है ।[1]

इस प्रकार इस खण्डकाव्य के आद्यन्त आकलन से यह स्पष्ट है कि भाव पक्ष और कला पक्ष दोनों ही दृष्टियों से यह काव्य द्विवेदी युग के उत्कृष्ट खण्डकाव्यों में से है । पाण्डेय जी ने तत्कालीन काव्य-वेत्ताओं और आलोचकों के सम्मुख 'मैथिली मंगल' जैसे उत्कृष्ट काव्य को प्रस्तुत कर न केवल खड़ी बोली की सामर्थ्य को सिद्ध किया, बल्कि उस युग में व्याप्त कुरीतियों पर व्यंग्य करते हुए पराधीनता के पाश में जकड़ी, सोई जनता को उद्बोधित भी किया । यह रस-सिद्ध और रोचक काव्य द्विवेदी युग में प्रकाशित न हो सका, यह काव्य-जगत का दुर्भाग्य है । निश्चय ही 'मैथिली मंगल' खड़ी बोली के विकास-क्रम की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है ।

**अभिमन्यु का आत्मदान**

श्री कमला प्रसाद वर्मा ने महाभारत से अभिमन्यु प्रसंग को लेकर यह काव्य लिखा है । इसकी कथा सात सर्गों में है । प्रथम सर्ग 'गुप्त नियम और मनुष्य' में ईश्वर की असीम शक्ति, प्रकृति के नियम और मानव की सीमित शक्ति की ओर कवि ने संकेत किया है—

पर शोक ! मनुज उन्नत होने पर भी कुछ नहीं समझता है ।
बस यही महाभारत सबको परिणाम दिखाकर कहता है ।[2]

दूसरा सर्ग 'महाभारत का प्रारंभ' है । इसमें श्रीकृष्ण धृतराष्ट्र की सभा में जाकर पाण्डवों को पाँच गाँव दे देने का अनुरोध करते हैं, पर दुर्योधन उत्तर देता है कि बिना युद्ध किये वह सुई जितनी जगह का आधा भाग भी नहीं देगा । इस पर अपमानित होकर कृष्ण सभा से लौट जाते हैं और महाभारत-युद्ध का श्रीगणेश होता है । कृष्ण अर्जुन को युद्ध-स्थल पर ले जाकर युद्ध करने का उपदेश देते हैं । अर्जुन को समझ आ जाती है और वह युद्ध करने को तत्पर हो जाता है ।

तीसरे सर्ग 'रणक्षेत्र में भीष्म-पितामह' में युद्ध में कई योद्धाओं को मारने के बाद पाण्डव भीष्म पितामह के पास जाकर उन्हें उनके दिये आशीष की याद दिलाते हैं । भीष्म उन्हें अपनी मृत्यु का राज बताते हैं और उसी के

---

१. मैथिली मंगल—दाम्पत्य सर्ग, पृ० २५३ ।

२. अभिमन्यु का आत्म-दान : कमला प्रसाद वर्मा, पहिला सर्ग, पृ० ५ ।

अनुसार पाण्डव शिखण्डी को आगे करके भीष्म पितामह पर वाण-वर्षा करते हैं। वे लौट कर शिखण्डी पर वार नहीं करते। वे घायल होकर वाणों की शैया पर ही सो जाते हैं और अट्ठावनवें दिन जब सूर्य उत्तरायण होता है, प्राण त्याग देते हैं। ग्यारहवें दिन दुर्योधन गुरु द्रोण को सेनापति बनाते हैं और उनसे युधिष्ठिर को युद्ध से बाँध कर लाने का वचन ले लेते हैं।

चौथे सर्ग 'चक्रव्यूह और अभिमन्यु' में दुर्योधन द्रोणाचार्य को पाण्डवों के नाश के लिए ललकारता है। द्रोणाचार्य दुर्योधन से अर्जुन को कहीं अन्यत्र लड़ने को ले जाने को कहते हैं। सुशर्मा अर्जुन को दूर हिलगा लेता है। गुरु द्रोण चक्रव्यूह की रचना करते हैं। उसे देखकर अभिमन्यु कहता है—'मैं इसमें प्रवेश तो कर लूंगा पर मैं निकलना नहीं जानता।' भीम उसे बढ़ावा देते हैं और युधिष्ठिर भी उसे चक्रव्यूह को भेदने को कहते हैं।

पाँचवें सर्ग 'अभिमन्यु का रण-प्रस्थान' में चक्रव्यूह भेदने के लिए जाने से पूर्व अभिमन्यु अपनी माता सुभद्रा और अपनी पत्नी उत्तरा से विदा लेने जाता है। वे दोनों अपशकुनों का मान करके अधीर होती हैं। अभिमन्यु उन्हें अपने कर्त्तव्य की दुहाई देकर समझाता है और आज्ञा लेकर लड़ता-भिड़ता चक्रव्यूह के द्वार पर आ पहुंचता है।

छठे सर्ग 'चक्रव्यूह रंग्राम' में अभिमन्यु घमासान युद्ध करता है। वह चक्रव्यूह तोड़कर उसमें घुस जाता है। अन्य पाण्डव नहीं घुस पाते हैं, पर वह अपने वाणों की मार से अकेला ही कर्ण, दुर्योधन, दुःशासन सबको नाकों चने चबवा देता है। घबड़ा कर कर्ण गुरु द्रोण से उसको हत करने का उपाय पूछते हैं। द्रोण बताते हैं कि उसके धनुष की डोर को काट देने पर वह असमर्थ हो जायेगा। कर्ण चालाकी से उसके धनुष की प्रत्यंचा काट देते हैं—सारे योद्धा एक साथ उस पर वार करने लगते हैं। धनुष टूटने पर वह रथ से कूद कर क्रमशः तलवार, रथ-चक्र एवं गदा से लड़ता है।

सातवाँ सर्ग 'चक्रव्यूह का अन्तिम दृश्य' है। इसमें सात कौरव योद्धाओं ने एक साथ वार कर करके निहत्थे बालक अभिमन्यु को लहूलुहान कर दिया। अभिमन्यु ने इस अनीति और धोखेबाजी के लिए उनकी भर्त्सना की, पर कौरव-योद्धाओं ने उत्तर दिया कि शिखण्डी को आगे करके भीष्म पितामह को मारना क्या अनीति नहीं थी।

सातवें सर्ग की समाप्ति के उपरान्त कवि ने इसी से संलग्न एक अलग काव्यांश 'अभिमन्यु के अन्तिम वाक्य' शीर्षक से दिया है। इसमें अभिमन्यु

का अन्त समय में अपने आत्मीयजनों से इस अन्याय का प्रतिकार लेने का आग्रह और करुण-निवेदन है। अनीति से मूर्च्छित अवस्था में अभिमन्यु के मस्तक पर जयद्रथ ने गदा से वार करके अभिमन्यु के प्राण ले लिए। जब अर्जुन को यह ज्ञात हुआ तो वह बहुत दुःखी हुआ। उसने सूर्यास्त से पहिले जयद्रथ को मारने की और उसमें असफल होने पर आग में जल मरने की प्रतिज्ञा की। श्रीकृष्ण के सहयोग से उसने सूर्यास्त से पहिले उस दुष्ट जयद्रथ का सिर, जिसने अभिमन्यु के मस्तक पर पदाघात किया था, धड़ से अलग कर दिया।

कथानक, सुसम्बद्ध, प्रवहमान है। महाभारत में वर्णित कथा से अलग कुछ नई उद्भावनाएँ इस कथानक में दृष्टिगत नहीं होती। काव्य के आरम्भ में लेखक ने निवेदन में लिखा है—

यह वीर करुणा रस भरी,अभिमन्यु विरदावलि कथा,
है शोक से यद्यपि सनी हृत्पिण्ड को देती व्यथा।
पर आर्य गौरव मान का बस एक ही दृष्टान्त है,
उद्विग्न मन को कर्मपथ पर कर दिखाता शान्त है।[1]

इसी के अनुसार अभिमन्यु के अभूतपूर्व बलिदान की यह यशोगाथा शोक सनी और करुण होते हुए भी आर्यों के गौरव को उद्भासित करती है और उद्विग्न मन को कर्म का पाठ पढ़ाती है। इसका प्रत्यवसान करुण रस में हुआ , अतः इसका अंगीरस भी करुण ही है। छल से सात योद्धाओं ने मिलकर बालक अभिमन्यु का वध कर दिया, जब यह समाचार पाण्डव-शिविर में पहुँचा तो कुहराम मच गया। पाण्डव-गण मर्मभेदी विलाप करने लगे, यथा—

फिर तो पीछे सुन हाल गिरे, धरणी पर तुरत अचेत हुए,
फिर चेतित हो कातर स्वर से–'सच बेटा ! क्या तुम खेत हुए ?'
कहते उठ बैठे पागल से—'तुमको अभि और बताना था
हा ! दुख में मुझको त्याग, तुम्हें क्या चला अकेला जाना था ?

सहायक रस के रूप में वीर और शान्त रस का समावेश काव्य में स्थान-स्थान पर हुआ है। छठे सर्ग में युद्ध स्थल पर वीर-रस का अच्छा परिपाक हुआ है, उदाहरणार्थ—

सन्नन ! सन्नन ! कर वाण चले, वीरों पर वीर बढ़े जाते,
घावों पर घाव पड़े जाते, खड्गों से खड्ग लड़े जाते।

---

१. अभिमन्यु का आत्मदान : कमलाप्रसाद वर्मा, पृ० २४

नर-मुण्डों की भरमार कहीं, हाथों पर हाथ उछलते थे,
जंघायें कट कर थीं गिरतीं, रक्तों पर पैर पिघलते थे।[1]
तब तक बालक ने चाप चढ़ा मारा बाणों से छाती पर,
लगते दुःशासन कांप गिरा, लेकर भागा उसका सहचर।[2]

कवि की रुचि प्रकृति वर्णन में नहीं रमी है, पूरे काव्य में वह कहीं नहीं है।

प्रस्तुत काव्य की भाषा खड़ी बोली है, किन्तु उर्दू के शब्द भी कवि ने यत्र तत्र ले लिये हैं, जैसे जरा, तखत आदि। तद्भव शब्दों का भी प्रचुर प्रयोग किया गया है और तुकान्त मिलाने को या मात्राएँ पूरी करने को शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा गया है, जैसे—कर्तब, जहँ, सजित, खदित, कर, कमला, लवट, कढ़े, चेतित, आन, पूरण, चहिये, कार, क्षेत्र, लदफद, लुझे, नशाना, सिरजना, नहिं, बुद्धी, ढब से, भाँती आदि। कई स्थानों पर छन्द भंग न हो, इसके लिए नहीं का नहिं प्रयोग किया गया है। यथा—

क्योंकर पाण्डव नहिं खेदित हो, गौरव क्योंकर नहिं मुर्झायें।[3]

ब्रज-भाषा के शब्दों का प्रयोग भी है, जैसे–कपोलन, उनने आदि, स्थान-स्थान पर मुहावरे जैसे चेहरे का रंग उड़ना, चुटकी से मसलना, प्राण पखेरू कूच करना, खेत होना, नाकों दम करना आदि का प्रयोग कवि ने किया है। कवि ने छन्द में मात्राएँ पूरी करने का बराबर प्रयास किया है, फिर भी छन्द-भंग हुआ है जो काव्य को कमजोर बनाता है, जैसे—

बिन युद्ध किये कैसे केशव ! इन करों से धरणी जायेगी,
उसका भी आधा नहिं दूँगा, जितनी में सुई समायेगी।[4]

वर्मा जी की कविता अधिक सशक्त नहीं है, पर कथ्य और चित्र जीवन्त हैं। अलंकारों का प्रयोग भी कम है। प्रायः उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अर्थालंकारों का प्रयोग ही हुआ है। यथा—

उत्ताल समुद्रों की भाँती माता का हृदय उमड़ आया,
विह्वल कम्पित हो गात, सभी आंखों में आंसू भर आया।[5]

---

१. अभिमन्यु का आत्मदान : कमलाप्रसाद वर्मा, छठा सर्ग, पृ० १५।
२. वही, पृ० १७।
३. अभिमन्यु का आत्मदान : तीसरा सर्ग, पृ० ७।
४. वही, दूसरा सर्ग, पृ० ५।
५. वही, पांचवाँ सर्ग, पृ० १२।

यहाँ कवि ने उपमेय माता के हृदय का उपमान उत्ताल समुद्रों को कहा है, वाचक धर्म उमड़ना है। यदि कवि समुद्रों के बजाय लहरों को उपमान बनाता तो अधिक सजीव बिम्ब उभर कर आता।

डंके पर चोप पड़े ज्यों ही बिजली सा रण में जा चमका,
लड़ता भिड़ता, उड़ता चढ़ता, चक्रों के द्वारे आ धमका।[१]

प्रस्तुत उद्धरण में डंके पर चोट पड़ते ही गौर वर्ण अभिमन्यु का युद्ध में तेजी से दाखिल होने का उपमान बिजली का चमकना है। इसमें कवि ने वाचक धर्म का अच्छा निर्वाह किया है।

काव्य के नायक अभिमन्यु के चरित्र का चित्रण भी लेखक ने कुशलता से किया है। इस कुशल चरित्र चित्रण में कथानक को प्रभविष्णु और प्रवहमान किया है। निर्भीक और वीर अभिमन्यु के वाक्य और कार्य काव्य में प्राण-प्रतिष्ठा करते हैं। जैसे—

रण भूमि परीक्षा-स्थल पर ही हो जाय परीक्षा वीरों की,
तुम सात ! नहीं परवा मुझको, मैं घटा लगा दूँ तीरों की।[२]

इस उक्ति में सराहनीय निर्भयता और आत्म-विश्वास है। सात योद्धाओं के प्राणलेवा प्रहारों के बीच एक षोडष कुमार बालक की यह वीरोक्ति उसे बहुत ऊँचा उठा देती है।

गुरु द्रोण अभिमन्यु की महाशक्ति का उल्लेख करते हुए कर्ण से कहते हैं—

हे कर्ण ! करों में धनुष वाण इसके जब तक रह जायेगा,
यह वीर अलौकिक ना जाने कितनों को मार खपायेगा।[३]

कवि स्वयं अभिमन्यु की दक्षता का उल्लेख करते हुए कहता है—

पर ऐसा चोखा बाण बली बालक ने छाती पर मारा,
लगते ही विह्वल कर्ण हुए, चिहरे का रंग उड़ा सारा।[४]

इतने वीर एक बालक ने सत्य और न्याय के लिए अपने को बलिदान कर दिया। अभिमन्यु के चरित्र के सशक्त चित्रण ने काव्य के संदेश और उद्देश्य की पूर्ति में उल्लेखनीय भूमिका निभाई है। 'उन्नत होने पर भी मनुष्य नासमझ है,' दुर्योधन आदि कौरवों ने अपने पैरों पर आप कुल्हाड़ी मारी।

---

१. अभिमन्यु का आतमदान—पांचवां सर्ग, पृ० १५।
२. वही, छठां सर्ग, पृ० २०।
३. वही, पृ० १९।
४. वही, छठा सर्ग, पृ० १७।

सम्पूर्ण काव्य में कवि की अपनी नियतिवादी विचारधारा स्थान-स्थान पर परिलक्षित होती है, जैसे—

शत सहस शक्तियां गुप्त सदा चहुं ओर तरंगित होती हैं,
अज्ञात मनुज के जीवन में सुख दुख के तरुवर बोती हैं।[1]

वह ईश्वरवादी है—

उस सिरजनहार सियाने का है ऐसा ही ताना बाना।[2]

शुभ-अशुभ, शकुन-अपशकुन का भान भी कवि को है। एक स्थान पर वह कहता है—

पर अशकुन हैं होते जाते—चिन्ता चित में है दौड़ रही।[3]

कवि संसार को असार समझ कर सदा अपने कर्तव्य पर डटे रहने का संदेश पाठक को देता है—

बस वैसे ही यह जीव पथिक समान तरु संसार है,
यह सुख भी तरुवर छांह सम, बिलकुल क्षणिक निस्सार है।
है वह सुखी जो जगत से कर्तव्य पालन कर चला,
उसके लिए क्यों दुखित होना शोक क्या करना भला।[4]

इस प्रकार एक पौराणिक आख्यान के माध्यम से तत्कालीन राष्ट्रीयता की भावना को कवि ने कुरेदा है। युगीन परिस्थितियों की आवश्यकता के अनुकूल देश और धर्म के लिए हँसते-हंसते मर मिटने वाले अभिमन्यु के आत्मदान के चित्रण द्वारा वर्मा जी ने युवकों को उत्साह, प्रेरणा और संदेश तो दिया ही, खड़ी-बोली के विकास का पथ भी प्रशस्त किया।

**सत्याग्रही प्रह्लाद**

श्री तुलसीराम शर्मा 'दिनेश' ने भक्त प्रह्लाद की विख्यात कथा को इस काव्य का आधार बनाया है। राजा हिरण्यकश्यपु का ईश्वर भक्त पुत्र प्रह्लाद अपने पिता की आज्ञा का उल्लंघन करके भगवान् की अर्चना करता है। राजा उसे नाना प्रकार के कष्ट देते हैं—कभी पहाड़ से गिरवाते हैं, कभी हाथी से कुचलवाते हैं, यहाँ तक कि उसे जिन्दा आग में जला देने का यत्न

---

१. अभिमन्यु का आत्मदान—पहला सर्ग, पृ० ३।
२. वही, सातवाँ सर्ग, पृ० २१।
३. वही, पाँचवाँ सर्ग, पृ० १३।
४. अभिमन्यु का आत्मदान—अभिमन्यु का अन्तिम वाक्य, पृ० २२।

भी करते हैं, किन्तु प्रह्लाद भगवत्कृपा से बच जाता है। जब वह प्रह्लाद पर बहुत अत्याचार करते हैं तो खंभ से भगवान नरसिंह प्रकट होते हैं और हिरण्याकश्यप को मारकर प्रह्लाद को आशीर्वाद देते हैं।

काव्य का उद्देश्य सत्य की विजय को संसार के सम्मुख रखना है। सत्य का आग्रह समस्त प्रहारों के लिए सच्ची ढाल के समान है। कवि ने प्रारम्भ में स्वयं कहा है—

संसार में सच्ची विजय ही सत्य को मिलती सदा,
यह सत्य-आग्रह-ढाल किसकी टालती नहीं आपदा ?
यह ढाल की तो ढाल है, करवाल की करवाल है,
विकराल वार निवारणार्थ न और ऐसी ढाल है।[1]

इस काव्य में भक्ति-भाव को प्रधानता मिली है। प्रह्लाद भगवान का अनन्य भक्त है। भगवान हर जगह हैं—इस सत्य के आग्रह के लिए वह हर चुनौती स्वीकार करता है। उसके लिए भयंकर सर्प आभूषण बन जाते हैं, अग्नि सुपावक बन जाती है, सेना सुख देने वाली बन जाती है। उसको मारने वालों के मन में भी उसकी इस स्थिति को देखकर भगवान के प्रति आस्था उत्पन्न हो जाती है। कवि कहता है—

भीषण भुजग भूषण तथा पावक सुपावक सी बनी,
गम्भीर नीर सुचीर, सुख-देनी बनी पैनी अनी।
होकर हताश, कपास से मुख भासने उनके लगे,
निज मौत लख सहसा निकट अति भाव मन उनके जगे।[2]

इस काव्य की भाषा खड़ी बोली है जिसमें अन्य भाषाओं के शब्दों का समावेश नगण्य है। शब्दों के प्रायः तत्सम रूप ही प्रयुक्त हैं। साम्यमूलक अलंकारों, यथा—उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि का प्रयोग ही अधिक है। निम्नलिखित उदाहरण में रूपक और उत्प्रेक्षा का प्रयोग द्रष्टव्य है—

तनु श्याम अति गम्भीर नीरद की छटा को छल रहा,
कर-कंज में धारे हुए वर एक पंकज खिल रहा।
उस समय उसकी देख शोभा जान पड़ता था यही-
गजराज ढाए शुंड मानों भेंट अन्तिम दे वही।[3]

---

१. सत्याग्रही प्रह्लाद : तुलसीराम शर्मा 'दिनेश', पद १, पृ० १।
२. वही, पद ४२, पृ० ११।
३. सत्याग्रही प्रह्लाद : तुलसीराम शर्मा, पद ५०, पृ० ३०।

सम्बोधन शैली को अपनाते हुए यत्र तत्र अहा, अहो, हे, हरे आदि का प्रयोग भी कवि ने किया है। अट्ठाइस मात्राओं के हरिगीतिका छन्द में सम्पूर्ण काव्य लिखा गया है। मात्रा-पूर्ति के लिए कहीं-कहीं शब्दों को विकृत किया है, जैसे—नहीं के लिए नहिं आदि। क्रियाओं के विशिष्ट प्रयोग भी मिलते हैं, जैसे धारण करने को धारे हुए। जहां भी अवकाश मिला है कवि अपनी विचारधारा को प्रकट करता गया है। भक्ति और नैतिक मूल्यों की स्थापना उसका अभीष्ट है। प्रह्लाद के गुणगान के साथ ही कवि यह भी कहता है कि सज्जन दूसरों को दुःखी नहीं देख सकते। यथा—

उस कमल कुल में कमल जो परमार्थि जनमा था अहा!  
कब सज्जनों से दूसरों का दुःख है जाता सहा?  
जब पद्यि ने वह पद्य हरि पद-पद्म में अर्पण किया,  
उस पद्यरूपी पत्र ने वह कार्य सत्र बना दिया।[1]

इस प्रकार कवि अपनी कृति को भी भगवान् के चरण-कमल में अर्पित करके उसे सफल मानता है। विदेशी शासकों के अत्याचारों से पीड़ित प्रजा के लिए इस प्रकार के आस्थावादी काव्य नया संदेश लेकर सामने आये। इन चरित्रों की प्रेरणा से उन्हें शक्ति और दृढ़ता मिली। आचार्य द्विवेदी की अपेक्षाओं को भी इस काव्य ने अंशतः पूरा किया।

**भंग में रंग**

'भंग में रंग' सावित्री सत्यवान के प्रसिद्ध पौराणिक आख्यान पर आधारित अम्बिका दत्त त्रिपाठी द्वारा लिखित खण्डकाव्य है। कथानक प्रख्यात है, कल्पना का उपयोग वस्तु संरचना में कवि ने नहीं किया है। पतिव्रता सावित्री के पातिव्रत्य की कथा इसमें वर्णित है जो पौराणिक आख्यान परम्परा में युगों से चली आ रही है। मगध-नरेश अश्वपति सन्तान हीन थे। देवी शारदा की उपासना से उनके यहाँ कन्या सावित्री का जन्म हुआ। रूप-गुण सम्पन्न सावित्री के विवाह योग्य हो जाने पर उसे अपने लिए वर चुनने की स्वतन्त्रता दी गई। सावित्री ने शाक्त देश के राजा द्युमत्सेन के पुत्र सत्यवान का वरण किया। नारद द्वारा यह ज्ञात होने पर भी कि सत्यवान की केवल एक वर्ष आयु शेष रह गई है, सावित्री ने धर्म के अनुसार उससे ही विवाह किया। सत्यवान की मृत्यु सन्निकट होने पर वह उसके निवारण हेतु साधना करने के साथ ही निरन्तर साथ रहने लगी। निर्धारित समय पर

---

१. सत्याग्रही प्रह्लाद पद १०, पृ० ४७।

अचानक सत्यवान के सिर में दर्द हुआ और वह प्राण-शून्य हो गया। यमराज के आने पर सावित्री ने अपनी प्रार्थना और निष्ठा से उसको इतना प्रभावित किया कि उन्होंने प्रसन्न होकर सावित्री से वर माँगने को कहा। सावित्री ने बुद्धिमत्तापूर्वक ऐसे वर माँगे कि उसके ससुर की आंखें और राज्य ही पुनः नहीं प्राप्त हुआ, बल्कि उसका पति भी पुनर्जीवित हो गया और उसने सौभाग्यवती रह कर सुख से जीवन व्यतीत किया।

इस कथा का चयन कवि ने निश्चय ही उद्देश्य विशेष से किया है। द्विवेदी युग की सामान्य प्रवृत्ति के अनुसार कवि ने न केवल काव्य के प्रारम्भ में, अन्त में भी स्पष्ट रूप से अपने उद्देश्य को घोषित भी कर दिया है। कवि के अनुसार—

यह सुखद सावित्री कथा यदि पढ़ें अबला प्रेम से।
पति पुत्र से संयुक्त हों जग में रहें अति क्षेम से।
तज के अनित्य शरीर को सादर चलें पतलोक को।
पाती न नारि पतिव्रता कष्टद अधोगति शोक को।[1]

इस घोषणा से प्रतीत होता है कि कवि तत्कालीन नारी-समाज के सामने पातिव्रत्य का उत्कृष्टतम आदर्श रूप रखना चाहता था। इस काव्य के कुछ कवियों ने अपने काव्यों की भूमिकाओं में नारी-जाति की तत्कालीन शोचनीय स्थिति का उल्लेख करते हुए प्राचीन भारतीय संस्कृति में नारी के त्याग और आदर्श की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया है। मंगलाचरण की परम्परागत वन्दना में अम्बिका दत्त त्रिपाठी ने भी भगवान से यह प्रार्थना की है कि वह उसे ऐसी काव्य-शक्ति दे जिससे वह आदर्श महिला धर्म को अभिव्यक्ति दे सके—

संशय शमन हो नाथ ! तुम संशय सभी हर लीजिये,
आदर्श महिला-धर्म पर कथनोक्ति कृपया दीजिये।[2]

कवि की कामना है कि वह अपनी रचना के माध्यम से प्राचीन ललना-धर्म के माहात्म्य को प्रतिबिम्बित कर सके।

'भंग में रंग' १५१ छन्दों में लिखा गया काव्य है। उद्देश्य के अनुरूप ही कथानक की योजना की गई है। उद्देश्य को प्रत्यक्ष पद्धति से प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति के कारण रसात्मकता और भाव-योजना गौण हो गई है। शास्त्रीय

---

१. भंग में रंग : अम्बिका दत्त त्रिपाठी, पद १५०, पृ० ३२।
२. वही, पद २, पृ० १।

दृष्टि से देखा जाय तो इस काव्य में दाम्पत्य-रति भाव का आदर्श ही प्रतिपादित है, इसलिए इसका अंगीरस शृंगार ही है। स्थान-स्थान पर करुण रस की भी मार्मिक व्यंजना हुई है जो दाम्पत्य प्रेम की रसात्मकता में अभिवृद्धि करती है। रति भाव को भी इससे उत्कर्ष प्राप्त हुआ है। दाम्पत्य रति में विभाव पक्ष के चित्रण में भी कवि ने प्रतिपाद्य के अनुरूप आलम्बन के बाह्य सौन्दर्य की अपेक्षा आन्तरिक सौन्दर्य-शील, मृदुता, सौख्य पर विशेष बल दिया है। उदाहरणार्थ—

शुभ शील मृदु भाषण सुधा रस-स्वाद सौख्य विधान से,
राजर्षियों को मुग्ध करती चारु चाल निधान से।[1]

द्विवेदी युगीन सामान्य प्रवृत्ति से प्रभावित, उद्देश्य विशेष की पूर्ति के लिए लिखे जाने के कारण इसमें कवि ने कथात्मक विकास के लिए शृंगार के वर्णन में जितना वर्णन अपेक्षित था, इतिवृत्तात्मक ढंग से उतना ही प्रस्तुत किया है, जैसे—

नृप बाल के रस रंग का वत्सर त्वरागत हो गया,
मानो कभी वह दृष्टिगोचर था नहीं यों खो गया।[2]

वस्तुतः इस खण्ड काव्य का मुख्य उद्देश्य सावित्री के चारित्रिक आदर्श को पाठकों के सामने रखना है, इसलिए घटनाओं, संवादों और क्रियाओं के माध्यम से उसके चरित्र के आदर्श पक्ष को उद्घृत करने पर ही कवि ने विशेष ध्यान दिया है। जहाँ भी कवि को अवसर मिला है, उसने सावित्री के चरित्र, विशेष रूप से उसके पतिव्रत धर्म, गुण, शील को अप्रत्यक्ष अथवा प्रत्यक्ष रूप से प्रभावपूर्ण बनाने का प्रयास किया है। सावित्री यह जानते हुए भी कि सत्यवान की आयु केवल एक वर्ष शेष है, एक बार वरण कर लेने पर उसके अतिरिक्त किसी अन्य को पति रूप में न केवल अस्वीकार करती है, उसे अनुचित और पाप भी मानती है। इस प्रकार वह व्यक्तिगत सुख का भी त्याग करती है—

निज सौख्य हित शुभ धर्म को मैं आज जो त्यागूँ भला,
कलुषित करूँ निज गात को जग में कहाऊँ पुश्चला।
है वर लिया जिस व्यक्ति को मन से न त्यागूँ मैं कदा,
अधिराज मनसा, कर्म, वच संकल्प का है सर्वदा।[3]

---

१. भंग में रंग—पद ५०, पृ० ११।
२. वही, पद ८५, पृ० १९।
३. भंग में रंग—पद ६४, पृ० १४।

अचानक सत्यवान के सिर में दर्द हुआ और वह प्राण-शून्य हो गया। यमराज के आने पर सावित्री ने अपनी प्रार्थना और निष्ठा से उसको इतना प्रभावित किया कि उन्होंने प्रसन्न होकर सावित्री से वर माँगने को कहा। सावित्री ने बुद्धिमत्तापूर्वक ऐसे वर माँगे कि उसके ससुर की आंखें और राज्य ही पुनः नहीं प्राप्त हुआ, बल्कि उसका पति भी पुनर्जीवित हो गया और उसने सौभाग्यवती रह कर सुख से जीवन व्यतीत किया।

इस कथा का चयन कवि ने निश्चय ही उद्देश्य विशेष से किया है। द्विवेदी युग की सामान्य प्रवृत्ति के अनुसार कवि ने न केवल काव्य के प्रारम्भ में, अन्त में भी स्पष्ट रूप से अपने उद्देश्य को घोषित भी कर दिया है। कवि के अनुसार—

यह सुखद सावित्री कथा यदि पढ़ें अबला प्रेम से।
पति पुत्र से संयुक्त हों जग में रहें अति क्षेम से।
तज के अनित्य शरीर को सादर चलें पतलिोक को।
पाती न नारि पतिव्रता कष्टद अधोगति शोक को।[1]

इस घोषणा से प्रतीत होता है कि कवि तत्कालीन नारी-समाज के सामने पातिव्रत्य का उत्कृष्टतम आदर्श रूप रखना चाहता था। इस काव्य के कुछ कवियों ने अपने काव्यों की भूमिकाओं में नारी-जाति की तत्कालीन शोचनीय स्थिति का उल्लेख करते हुए प्राचीन भारतीय संस्कृति में नारी के त्याग और आदर्श की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया है। मंगलाचरण की परम्परागत वन्दना में अम्बिका दत्त त्रिपाठी ने भी भगवान से यह प्रार्थना की है कि वह उसे ऐसी काव्य-शक्ति दे जिससे वह आदर्श महिला धर्म को अभिव्यक्ति दे सके—

संशय शमन हो नाथ ! तुम संशय सभी हर लीजिये,
आदर्श महिला-धर्म पर कथनोक्ति कृपया दीजिये।[2]

कवि की कामना है कि वह अपनी रचना के माध्यम से प्राचीन ललना-धर्म के माहात्म्य को प्रतिबिम्बित कर सके।

'भंग में रंग' १५१ छन्दों में लिखा गया काव्य है। उद्देश्य के अनुरूप ही कथानक की योजना की गई है। उद्देश्य को प्रत्यक्ष पद्धति से प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति के कारण रसात्मकता और भाव-योजना गौण हो गई है। शास्त्रीय

१. भंग में रंग : अम्बिका दत्त त्रिपाठी, पद १५०, पृ० ३२।
२. वही, पद २, पृ० १।

दृष्टि से देखा जाय तो इस काव्य में दाम्पत्य-रति भाव का आदर्श ही प्रतिपादित है, इसलिए इसका अंगीरस शृंगार ही है। स्थान-स्थान पर करुण रस की भी मार्मिक व्यंजना हुई है जो दाम्पत्य प्रेम की रसात्मकता में अभि-वृद्धि करती है। रति भाव को भी इससे उत्कर्ष प्राप्त हुआ है। दाम्पत्य रति में विभाव पक्ष के चित्रण में भी कवि ने प्रतिपाद्य के अनुरूप आलम्बन के बाह्य सौन्दर्य की अपेक्षा आन्तरिक सौन्दर्य-शील, मृदुता, सौख्य पर विशेष बल दिया है। उदाहरणार्थ—

> शुभ शील मृदु भाषण सुधा रस-स्वाद सौख्य विधान से,
> राजर्षियों को मुग्ध करती चारु चाल निधान से।[1]

द्विवेदी युगीन सामान्य प्रवृत्ति से प्रभावित, उद्देश्य विशेष की पूर्ति के लिए लिखे जाने के कारण इसमें कवि ने कथात्मक विकास के लिए शृंगार के वर्णन में जितना वर्णन अपेक्षित था, इतिवृत्तात्मक ढंग से उतना ही प्रस्तुत किया है, जैसे—

> नृप बाल के रस रंग का वत्सर त्वरागत हो गया,
> मानो कभी वह दृष्टिगोचर था नहीं यों खो गया।[2]

वस्तुतः इस खण्ड काव्य का मुख्य उद्देश्य सावित्री के चारित्रिक आदर्श को पाठकों के सामने रखना है, इसलिए घटनाओं, संवादों और क्रियाओं के माध्यम से उसके चरित्र के आदर्श पक्ष को उद्धृत करने पर ही कवि ने विशेष ध्यान दिया है। जहाँ भी कवि को अवसर मिला है, उसने सावित्री के चरित्र, विशेष रूप से उसके पतिव्रत धर्म, गुण, शील को अप्रत्यक्ष अथवा प्रत्यक्ष रूप से प्रभावपूर्ण बनाने का प्रयास किया है। सावित्री यह जानते हुए भी कि सत्यवान की आयु केवल एक वर्ष शेष है, एक बार वरण कर लेने पर उसके अतिरिक्त किसी अन्य को पति रूप में न केवल अस्वीकार करती है, उसे अनुचित और पाप भी मानती है। इस प्रकार वह व्यक्तिगत सुख का भी त्याग करती है—

> निज सौख्य हित शुभ धर्म को मैं आज जो त्यागूँ भला,
> कलुषित करूँ निज गात को जग में कहाऊँ पुश्चला।
> है वर लिया जिस व्यक्ति को मन से न त्यागूँ मैं कदा,
> अधिराज मनसा, कर्म, वच संकल्प का है सर्वदा।[3]

---

१. भंग में रंग—पद ५०, पृ० ११।
२. वही, पद ८५, पृ० १९।
३. भंग में रंग—पद ६४, पृ० १४।

अपने पिता से वह दृढ़तापूर्वक अपनी यह भावना प्रकट करती है—

अधिकन्तु अतिशय धैर्य से उसने कहा नरपाल से,
हे तात बच सकता नहीं कोई कभी यम जाल से।
हैं वर्ष क्या, जो कुँवर की उत्क्रान्ति होवे आज ही,
तो भी करूँ मैं आर्य-महिला-धर्म्म धवलित तज मही।[1]

पति-संग सुख से, चाहे पति का शरीर निर्जीव ही क्यों न हो गया हो, अधिक महत्त्वपूर्ण वह अन्य किसी सुख को नहीं मानती। इस सुख-प्राप्ति में अपने शारीरिक कष्ट की भी चिन्ता नहीं रह जाती। यम के पीछे जाते हुए वह स्पष्ट कहती है—

जाते जहां आराध्य मम जाती चली मैं हूँ वहीं,
पति-संग सुख के सामने श्रम स्वेद रह जाते नहीं।[2]

खण्ड काव्य की सीमा के कारण सावित्री के अन्य गुणों के चित्रण के लिए कवि के पास न अवकाश था और न ऐसा करना उसके उद्देश्य विशेष में सहायक ही था। अतः सावित्री के गुणों-शील, त्याग, कष्ट सहिष्णुता आदि पर ही उसने बल दिया है। इन गुणों के साथ उसकी प्रत्युत्पन्न बुद्धि और चातुर्य भी पाठकों को प्रभावित करता है, किन्तु सभी चारित्रिक विशेषतायें इस आख्यान के परम्परागत रूप के साथ ही जुड़ी हुई हैं, कवि ने कोई मौलिक उद्भावना नहीं की है। सावित्री के आदर्श पत्नी रूप का चित्रण उद्देश्य होने के कारण अन्य किसी चरित्र के चारित्रिक वैशिष्ट्य के उद्घाटन की ओर ध्यान नहीं दिया गया है। सत्यवान को भारतीय परम्परा के धीरोदात्त नायक के गुणों से युक्त बतलाकर कवि कथा-विकास में आगे बढ़ गया है। त्रिपाठी जी ने एक ही छन्द में सत्यवान को धीरोदात्त नायक के रूप में प्रतिष्ठापित कर दिया है—

युत शील-सद्गुण-विनय वह लावण्य शोभा धाम है,
अवलोक वपु उस वीर का लज्जित मनोहर काम है।
वह सत्य शील महान् है, सत्यवान उसका नाम है।[3]

कलात्मकता की दृष्टि से यह सामान्य काव्य है। छन्द रचना कहीं-कहीं त्रुटिपूर्ण है। यत्र तत्र भाषा भी बोझिल और गद्यात्मक हो गई है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित छन्द की दूसरी पंक्ति में मात्रा भंग है—

१. भंग में रंग पद ६२, पृ० १४।
२. वही, पद ११८, पृ० २५।
३. भंग में रंग—पद ५६, पृ० १३।

अनुपम अलौकिक कन्यकोचित वय किशोर ललाम है,
वह सत्यशील महान हैं, सत्यवान उसका नाम है।[1]

सम्पूर्ण काव्य खड़ीबोली में मात्रिक छन्द में लिखा गया है। भाषा संस्कृतनिष्ठ है। तत्सम शब्दों के प्रयोग की बहुलता है। 'वत्सर त्वरागत हो गया', 'शोभाम्बुनिधि पैठी हुई' जैसे प्रयोग खड़ीबोली में लिखे गये काव्यों में प्रारम्भिक प्रयास के उदाहरण हैं। यह रचना निश्चय ही आयास-जन्य है, सहज प्रस्फुटित नहीं। भाषा की यह स्थिति उस युग की सीमा थी। संस्कृत के 'तव', 'मम' आदि शब्दों का द्विवेदी-युगीन भाषा-परम्परा के अनुसार त्रिपाठी जी ने प्रयोग किया है। संस्कृत गर्भित तत्सम भाषा के उदाहरण स्वरूप निम्नलिखित छन्द को देखा जा सकता है—

राजर्षि-संशय-विटप को उन्मूल करके नृप त्वरा।
उद्वाह कार्यारम्भ करने झट लगा तब सुख भरा।[2]

कलात्मक दृष्टि से कहीं-कहीं सुन्दर चित्रात्मक वर्णन कवि ने किया है। उदाहरण के लिए यम के रूप का वर्णन है—

लम्बी भुजाएँ नेत्र नीरज रक्त के उपमान थे।
सुमयूष-माली, कान्तिशाली सूर्य सम द्युतिमान थे।[3]

अलंकारों में अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि का प्रयोग अधिक किया गया है, यथा—

अनुप्रास— हो चित्त चंचल चंचला सम चंचलित चलने लगा।[4]
रूपक— पाण्डित्य-रवि-आलोक से सरसिज हृदय जो खिल गया।[5]

इसमें 'पाण्डित्य' उपमेय और 'सूर्य का आलोक' उपमान है। उसी तरह 'हृदय' उपमेय और 'कमल' उपमान है। अभेद आरोप के कारण रूपक है। पाण्डित्य-रवि-आलोक रूढ़ उपमान योजना से अलग है, यह द्रष्टव्य है।

कहीं-कहीं प्रसिद्ध उपमान को लेकर भी उसकी योजना इस प्रकार की गई है कि उसमें नवीनता आ गई है। यम के काले दाँतों की उपमा कवि ने

---

१. भंग में रंग।
२. वही, पद ७८, पृ० १७।
३. वही, पद १०८, पृ० २३।
४. वही, पद ६६, पृ० १५।
५. वही, पद ३९, पृ० ९।

लाल कमल पर बैठी हुई भौरों की घनी पंक्ति से की है, इससे भी एक बिम्ब उभरता है।

कुछ स्थलों पर नीतिपरक दृष्टिकोण अलंकार-योजना में भी अनायास आ गया है। जिस प्रकार तुलसी के कुछ आलंकारिक प्रयोगों में प्रस्तुत से अधिक अप्रस्तुत हो गया है, उसी प्रकार इस काव्य में भी कहीं-कहीं प्रभाव की दृष्टि से प्रस्तुत गौण है और अप्रस्तुत प्रधान हो गया है, जैसे—

सानन्द आलिंगन परस्पर है कहा जाता कहाँ ?
अनुराग और विराग सम्मेलन हुआ मानो वहाँ।[1]

छंद-भंग के अतिरिक्त कुछ सुरुचिविहीन प्रयोग भी खटकते हैं, जैसे—

निज जीवांकुर सर्वदा वाणी सुधा से सींचती,
कहने लगी बाला वहाँ पति-खेद-कीली खींचती।[२]

इन कतिपय त्रुटियों के बावजूद खड़ीबोली के प्रारम्भिक युग की रचना होने के कारण हिन्दी के खण्ड-काव्य के विकास में इस खण्ड-काव्य का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

कुल मिलाकर यह काव्य कथा की रोचकता, सोद्देश्यता और चारित्रिक उत्कर्ष से युक्त है, किन्तु शुद्ध काव्य-सौन्दर्य अथवा कलात्मक प्रभाव की दृष्टि से इसे श्रेष्ठ काव्य की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता।

**गंगावतरण**

'गंगावतरण' जगन्नाथदास 'रत्नाकर' कृत पौराणिक आख्यानमूलक खण्डकाव्य है। इस खण्ड-काव्य की रचना १४ मई सन् १९२१ में आरम्भ हुई और १५ जून सन् १९२१ तक गंगा जी के हरिद्वार पहुँचने तक का वर्णन लिखा गया। रत्नाकर जी का विचार इस काव्य को इसी प्रसंग पर समाप्त करने का था, किन्तु मित्रों के अनुरोध पर उन्होंने सगर-पुत्रों के उद्धार तक की कथा लिखी। अतः वर्तमान रूप में यह खण्डकाव्य सं० १९८० में पूर्ण हुआ। गंगावतरण भी रत्नाकर जी का प्रसिद्ध और चर्चित खण्डकाव्य है, इसलिए यहाँ संक्षेप में उसके सम्बन्ध में विचार किया जा रहा है।

महाराज सगर के साठ हजार पुत्रों के उद्धार के लिए भगीरथ द्वारा गंगा को स्वर्ग से पृथ्वी पर ले आने की प्रसिद्ध कथा इस काव्य का उपजीव्य

१. भंग में रंग—पद ७६, पृ० १६।
१. वही, पद १३६, पृ० २९।

है। यह काव्य १३ सर्गों में विभक्त है। इसका कथा-फलक बहुत विस्तृत नहीं है। संक्षेप में कथानक यह है—अयोध्या में सगर नामक एक प्रतापी राजा थे। उनकी दो रानियाँ थीं—केसिनी और सुमति। फिर भी राजा निस्संतान थे। दोनों पत्नियों को लेकर वे हिमालय स्थित भृगु ऋषि के आश्रम में गये। सहस्र वर्ष तपस्या की। ऋषि ने वरदान दिया, जिसके परिणामस्वरूप केसिनी को असमंजस नामक एक पुत्र और सुमति को साठ हजार बलशाली पुत्र हुए। असमंजस अत्यन्त बल-विक्रम युक्त होते हुए भी उद्धत था। उसकी उद्धतता से प्रजा त्रस्त हो उठी। राजा सगर ने उसे गृह-निष्कासन दे दिया और उसके पुत्र अंशुमान को युवराज-पद दिया गया। राजा ने इसी बीच अश्वमेध यज्ञ करने का निश्चय किया। श्यामकर्ण नामक सुन्दर अश्व सगर के साठ हजार वीर पुत्रों के संरक्षण में दिग्विजय के लिए छोड़ा गया। अश्व सम्पूर्ण पृथ्वी की परिक्रमा करके लौट आया, बाँधना तो दूर किसी ने उसकी ओर देखने का भी साहस नहीं किया। ईर्ष्यालु इन्द्र ने छलपूर्वक अदृश्य रहकर उस अश्व का अपहरण कर लिया, लेकिन सगरके प्रताप के कारण इन्द्रपुरी में रखने का साहस उन्हें नहीं हुआ। पाताल में जहाँ कपिल मुनि तपस्या कर रहे थे, उसने अश्व को छोड़ दिया। अश्व के अचानक अपहृत होने से सगर चिंतित हो उठे, पृथ्वी पर चारों ओर खोजा गया, किन्तु अश्व नहीं मिला। ज्योतिषियों की गणना के अनुसार तब पाताल में उसकी खोज हुई। साठ हजार सगरपुत्र वहाँ पहुँचे, कपिल के आश्रम में घोड़े को देखकर सगर-पुत्रों ने उन्हें ही अपहर्ता समझा और क्रुद्ध होकर कोलाहल करते हुए उन्हें दण्डित करने के लिए दौड़े, कोलाहल से तपस्या-लीन कपिल की आँखें खुलीं, क्रोध उत्पन्न हुआ और उस क्रोधाग्नि में साठ हजार सगर-पुत्र जलकर भस्म हो गये। बहुत दिनों तक उनका कोई समाचार न मिलने पर उनकी खोज के लिए सगर की आज्ञानुसार अंशुमान निकले। खोजते हुए पाताल पहुँचने पर गरुड़ द्वारा सम्पूर्ण वृत्तान्त मालूम हुआ। अंशुमान के अनुनय पर गरुड़ ने ही यह भी बताया—ब्रह्मद्रव स्वरूप गंगा की धारा ही इनका उद्धार कर सकती है। गरुड़ से उस ब्रह्मद्रव स्वरूप गंगा का पूर्ण वृत्तान्त जानकर अंशुमान घोड़े के साथ अयोध्या लौट आये। कुछ समय बाद कुलगुरु वशिष्ठ से निर्देश लेकर अंशुमान गंग-धार की प्राप्ति हेतु ब्रह्मा की तपस्या के लिए हिमालय गये। किन्तु तपस्या करते हुए ही वे दिवंगत हो गये। तब उनके पुत्र दिलीप ने गुरु से तपस्या की अमुमति माँगी, किन्तु उन्हें रोग ग्रस्त होने के कारण अनुमति नहीं मिली।

दिलीप की मृत्यु के बाद भगीरथ राज्यासन पर बैठे। भगीरथ ने युवावस्था में ही तपस्या प्रारम्भ कर दी। ब्रह्मा उनकी तपस्या से द्रवित हो उठे, उन्होंने वरदान-स्वरूप गंग-धार देना स्वीकार कर लिया, किन्तु इसके लिये भगवान शंकर को आराधना द्वारा प्रसन्न करने का सुझाव उन्होंने भगीरथ को दिया, क्योंकि उस ब्रह्मद्रव के वेग को सहन करने की शक्ति पृथ्वी में नहीं थी। केवल भगवान शंकर ही अपने शीश पर धारण करके उसके वेग को रोक सकते थे। भगीरथ ने तपस्या द्वारा भगवान शंकर को भी प्रसन्न किया। शंकर को वचन-बद्ध और प्रसन्न देखकर ब्रह्मा ने गंग-धार को कमण्डल से छोड़ा। गंगा ने रौद्र रूप धारण किया, किन्तु शंकर के पास आकर उन पर ऐसी मुग्ध हुईं कि जटा-जूट की वन-वीथियों में अनेक संवत्सर तक विचरण करती रहीं। भगीरथ पुनः चिंतित हुए और भगवान शंकर को उनके वरदान का पुनः स्मरण दिलाया, परिणामस्वरूप शंकर के अनुरोध पर गंगा ने पृथ्वी पर आगमन किया। किन्तु गंगोत्री से उतर कर घाटी में आते ही राजर्षि जह्नु के वश में हो गईं, गंगजल से अपने यज्ञ-ध्वंश को देखकर जह्नु ने अपनी वह अंजलि फैला दी जिसमें गो-लोक विहारी रहते हैं और उनका सामीप्य पुनः पाने का अवसर गंगा नहीं छोड़ सकीं। परन्तु भगीरथ की प्रार्थना पर जह्नु ने उन्हें मुक्त किया। तभी से जाह्नवी नाम पड़ा। भगीरथ के साथ वहाँ से निर्बाध गंगा चलीं, हरिद्वार, उत्तरकाशी और प्रयाग, काशी होती हुई गंगासागर पहुँची और फिर पाताल में कपिल मुनि के आश्रम को सींचतेहुए उन्होंने सगर-पुत्रों का उद्धार किया।

यद्यपि इस काव्य का पर्यावसान गंगा-माहात्म्य वर्णन में हुआ है, किन्तु रत्नाकर जी की यह रचना अपने उन प्रसंगों के लिए प्रसिद्ध है जिनमें उन्होंने क्रोध, उत्साह, भय तथा विस्मय के भावों का अत्यन्त ओजपूर्ण वर्णन किया है। ब्रह्मा के कमण्डल से छूटते ही गंगा रौद्ररूप धारण करती हैं। सुरसरि की धाक सुनते ही सारी सृष्टि भयाकुल हो उठती है—

इत सुरसरि की धाक धमकि त्रिभुवन भय पागे।
सकल सुरासुर विकल विलोचन आतुर लागे॥
दहलि दसों दिगपाल विकल चित इत-उत धावत।
दिग्गज दिग दंतनि दबोचि दृग भभरि भ्रमावत॥[1]

आलम्बन गंगा का भयंकर रूप, उद्दीपन भयंकर दृश्यों का दर्शन, अनुभाव व्याकुलता, इधर-उधर भागना और दिग्गजों का दिशाओं को दांतों से

१. गंगावतरण—सर्ग ७, छन्द ५।

दबोचना और आँखों का भभरकर भ्रमित होना है। इस प्रकार गंगा के आगमन के वर्णन में भयानक रस का पूर्ण और सशक्त परिपाक हुआ है। इसके बाद ही गंगा के रौद्र रूप का रत्नाकर जी ने बहुत ही प्रभावपूर्ण चित्रण किया है, जब गंगा इस दृढ़ निश्चय के साथ अवतरित होती हैं—

गंग कह्यौ उर भरि उमंग तौ गंग सही मैं।
निज तरंग बल जौ हर गिरि हर संग मही मैं।
लै सवेग-विक्रम पतालपुरि तुरत सिधाऊँ।
ब्रह्मलोक कौं बहुरि पलटि कंदुक इव आऊँ।

गंगा की भाव-मुद्रा को देखकर शिव में जिस वीरतापूर्ण उत्साह का संचार होता है, उसका भी कवि ने बहुत ही ओजपूर्ण वर्णन किया है। उत्साह के अनुभावों की माला-सी कवि ने पिरो दी हैं, जिसके कारण पाठकों पर तुरन्त अभीष्ट प्रभाव पड़ता है। उत्साह के अनुभावों का ऐसा गुंफन अन्यत्र कदाचित ही मिले। कुछ छन्द द्रष्टव्य हैं—

वर बाँहनि कर फेरि चाँपि चटकाइ आँगुरिनि।
वच्छस्थल उमगाइ ग्रीव उचकाइ चायभिनि।
तमकि ताकि भुजदंड चंड फरकत चित चोपे।
महि दबाइ दुहुँ पाय कछुक अन्तर सौं रोपे।
मनु बल-विक्रम-जुगल खंभ जग-थंभन-हारे।
धीर-धरा पर अति गंभीर दृढ़ता-जुत धारे।
जुगल कंध बल-संध हुमकि हुमसाइ उचाए।
दोउ भुजदंड उदंड तोलि ताने तमकाए।
कर जमाइ करि हायँ नैन नभ ओर लगाए।
गंगागम की बाट लगे जोहन हर ठाए॥[1]

जैसा कि कवि ने कहा है सचमुच ही 'वीर रौद्र दोउ रस उदार झलक रंग रंग तें', कवि के साथ पाठक भी इन रसों में डूब जाते हैं। गंगावरण का 'सप्तम सर्ग' भाव और अभिव्यंजना दोनों ही दृष्टियों से इस काव्य का प्राण है। वीररस का ओजपूर्ण चित्र उन प्रसंगों में भी प्रभावपूर्ण है, जिनमें अश्वमेघ के घोड़े के साथ साठ हजार सगर-पुत्र पृथ्वी की परिक्रमा करते हैं और फिर अश्व के अपहरण के बाद उसकी खोज में सारी पृथ्वी पर आतंक उत्पन्न कर देते हैं। अन्तिम सर्गों में गंगा का माहात्म्य मुख्य रूप से वर्णित है।

---

१. गंगावतरण–सप्तम सर्ग, छन्द ११, १२, १३; पृ० ६०।

ब्रज-भाषा का यह बहुत ही सशक्त काव्य है। द्विवेदी युगीन परम्परा के अनुसार 'देशभक्ति और जाति-प्रेम' की भावना इसमें भी भगीरथ के माध्यम से कवि ने प्रकट की है। भगीरथ के वरदान माँगने पर गंगा की भगीरथ के प्रति यह उक्ति द्रष्टव्य है—

यह सुनि पुनि धुनि भई धन्य तव नय निपुनाई।
देशभक्ति भरपूर जाति अनुरक्ति सुहाई ॥[1]

अलंकारों में अनुप्रास, यमक, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, सन्देह आदि का विशेष रूप से प्रयोग किया गया है। अलंकारों का उपयोग चमत्कृति के लिए किया गया न होकर मुख्यतः भाव-सौन्दर्य की वृद्धि अथवा चित्रात्मकता के लिए किया गया है। 'सप्तम सर्ग' में संदेह और उत्प्रेक्षालंकार की बहुत ही कुशल योजना कवि ने की है—

स्वाति-घटा घहराति मुक्ति-पानिप सौं पूरी।
कै धौं आवति झुकति सुभ्र-आभा-रुचि रूरी।[2]

भाषा परिनिष्ठित है, देशज शब्दों के साथ लोकोक्तियों और मुहावरों का सुन्दर प्रयोग किया गया है। जहाँ स्वामी का पसीना गिरे, वहाँ खून बहाना, बाल की खाल खींचना, रंग में भंग पड़ना, शत्रु का रंग होना, चोरों का जी आधा होना, घोड़ा बेंचकर सोना (३।१६), उत्साह और आनन्द पर पानी फिर जाना (५, १२) आदि का छन्दों में कुशलतापूर्वक विन्यास किया गया है। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

नीति पाल जिहि सचिव बाल की खाल खिचैया।
सेनप स्वामि-प्रसेद-पात-थल रक्त सिंचैया ॥[3]

इस प्रकार ब्रजभाषा काव्य-परम्परा का यह एक सशक्त काव्य है। किन्तु उद्धव-शतक की तरह यह ब्रजभाषा की रीतिकालीन परम्परा का काव्य न होकर द्विवेदी युगीन काव्य-दृष्टि और भाव-बोध से युक्त खण्डकाव्य है। गंगावतरण के माध्यम से प्राचीन भारत के गौरवपूर्ण अतीत का स्मरण तो है ही, साथ ही जातीय भावना और देश-भक्ति का रंग भी इसमें है।

**कीचक-वध**

बाबू शिवदास गुप्त 'कुसुम' रचित 'कीचक-वध' पाँच सर्गों में लिखा

---

१. गंगावतरण—सर्ग १३, छन्द १६।
२. वही, सर्ग ७, छन्द २१।
३. गंगावतरण—सर्ग ३, छन्द ७।

गया खण्ड-काव्य है। कथानक सम्पूर्णतः महाभारत के कीचक-वध प्रसंग पर आधृत है, किसी नए प्रसंग की उद्भावना नहीं की गयी है। कथावस्तु में नाटकीय योजना अथवा काव्यात्मक और भावात्मक प्रसार न होकर इस प्रसंग के मूल सूत्रों को इतिवृत्तात्मक ढंग से पिरो दिया गया है। वस्तुतः काव्य से अधिक यह एक पद्यबद्ध कथा है। 'निवेदन' में कवि ने लिखा है—'पद्यबद्ध कहानियाँ लिखने की मेरी बड़ी इच्छा है। इसी इच्छा के वशीभूत होकर कोई एक वर्ष हुआ मैंने 'मागधी' नामी कहानी लिखी थी—यह रचना भी उसी इच्छा की दूसरी पूर्ति है।' पुस्तक के मुखपृष्ठ पर शीर्षक के साथ 'वीररसपूर्ण सचित्र खण्डकाव्य' विशेषण के अनुसार कवि का उद्देश्य इस कथा के आधार पर वीररसात्मक खण्डकाव्य की रचना है। अतः पद्यबद्ध कथा और खण्डकाव्य शब्द का प्रयोग कवि ने समानार्थी के रूप में किया है, वैसे भी पद्यात्मकता और कथात्मकता खण्डकाव्य के आवश्यक गुण माने गये हैं और उस युग में तो इनके तात्त्विक अन्तर की गहराई में जाने की स्थिति भी नहीं थी। जहाँ कवि कोई उपदेश देना चाहता है या शिक्षाप्रद और नीतिपरक कथन उसका अभीष्ट है, वहाँ वह काव्यात्मकता छोड़ कथात्मकता की ओर उन्मुख होता हुआ अवश्य दिखाई पड़ता है, जिसका आधारभूत कारण द्विवेदी-युगीन प्रवृत्ति है।

इस खण्डकाव्य का प्रतिपाद्य भी युगीन प्रभाव से मुक्त नहीं है। ईश्वरीय-विधान और कर्मफल में कवि की पूर्ण आस्था है। प्रमाण है 'कीचक वध' शीर्षक के नीचे लिखी स्वरचित यह उक्ति—

मत भूलो इस विश्वराज्य का ईश्वर शासन करता है।
जो जैसा करता है इसमें, वह वैसा ही भरता है॥

परम्परागत मंगलाचरण से काव्य का प्रारम्भ भी किया गया है, और उसमें भी भगवद्भक्ति की कामना की गई है—

हे सम्बल ! मुझ बल विहीन को जीवन बल दो।
भक्तिभवन ! निज भक्ति-भावना मुझे अटल दो।
हे अनन्त ! तव चरण कमल में मेरी रति हो।
हे कवि ! तव कविता कलाप में अविचल रति हो।

मंगलाचरण का दूसरा छन्द महत्त्वपूर्ण है। सरस्वती की वन्दना करते हुए कवि ने उत्तम बुद्धि और उत्तम विचार के साथ भाषा-शक्ति और 'अनुपम अलंकार' के दान की भी प्रार्थना की है। यद्यपि विनम्रता निवेदन

की रूढ़ि का पालन करते हुए उसने अपने को 'तुक्कड़ कवि' माना है, किन्तु 'सरस्वती वन्दना' में की गई कामना से पता चलता है कि वह खड़ीबोली में भावों की अभिव्यक्ति की क्षमता चाहता है। साथ ही आलंकारिक सौन्दर्य से युक्त रचना को ही काव्य मानता है। कवि की मान्यता उसकी कृति में चरितार्थ नहीं हुई है, किन्तु इससे द्विवेदी युगीन कवियों की काव्य सम्बन्धी व्यक्तिगत धारणा का पता चलता है।

मंगलाचरण के पश्चात् कथा प्रारम्भ करने के पूर्व प्रारम्भिक ३ छन्दों में 'स्वार्थ भावना' की निन्दा की गई है—

स्वार्थ अनर्थों का कारण है, स्वार्थ पाप है।
स्वार्थ मोह का मूल, द्वन्द्व की अमिट छाप है।
स्वार्थ न्याय का धर धर करके गला दबाता।
बड़े बड़े आसुरी कार्य इससे करवाता।[1]

जहाँ भी कवि को थोड़ा भी अवकाश मिला है, स्वदेश-प्रेम और स्वाभिमान के प्रति अपना आग्रह प्रकट किया है, जैसे द्यूत द्वारा छल से पाण्डवों का सब कुछ जीत कर उनके निरन्तर अपमान का संक्षिप्त वर्णन करने के बाद तुरन्त कवि ने स्वाभिमान के महत्त्व पर प्रकाश डाला है—

वह नर, नर ही नहीं न जिसमें स्वाभिमान है।
और न अपनेपन का जिसको तनिक ध्यान है।
मृतक पिण्ड है अथवा यों कहिये कि श्वान है।
अथवा नर होकर भी वह पशु के समान है।[2]

प्रथम सर्ग में ३० छन्दों में जुये में हारे पाण्डवों का बारह वर्षों तक वन-भ्रमण और अन्तिम वर्ष अज्ञातवास में रहना निश्चित करने का संक्षिप्त वर्णनात्मक उल्लेख है। वर्णन की शैली शुद्ध इतिवृत्त कथन की है। उदाहरण स्वरूप युधिष्ठिर के पूछने पर कि 'हे अर्जुन तुम ऐसा कोई स्थान दिखाओ' अर्जुन का यह उत्तर—

तब अर्जुन ने मत्स्य देश का नाम बताया।
सब लोगों ने उसी जगह चलना ठहराया।
वीरों को अज्ञातवास का अवसर आया।
काल बली ने क्या क्या पलटा नहीं दिखाया।[3]

१. कीचक वध : शिवदास गुप्त, सर्ग एक, छन्द ३।
२. वही, छन्द १०, पृ० १३।
३. कीचक वध : शिवदास गुप्त, प्रथम सर्ग, छन्द ३०।

द्वितीय सर्ग का प्रारम्भ भी उपदेशात्मकता से होता है। यहाँ कवि सम्बोधन शैली अपनाते हुए प्राचीन जातीय गौरव की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करता है—

पाठक ! आओ, अब प्रसंग परिचय करें।
देश-काल का मानचित्र सम्मुख धरें।
सुख-दुख के अनुभव करने की शक्ति हो।
और पूर्वजों की गाथा में भक्ति हो।[1]

पाण्डवों के अज्ञातवास की कथा लिखने का आग्रह कवि अपनी कलम से करता है—

क्यों न लेखनी तत्पर होकर सर्वथा,
लिखो आज अज्ञातवास की वह कथा।[2]

उसके बाद शुद्ध वर्णनात्मक कथा कही गई है। सभी पाण्डव और द्रोपदी वेश बदल कर मत्स्यराज विराट् के दरबार में जाते हैं और प्रख्यात कथा की तरह ही विभिन्न कर्मों में अपनी विशिष्ट निपुणता बताते हुए नौकरी चाहते हैं। दूसरे सर्ग में छद्मवेश में द्रोपदी के साथ पाँचों पाण्डवों का विराट के सामने जाकर सेवक बनने की प्रार्थना करना और विराट द्वारा उनकी प्रार्थना स्वीकार किये जाने का वर्णनात्मक इतिवृत्त है। उदाहरण के लिए छद्मवेशधारी भीम का यह कथन ले सकते हैं—

हे पृथ्वीपति बल्लभ मेरा नाम है।
उत्तम उत्तम पाक बनाना काम है।
अतः कृपा कर मुझको किंकर कीजिये।
सूपकार पद दान भूपवर दीजिये।[3]

सहदेव का यह कथन—

गायों के गुण-दोष सभी पहचानता।
पशु वर्गों की औषधियाँ भी जानता।
मेरा नाम 'अरिष्ट नेमि' मैं ग्वाल हूँ।
रख लो हे भूपाल ! महा कंगाल हूँ।[4]

---

१. कीचक वध : शिवदास गुप्त, दूसरा सर्ग, छन्द २।
२. वही, छन्द १।
३. वही, दूसरा सर्ग, छन्द १७।
४. वही, दूसरा सर्ग, छन्द ३४।

सर्ग के अन्त में कवि शाब्दिक सहानुभूति और दुःख व्यक्त करते हुए कहता है—

हाय न किसको सुनकर के होगी व्यथा।
पंच पाण्डवों की करुणापूरित कथा।
पाठक जो कुछ देवेच्छा थी हो चुकी।
यह निर्जीव लेखनी भी दुख से चुकी।[१]

तीसरे सर्ग में छन्द परिवर्तन के साथ ११ छन्दों में भारतीयों के प्राचीन गौरव का स्तवन किया गया है—

पुराकाल में भारत नरपुंगव ऐसे ही होते थे।
रहते थे सत्कर्म भाव से, बीज धर्म के बोते थे।
ऐसे थे जिनके सम्मुख यह दुनिया शीश झुकाती थी।
कोई शक्ति न जिनके आगे आँख दिखाने आती थी।[२]

उस काल की नारियों के आदर्श चरित्र और सतीत्व का गौरव गान करते हुए कवि वह भूमिका प्रस्तुत करता है जिसमें द्रौपदी और कीचक प्रसंग की कथा द्वारा वह एक सती नारी के आदर्श को पाठकों के सामने रख सके—

देवतुल्य अपने स्वामी की पूजा निशि दिन करती थी।
सपने में भी किसी और का ध्यान न मन में धरती थी।
उनके ही आदर्श चरित्र का ध्यान निरन्तर लाता हूँ।
पाठक! एक सती का सम्प्रति चारु चरित्र सुनाता हूँ।[3]

तत्पश्चात् द्रौपदी के सौन्दर्य पर विराट के साले कीचक का मुग्ध होकर उससे प्रेम निवेदन वर्णित है। इस प्रकार कवि की घोषणा के अनुसार इस सर्ग का केन्द्रीय भाव यह है—

एक ओर था अचल मनोबल और दूसरे तट कुविचार।
× × ×
कामी कीचक चला वहाँ से होकर मन में परम निराश।[४]

चौथे और पाँचवें सर्ग में कीचक द्वारा षडयन्त्रपूर्वक द्रौपदी के सतीत्व

---

१. कीचक वध : शिवदास गुप्त, छन्द ४७।
२. वही, तीसरा सर्ग, छन्द ८।
३. वही, छन्द ११।
४. वही, छन्द ३८।

हरण के प्रयास और अन्त में भीम द्वारा उसके वध की कथा वर्णनात्मक पद्धति पर ही कही गई है। कथा वही है जो महाभारत में है, बल्कि उसे और संक्षेप में कहा गया है।

काव्यत्व की दृष्टि से रूप-सौन्दर्य-वर्णन के प्रसंग अवश्य सुन्दर हैं। कवि का मन उसमें रमा है और वहीं उसने आलंकारिक चित्रण भी किया है। यद्यपि रूढ़ उपमानों का ही प्रयोग किया गया है, तब भी परम्परागत चित्रण-विधान की सीमा के भीतर वह प्रभावपूर्ण है। कीचक के रूप-लोभ के माध्यम से कवि ने द्रौपदी के सौन्दर्य का कई छन्दों और विविध अलंकारों का निरूपण करते हुए चित्रण किया है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

उपमा—  तेरे कुंचित केश हृदय को नागिन सा डंस जाते हैं।[1]

उत्प्रेक्षा—  तेरी भुज-डालों पर मानो रवि ने दिया हिंडोला है।
रस की बूंदें टपक रही हैं, डालें पकड़ हिलोरा है।[2]

अनुप्रास— रह रह करके लंक लचीली लोनी लता लचाती हो।
त्रिबलि त्रिशूल बाँध कर कटि में बार बार डरपाती हो।[3]

रूपक—  मुख पर खोल हास्य आती हो दाड़िम दशन दिखाती हो।
सब कुछ है पर रूपसुधा का स्वाद न मुझे चखाती हो।[4]

किन्तु अलंकार-योजना में भी काव्य प्रतिभा की प्रौढ़ता नहीं दिखाई पड़ती, अन्यथा कवि प्रतीप अलंकार का इतना सीधा और भोंड़ा प्रयोग न करता—

मधुर मधुर बिम्बा से भी रंग में नम्बर ले जाता है।[5]

भाषा सहज और सरल खड़ीबोली है। लगता है जैसे पाठकों को भी ध्यान में रखकर यह काव्य लिखा गया है। कुछ शब्दों को छन्दपूर्ति के लिए गढ़ा है, जैसे—'प्रगट' को 'प्रगटित'।

भाषा-शक्ति वरदान रूप में कवि ने माँगी जरूर है, मगर भाव-बोधात्मकता में कहीं-कहीं वह अशक्त लगने लगती है। उदाहरणस्वरूप—

---

१. कीचक वध : शिवदास गुप्ता, तृतीय सर्ग, छन्द २४।
२. वही, छन्द २५।
३. वही, छन्द २६।
४. वही, छन्द २६।
५. वही, छन्द २५।

ज्यों पिसिताकांक्षी सिंह चढ़े हाथी पर,
त्यों भीम कूद कर पहुँच गये छाती पर।
फट गया पाप का पेट धर्म विस्तारा,
कीचक-वध हुआ समाप्त भीम ने मारा।[1]

मांस के इच्छुक के लिए 'पिसिताकांक्षी' जैसे अप्रचलित प्रयोग दुरूह भाषा के प्रमाण हैं। पर इसके साथ ही कुछ चलते मुहावरों जैसे 'गुदड़ी के लाल' आदि का प्रयोग भी कवि ने किया है।

प्राचीन गौरव के गान और आदर्श नारी-चरित्र तथा सतीत्व के चित्रण के माध्यम से भारतीयों के सामने चारित्रिक आदर्श प्रस्तुत करना काव्य का उद्देश्य और कवि का अभीष्ट है। भावों के चित्रण के लिए विशेष अवकाश नहीं रहा है और न ऐसे प्रसंगों की उद्भावना में कवि का मन रमा है। सम्पूर्ण काव्य इतिवृत्तात्मक वर्णनात्मक शैली में लिखा गया है। अलंकारों का, वह भी रूढ़ परम्परागत विरल प्रयोग मिलता है। गम्भीर भावों के चित्रण का तो प्रश्न ही नहीं उठता, फिर भी द्विवेदी युगीन काव्य-परम्परा को ध्यान में रखा जाय तो इसे इतिवृत्तात्मक शैली में लिखा गया एक शिक्षाप्रद काव्य माना जायगा और तत्कालीन परिस्थितियों में निश्चय ही इसका प्रभाव भी पड़ा होगा।

**कंस-वध**

श्री श्यामलाल पाठक रचित 'कंस-वध' नामक खण्डकाव्य पौराणिक आख्यान पर आधारित है। लेखक ने भूमिका में लिखा है—

'जब दुराचारी कंस के अमानुषिक अत्याचारों से प्रजा बड़ी व्याकुल हो रही थी, तब भगवान लीलामय योगेश्वर कृष्ण दीन-दुःखी, असहाय, व्याकुल-हृदय प्रजा के प्राण बचाने के लिए तथा उसकी मान-मर्यादा रखने के लिए यदु-कुल में जेल की यन्त्रणा से दुखित आत्मा वसुदेव-देवकी के अंक में पधारे थे।'

श्रीमद्भागवत कथा के इसी प्रसंग को लेकर प्रस्तुत खण्डकाव्य की रचना हुई है। इसे कवि ने सात सर्गों में विभाजित किया है, जो इस प्रकार हैं—

प्रथम सर्ग में प्रकृति-वर्णन तथा वातावरण के उल्लास के वर्णन के उपरान्त कृष्ण-जन्म का उल्लेख है। द्वितीय सर्ग में इस काव्य के नायक मथुरा के राजा कंस के अत्याचारों का वर्णन करते हुए कवि ने कथा को

---

१. कीचक वध : शिवदास गुप्त, पंचम सर्ग, छन्द २५।

अग्रसर किया है। कंस की बहन देवकी की विदा के समय होने वाली आकाशवाणी--

आठवीं जो इसकी सन्तान,
करेगी चूर तुम्हारी शान।
कर गई बिजली का यह काम,
कंस हो गया शीघ्र अविराम।[1]

को सुनकर जब कंस ने सद्यः विवाहिता बहिन देवकी को मारना चाहता है तो वसुदेव कहते हैं--

मुझे यह प्रण है अंगीकार,
तुम्हें आत्मज दूंगा हर बार।[2]

इस पर कंस उन्हें मारता नहीं, कैद कर लेता है।

तृतीय सर्ग में देवकी के सात पुत्रों का संहार कंस कर चुकता है, आठवीं बार जब प्रसव होने को होता है—वसुदेव और देवकी अत्यन्त उद्विग्न होते हैं। उसी समय एकाएक चारों ओर प्रकाश होता है। भगवान विष्णु दोनों को साक्षात दर्शन देकर कहते हैं—अब आप उदास न हों, मैं स्वयं आठवीं बार देवकी के गर्भ से जन्म लूंगा। विष्णु देवकी के गर्भ से बालक के रूप में जन्म लेते हैं और कहते हैं—मुझे नन्द के घर ले चलो।

चतुर्थ सर्ग में वसुदेव बालक कृष्ण को जमुना पार करके नन्दराय के घर ले जाते हैं। वहाँ से यशोदा की नवजात पुत्री माया को लाकर वे ज्यों ही देवकी के पार्श्व में लिटाते हैं, द्वार स्वयं बन्द हो जाते हैं। देवकी के प्रसव की बात सुनकर कंस आ जाता है। देवकी से पुत्री को लेकर ज्योंही वह उसे मारने को उद्यत होता है, वह शक्ति स्वरूपा कन्या आकाश में यह कहती हुई उड़ जाती है—

वहाँ से बोली–दुर्मति कंस,
असुर पापी दल के अवतंस।
पूत वह तेरा कारागार,
ले चुका जन्म विश्व-आधार।[3]

---

१. कंस वध–द्वितीय सर्ग, पद १४, पृ० १२।
२. कंस वध–द्वितीय सर्ग, पद २६, पृ० १५।
३. वही, चतुर्थ सर्ग, पद २८, पृ० ३२।

पंचम सर्ग में यशोदा के घर श्रीकृष्ण की बाल-क्रीड़ा का वर्णन है। बाल-गोपालों सहित राधा के साथ कृष्ण यमुना तट पर कुंजों में केलि करते हैं।

षष्ठ सर्ग में कंस कृष्ण की लीलाओं को सुनकर आतंकित हो उठता है। वह कृष्ण को मथुरा बुलवा कर मरवा देने का प्रयत्न करता है। कंस के दूत के साथ कृष्ण को मथुरा भेजते समय नन्द और यशोदा विह्वल और चिन्तित होते हैं। फिर भी उनके प्रस्थान की तैयारी करते हैं।

सप्तम सर्ग में ग्वाल-बाल इस विश्वास के साथ प्रसन्नतापूर्वक मथुरा जाते हैं कि कृष्ण अवश्य ही कंस का वध कर देंगे। कंस भी मन में भयभीत है। मल्ल-युद्ध के लिए प्रस्थान करते समय वह मल्लों को संकेत करता है--

पकड़ लो यह दोनों ब्रज-बाल
नन्द वसुदेव और सब ग्वाल।

पर उसकी एक नहीं चलती। कृष्ण कंस का केश पकड़ कर खींच लेते हैं और उसका संहार कर देते हैं--

व्योम से हुई पुष्प-दल वृष्टि
हुई फिर सर्व सौख्य की सृष्टि।
हर्षमय गूंज रहा जयनाद,
चतुर्दिशि में था जय संवाद॥

कवि ने प्रख्यात कथानक में अपनी ओर से कोई नवीन उद्भावना तो नहीं की है, किन्तु उसे अपने ही ढंग से सँजोया है। सात्विक प्रेम और हार्दिक भक्ति के आधार पर गिरिधारी, सुवेणुधारी, कुञ्जविहारी कृष्ण के बाल-चरित्र के गुणगान से सिन्धु तरने का प्रयत्न किया है, जैसा स्वयं कवि का बयान है, कथा में निरन्तरता है और वह रोचक भी है। 'प्रारम्भ' में कृष्ण जन्म, तदुपरान्त कंस का वध हो सके, इसके लिए 'प्रयत्न', फिर कृष्ण के समर्थ होने पर कृष्ण द्वारा कंस-वध की 'प्रत्याशा' और कंस के वध के साथ 'नियताप्ति' है और अन्त में आकाश में फूलों की वर्षा होना और सर्वत्र सुख का संचार हो जाना 'फलागम' है। कवि ने कथावस्तु की इन कार्यावस्थाओं का भारतीय दृष्टिकोण से निर्वाह किया है।

काव्य का उद्देश्य भक्ति-भावना और कृष्ण के चरित्र का यश-वर्णन कर अधर्म और असत्य पर धर्म और सत्य की विजय दिखाते हुए जनमानस में ईश्वर के प्रति आस्था और विश्वास जगाना है। प्रस्तुत खण्डकाव्य में कवि ने द्विवेदी-युग में प्रचलित ईश-वन्दना से काव्य के आरम्भ करने की परम्परा

को तोड़ा है। कंस-वध का पहला पद प्रकृति चित्रण से आरम्भ होता है--

प्रकृति क्या सुन्दर सजती साज,
प्रकट जब होता दिनकर-राज।
मुदित पक्षी-रव सुखद महान,
बताता निशीथिनी-अवसान ॥

अन्यत्र भी कवि का मन प्रकृति के सुरम्य वर्णन में रमा है—

पथिक जन पथ-श्रम से थे त्रस्त,
व्योम में सूर्य हो रहा अस्त।
कुमदिनी कान्ता सजती ठाट,
जोहती शशि प्रियतम की बाट ॥[1]

'कंस-वध' का पर्यवसान कंस के वध के साथ हुआ है। अंगीरस करुण और शृंगार सहयोगी है। कंस एक के बाद एक देवकी-वसुदेव की सन्तानों का वध करता चलता है। उस समय देवकी की कातरता मन में अपूर्व करुणा का उद्रेक करती है, यथा—

कहाँ जा छिपे हमारी बार,
खबर जो भूले जगदाधार।
धरा! तू फट जा सहसा आज,
देवकी की रख ले तू लाज ॥[2]

दुखित हैं, भगवन ! ये दो प्राण–
नहीं हरि ! नहीं एक ही प्राण।
बोल यह हुए आप में आप,
देवकी-पति सहसा चुपचाप ॥[3]

शृंगार रस में कवि ने वियोग शृंगार और वात्सल्य शृंगार को अधिक स्थान दिया है। कृष्ण के मथुरा चले जाने पर उनके वियोग में विरह-विदग्ध गोपियों के उद्‌गारों को कवि ने अपने ही ढंग से बाँधा है, यथा—

न कर तू द्विगुणित पीर समीर !
बनाकर हमको अधिक अधीर।

१. कंस-वध—सप्तम सर्ग, पद १७, पृ० ५६।
२. कंस-वध—तृतीय सर्ग, पद ६, पृ० १८।
३. वही, सप्तम सर्ग, पद ७, पृ० ५३।

उड़ाती बार बार क्यों चीर ?
जानती नहीं पवन ! पर-पीर ।।[1]

पवन आलम्बन है और आश्रय गोपियों का हृदय, जोर-जोर से हवा का चलना और चीर का उड़ना आदि उद्दीपन हैं। अधीर होना अनुभाव और इस प्रकार वियोग श्रृंगार का सहज परिपाक हुआ है।

अश्रुगण ! करो हृदय में वास।
सींचते रहना प्रिय-आवास।
कहीं यह प्रेम विरह की आग,
लगा दे नहीं हृदय में दाग।[2]

दूरस्थ प्रिय के प्रति प्रतिबद्धता और स्वयं कष्ट सहकर भी प्रिय को कष्ट न होने देने की भावना वियोग श्रृंगार की चरमावस्था है। वात्सल्य का मनोहारी मर्मस्पर्शी चित्र यशोदा के इस कथन में द्रष्टव्य है—

धुलाऊँगी किसका फिर पंक,
किसे लूँगी सप्रेम स्वअंक।
पिन्हाऊँगी किसको पट-पीत,
खिलाऊँगी किसको नवनीत ?[3]

प्रसाद और माधुर्य गुण से ओत-प्रोत पदावली एवं प्रभावी अलंकार-विधान काव्य के रूपगत सौन्दर्य को एक वैशिष्ट्य प्रदान करता है। रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अर्थालंकारों में कवि का मन विशेष रमा है।[4]

आदि से अन्त तक सोलह मात्रा का छन्द कवि ने अपनाया है। भाषा खड़ीबोली है। सामान्यतः तत्सम शब्दावली का प्रयोग है, परन्तु कहीं-कहीं तुक के लिए शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा भी है, यथा—सत्ती (पंचम सर्ग, पद ६), मुद्दा, दम्पती, पिन्हाना आदि। कहीं-कहीं एकदम संस्कृत-गर्भित शब्द प्रयुक्त हैं, जो सामान्य पाठक के लिए कुछ भारी पड़ते हैं जैसे—अनुसृति (पंचम सर्ग, पद ७), अपिधान (पृ० ५१), इक्षा, रोपित, द्विरद आदि। अहो, हाय, हरे पूरक शब्दों का प्रयोग भी काव्य में है।

---

१. कंस-वध—तृतीय सर्ग, पद १३, पृ० २०।
२. वही, सप्तम सर्ग, पद १०, पृ० ५४।
३. वही, षष्ठ सर्ग, पद ३५, पृ० ४९।
४. वही, प्रथम सर्ग, पद ३, पृ० ३।

पुस्तक में कवि ने अवतारवाद, ईश्वरीय चमत्कार, नियतिवाद और नीतियों के सम्बन्ध में अपनी विचारधारा को स्पष्ट रूप में प्रकट किया है। उदाहरण स्वरूप—

मिले थे जगत-पिता बन पुत्र,
उन्हीं को जो आदर्श-चरित्र।
सहे थे जितने कष्ट अपार,
भूमि का हरने केवल भार ॥[1]

अहो! जग प्रभु-लीला स्थान,
उसी माली का यह उद्यान।
चले जो प्रभु-इच्छा-प्रतिकूल,
उसे वह कर देता निर्मूल ॥[2]

अन्य उदाहरण पृष्ठ १० पद ७, पृष्ठ १३ पद १६–१९, पृष्ठ २४ पद २९, पृष्ठ ३१ पद २७ आदि पर द्रष्टव्य हैं।

इस प्रकार कृष्ण-चरित्र के माध्यम से कवि ने असत्य पर सत्य की, पाप पर पुण्य की एवं अधर्म पर धर्म की विजय दिखाकर उस समय शासकों के अत्याचारों से पीड़ित जनता के मन में आशा और आस्था को प्राणवन्त करके द्विवेदी-युग के काव्य में अपना महत्त्व स्थापित किया है।

**अम्बरीष**

पं० रामनारायण चतुर्वेदी ने इस खण्डकाव्य में भक्त अम्बरीष की प्रख्यात पौराणिक कथा वर्णित की है। भगवान के अनन्य भक्त अम्बरीष को जब अकारण ही क्रुद्ध होकर दुर्वासा ऋषि ने शाप दे दिया तो भक्त की रक्षा के लिये भगवान ने अपना सुदर्शन चक्र चलाया। चक्र से अपनी रक्षा के लिए दुर्वासा तीनों लोकों में घूम आये, पर जहाँ वे जाते सुदर्शन चक्र उनके पीछे-पीछे जाता। अन्त में विष्णु भगवान की शरण में जाने पर भगवान ने दुर्वासा को कहा कि तुम भक्त के अपराधी हो, उसी से क्षमा माँगो, तभी तुम्हें इससे छुटकारा मिलेगा। विवश हो दुर्वासा भक्त अम्बरीष के पास गये और तभी उन्हें चक्र से मुक्ति मिली।

कवि का उद्देश्य क्षमा की क्रोध पर, भलाई की बुराई पर, पुण्य की पाप पर विजय दिखाकर पाठक को इन गुणों को अपनाने की प्रेरणा देना

१. कंस-वध—द्वितीय सर्ग, पद १३, पृ० १९।
२. वही, षष्ठ सर्ग, पद ६, पृ० ४२।

है। भक्त को सर्वोपरि दिखाते हुए उसने भक्ति को तप से ऊँचे स्थान पर बिठा दिया है। सद्भावना और सच्चरित्र को ही कवि कल्याणकारी और स्थायी मानता है—

जीवन अनित, जवानी थोड़ी, जरा व्याधि, तन पीला है।
कुत्सित आशा भरी उमंगें रचतीं जग में लीला है॥
किन्तु एक सद्भाव निरन्तर, सच्चरित्र ही स्थाई है।
जो रमणी इस मग में चलती, वही सुखी, सुखदाई है॥[1]

काव्य में भक्ति को प्रधानता मिली है। भक्त और भगवान के परस्पर सम्बन्ध पर प्रकाश डालते हुए आद्यंत उस सर्वव्यापी निर्गुण ब्रह्म की महिमा का गुण-कीर्तन किया गया है, यथा—

निरालम्ब का यह अवलम्बी, इसकी अजब कहानी है।
बिन आकार रूप है इसका, बिन भाषा की बानी है॥
चर औ अचर व्यापिनी शक्ति संचालक जग, तेज अपार।
अनहोनी होनी करता है—परम सत्य इसका आधार॥[2]

भाषा खड़ीबोली है। अन्य भाषा या बोलियों के शब्दों का प्रयोग नगण्य है। यह इतिवृत्तात्मक काव्य है, जिसमें अलंकारों का प्रयोग भी नहीं के बराबर है। हर सर्ग का आरम्भ संस्कृत के शीर्षक से किया गया है, जैसे—

येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां नारायणो गति।[3]

आल्हा छन्द के वजन पर ३१ मात्राओं के छन्द में सम्पूर्ण काव्य की रचना हुई है। उपदेशात्मक दृष्टिकोण होने से सर्वत्र नैतिक मूल्यों को महत्त्व दिया है। हिन्दी के प्रति और देश के प्रति भी कवि के मन में अनुराग है और वह सबके कल्याण की कामना करता है—

श्रद्धा, प्रीति, नित्य मंगल हो, पल में निकले दुष्ट विचार।
सत्व न्याय और धर्म प्रगट हो छाए शान्ति स्वच्छ व्यवहार।
होय समुच्चय सुखी रहें जन, मचे हिन्दी की जगत पुकार।
जो नारायण कृपा करें तो, लक्ष्मी कर दे बेड़ा पार॥[4]

ईश्वर में यही आस्था और विश्वास का स्वर सम्पूर्ण काव्य में व्याप्त है। अराजकता और अस्थिरता के उस काल में नीति और भक्ति का संदेश

---

१. अम्बरीष : रामनारायण चतुर्वेदी, चतुर्थ सर्ग, पृ० २४।
२. अम्बरीष : रामनारायण चतुर्वेदी, चतुर्थ सर्ग, पृ० २६।
३. वही, आठवें सर्ग का शीर्षक।
४. वही, ग्यारहवाँ सर्ग, अन्तिम पद, पृ० ४८।

देकर इस काव्य ने जनता के मानसिक बल को दृढ़ करते हुए उसे उद्बोधित किया।

**द्रौपदी स्वयंवर**

इसमें द्रौपदी स्वयंवर की प्रख्यात पौराणिक कथा पं० रामजी पाण्डेय ने वर्णित की है। काव्य के मुखपृष्ठ पर ही 'खड़ीबोली की कविता का अनुपम नमूना' लिखा है। द्रौपदी के स्वयंवर के लिए सारी पृथ्वी के राजाओं के याज्ञसेनीपुरी में एकत्र होने से आरम्भ होकर द्रौपदी के विवाह के बाद पति-गृह आ जाने तक की कथा इस काव्य का उपजीव्य है।

स्वयंवर और विवाह का वर्णन होने से आद्यंत इसमें शृंगार रस विद्यमान है। स्वयंवर की शर्त का केन्द्र मछली की स्थिति, राजाओं की एवं सभा की शोभा का वर्णन कवि ने विस्तार से किया है। आरम्भ में कवि लिखता है—

नृपति मद सुरापी यंत्र के मध्य में थी,
यक विषम निराली मीन आशा नृपों की।
उन सकल नृपों की लक्ष्य वह हो चुकी थी,
द्रुपद नृप सुता के नेत्र-वाणों विधे थे ॥[1]

द्रौपदी के रूप-वर्णन के लिए कवि ने यह कहकर कि द्रौपदी की छवि का सौन्दर्य कविगण लिखने में भी असमर्थ हैं, बहुत कुछ कह दिया है—

नहिं कविगण शोभा द्रौपदी की कला की,
लिख सकहिं कभी भी लेखनी चक्र खाती।
लखि गति युवती की मुग्ध कोदण्डधारी,
छिन छिनहि सराहें याज्ञसेनी छटा को ॥[2]

कवि ने मानवीय मनोवृत्ति का उल्लेख करते हुए विधाता के रुख का भी उल्लेख किया है—

पर कब सुनता है यों विधाता किसी की।
जब नर करते हैं ध्यान आपत्ति में ही।
वह नृप सब हारे जों भुजा थे दिखाते।
निज बल कुल गर्वी खिन्न सारे हुए हैं ॥[3]

कवि का मत है जब मनुष्य केवल आपत्ति काल में ही ईश्वर का ध्यान करते हैं, इसके अतिरिक्त उसे भजते ही नहीं तो वह भी उनका ख्याल नहीं

१. द्रौपदी स्वयंवर : रामजी पाण्डेय, पद ५।
२. द्रौपदी स्वयंवर : रामजी पाण्डेय, पद २०।
३. वही, पद ३०।

करता, इसलिए उस समय ईश्वर को याद करने पर भी राजाओं को मत्स्य-भेद में सफलता नहीं मिली।

काव्य की भाषा खड़ीबोली है जिसमें अन्य भाषाओं की बोलियों के शब्दों और क्रियापदों का भी समावेश है, जैसे ब्रज के यक, लखि, सराहैं, सकहिं, छिन, किमि आदि। मुहावरों जैसे—गाला-बजाना आदि प्रयुक्त हुए हैं। मालिनी वृत्त में पूरा काव्य रचा गया है। उदाहरणार्थ—

यदि तुम वर योधा वीर ऐसे बली थे,
तब किमि नहिं बेधी मीन तीखे शरों से।
पर अब सबही क्यों गाल झूठे बजाते ?
निज निज गृह जाओ, क्षेम है बस इसी में।।[1]

अतुकान्त होते हुए भी छन्द में लयात्मकता और प्रवाह है, पर कहीं-कहीं मात्रादोष हो गया है। काव्य इतिवृत्तात्मक है, अतः अलंकारों का प्रयोग विशेष नहीं है। जहाँ कहीं हैं वे भी प्रायः रूपक, उपमा तक ही सीमित हैं, जैसे—

अति विशद प्रतापी केशरी तुल्य गामी,
लखि लखि नृप पंक्ती नेत्र होते सुखी थे।[2]
उस वृहत् सभा के मध्य बाला सुहाती,
सखि वर गण युक्ता, राशि सौंदर्य की ज्यों।[3]

इस प्रकार खण्ड-काव्यों के इस युग में आचार्य द्विवेदी की अपेक्षानुसार पाण्डेय जी ने भी पौराणिक आख्यान लेकर अपनी कलम चलाई और खड़ी-बोली के विकास और उसे लोकप्रिय बनाने में योगदान दिया।

पौराणिक आख्यान आदर्श और उपदेश से परिपूर्ण हैं, अतः इन पर आधारित खण्ड-काव्यों ने इस युग में विचलित और पथ-भ्रष्ट होती हुई जनता का मार्ग प्रशस्त किया। प्राचीन गौरव गान और पौराणिक आदर्श चरित्रों के माध्यम से नर-नारियों के चरित्र-निर्माण में सहयोग किया। इन काव्यों के द्वारा अनेक धार्मिक एवं सामाजिक कुरीतियों, जैसे—द्यूत आदि पर प्रकाश डालते हुए उनको तिलांजलि देने की प्रेरणा भी कवियों ने पाठकों को दी। आचार्य द्विवेदी काव्य के माध्यम से चरित्र-निर्माण और सामाजिक चेतना का जो अभ्युदय चाहते थे, इन खण्ड-काव्यों ने उसमें पर्याप्त योग दिया।

---

१. द्रौपदी स्वयंवर : रामजी पाण्डेय, पद ५०।
२. वही, पद ८।
३. वही, पद ४५।

पंचम अध्याय

# ऐतिहासिक खण्ड-काव्य : तात्त्विक विवेचन

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में विदेशी शासकों द्वारा किये गये शोषण और उत्पीड़न से भारतीय जनता त्रस्त थी। अंग्रेज उसे लूट रहे थे, अपमानित कर रहे थे; यहाँ तक कि उसके धर्म और संस्कृति को भी ध्वस्त और खंडित कर रहे थे किन्तु आतंकित और निराश जनता उसके विरोध में खुलकर आवाज तक नहीं उठा पा रही थी। ऐसी स्थिति में आचार्य द्विवेदी ने जनता में चेतना की लहर उठाने, उसका मनोबल बढ़ाने के लिए रचनाकारों को ललकारा। फलतः इतिहास के वीर और आदर्श व्यक्तियों, प्रेरक घटनाओं एवं उपदेशात्मक स्थितियों को कथावस्तु का उपजीव्य बनाकर तत्कालीन कवियों ने रचनायें कीं। स्वतंत्रता और स्वाभिमान के लिए मर मिटने वाले वीर हमीर, चन्द्रगुप्त मौर्य, पृथ्वीराज, रानी पद्मिनी, देवल देवी, वीरांगना वीरा आदि चरित्रों को लेकर खण्डकाव्य लिखे गये। हल्दीघाटी का युद्ध, चित्तौड़-विध्वंस, दिल्ली-पतन, रूस की क्रान्ति और धर्मवीर हकीकतराय की फाँसी जसी घटनायें कवियों की कलम का तेज पाकर ज्योति स्फुलिंग-सी पाठकों के सामने आईं, जिन्होंने निराशा को समाप्त कर जनता में नई चेतना जागृत की। इस अध्याय में इन ऐतिहासिक आख्यान-परक खण्डकाव्यों का तात्त्विक विवेचन किया गया है।

| | |
|---|---|
| हल्दीघाटी का युद्ध—१९०८ ई० | वीर प्रताप—१९०८ ई० |
| रंग में भंग—१९०९ ई० | प्रेम राज्य—१९१० ई० |
| दयानन्द जीवन काव्य—१९१३ ई० | मेवाड़ गाथा—१९१४ ई० |
| महाराणा का महत्त्व—१९१४ ई० | मौर्य विजय—१९१४ ई० |
| चारण—१९१४ ई० | हल्दी घाटी की लड़ाई—१९१५ ई० |
| प्रणवीर प्रताप—१९१५ ई० | भारतीय दृश्य—१९१५ ई० |
| आत्मार्पण—१९१८ ई० | विकट भट—१९१८ ई० |
| चित्तौड़ विध्वंस—१९२१ ई० | वीरांगना वीरा—१९२१ ई० |
| वसुमती—१९२१ ई० | दिल्ली पतन—१९२१ ई० |
| वीर हमीर—१९२२ ई० | पद्मिनी—१९२२ ई० |
| सुहराब और रुस्तम—१९२३ ई० | देवल देवी—१९२३ ई० |

धर्मवीर हकीकतराय—१९२३ ई०    स्वतंत्रता पर वीर बलिदान—१९२३ ई०

**हल्दीघाटी का युद्ध**

ठाकुर लालबहादुर सिंह कृत 'हल्दीघाटी का युद्ध' मेवाड़ के इतिहास पर आधारित एक ऐतिहासिक आख्यान है। राजा मानसिंह के सेनापतित्व में सम्राट अकबर की सेनाओं से राणा प्रताप का हल्दीघाटी के मैदान में युद्ध इस खण्ड-काव्य का उपजीव्य है। दक्षिण में शोलापुर विजय से लौटते समय मानसिंह राणाप्रताप से मिलने जाते हैं। प्रताप उन्हें ससम्मान घर पर टिकाते हैं। स्वादिष्ट व्यंजन के साथ स्वागत करते हैं, पर भोजन के समय स्वयं सिरदर्द का बहाना बनाकर अनुपस्थित हो जाते हैं। मानसिंह कारण समझ जाते हैं और कहते हैं कि बीती बातों को भुलाकर राणा साथ में भोजन करें, अन्यथा उनकी भलाई नहीं है। इस पर प्रतापपुत्र अमरसिंह प्रकट होकर कहते हैं कि यवन के साथ राजा भोजन नहीं करेंगे। मानसिंह अपनी पगड़ी में अन्न चढ़ाकर बिना भोजन किये चलने को तैयार होते हैं कि प्रताप आ जाते हैं। मानसिंह क्रोध से भर उन्हें धमकी देते हैं—

करौं न मर्दन मान तुम्हारा,
तौ न मानसिंह नाम हमारा।[1]

इसके उत्तर में प्रताप कहते हैं कि अकेले मत आना, अपने फूफा अकबर को भी साथ लेकर आना। मानसिंह की त्यौरी चढ़ जाती है, वे अकबर को सारी बात नमक-मिर्च लगाकर बताते हैं और विशाल सेना लेकर सलीम के साथ मेवाड़ पर आक्रमण कर देते हैं। युद्ध में राणा अपने स्वामिभक्त घोड़े चेतक के साथ सलीम पर आक्रमण करते हैं, भाले से महावत गिर जाता है, चेतक की टाप हाथी के मस्तक पर स्थिर हो जाती है—

चेतक हय राना को बाँको।
टाप टेकि गज ऊपर डाँको।[1]

वे सलीम पर वार करते हैं। पर दृढ़ कवच और बीच में फौलादी अम्बारी आ जाने से सलीम बच जाता है। राणा मुगलों से घिर जाते हैं। उनकी जान संकट में देखकर सरदार झाला राणा का छत्र अपने सर पर ले लेता है और प्रताप को वहाँ से हटा देता है। सलीम दो मुगल सैनिकों को

---

१. हल्दीघाट का युद्ध : ठाकुर लालबहादुर सिंह, पृ० ५।
२. हल्दीघाट का युद्ध : ठाकुर लालबहादुर सिंह, पृ० ८।

राणा का पीछा करने को कहता है। वे पीछा करते हैं। शक्तिसिंह देख लेते हैं और वे भी पीछे हो लेते हैं। चेतक नदी पार करता है। यवन सैनिक जरा रुकते हैं, तभी शक्तिसिंह उन्हें मौत के घाट उतार देते हैं।

हल्दीघाटी के युद्ध से सम्बन्धित अन्य रचनाओं में वर्णित इसी प्रख्यात कथा का कवि ने इतिवृत्तात्मक शैली में संक्षेप में वर्णन किया है। इस काव्य में इस संदर्भ में लिखे गये अन्य खण्डकाव्यों से एक कथा बिन्दु अधिक है। वह है–शक्तिसिंह के नाराज होकर मुगलों से मिल जाने का कारण। एक बार प्रताप के अनुज शक्तिसिंह और उदयसिंह के दोनों पुत्र शिकार पर गये थे—रास्ते में सब अपने-अपने बल का बखान करने लगे। बात बढ़ गई—स्पर्धा में सब अपना-अपना भाला लेकर लड़ने को तैयार हो गये, तभी कुल गुरु पहुंच गये। उन्होंने हाथ जोड़कर सबसे आपस में न लड़ने की प्रार्थना की। शक्तिसिंह ने ताव में आकर कुलगुरु पर तलवार चला दी, वे मर गये। गुरु हत्या के कारण शक्तिसिंह को राज्य से निकाल दिया गया, वह दिल्ली चले गये और मुगलों से मिल गये। सलीम द्वारा प्रताप के पीछे दो मुगलों को भेजे जाते देखकर शक्तिसिंह को प्रताप की मौत निकट दिखी। अपना खून जोश लाया, भ्रातृ-प्रेम उमड़ा और उन्होंने सैनिकों का पीछा कर उन्हें मार डाला।

यह काव्य वीररस प्रधान है। युद्ध का वर्णन सजीव और वीरोत्तेजक है—

काटत हाथ, गोड़, धड़, सीसा।  
रुधिर धार बहि चल्यो नदीसा।  
रण देखिहिं दुहुँ दिशि के लोगा।  
देन लगे सुन्दर बलि भोगा।  
यवन अधिक, लखि कम निज वीरा।  
अगु भये राना रनधीरा।  
लागे मारन खड्ग दुधारी।  
कटि कटि मुगल जात यम द्वारी।[1]

इस काव्य की भाषा के विषय में आरम्भ में कवि ने स्वयं लिखा है—

इत राना परतापसिंह, उत बड़ सुत दिल्लीश,  
छंन्द खड़ीबोली विरचि, कहत सुमिरि कवि ईश।

किन्तु वास्तव में इसकी भाषा शुद्ध खड़ीबोली नहीं है, उसमें ब्रजभाषा का अच्छा खासा मिश्रण है और भाषा परिमार्जित भी नहीं है—

---

१. हल्दीघाटी का युद्ध, पृ० ७।

हल्दीघाट मेवाड़ में है पहाड़ का घाट।
प्रथमै तहाँ प्रतापसिंह, छेंके मुगलन बाट।
तेहितें यह रणक्षेत्र भी हल्दीघाट प्रसिद्ध।

पहली पंक्ति में छंद-भंग भी है।

सन् १९०८ में जब यह पुस्तक लिखी गई, द्विवेदी युग का आरम्भ था। काव्य में ब्रजभाषा जमी हुई थी, खड़ीबोली रूप धारण कर रही थी। अतः खड़ीबोली में लिखना चाहते हुए भी ऐसा लगता है अनायास ही रचना में ब्रजभाषा आ मिली है।

प्रचलित परम्परा के अनुसार कवि ने काव्य के अन्त में अपना परिचय और लेखन काल आदि देकर अपनी पहिचान को निश्चित कर दिया है—

काशी सीमा पश्चिमी पूर होत जेहि गाँव।
तामें बसे विसेन कुल, त्यागि मझौली ठाँव॥
नाँव अनेई गाँव का परगन पन्द्रह माहि।
भीतर काशी प्रान्त के अस क्षत्री कहँ नाहिं॥
ताही कुल में जन्म लै पढ्यो जाइ परयाग।
अध्यापक हौं मिशन में, राज अमीनी त्याग॥

\+ + +

जून अठारह ईसवीं, सन ओनइस सौ आठ।
रवि दिन राना युद्ध लिखि, पूर किये रन पाठ॥

इस प्रकार अपने काव्य में महान् देशभक्त राणा प्रताप के चरित्र को उठाकर ठाकुर लालबहादुर सिंह ने तत्कालीन समाज में देश-भक्ति और राष्ट्रप्रेम की चेतना तो जगाई ही, तुतलाती खड़ीबोली के परिष्करण में भी योग दिया।

**वीर प्रताप**

लाला भगवानदीन कृत 'वीर प्रताप' में मेवाड़ाधिपति राणा प्रताप के स्वाभिमान और वीरता का आख्यान और हल्दीघाटी के एक दिन के युद्ध का प्रभावशाली वर्णन है। प्रताप ने अनेक कष्ट झेले, परन्तु अपना धर्म और स्वाभिमान नहीं छोड़ा। उन्होंने मुगलों के यहाँ अपने कुल की बहिन-बेटी का रिश्ता नहीं किया। राजा मानसिंह ने अकबर के यहाँ बेटी का सम्बन्ध किया था। अतः उसे यवन मानकर राणा प्रताप ने उसके साथ बैठकर भोजन करने से अस्वीकार कर दिया, भले ही इस कारण बादशाह अकबर का कोप-

भाजन बनना पड़ा। इसी कारण उन्हें हल्दीघाटी का भयंकर युद्ध भी लड़ना पड़ा। युद्ध में झाला मानसिंह ने प्रताप की जान बचाई और वह युद्ध क्षेत्र से बचकर निकल सके। दीन जी ने काव्य का आरम्भ परम्परागत ईश वन्दना से तो किया है, किन्तु एक पंक्ति में ही वन्दना करके वे आगे बढ़ गये हैं, यथा—

सकल काम-प्रद सियाराम पद युगकर जोड़ मनाता हूँ।
हिन्दूपति राना 'प्रताप' का वीर सुयश कुछ गाता हूँ।
हिन्द देश के रजपूतों का सच्चा धर्म बताता हूँ।
केवल तीन शतक पीछे का युद्ध दृश्य दिखलाता हूँ।[1]

कवि ने इस ओजपूर्ण कथा के द्वारा तत्कालीन परतन्त्र भारतवासियों के स्वाभिमान और वीर-दर्प को उकसाया। सम्पूर्ण काव्य उत्साह और ओज से ओत-प्रोत है। आरम्भ से अन्त तक वीररस का अविरल स्रोत प्रवाहित होता चला है। राणा का वीर-दर्प देखते ही बनता है—

पर, देह में जब तक है रकत राम की नस का,
दम रहते तो हूँगा न मुसलमान के बस का।[2]
निज देश की, निज धर्म की मर्य्याद रखूंगा,
श्रीराम की औलाद को दागी न लखूंगा।[3]

देश-प्रेम के साथ इसमें जातीय भावना भी परिलक्षित होती है। प्रताप के स्वर में कवि का अपना स्वर भी मुखर हुआ है।

काव्य की भाषा खड़ीबोली है। जोश से परिपूर्ण इस रचना में शब्दों का चयन भी कवि ने सोच-समझकर प्रसंग और रस के अनुकूल किया है। जैसा वीरतापूर्ण कथानक है, वैसा ही जोशीला फड़कता हुआ शब्दों का तेवर है—

जै उसकी जो पुरुखाओं की इज्जत पै डटा हो।
जै उसकी भी जो देश की सेवा में मिटा हो।
निज देश की, निज जाति की, निज धर्म की मर्य्याद।
रक्खै, उसे कवि 'दीन' का सौ बार है जयवाद।[4]

---

१. वीर प्रताप : लाला भगवानदीन, प्रथम पद।
२. वही, पद ६, पृ० २।
३. वही, पद ११, पृ० ३।
४. वही, पद २, पृ० १।

उर्दू के शब्दों की बहुतायत है, पर जयवाद, इज्जत, मुश्किल, औलाद, दागी आदि ऐसे प्रचलित और सामान्य शब्दों का ही प्रयोग किया गया है, जिनसे भाषा क्लिष्ट और दुरुह नहीं होने पाई है। अन्य भाषाओं और बोलियों के शब्दों का प्रयोग भी हुआ है, जैसे—जै, पै, पुरुखाओं, रक्खै आदि ब्रज के शब्दों को कवि ने ले लिया है। तुक के लिए शब्दों और क्रियापदों को तोड़ा-मरोड़ा भी गया है, जैसे—रक्त का रकत, पुरखों का पुरुखाओं आदि। सत्रह वर्णों के वर्णिक वृत्त शिखरिणी के वजन पर ही इसका छन्द चला है, यथा—

पति भाँति बुजुर्गों की बचै इसकी भी डर है।
यह देख तो पड़ता है कि मुश्किल से गुजर है ॥[1]

पूरा काव्य इतिवृत्तात्मक है। अलंकारों का प्रयोग नहीं के बराबर है। भाषा अपरिष्कृत और व्याकरण सम्मत न होते हुए भी यह काव्य जन-जागरण और उत्साहवर्धन में सहायक सिद्ध हुआ। कवि भगवान, धर्म, देश, सत्य, भक्ति और वीरत्व का कायल है। इन सब में उसकी आस्था है और वह इनकी बार-बार जयकार करता है—

जै राम की, जै धर्म की, जै देश की बोलो।
जै सत्य की, जै भक्त की, जै वीर की कह दो।[2]

इस प्रकार काव्यत्व की दृष्टि से रचना उत्कृष्ट न होते हुए भी स्वातन्त्र्य का उद्घोष फूंकने का कार्य इसने किया, साथ ही द्विवेदी-युग के पूर्वार्द्ध में खड़ीबोली के चलना सीखते समय उसके पैर जमाने में भी इसका योगदान रहा।

**रंग में भंग**

'रंग में भंग' श्री मैथिलीशरण गुप्त का राजपूती इतिहास पर आधृत चर्चित खण्डकाव्य है, अतः यहाँ इस पर संक्षेप में विचार किया गया है। बूंदी और चित्तौड़ के दो राजपूत राजाओं के वीर-दर्प की कथा है। एक छोटी सी बात पर विवाहोत्सव में ही दोनों पक्षों में खड्ग खिच गये। चित्तौड़ के राणा खेतल मारे गये और बूंदी नरेश वरसिंह की पुत्री नवपरिणीता अपने पति का शव लेकर सती हो गई। रंग में भंग हो गया। खेतल के उत्तराधिकारी राणा लाखा ने इसका बदला लेने के लिए बूंदी का किला तोड़कर ही अन्न ग्रहण करने की प्रतिज्ञा की। उनके प्रण को पूरा करने के

१. वीर प्रताप : लाला भगवानदीन, पद ६, पृ० २।
२. वीर प्रताप : लाला भगवानदीन, पद २, पृ० १।

लिए बूँदी का नकली किला बनवाया गया। राणा का भृत्य वीरहाड़ा कुम्भ अपनी जन्मभूमि बूँदी के किले को चाहे वह नकली ही हो विजित किया जाना सह न सका और उसके रक्षार्थ राणा लाखा से भिड़ गया और वीरगति को प्राप्त हुआ।

'रंग में भंग' में कथा विस्तार न होते हुए भी वस्तु-विकास का दोष है। नवपरिणीता रानी के सती होने के साथ रंग में भंग हो जाता है और कथा पूरी हो जाती है, किन्तु उसके साथ एक दूसरी स्वतन्त्र घटना जिसमें परस्पर अंगी अंग का भी सम्बन्ध नहीं है—जोड़ देने से कथावस्तु दोषपूर्ण हो गई है।

राजपूती शौर्य और आन-बान के दिग्दर्शन के साथ स्वदेश-प्रेम और राष्ट्रीय भावना का जन-मानस में प्रस्फुरण कवि का उद्देश्य है। इसी कारण काव्य का प्रमुख रस 'वीर' है। सहयोगी रस करुण, शृंगार और रौद्र हैं। मातृभूमि विषयक रति और उसकी रक्षा का उत्साह के सम्मिलन में भाव-संधि की प्रतिष्ठा हुई है।

कवि की नारी विषयक, दार्शनिक, नैतिक, नियतिवादी तथा देश-प्रेम की भावनायें स्थान-स्थान पर प्रकट हुई हैं। इस इतिवृत्तात्मक कृति की भाषा बोलचाल की खड़ीबोली है। तद्भव शब्दों का प्रयोग भी है। दीजे, कीजे, विध, गमा दिया, देखा करूँ या 'अधिक वर्णन का यहाँ अवकाश दिखलाता नहीं' जैसे प्रयोग भाषा का स्तर गिराते हैं। प्रण पालना, वीर-गति को प्राप्त होना आदि मुहावरे भी यत्र-तत्र आए हैं। अहो, अहा, हा आदि का पूरक शब्दों के रूप में प्रयोग हुआ है। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अनुप्रास, अत्युक्ति, यमक, उदाहरण आदि अलंकारों को स्थान मिला है। कहीं-कहीं नाटकीयता भी है। मंत्री हाड़ा कुम्भ और चित्तौड़पति लाखा के संवाद अच्छे हैं। सम्पूर्ण काव्य हरिगीतिका छन्द में लिखा गया है। बानगी रूप में छन्द और भाषा का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

पुष्ट हो जिसके अलौकिक अन्न, नीर, समीर से,
मैं समर्थ हुआ सभी विध रह विरोग शरीर से।
यदपि कृत्रिम रूप में यह मातृभूमि समक्ष है,
किन्तु लेना योग्य क्या उसका न मुझको पक्ष है।[1]

'रंग में भंग' गुप्त जी की प्रथम कृति है। काव्यत्व की दृष्टि से अधिक

१. रंग में भंग—एकादश संस्करण, पद १०४, पृ० ३१।

समर्थ न होने पर भी यह देश में मातृभूमि-प्रेम और उत्साह का वातावरण बनाने में मील का पत्थर बनी।

**प्रेम-राज्य**

श्री जयशंकर प्रसाद का 'प्रेम-राज्य' उनकी आरम्भिक रचनाओं में से है। इसकी कथा पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दो भागों में विभाजित है।

विजयनगर के महाराजा सूर्यकेतु का तालीकोट के युद्ध-क्षेत्र में यवन-सेना के साथ युद्ध होता है। युद्ध में जाने से पूर्व राजा अपने मातृविहीन पाँच वर्षीय इकलौते पुत्र को प्यार करते हैं। वे सोचते हैं कि इस बालक का दायित्व मैं किस पर सौंप कर जाऊँ? इसी समय एक भील सरदार आता है। वह राजा सूर्यकेतु से कहता है कि वे अपने नन्हें पुत्र चन्द्रकेतु को उसे सौंप कर निश्चिन्त होकर युद्ध को जायें, वह उसका जी-जान से खूब अच्छी तरह पालन-पोषण करेगा। वह बताता है कि उसका छोटा भाई भी सेना में भर्ती है। राजा सूर्यकेतु बच्चे को समझाते हैं कि वह अब उस भील को ही दादा कहेगा और युद्ध में चले जाते हैं। सेना के दो भाग कर राजा एक सेनापति को सौंप देते हैं और एक स्वयं अपने साथ लेते हैं। घमासान युद्ध होता है। राजा सूर्यकेतु यवन सेना से घिर जाते हैं। सेनापति यवनों से मिल जाता है और सूर्यकेतु को बचाता नहीं है। सूर्यकेतु लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त होते हैं। उनके मरने पर सेनापति यवनों से अपना इनाम माँगता है तो यवन हँसी उड़ाते हैं कि उसने अपने राजा का ही साथ नहीं दिया तो दूसरे का क्या देगा? सेनापति भागकर घर आता है, तो उसकी नन्हीं बेटी हाथ में एक खत लिए बैठी होती है। वह उसे प्यार करता है और चिट्ठी लेकर पढ़ता है। चिट्ठी उसकी पत्नी की होती है कि उसके पति ने युद्ध में राजा का साथ नहीं दिया। राजा से धोखा किया है। अतः वह राजा से क्षमा माँगने उसके पास ही स्वर्ग जा रही है। सेनापति बहुत दुःखी होता है और घर से निकल जाता है। यहाँ पूर्वार्द्ध समाप्त होता है।

उत्तरार्द्ध में चन्द्रकेतु भील के पास जंगल में खेलता होता है, वहीं सेनापति की कन्या ललिता भी खेलती है, दोनों बड़े होते हैं। भील दोनों को एक दूसरे के योग्य समझता है। इतने में एक तेजस्वी युवक आता है, वह ललिता का पिता होता है। महाराजा सूर्यकेतु की शत्रु से रक्षा न करने की अपनी गलती के प्रायश्चित स्वरूप वह राजा के बेटे चन्द्रकेतु के हाथ में अपनी मातृ-विहीना इकलौती कन्या ललिता का हाथ सौंप देता है। दोनों प्रेम-राज्य के राही हो जाते हैं।

इसकी भाषा ब्रज है। काव्यत्व शिथिल है। वर्णन इतिवृत्त मात्र है। यत्र-तत्र वीर और शृंगार रसों के कुछ अच्छे चित्र हैं। उदाहरणार्थ—

**वीररस**—फरकि उठे भुजदण्ड वीररस सों उमगाहे।
चमकि उठीं तरवार, वर्म्म अरु चर्म सनाहे।
सेना कटि कै भाग, एक सैनप कों सोंप्यो।
अरु एकहि लै आप, अकेले रन को रोप्यो।

**शृङ्गार रस**—येहि सों तुम दोनों मिलि प्रेम सुगाठहि बाँधो।
निज सुकुमार हृदय-मँह प्रेमहि को आराधो।
गंगा-यमुना के संगम सों प्रेम की धारा।
सो सींचो या बन्य देश को मधुर अपारा।

इस प्रकार इस लघु रचना में प्रसाद ने राजा का देश की स्वाधीनता के लिए उत्सर्ग दिखाकर देश-प्रेम और वीरत्व की भावना पाठकों में उभारने के साथ स्वामी और देश से विश्वासघात करने वाले को शान्ति नहीं मिलती, यह संदेश भी दिया है।

**दयानन्द जीवन-काव्य**

श्री हरिदत्त वर्मा कृत 'दयानन्द जीवन-काव्य' में ऋषि दयानन्द की जीवनी है। दयानन्द ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना चाहते हैं। जबउनके माता-पिता ने उनका विवाह करना चाहा, तो २१ वर्ष की अवस्था में संवत् १९०१ में वे घर से भाग गये और शुद्ध चेतन के नाम से नैष्टिक ब्रह्मचारी बन गये। उनके पिताजी ने उन्हें ढूँढ लिया, पर वे फिर भाग गये। दयानन्द की भेंट सच्चिदानन्द परमहंस से हुई। वहाँ से वे नर्मदा के तट पर चले गये, जहाँ पूर्णानन्द सरस्वती से उन्होंने संन्यास की दीक्षा ली। यहीं उनका नाम दयानन्द सरस्वती रखा गया। विद्या की खोज में इन्होंने पूरे भारत का भ्रमण किया। बद्रीनारायण की यात्रा पर गये, वहाँ मार्ग भूल गये, पर धैर्य नहीं छोड़ा। बर्फ को पार कर अलकनन्दा नदी पार की। तभी इनकी भेंट महन्त जी से हुई। इन्हें कहीं शान्ति नहीं मिली और सागर द्रोण में आकर इन्होंने आत्महत्या का विचार किया, पर फिर छोड़ दिया। स्थान-स्थान पर ये शास्त्रार्थ करते हुए मूर्ति-पूजा का खण्डन करने लगे। कानपुर और हुगली में बड़े भारी शास्त्रार्थ किये। उनके शास्त्रार्थ ने चारों ओर तहलका मचा दिया। कुछ विरोधियों ने उन्हें विष दिलवाने का उद्योग किया। वे राजकोट, काठियावाड़ और अन्य स्थानों पर भी धर्म का प्रचार करते हुए गये। उदयपुर में स्वामी जी ने अपना अन्तिम शिक्षा पत्र लिखकर रजिस्ट्री करा

दिया, जिसका अनुवाद 'स्वीकृति-पत्र' नाम से हुआ। उन्होंने इसमें यह भी लिखा कि अगर उनकी मृत्यु हो जाय तो संस्कार अमुक विधि से किया जाय।

उदयपुर के महाराजा ने उन्हें बीस सहस्र रुपया षट्-दर्शन का भाष्य छपाने को दिया। वहाँ आर्य समाज की स्थापना करवाकर पहली मार्च १८८३ ई० में नीमाहेड़ा गये। फिर इन्होंने जोधपुर में वैदिक धर्म का उपदेश दिया। २९ सितम्बर १८८३ ई० को रसोइये ने इन्हें दूध में शीशा घोलकर पिला दिया। उपचार के लिए इन्हें अजमेर ले जाया गया, जहाँ २६ अक्टूबर १८८३ को इनका स्वर्गवास हो गया।

दयानन्द सरस्वती के जीवन-वृत्त से पाठकों को परिचित कराना ही कवि का उद्देश्य है। काव्यत्व की दृष्टि से यह कृति महत्त्वपूर्ण नहीं है। दोहा, चौपाई, कवित्त, सोरठा छन्दों में वर्णन इतिवृत्त मात्र है। उदाहरणार्थ एक चौपाई प्रस्तुत है—

संगति को फल ऐसो अहई। स्वामी ढिग एक नौकर रहई॥
आसन चौरासी सो जानै। लखे स्वामि हृदये सुख मानै॥
प्रातःकाल दिवस के अन्तर। कै समाधि योग तजि चिन्ता॥
खण्डन मूर्ति करै निशिवारे। बहुत जनन के संशय टारे॥
ब्राह्मण हारि कहैं कर जोरी। पेट हेत यह करत बहोरी॥
सुन्दरलाल आदि नर नारी। पूजा मूर्ति दिये सब टारी॥[1]

भाषा खड़ीबोली मिश्रत ब्रजभाषा है। अलंकारों, मुहावरों और कहावतों का प्रयोग नहीं के बराबर है। इसे तुकबन्दी भी कहा जा सकता है। छंद भी स्थान-स्थान पर खंडित हैं, यथा—

वेद भाष्य विज्ञापनहिं अरु समाज के नियम को,
स्वरचित पुस्तक सज्जनगण को बँटाय दीने सबन को।[2]

इस कथा-काव्य का प्रभाव यह हुआ कि मिथ्या कर्मकाण्ड और अन्ध-विश्वास के प्रति लोगों का झुकाव कम हुआ। लोगों में जागृति आई। कवि ने दयानन्द के महाप्रयाण पर कहा कि भारत के कमल-वन को विकसित करने वाला सूर्य दिन के मध्य में ही अधफूले वन को छोड़कर डूब गया, यथा—

भारत कमल बन विकसित पतंग आजु
मध्य दिवस डूबि गये त्यागि अधफूले को।

---

१. दयानन्द जीवन-काव्य, पृ० ४६।
२. वही, पृ० ११०।

पापी पाखण्डी अन्यायी उलूक सब
लागे दिखाने मनमाने वृक्ष झूले को ॥[1]

यह काव्य इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ कि इसमें दयानन्द का जीवन-वृत्त होने से आर्य समाजियों और दयानन्द पर श्रद्धा रखने वालों ने इसका जोर शोर से स्वागत किया। इस प्रकार यह खड़ीबोली के प्रसार का माध्यम तो बना ही, इसने रूढ़ियों और अन्धविश्वास को तोड़ने में भी विशेष भूमिका अदा की।

**मेवाड़ गाथा**

लोचनप्रसाद पाण्डेय रचित 'मेवाड़ गाथा' ऐतिहासिक कथामूलक खण्ड-काव्य है जिसमें मेवाड़ के वीर-चरित्रों की कथा को काव्य का आधार बनाया गया है। यद्यपि इसमें प्रधान कथा महाराणा प्रताप से सम्बन्धित है, किन्तु इसके साथ ही उनके पूर्वजों और उनके बाद मेवाड़ के इतिहास के ख्यात चरित्रों का वर्णन भी इस काव्य में है। खण्डकाव्य चरित्र प्रधान है और इसकी विशेषता यही है कि इसमें एक नहीं बल्कि अनेक चरित्रों के माध्यम से मेवाड़ की वीरता, त्याग और बलिदान की कहानी कही गई है। इस प्रकार इस खंड-काव्य में सही अर्थों में प्रधानता मेवाड़-गौरव की है। वीर-चरित्रों से युक्त मेवाड़ जैसे मूर्तिमान व्यक्तित्व के रूप में साकार हो गया है और समष्टिगत व्यक्तित्व के रूप में उस आदर्श वीर-भूमि से पाठकों का साक्षात्कार कराना कवि का अभीष्ट लगने लगता है। इस प्रकार इस खण्ड-काव्य का सही अर्थ में नायक मेवाड़ है।

यह काव्य प्रस्तावना, आत्म त्याग, दुर्गद्वार, आत्मबलि, प्रतापी-प्रताप का प्रण, अलौकिक धैर्य, धैर्य परीक्षा, स्वामिभक्त मंत्री, कृष्णाकुमारी, राणा संग्रामसिंह, राजा सज्जन सिंह और बाबू हरिश्चन्द्र एवं प्रताप-स्तवन—इन बारह उपखण्डों में विभाजित है।

प्रस्तावना के प्रारम्भ में राजस्थान की पुण्यभूमि का स्तवन किया गया है—

भूमि जिसकी शौर्य साहस शक्ति की शुचि खान है।
धैर्य दृढ़ता धर्म का जो पूज्य वासस्थान है।
सद्म है वीरत्व का जो पद्म मानव धाम का।
है न किसको गर्व राजस्थान के शुभ नाम का?

---

१, दयानन्द जीवन-काव्य, पृ० २८८, अन्तिम कवित्त।

इस राजस्थान में जहाँ अर्वली पर्वत की उच्चता धर्म-दृढ़ता की शिक्षा देती है, पुण्य पुष्कर वीर क्षत्रिय वंश की विमलता की सूचना देता है, जहाँ की नद-नदियाँ और निर्झरों से स्वातंत्र्य का स्वर निरन्तर घोषित होता रहता है, वहीं चित्तौड़ नामक स्थान है। मेवाड़ का प्रशस्ति-गान करता हुआ कवि कहता है—

उस रसा में एक जो मेवार नामक ठौर है,
वह गुणों की खान राजस्थान का सिरमौर है,
और उस सिरमौर का भी पूज्यपद चित्तौर है,
स्थान इस भू-लोक में जिसके समान न और है।

लगभग १५ छन्दों में (छन्द ६ से २० तक) कवि ने मेवाड़ के माध्यम से जातीय श्रेष्ठता का गुण-गान किया है। बाल-वृद्ध-वनिता सभी में प्राणोत्सर्ग द्वारा मान-रक्षण की समान भावना, धन-धाम सब कुछ खोकर भी पराधीनता न स्वीकार करना, देश-गौरव की रक्षा के लिए सतत जागरूकता, नारियों की सती भावना आदि का विस्तार से गुण-गान करने के बाद अन्त में कवि भाव-विभोर होकर कह उठता है—

देखना हो जो कहीं आदर्श आत्मत्याग का,
सत्य, शुचि, स्वातंत्र्य-प्रियता, देश के अनुराग का,
मित्र ! तो करते हुए दृढ़ पास निज विश्वास का,
पृष्ठ कोई खोल लो मेवार के इतिहास का।

इस प्रस्तावना के बाद 'आत्म-त्याग' खण्ड से इस काव्य का प्रारम्भ होता है। इसमें राजसिंह राणा के राज्यकाल के वर्णन के साथ उनके ज्येष्ठ पुत्र भीमसिंह द्वारा भ्रातृ-प्रेम को बनाये रखने के लिए राज्य-त्याग की कथा कही गई है। इस खण्ड का केन्द्रीय भाव यह छन्द है—

भंगुर है यह देह चार दिन का है जीवन,
करो न कलह कलंक पंक से अंक विलेपन।
त्यागो विष ग्रह भाइयो, फूट-द्वेष, दंभ-क्रोध,
रहो प्रेम से सुख सहित तजकर बन्धु-विरोध।
सदा फूलो फलो ॥

'दुर्ग द्वार' में राणा रत्नसिंह के राज्य (१२३०–१२३६) का वर्णन करते हुए १६ छन्दों में यह वर्णित है कि उस काल में यद्यपि बाबर और मालवा के चतुर शाह राणा को नष्ट कर देना चाहते हैं, तब भी चित्तौड़ का फाटक

बन्द नहीं किया जाता था। राणा का आदेश था कि 'रात्रि में भी हो कभी चित्तौड़ का फाटक न बन्द।' राणा यह मानता था कि यहाँ की वीर प्रजा ही दुर्ग द्वार है, वह मेवाड़ की रक्षा में पूर्ण सक्षम है, क्योंकि मातृभूमि की रक्षा की हम सभी ने शपथ ली है—

प्रजा पालन में नहीं जो भूपगण होते समर्थ,
या जिन्हें रहता बना भय शत्रुओं का नित्य व्यर्थ,
बस उन्हीं को बन्द करना चाहिए निज दुर्ग-द्वार।

'आदर्श राजभक्ति अर्थात् आत्मबलि' नामक तीसरे उपखण्ड में राणा प्रताप की प्रख्यात कथा का प्रारम्भ होता है। इस खण्ड में राणा प्रताप की वीरता, मानसिंह का अपमान, मानसिंह द्वारा अपमान का बदला लेने की घोषणा, सलीम के साथ मानसिंह का चित्तौड़ पर आक्रमण और हल्दीघाटी के प्रसिद्ध युद्ध का वर्णन है।

यह खण्ड ही इस चरितात्मक खण्ड-काव्य का मुख्य भाग है। इसमें राणा प्रताप की वीरता, स्वाभिमान और जातीय गौरव की भावना के वर्णन के साथ हल्दीघाटी के युद्ध के कारणों और रोमांचकारी युद्ध का संक्षिप्त किन्तु प्रभावपूर्ण चित्रण किया गया है। कथानक ख्यात और लोकप्रसिद्ध है। राजा मानसिंह शोलापुर विजय से लौटते समय कुम्भलमेर में राणा प्रताप से मिलने जाते हैं। राणा प्रताप सरदर्द का बहाना करके उनके साथ भोजन में सम्मिलित नहीं होते। मानसिंह समझ जाते हैं और अपमानित अनुभव करते हैं और इस अपमान का बदला लेने की प्रतिज्ञा करते हैं। प्रताप भी उनकी चुनौती का उत्तर यह कहकर देते हैं कि—

उत्तर मिला अबके कभी जब आप फिर आवें यहाँ,
निज पूज्य अकबर तुर्क को भी साथ ले आवें यहाँ।

मानसिंह अकबर को अपने अपमान के साथ ही उसके अपमान की बात कहकर बदला लेने के लिए उत्तेजित करता है—'ऐसी हँसी है की गई हे शाह देखें आपकी'। अकबर सलीम को साथ लेकर प्रताप पर आक्रमण करने का मानसिंह को आदेश देता है। परिणामस्वरूप हल्दीघाटी का युद्ध होता है। इतिहास-प्रसिद्ध इसके प्रख्यात वर्णन के अनुसार ही पाण्डेय जी ने भी इसका वर्णन किया है। प्रताप के भाई शक्तिसिंह के मिलन का मार्मिक प्रसंग भी कवि यहीं प्रस्तुत करता है। तुर्कों द्वारा पीछा किये जाते देखकर शक्तिसिंह में जातीय भाव, बन्धुत्व-प्रेम उमड़ पड़ता है और वह भी तुर्कों के पीछे चल

पड़ता है, तुर्कों को वाण चलाते देख वह अपने वाण से उन दोनों का वध कर देता है। जब तुर्क उसके इस व्यवहार से आश्चर्य चकित उससे कारण पूछते हैं तो शक्तिसिंह जो उत्तर देता है, वह उसके पश्चात्ताप पूरित मन और स्नेही व्यक्तित्व का अच्छा उदाहरण है—

पयपान जननी का किया है किन्तु जिनके संग में,
है एक ही जब रुधिर दोनों के सुपावन अंग में,
होता, न करता भूप भ्राता को स्वरिपु से त्राण में,
तो मातृद्रोही, भ्रातृद्रोही, देशद्रोही क्या न मैं।

शक्तिसिंह का यह हृदय-परिवर्तन, उसकी निष्ठा देखकर प्रताप प्रभावित होता है और उसका आलिंगन करता है। चेतक की मृत्यु के बाद अश्वहीन प्रताप को शक्तिसिंह अपना ओंकार नामक अश्व देता है। उधर २२००० में से केवल ८०० साथियों को लेकर युद्ध करता हुआ सरदार झाला अपने स्वामी की जीवन-रक्षा के लिए अपना प्राणोत्सर्ग करता है।

इसके वाद के चार खण्डों ५, ६, ७, ८ में भी प्रताप की ही जीवन-गाथा कही गई है। 'प्रतापी प्रताप का प्रण' शीर्षक पाँचवें खण्ड में ९ छन्दों में प्रताप की प्रतिज्ञा का वर्णन है। इस प्रतिज्ञा के माध्यम से कवि ने बड़े ही सशक्त ढंग से देश-भक्ति और जातीय गौरव की रक्षा की भावना की अभिव्यक्ति की है। प्रताप का प्रण है—

चाहे बड़ी बड़ी पद की भी लालच कोई दिखला दे।
चाहे तुझे चूर डालूंगा, यों कह मुझको धमका दे॥
पर मैं हूँ न भीरु या लोभी जो प्रण से डिग जाऊँगा।
ईश्वर के अतिरिक्त किसी को अपना सिर न नवाऊँगा।[1]

इसी प्रकार कवि ने आगे प्रताप के अलौकिक धैर्य, उसकी धैर्य-परीक्षा, भामाशाह द्वारा स्वामिभक्ति दिखाना, मेवाड़ की राजकुमारी कृष्णा द्वारा विषपान, राणा संग्रामसिंह, महाराजा सज्जन सिंह द्वारा बाबू हरिश्चन्द्र को सम्मान दिये जाने का वर्णन भी मनोयोग से किया है।

भाषा परिमार्जित खड़ीबोली है, जिसमें अन्य भाषाओं या बोलियों के शब्द नहीं के बराबर हैं। इतिवृत्त मात्र होने से अलंकारों का प्रयोग भी बहुत कम है। विविध छन्दों का प्रयोग किया गया है। 'आत्मत्याग' उपखण्ड का अन्तिम छन्द अपने आप में एक नया प्रयोग है जिसमें हर पंक्ति के अन्त में

1. मेवाड़ गाथा—सर्ग ५, छन्द ९।

१० मात्राओं का एक टुकड़ा एक लघु पंक्ति के रूप में जोड़ दिया गया है, यथा—

छोड़े देता हूँ अभी मातृभूमि मेवार
जन्म भर के लिए।
देख करो हे भाइयों ! खोल हृदय की दृष्टि
ग्रहण उपदेश कुछ।[1]

कहीं-कहीं छन्द-दोष दिखलाई पड़ता है, जहाँ मात्रापूर्ति के लिए कवि छन्द में एक ही शब्द के पर्यायवाची दे बैठा है—

वन्दनीय सुर सदृश हो रहे, राजा सज्जन सिंह नरेश।[2]

निष्कर्ष यह है कि पाण्डेय जी ने काव्यत्व के उत्कर्ष की दृष्टि से रचना नहीं की, उन्होंने मेवाड़ को ही जैसे काव्य का नायक बनाकर उसके वीर और उत्साही पक्ष का सशक्त प्रस्तुतीकरण कर युग की अपेक्षानुसार जन-जागरण का कार्य किया, साथ ही परिष्कृत खड़ीबोली का प्रयोग कर हिन्दी के विकास के लिए भी मार्ग बनाया।

**महाराणा का महत्त्व**

जयशंकरप्रसाद कृत इस चरित्र प्रधान काव्य को कुछ लोग आख्यानक कविता भी कहते हैं, जो तुकान्त विहीन अथवा भिन्न तुकान्त है। स्वयं कवि ने इसे गीतिरूपक (ओपेरा) कहा है; किन्तु इसमें कथा-काव्य की सभी अपेक्षाओं का निर्वाह किया गया है, अत: इसे खण्ड-काव्य कहना उचित होगा।

महाराणा प्रताप अकबर से युद्ध करते हुए अर्बुदगिरि के वन्य प्रान्त में कठोर जीवन यापन कर रहे थे। एक दिन मुगल सेनापति खानखाना रहीम खाँ की बेगम शिविका में मुगल शिविर की ओर जाते हुए जरा देर को पानी पीने झरने के पास रुकीं। वहाँ राजकुमार अमर सिंह ने अपने कुछ साथियों सहित उसके अंगरक्षक मुगल सैनिकों से मुठभेड़ कर उसे बन्दी बना लिया। सालुम्बापति कृष्ण सिंह ने बेगम को राणा प्रताप के पास भिजवाया। एक महिला को बन्दी बनाने के कृत्य पर राणा प्रताप क्षुब्ध हुए, उन्होंने राजकुमार और उनके साथियों को फटकारा और बेगम को ससम्मान उसके पति खानखाना के पास भेज दिया। खानखाना और बेगम दोनों राणा की सज्जनता से बहुत प्रभावित हुए। खानखाना दिल्ली पहुँचने पर सम्राट्

१. मेवाड़ गाथा—सर्ग २, अन्तिम छन्द।
२. वही, सर्ग ११, छन्द २।

अकबर से महाराणा की बहुत सराहना की। इससे प्रभावित होकर अकबर ने तुरन्त मुगल सेनाओं को चित्तौड़ का घेरा हटाकर अजमेर लौटने का आदेश भेज दिया।

इसकी कथावस्तु संक्षिप्त और सुखान्त है। कथानक की शास्त्रीय कार्यावस्थाओं के अनुकूल प्रस्तावना में नायक प्रताप और प्रतिनायक खानखाना का आपसी विरोध है। विकास-क्रम में मुगल एवं राजपूत सैनिकों का परस्पर युद्ध है। अमरसिंह का बेगम को बन्दी बना लेना चरम सीमा है और महाराणा द्वारा बन्दिनी को ससम्मान उसके पति के पास भेज देना निगति है। कथा के आरंभ, मध्य और अन्त में परस्पर तारतम्य है।

इसमें घटनाओं की एकता है, पर स्थान की एकता नहीं है, छोटे से कलेवर में दृश्य अर्बुदगिरि से आगरे तक फैले हुए हैं। प्रसाद द्वारा नाटकीय पद्धति अपनाने से कथावस्तु कुछ विशृंखलित हो गई है।

कवि का उद्देश्य राणा प्रताप का स्वदेश-प्रेम और स्वातंत्र्य-संघर्ष दिखाकर उसके प्रभाव से जन मानस में राष्ट्रीय भावना भरना और सिद्धान्तों के पालन की प्रेरणा देना है। इसी से धीरोदात्त नायक के रूप में प्रताप को स्वाभिमानी, कर्त्तव्यपरायण, वीर और मर्यादा पुरुष के रूप में कवि ने चित्रित किया है। विपक्ष के सेनापति खानखाना की प्रताप के लिए सम्मति है—

सच्चा साधक है सपूत निज देश का
मुक्त पवन में पला हुआ वह वीर है।

निम्नलिखित पंक्तियों से प्रताप के वीरोचित और तेजवान व्यक्तित्व का दर्शन होता है—

जिस कानन में पहुँचा युद्ध विनोद में
सदा मिला सन्नद्ध लिए तलवार ही
गिरि-कन्दरा से देख स्वकीय शिकार को
जैसे झपटे सिंह वही विक्रम लिए
वीर प्रताप दहकता था दावाग्नि-सा।

वीर-चरित्र प्रधान होने से सम्पूर्ण काव्य में उत्साह की भाव-दशा है। उसके उद्दीप्त न हो सकने से रसोद्रेक नहीं हो पाता। नाटकीय शैली में रचित इस काव्य में अर्बुदगिरि, शाही महल, लड़ाई, ग्रीष्म, पतझड़, चाँदनी आदि के चित्र अच्छे बन पड़े हैं। सुन्दरी प्रेमिका का दृष्टान्त देकर शाही

महल की सुन्दरता की छवि कवि ने साकार कर दी है—

तारा-हीरक-हार पहनकर चन्द्रमुख
दिखलाती, उतरी आती थी चाँदनी
(शाही महलों के ऊँचे मीनार से)
जैसे कोई पूर्ण सुन्दरी प्रेमिका
मन्थर गति से उतर रही हो सौध से।[1]

वाक्वैदग्ध्य, हास-परिहास, व्यंग्य-मनोवैज्ञानिकता और ओज से भरे संवादों में कृष्णसिंह-प्रताप, नवाब-बेगम एवं अकबर-नवाब के संवाद विशेष प्रभावपूर्ण हैं। इस काव्य में प्रसाद ने प्रकृति-चित्रण कम किया है, पर जहाँ है बहुत सुन्दर बिम्ब प्रस्तुत करता है। प्रसाद द्वारा प्रकृति में इस प्रकार के मानवीकरण की उद्भावना ने छायावाद के लिए भूमि उर्वर बनाई।

इसकी भाषा परिमार्जित खड़ीबोली है, पर 'आँसू' या 'कामायनी' के अनुपात में कमजोर है। तत्सम शब्दों का बाहुल्य है, जैसे प्रभंजन, चमू, स्वकीय, मधूक, मन्दर, दुग्धफेननिभ शैया, असि पुच्छ मर्दिता आदि। 'रुधिर-फुहरा-पूर्ण-यवन-कर' जैसे शब्दाडम्बर में कहीं-कहीं भाव लुप्त हो गया है। अभिधा का प्रयोग अधिक है, लक्षणा व्यंजना नहीं के बराबर हैं। कुछ देशज शब्द जैसे लथेड़ना, थोथा भी प्रयुक्त हुए हैं। एकाध स्थान पर व्याकरण-दोष भी दिखाई पड़ता है, जैसे—'महाप्राण जीवों के कीर्ति सुकीर्ति से' यहाँ 'के' के स्थान पर 'की' होना चाहिए, क्योंकि कीर्ति के स्त्रीलिंग होने से उसकी वाचक क्रिया भी स्त्रीलिंग में होगी।

प्रसाद अपनी अलंकार योजना के लिए प्रसिद्ध हैं। इस काव्य में भी अलंकारों का अच्छा प्रयोग है। उत्प्रेक्षा, उपमा, दृष्टान्त, रूपक आदि अधिक आये हैं। उपमानों की नवीनता है। अप्रस्तुत योजना द्रष्टव्य है—

'राजपूतों का लू समान आना'

या

खिसक गयी डर से जरतारी ओढ़नी,
चकाचौंध-सी लगी विमल आलोक की;—

में नये उपमान और चाँदनी का प्रेमिका के रूप में प्रस्तुतीकरण प्रभावित करता है, उदाहरणस्वरूप—

---

१. महाराणा का महत्त्व, प्रथम संस्करण, पृ० १८।

गुथीं बिजलियाँ दो मानो रण व्योम में
वर्षा होने लगी रक्त के बिन्दु की।

इस उत्प्रेक्षा अलंकार में बिजलियों का उपमान यवन सैनिकों के साथ अमरसिंह के युद्ध की तेजी को झंकृत करता है। इस रचना में आदि से अन्त तक २१ मात्राओं के प्लवंगम छन्द को अतुकान्त रूप में कवि ने अपनाया है। प्रकाशक ने गलती से इसे अरिल्ल छन्द कह दिया है, किन्तु अरिल्ल में मात्र १६ मात्राएँ होती हैं।

इस प्रकार एक छोटी सी ऐतिहासिक घटना को आधार बनाकर अपनी चित्रात्मक भाषा और सृजनशील कल्पना-शक्ति से प्रसाद जी ने एक राष्ट्रीय और नैतिक सुधारवादी श्रेष्ठ रचना समाज को दी।

**मौर्य विजय**

सियारामशरण गुप्त का 'मौर्यविजय' बहुचर्चित खण्ड-काव्य है, अतः यहाँ उसे बहुत संक्षेप में विवेचित किया गया है। इसमें सिकन्दर के सेनापति सिल्यूकस के चन्द्रगुप्त मौर्य से युद्ध करने और पराजित होने पर अपनी कन्या एथेना का चन्द्रगुप्त से विवाह कर यूनान लौट जाने की सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक कथा है। चन्द्रगुप्त जैसे सशक्त ऐतिहासिक चरित्र के माध्यम से कवि ने पराधीन जनता में जोश जगाकर विदेशी शासकों की दासता से मुक्ति पाने की छटपटाहट पैदा की। कवि ने स्वयं कहा है—'गावेंगे ऐसे गीत हम क्या फिर और किसी समय' अपने देश के गौरवपूर्ण अतीत का गान कर कवि ने देश के भविष्य के पुनः उसी गौरव को प्राप्त करने की आकांक्षा की है।

काव्य का अंगी रस वीर है।[1] रौद्र, भयानक, वीभत्स, शान्त रस सहयोगी के रूप में आये हैं। भारत-महिमा के संदर्भ में प्रकृति-चित्रण भी मिलता है।[2]

भाषा परिमार्जित खड़ीबोली है, जिसमें तत्सम शब्दों जैसे—चिन्तानल, यशःस्तंभ, कर्णाञ्जलि, प्रकम्पित, रुग्ण, विश्रान्ति आदि का बाहुल्य है। कहीं-कहीं शब्दावली क्लिष्ट हो गई है, यथा—विपज्जाल, हृद्धामों, अनुद्यम, उल्लास छटा, रुधिराक्त आदि। देशज और तद्भव शब्द नगण्य हैं। कवि ने कुछ शब्दों के साथ वि और सु जोड़ा है जो संभवतः मात्रा पूर्ति के लिए ही

१. मौर्य विजय—देखिये पृ० १७, १८, २१, २२, २७, २८।
२. वही, पृ० १४, १५।

है, जैसे विलज्जित। कहीं-कहीं नये शब्द भी गढ़े हैं, जैसे—शिथिलित।[१] ब्रजभाषा के शब्द जैसे—बिसारना आदि भी यत्र-तत्र मिलते हैं। अहा, अहो, आह आदि भावव्यंजक और सम्बोधनात्मक शब्दों को भी स्थान मिला है। अभिधा में लिखी गई प्रसाद गुण सम्पन्न यह रचना प्रेरक एवं उपदेशात्मक है।

काव्य में सादृश्यमूलक अलंकार उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, दृष्टान्त, उदाहरण, प्रतीप, विशेषोक्ति आदि ही मुख्यतः प्रयुक्त हैं। कहीं-कहीं अनुप्रास जैसे–'दमक रहा था दिव्य दीप्ति से आनन उनका' या विरोधाभास 'हमें मृत्यु के बाद हमारे गीत जिलाते' भी मिलते हैं। मात्रिक छन्द छप्पय जो २४ मात्राओं के रोला छन्दीय चार पद फिर २६ या २८ मात्राओं के उल्लाला छन्दीय दो पद कुल छः पदों से बना है, का प्रयोग सर्वत्र कवि ने किया है।

भाव और अभिव्यंजना दोनों ही दृष्टियों से यह एक सशक्त और समर्थ-काव्य है, जिसने द्विवेदी-युगीन काव्य-धारा को अपेक्षित गति दी।

**चारण**

श्री श्रीवर (पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी) कृत 'चारण' को आंशिक ऐतिहासिक काव्य कहा जा सकता है। काव्य का नायक एक सामान्य चारण है, जिसने राजपूती इतिहास के कुछ वीर राजाओं का यश वर्णन किया है। इस प्रकार कवि ने चारण के माध्यम से कुछ ऐतिहासिक तथ्यों पर प्रकाश डाला है। युवक विजयसिंह को वृद्ध चारण ने जगवत कुल की वीर क्षत्राणियों, वीर पत्ता, राणा प्रताप, महाराजा यशवन्त सिंह के चार वीर स्वामिभक्त राजपूतों-दल्लू, चन्द्रभान, भट्टी, दुर्गादास, जिन्होंने युवराज अजित को औरंगजेब के पंजे से छुड़ाया, मेवाड़ के राजकुमार अमर सिंह, वीर क्षत्राणी रानी कलावती की वीरता की यशःगाथा आरम्भ के आठ परिच्छेदों में सुनाई है। नवम परिच्छेद में अपनी स्वर्गीय पत्नी एवं अन्य स्वजनों का स्मरण करते-करते चारण स्वयं महाप्रयाण कर गया। दसवें, ग्यारहवें, बारहवें परिच्छेद में चारण की मृत्यु पर प्रकृति और विजयसिंह द्वारा व्यक्त दुःख, चारण की यादगार बनवाने और उसकी आत्मा की शान्ति के लिए प्रार्थना का वर्णन है। कथानक के संगठन में शैथिल्य है। यह सम्भवतः इसलिए कि कथा में अन्तर्कथाओं का समावेश किया गया है और कवि ने

---

२. मौर्य विजय, पृ० १८।

चारण द्वारा तीसरे, चौथे, पाँचवें, छठें, सातवें एवं आठवें परिच्छेद में अलग-अलग परस्पर असम्बद्ध चरित्रों और घटनाओं का वर्णन कराया है। प्रचलित परम्परा के अनुसार श्रीवर जी ने भी अतीत की गौरव-गाथा के माध्यम से सुप्त जनमानस को जगाने की चेष्टा की है। प्रख्यात राजपूत चरित्रों के स्वदेश-प्रेम और वीरत्व का गान करके राष्ट्रीयता की भावना का उद्रेक किया है।

इस काव्य में तृतीय परिच्छेद से अष्टम परिच्छेद तक वीररस मिलता है। नवम परिच्छेद में कवि के निधन के साथ ही करुण का संचार होता है जो अन्त तक चलता है। काव्य का पर्यवसान करुण रस के साथ हुआ है, यथा—

कवि वियोग से व्यथित वहाँ के जड़, पशु, पक्षि हुए सारे,
लगे दिखाने शोक तरह अपनी से वे सब बेचारे।
पेड़ ओस की बूँद अश्रुरूपी टप टप टपकाते थे,
मानो कवि वियोग से होकर व्यथित सुअश्रु बहाते थे।[1]

चारण की मृत्यु पर पशु-पक्षियों का भी द्रवित होना एक शोकमय वातावरण उत्पन्न करता है। पाठक के हृदय में भी शोक के घनीभूत होने से करुण रस का संचार होता है। वीर राजपूतों के चरित्र का बखान करते समय समर-स्थल के उल्लेख में वीररस का परिपाक हुआ है—

किन्तु शरों की वर्षा भूले क्षण भी एक न रुकती थी,
मुगल-वाहिनी उनके मारे आगे बढ़ नहिं सकती थी।
उनके तीरों से मुगलों के वीर सिपाही मरते थे,
और जरा आगे बढ़ने का भूल न साहस करते थे।[2]

कवि ने प्रकृति-वर्णन भी यत्र-तत्र किया है, जो उद्दीपन रूप में न होकर आलम्बन रूप में है और कवि के प्रकृति-प्रेम को प्रकट करता है—

भाँति-भाँति के रंग-बिरंगे खिले फूल छबि पाते थे,
लाखों पारिजात भी जिनके सम्मुख शीश झुकाते थे।
वहाँ बीच में वक्र-चाल का झरना झर-झर झरता था,
धीमा किन्तु मधुर सुन्दर स्वर, प्यारा प्यारा करता था।[3]

---

१. चारण : श्रीवर, दसवाँ परिच्छेद, पृ० ३४।
२. वही, चतुर्थ परिच्छेद, पृ० १२।
३. वही, प्रथम परिच्छेद, पृ० २।

'चारण' खड़ीबोली का काव्य है, जिसमें ब्रज एवं अवधी के शब्द भी हैं। कुछ नये शब्द भी गढ़े गये हैं। शब्दों का देशज और तद्भव रूप भी है। उदाहरणस्वरूप—रस्ते, माई, औ, दिखलाय, ठौर, साँस, महराना, दोउ, आय, देओ, निर्धार, प्रकासा, अठलाता, पत्थल आदि। अंग्रेजी और उर्दू के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं, जैसे—ग्रेविटेशन, तलक, परवाह आदि। सम्पूर्ण रचना अभिधात्मक शैली में है। छन्द और तुक की पूर्ति के लिए कुछ शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा भी गया है, जैसे—उस्से, रजधानी, नहिं, कोइ, बलीदान आदि। आदि से अन्त तक ३० मात्राओं के छंद में ही कवि ने अपनी रचना की है। छंद में आल्हा की गति और गेयता है।

भाषा के अलंकरण और पाण्डित्य-प्रदर्शन पर दृष्टि न होते हुए भी कुछ अलंकार सहज रूप में आ गये हैं। जैसे—

अब वह सुधा-सलिल-सी कविता जगत न सुनने पावेगा।
अब जग में हम हिन्दूगण का कोई गान न गावेगा।।[1]

मानो रणचण्डी चित्तौर की रक्षा को महि पर आई।
वा सोते से जग जाने पर क्रौधित सिंहिनि-सी धाई।।[2]

पहले उदाहरण में उपमा और दूसरे में उत्प्रेक्षा और सन्देह द्रष्टव्य है। उपमानों में नयापन नहीं है।

काव्यत्व की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण न होने पर भी अपनी विचारधारा की दृष्टि से 'चारण' का अपना महत्त्व है। इसमें कवि ने राष्ट्रीयता की भावना के साथ-साथ नीतिपरक सिद्धान्तों का आकलन किया है। प्रेम की व्यंजना की है, स्वाभिमान का महत्त्व बताया है और कविवर्ग की मानसिकता का उद्घाटन करते हुए एक सच्चे चारण का गुणानुवाद भी किया है। सबको अपने प्राण प्यारे हैं, अतः दूसरे के प्राण लेना उचित नहीं।[3] नीति के प्रतिपादन के साथ प्रेम के विषय में कवि की उक्ति है—

एक प्रेम ही सारे जग का होता आया है आधार,
जगत प्रेम पर ही स्थिर है, ऐसा किया गया निर्धार।[4]

स्वाभिमान के लिए कहा गया कवि का कथन भी उल्लेखनीय है—

---

१. चारण : श्रीवर, बारहवाँ परिच्छेद, पृ० ३९।
२. वही, चतुर्थ परिच्छेद, पृ० १२।
३. वही, अष्टम परिच्छेद, पृ० २७।
४. वही, नवम परिच्छेद, पृ० ३०।

जिसमें है अभिमान नहीं निजता का, जिसे न अपना ज्ञान,
उस पशु को 'जीवित मनुष्य' कहने में होती भूल महान्।[1]

इस प्रकार द्विवेदी-युग की काव्य-धारा के प्रवाह को, अपनी आरंभिक रचना 'चारण' द्वारा पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी 'श्रीवर' ने भी गति दी, इसमें सन्देह नहीं।

## हल्दीघाटी की लड़ाई

कवि माणिक कृत इस काव्य में राणा प्रताप के साथ राजा मानसिंह के युद्ध की प्रख्यात कथा है। इस खण्ड-काव्य और इसी कथानक के अन्य खण्ड-काव्यों में अन्तर इतना है कि इसमें कवि ने दूत द्वारा मानसिंह के आने की सूचना दी है, स्वयं मानसिंह सामने नहीं आते। प्रताप की ओर से उनका पुत्र अमरसिंह नहीं, मंत्री भामाशाह से मिलते हैं। कवि ने अन्त भी शक्तिसिंह के प्रताप से मिलने के साथ ही कर दिया है। राणा के भोजन के समय उपस्थित न होने पर यहाँ भी क्रुद्ध मानसिंह भोजन से चावल लेकर पगड़ी में रख लेते हैं और बदला लेने की धमकी देकर चल देते हैं। दिल्ली पहुंचकर वे अकबर के कान भरते हैं। अकबर उन्हें सलीम के साथ गजमुक्ता हाथी पर राणा प्रताप पर आक्रमण करने के लिए भेजता है। खान बहादुर और मुहब्बत को साथ लेकर मानसिंह के आने की बात कवि माणिक की अपनी खोज या कल्पना है।[2]

रचना के आरम्भ में राणा प्रताप की वंशावली का संक्षिप्त वर्णन है। रचना का आरम्भ प्रताप के उत्साहपूर्ण प्रण के साथ होता है—

सुनौ प्रतिज्ञा राजपूत-गन मेरी है यह,
शत्रु जियत नहिं बचे, पुण्य भूमी भारत मँह।[3]

प्रताप के वीर-चरित्र का वर्णन कवि का सबसे प्रिय विषय है। इस धीरोदात्त नायक के दृढ़-चरित्र के माध्यम से कवि ने अप्रत्यक्ष रूप से बहुत कुछ संदेश देशवासियों को दिया है। राजपूती इतिहास के इस सिंहपुरुष के कभी न झुकने वाले व्यक्तित्व के अपूर्व साहस और दृढ़ता का वर्णन करते कवि थकता नहीं—

---

१. चारण : श्रीवर, सप्तम परिच्छेद, पृ० २५।
२. हल्दीघाटी की लड़ाई : कवि मणिक, पृ० ७।
३. वही, पृ० १।

रोटी खाई घास की, पिये पहाड़ी नीर।
दूध पिबत बालक लखे, रोटी बिना अधीर॥
जाड़ा में पाला सह्यो, गर्मी में अति धूप।
बरसा मैं भीजत रह्यो, व्रत नहिं तज्यो अनूप॥[1]

इस काव्य का अंगी रस वीर है। सम्पूर्ण काव्य उत्साह से ओतप्रोत है। आल्हा पद्धति पर युद्ध का अत्यन्त ओजपूर्ण वर्णन जैसा इस छोटे से खण्ड-काव्य में कवि ने किया है, बहुत कम देखने को मिलता है—

पूरब से रजपूत और पश्चिम से यवन बहादुर आय।
जुटे वीर घनघोर मेघ सम नेजा तीर सेल हर्षाय॥
मुट्ठभेड़ होते युगदल में, चली जुन्नबी अरु गुजराति।
बंदरी सिंधी चली सरोही, ऊना कत्ती और चपाति॥
तोमर और तमंचा तेगा तँवर से लेकर बाँक कटार।
बिछुआ और बिगुरदा खंजर नेजा और तेज मुठमार॥
छप्प छपा छप चली मेवारी, नेजा किये करेजा टूक।
भाला और पियलिया चट चट छूटे, कूदे धरि असि मूठ॥

इसे पढ़ते-पढ़ते पाठक के अंग फड़कने लगते हैं, उसकी आँखों के आगे रण का दृश्य साकार हो उठता है। ध्वन्यात्मकता और नाद सौन्दर्य ने युद्ध के वर्णन में और सजीवता ला दी है। इस प्रकार के वर्णन जैसे––

डिम डिम झाँझ ढोल अरु भेरी, नरसिंहा दुन्दुभि करनाल।
सभी नगाड़े गड़गड़ाय कर, तासे तड़तड़ाय दे ताल।

रचना की प्रभावोत्पादकता में वृद्धि करते हैं। चेतक की मृत्यु पर प्रताप का वियोगजन्य दुःख शोक को उद्दीप्त करता है।

काव्य के सौन्दर्य-वृद्धि के लिए कवि ने रूपक, उत्प्रेक्षा, उपमा आदि अलंकारों का प्रयोग किया है। प्रस्तुत उपमेय में अप्रस्तुत नवीन उपमान की संभावना कवि की विशेषता है। हाथी के दन्त कुम्भ से ढ़रते मद का उपमेय झरता हुआ झरना एक सुन्दर चित्र उपस्थित करता है—

दन्ति कुंभ के मद के नारे, मानो झरना झरत दिखात।
मथि मथि स्वेत किरन पड़ने से चम चम नेजा सबै लखात॥

कवि ने केवल अलंकरण के लिए अलंकार का प्रयोग नहीं किया, अपितु

१. हल्दीघाटी की लड़ाई : कवि माणिक, पृ० ४।

उसमें माधुर्य और प्रसाद की संयोजना भी की है। छन्दों में विविधता है। रोला, दोहा, वीर, तोटक, छप्पय, चौपाई, हरिगीतिका आदि विभिन्न छन्दों का प्रयोग कवि के काव्यत्व और विद्वता का परिचायक है। युद्ध का वर्णन वीर छन्द में आल्हा पद्धति पर किया है। पुस्तक के अन्त में कवि ने एक दोहे में अपना नामोल्लेख किया है, यथा—

विविध भाँति इमि सोच करि कियो राति विश्राम,
आँगन पर 'माणिक' रहे, चौदह सहस ललाम ॥

सारांश यह है कि खड़ीबोली और ब्रज की मिली-जुली भाषा में रचा गया यह खण्डकाव्य द्विवेदी-युगीन प्रवृत्तियों का प्रतीक तो है ही वीर-साहित्य की भी एक निधि है।

**प्रणवीर प्रताप**

श्री गोकुलचन्द्र शर्मा की कृति 'प्रणवीर प्रताप' मेवाड़ के इतिहास पर आधारित एक चरित्र प्रधान खण्ड-काव्य है। प्रख्यात कथा से इसमें एक प्रसंग अवश्य नवीन है। दुःख और निराशा से भरे राणा प्रताप अब अन्त में अकबर के पास सन्धि-प्रस्ताव भेजते हैं, तो उसे पढ़कर बीकानेर के महाराजा के भाई पृथ्वीराज को बहुत दुःख होता है। वे एक ओर तो अकबर को भरमाते हैं कि यह पत्र महाराणा वीर प्रताप का नहीं हो सकता और दूसरी ओर राणा को चुपचाप पत्र लिखते हैं कि यदि वे भी हार मान जायेंगे तो जातीय गौरव का रक्षक फिर कौन रह जायगा। इस प्रकार प्रताप की दृढ़ता बनाये रखने में अप्रत्यक्ष रूप में पृथ्वीराज का भी हाथ है। शर्मा जी ने राणा प्रताप की मृत्यु-पर्यन्त कथा इसमें कही है। पुत्र अमरसिंह के बारे में कृष्णसिंह द्वारा यह आश्वासन पाकर ही कि वह भी उनकी तरह जातीय सम्मान की रक्षा करेगा, प्रताप प्राण-त्याग करते हैं।

कवि का उद्देश्य भारत के प्राचीन गौरव और स्वाधीनता के महत्त्व का प्रतिपादन कर तत्कालीन समाज में जागृति उत्पन्न करना है। प्रथम दो छन्दों की प्रथम पंक्ति में प्रभु स्मरण है, शेष पंक्तियों में कवि का देश-प्रेम, राष्ट्रीयता और मातृभूमि की सेवा की भावना अभिव्यक्त हुई है—

परमेश-प्रेम विशुद्ध वाचक वृन्द ! मन में लाइये,
पुनि पितृ-पुरुषों के चरित्र पवित्र भी पढ़ जाइये।
पूर्व-प्रभा इस भव्य भारतवर्ष की लख लीजिये,
दे ध्यान, पुनरुत्थान जननी-जन्म-भू का कीजिये।

स्वाधीनता, देशाभिमान महान जीवन-सार है,
निर्जीवता की मूर्ति ही दासत्व दुःखागार है।
यह व्यर्थ ही जन्मा-जगाया देश को जिसने नहीं,
जातीय जीवन की झलक आई कभी जिसमें नहीं।

देश-भक्त प्रताप के अपूर्व साहस की सराहना करते हुए कवि इस उदात्त चरित्र के माध्यम से पाठकों को शिक्षा लेने के लिए प्रेरित करता है। काव्य का अंगी रस वीर है। ओज और उत्साह से भरे राणा प्रताप के वक्तव्य स्थान-स्थान पर उनकी दृढ़ता और वीरता को प्रकट करते हैं—

मेवाड़-धरणी शत्रु-कर से मुक्त होगी शीघ्र ही,
गुरु-गर्व होकर चूर्ण, होगा पतित मुगल महीन्द्र ही।
अब तुर्क सिंहासन हिला दूँगा उड़ा आर्य-ध्वजा,
इन क्रूर यवनों को चखा दूँगा अहो! रण का मजा॥[१]

कवि ने भारत की पराधीनता के उस कठिन समय में स्वातंत्र्य के गुण-गान के साथ दासत्व की दुखद स्थिति का स्थान-स्थान पर चित्र खींचकर लोक में जागरण का मंत्र फूँका। यथा——

आधीनता से भी अधिक क्या विश्व में दुख है कहीं?[२]

+ + +

आधीनता युत स्वर्ग का भी वास है भाता नहीं,
स्वाधीन रौरव नरक में भी त्रास है पाता नहीं।[३]

इस खण्ड-काव्य में से लगभग एक तिहाई छन्द इसी भावना से ओत-प्रोत हैं। राणा प्रताप की चरित्र-गाथा के बीच में कवि स्वयं आह्वान करता है—

तृण-तुल्य जीवन आज निज स्वाधीनता पर दान दी,
सर्वस्व देकर शूर वीरों! मातृ-भू को मान दी।[४]

ये उद्गार देश के प्रति कवि की प्रतिबद्धता तो प्रकट करते ही हैं, निश्चय ही उत्तेजक और उद्बोधन भी हैं।

जहाँ कवि ने प्रताप की कष्ट-सहिष्णुता की बात कही है, काव्य

---

१. प्रणवीर प्रताप, छन्द ५।
२. वही, छन्द १४०।
३. वही, छन्द १४१।
४. वही, छन्द ३०।

करुणात्मक हो गया है, उदाहरणस्वरूप राजा के बेटों का बीज, बिजौरों और घास की रोटी को व्याकुलता से हाथ फैलाकर लेना—

तृण, बीज, बल्कल पीस कर हैं भोज्य कुछ प्रस्तुत किया,
शिशु ने उसे ही हाथ फैला कर पिता से ले लिया।[1]

इसकी भाषा खड़ीबोली हैं। कहीं-कहीं तत्सम और समस्त-पदावली का ऐसा प्रयोग किया है कि भाषा क्लिष्ट और दुरूह हो गई है—

भगता भयार्त सुधैर्य भी पा पवन सहसाक्रमण से,
उस उर-विदारक दुःख दुस्सह नित्य के परिभ्रमण से।[2]

सस्कृतनिष्ठ पदावली के साथ उपसर्गों और परसर्गों का प्रयोग भी किया है, जैसे–सुधैर्य, विलुप्त, विलाप आदि। कुछ ऐसे शब्द प्रयुक्त हैं, जो सामान्य व्यवहार में नहीं आते। ये भाषा की सहजता को नष्ट करते हैं। जैसे—वनाद्रिवेष्टित, वक्रापगा, समर-सिधूमि, जात्यपमान, सोदरापति आदि। समस्त-पद जैसे—'दुर्दैव-दन्त विलाप' या 'हो प्राण-वलि-यश-लोभ लोलुप तो न तनु त्यागा कहीं'[3] आदि ने भी इसे कठिन बना दिया है। कहीं-कहीं जो शब्द जैसे बोलने में आते हैं, उसी तरह उनकी वर्तनी रखी है, जैसे सकता, सकती के स्थान पर सक्ता, सक्ती का प्रयोग—

'है कौन कह सक्ता कहो, भवितव्यता कल क्या करें।'[4]

सामान्यतः अलंकारों का रूढ़ प्रयोग है, किन्तु इसके अपवाद भी हैं। रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों में उपमानों के कुछ नये प्रयोग किये गये हैं, जैसे—

हा ! बन्धुओं ने बन्धु को मिल मारने की ठान ली,
कर्त्तव्य से मुख मोड़कर, आपत्ति-चादर तान ली।

इस रूपक में आपत्ति उपमेय में चादर उपमान के प्रयोग में नवीनता है। कमल का पानी से भीगे होकर भी ऊपर से ओस का पड़ना मर्मस्पर्शी उक्ति है, जो राजकुँअर के हाथ से बिल्ली द्वारा घास की रोटी छीनने के प्रसंग में दृष्टान्तस्वरूप कवि ने दी है—

---

१. प्रणवीर प्रताप, छन्द ९७।
२. वही, छन्द ७७।
३. प्रणवीर प्रताप, छन्द ५८।
४. वही, छन्द ७४।

सो भी बिडालाक्रमण से उस बाल-कर से गत हुआ,
हा ! हा ! जलज जलगत हुआ भी तुहिन से आहत हुआ ।[1]

भीगे कमल पर कवि ने ओस का गिरना प्रस्तुत कर स्थिति की गम्भीरता को दिखाया है। रूपक के उदाहरणस्वरूप इस छन्द को देखा जा सकता है—'दुर्भाग्य-दिनकर भी कहो निस्सीमता को प्राप्त था'[2] इसमें दुर्भाग्य और दिनकर में अभेद आरोपण है। अनुप्रास और उपमा का प्रयोग कवि ने एक ही छन्द में किया है—

वह जगमगाती ज्योति जननी-भूमि-भक्ति प्रभामयी,
देदीप्यमान मरीचिमालिन्मूर्ति सम देखी गयी ।[3]

द्विवेदी युगीन-काव्य-प्रवृतिगत शब्द 'अहो, अहा, हा, कहो' आदि भी स्थान-स्थान पर मिलते हैं। कहीं-कहीं मुहावरों का भी प्रयोग है। प्रकृति-वर्णन नहीं के बराबर है।

इस प्रकार राणा प्रताप के चारित्रिक गुणगान द्वारा राष्ट्रीयता का उद्भव और विकास कर स्वाधीनता प्राप्ति हेतु वातावरण बनाने में इस काव्य ने मदद दी। कतिपय दोष होते हुए भी उस समय रचित खण्डकाव्यों में भावपक्ष और कलापक्ष दोनों ही दृष्टि से इसका स्थान निस्संदेह उल्लेखनीय है।

**भारतीय दृश्य**

यह काव्य श्री विश्वनाथ ठाकर की कृति है। पुस्तक के 'निवेदन' में ही कवि ने लिखा हैं—'यह पुस्तिका किसी जातिविशेष पर आक्षेप न करती हुई सन् १७९२ ई० में पंजाब प्रान्त के एक क्षत्री सरदार का एक मुसलमान सरदार अब्दुल्ला खाँ के हाथ बन्दी होना और फिर मारा जाना दिखलाती हुई, पंजाब केशरी क्षत्रीकुल-मुकुट श्री महाराजा रणजीत सिंह जी का क्रोध अब्दुल्ला के प्रति ही नहीं वरन् दुष्टता के अवलम्ब देने वाले मात्र के प्रति दिखलाती हुई; जिसका इतिहास साक्षी हैं; समाप्त हुई हैं।'

नाटकीयता के साथ एक सुन्दर प्राकृतिक स्थान में बनी विशाल कोठी और उसकी साज-सज्जा के वर्णन से कथा का आरम्भ होता हैं। रानी आकर सिंहासन पर बैंठती हैं, उनके साथ बीस युवतियाँ भी आती हैं। बाहर से

१. प्रणवीर प्रताप, छन्द ९८ ।
२. वही, पद ७८ ।
३. वही, पद २०२ ।

रोने की आवाज आती है और वह रोने वाले को अन्दर लाने का आदेश देती हैं। इस पर अनुचर १६ घायल युवकों को अन्दर लेकर आता है। वे अपने चार भाइयों को यवनों द्वारा मार दिये जाने की शिकायत कर रक्षा की दुहाई करते हैं। धर्म भी जो पर्दे के पीछे छिपा होता हैं, सामने आ जाता हैं। इतने में यवन वहाँ आ जाते हैं और आक्रमण करते हैं। सारी औरतें वीरता से लड़ती हैं, यवन भाग जाते हैं। इसके साथ ही दूसरा खण्ड समाप्त होता हैं।

तीसरे खण्ड में यवन अपने साथ गायों को लेकर आते हैं और उन्हें सामने कर लड़ते हैं। गायों के मरने के भय से क्षत्राणियाँ उन पर वार नहीं करतीं और भाग खड़ी होती हैं। चौथे खण्ड में जब सारी युवतियाँ एक जंगल में एकत्र होती हैं, तब एक युवती, रानी को उसके अवलम्ब वीरसिंह के दुष्ट अब्दुल्ला द्वारा बन्दी कर लिए जाने का समाचार देती हैं। पंचम खण्ड में रानी द्वारपाल का वध कर वीरसिंह के पास कैदखाने में पहुँच जाती हैं। वह उसे बाहर चलने को कहती ही हैं कि यवन दोनों की गर्दन पर वार कर उन्हें मार देते हैं। महाराजा रणजीत सिंह के पास जब यह खबर पहुंचती है तो वे इन दुष्टों के विनाश की प्रतिज्ञा कर उसी समय परिकर कसते हैं और कोदण्ड पर तीर चढ़ा लेते हैं।

काव्य का आरंभ परम्परागत वन्दना से हुआ हैं--

वन्दे त्वां भूदेवीमार्य मातरम्।
जयतु जयतु पद युगलं ते निरन्तरम्।

इस कथा के माध्यम से कवि विदेशियों के अत्याचार के प्रति जनता में रोष और प्रतिकार की भावना भरना चाहता हैं। अन्त में रणजीत सिंह का क्रोध दिखाकर उसने अपने इसी उद्देश्य की सिद्धि की हैं।

काव्य में वीर रस की प्रधानता। श्रृंगार के भी दर्शन होते हैं। प्रकृति-वर्णन आलम्बन रूप में किया गया हैं—

देखहु घन मण्डल अति रूरे। जनु कनात चहुँ दिशि मह पूरे।
कटी घास में सुसुमन लागे। जनु मखमल में बूटा पागे॥[1]

भाषा व्रज है जिसमें खड़ी बोली का भी पुट है, जैसे—'बिम्बाफल सम अधर अरुण शुचि। रेखा हास्य दीन्ह लज्जा मुचि।'[2] यहाँ 'दीन्ह' को

१. भारतीय दृश्य, प्रथम खण्ड, पृ० ५।
२. वही, पृ० ८।

छोड़कर शेष सब खड़ी बोली है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा अलंकारों का प्रयोग ही प्रायः कवि ने किया है। उत्प्रेक्षा का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

तहँ पंकज नीले अरुणारे। मनहुं मदन निज हाथ सँवारे।[1]

अलंकरण हेतु परम्परागत उपमानों का ही प्रयोग किया गया है—

हिलत खिलत नासिका शुभ्र किमि,
सुक सुतुण्ड वायु में हिले जिमि।[2]

नासिका के लिए तोते की चोंच का उपमान रूढ़ है। व्याकरण की अशुद्धियाँ हैं। भाषा अपरिष्कृत और शिथिल है। विभिन्न छन्दों जैसे—दोहा, सवैया, सोरठा, शिखरिणी आदि के साथ ही एकाध स्थान पर गज़ल का प्रयोग भी ठाकर जी ने किया है। छन्दों में मात्रा दोष भी मिलता है।

रचना प्रायः इतिवृत्तात्मक है, वस्तुओं का यथातथ्य चित्रण किया गया है, जैसे—

सिंहासन के ओर दोऊ, कुरसी रह छब्बीस।
अर्ध चंदराकार सब, बैठन कँह तिय बीस॥

काव्यत्व की दृष्टि से देखा जाय तो यह काव्य महत्त्व नहीं रखता, किन्तु उस काल में सामाजिक चेतना जगाने में इसका अपना महत्त्व है। यवनों ारा गायों को आगे करके युद्ध करने की जो चालाकी की गई, उस पर कवि ने विशेष रूप से प्रकाश डालकर हिन्दुओं की धार्मिक भावना को उभारा और उनमें उत्तेजना पैदा की। महाराणा रणजीत सिंह का यवनों को दण्ड देने के लिए कटिबद्ध दिखाकर कवि ने सिक्खों को भी इस उद्देश्य सिद्धि में सम्मिलित कर लिया, साथ ही खड़ी बोली को भी अंशतः अपनाकर यह उसके विकास में भी सहायक हुआ।

**आत्मार्पण**

श्री द्वारिकाप्रसाद गुप्त 'रसिकेन्द्र' कृत 'आत्मार्पण' की नायिका प्रभावती है जिसका नाम मेवाड़ के इतिहास में कहीं-कहीं रूपवती या चंचल कुमारी भी दिया गया है, किन्तु रसिकेन्द्र जी ने इतिहासकार टाड और बंगला की पत्रावली के अनुसार उसे प्रभावती ही लिखा है। सम्पूर्ण कथा पाँच सर्गों में विभाजित है।

---

१. भारतीय दृश्य, प्रथम खण्ड, पृ० ५।

२. वही, पृ० ८।

प्रथम सर्ग में कवि ने रूपगढ़ के राजा विक्रमसिंह की इकलौती कन्या प्रभावती के अद्वितीय रूप की चर्चा के तत्कालीन मुगल सम्राट् औरंगजेब के कानों में पहुँचने का प्रसंग लिया है। प्रभावती की रूप-चर्चा सुन मुग्ध होकर औरंगजेब उसे अपनी बेगम बनाने का प्रस्ताव रूपनगर भेजता है। प्रभावती उसका तिरस्कार करती है और उसके चित्र का भी अपमान करती है। इस पर बादशाह क्रुद्ध होकर रूपगढ़ को घेर लेता है। प्रभा अपनी रक्षा के लिए मेवाड़ के राणा राजसिंह को, जिन्हें वीरता पर मुग्ध होकर, मन ही मन वह अपना पति मान चुकी है, पत्र लिखती है कि वह रुक्मिणी की तरह उसका हरण कर लें, अन्यथा वह जान दे देगी, किन्तु औरंगजेब के हरम में नहीं जायेगी।

दूसरे सर्ग में कुलपुरोहित प्रभा का पत्र दरबार में जाकर राणा राजसिंह को देते हैं। राजा पत्र पढ़कर सोच में पड़ जाते हैं पर उनका सेनापति वीर चूड़ावत उन्हें उत्साह दिलाता है और प्रभावती से परिणय कर स्वयं मुगल सेना को रोकने की बात कहता है। इसी सर्ग में कवि ने देश के पतन के मुख्य कारण परस्पर फूट, ईर्ष्या, द्वेष आदि के वर्णन के लिए भी अवसर निकाल लिया है।

तृतीय सर्ग में पत्र के उत्तर में राणा राजसिंह प्रभा की भावना की सराहना करते हुए लिखते हैं कि जब कुमुदिनी सम्बन्ध जोड़ना चाहती है तो चन्द्रमा का मुख मोड़ना उचित नहीं, अतः वह अवश्य पहुँचेंगे। जल्दबाजी में घबड़ाकर वह अपने प्राण कदापि न त्यागे।

चतुर्थ सर्ग में वीर चूड़ावत अपनी नवपरिणीता से विदा लेकर युद्ध में जाता है किन्तु मोहवश वह अस्थिर हो जाता है और थोड़ी ही दूर आगे चलकर स्मृति चिह्न भेज देने के लिए संदेश के साथ दूत को अपनी हांडी रानी के पास भेजता है। कर्तव्य परायणा, वीर राजपूत रमणी अपने पति को प्रिया-मोह के कारण कर्तव्य के प्रति डाँवाडोल देखकर आत्मार्पण करती है और बेहिचक अपना शीश काट कर चिह्न नारी के रूप में दूत को दे देती है। रानी का कटा सिर देखकर चूड़ावत के सिर पर खून सवार हो जाता है, वह कटे सिर को चुटीले से बाँध माला बनाकर गले में पहिन लेता है और मुगल बादशाह को रोकने का मोर्चा बनाकर मैदान में डट जाता है।

पाँचवें सर्ग में बादशाह चूड़ावत को रास्ते से हट जाने को कहता है, पर वीर सरदार अपने साथियों को उत्साहित कर धर्म विरोधी शत्रुओं के शोणित से रणचण्डी का खप्पर भरने को कहता है। शिशोदिये राजपूत दिन

में जान पर खेलकर शाह से युद्ध करते हैं और रात को अपने शिविर में अपने देश भारत का जय-गान करते हैं।

शरणागत की रक्षा को अपना धर्म समझते हुए चूड़ावत ने इन शर्तों के साथ कि शाह प्रभावती का धर्म-भंग नहीं करेगा, दस वर्ष तक मेवाड़ पर आक्रमण नहीं करेगा एवं चूड़ावत के साथ युद्ध जारी रखेगा सन्धि प्रस्ताव मान लिया। लड़ते हुए चूड़ावत ने वीर गति प्राप्त की। बादशाह ने उसका विरोचित संस्कार किया और लौट गया। राणा राजसिंह ने प्रभावती से विवाह कर लिया और बादशाह से फिर युद्ध किया।

'आत्मार्पण' के कथानक में तथ्यों को कवि ने तोड़ा-मरोड़ा नहीं है। केवल एक दो स्थानों पर उसमें लालित्य और रोचकता लाने के लिए अपनी कल्पनाशक्ति का प्रयोग किया है, जैसे प्रभावती के राणा को पत्र में या राणा के प्रभावती को उत्तर में।[1]

कथानक सुसंगठित, प्रवाहमय एवं रोचक है जो कवि की राष्ट्रीय भावना के प्रचार, प्रसार और जन-उद्‌बोधन के उद्देश्य की पूर्ति करता है।

वीरत्व-प्रधान इस काव्य का अंगी रस वीर है। स्थान-स्थान पर जोश और उत्साह जगाकर वीर रस का उद्रेक करने वाले काव्यांश मिलते हैं। जैसे—

चौंक कर वह वीर सोते से जगा,
मोह को धिक्कारने मन में लगा।
श्याम घन में दामिनी आ पड़ गयी,
अग्नि में अथवा घृताहुति पड़ गयी॥[2]

साथ ही श्रृंगार, शान्त, रौद्र, वीभत्स एवं करुण रस की व्यंजना भी इस काव्य में हुई है। शत्रु की खोपड़ियों को छेद देना, अरि के शोणित से खप्पर का भरना, रानी के कटे शीश को गले में पहिनकर लड़ना[3] क्रमशः वीर और रौद्र रस का संचार करता है—

शीश बाला का हुआ शोभित नया,
मुण्डमाली वीर 'हर' सा बन गया।

---

१. आत्मार्पण, प्रथम सर्ग, पृ० ५, तृतीय सर्ग, पृ० २२।
२. वही, चतुर्थ सर्ग, पृ० ३५।
३. आत्मार्पण, पंचम सर्ग, पृ० ४२।

तेज की नव दीप्ति उसमें छा गई,
या स्वयं देवी हृदय में आ गई।[1]

धार ली संहार-कर्त्री मूर्ति सी,
कर प्रलय-पावक दृगों से स्फूर्ति सी।[2]

प्रभावती के मन में राजा राजसिंह के प्रति प्रेम-भावना की अभिव्यक्ति में और नव-परिणीता रानी हांडा के रूप चित्रण में कवि को शृंगार-वर्णन का थोड़ा अवसर भी मिल गया है—

नव-वधू थी, सुख न कुछ भी था मिला,
और मानस-कमल भी था अधखिला।[3]

जब रानी हांडा अपने पति को कर्तव्य के प्रति सचेष्ट करने के लिए अपना सिर काटने को उद्यत होती है तो पाठक के मन में शोक और करुणा का भी संचार होता है। सिर काटने से पूर्व अपने पति के नाम दिया गया रानी का संदेश प्रेम में त्याग की पराकाष्ठा है जो पाठक की आँखों में आँसू भर देता है। जातीय गौरव के लिए युवा पत्नी का अपने हाथ से सिर काट कर दे देना, राजपूत सरदार का युद्ध में वीर गति को प्राप्त होना, शत्रु को क्षमा कर देना आदि त्याग और बलिदान के अपूर्व उदाहरण हैं। इस काव्य में चरित्र-चित्रण के माध्यम से कवि ने कथा को गति दी है और वह अपने उद्देश्य प्राप्ति की ओर अग्रसर हुआ है। प्रभावती का निश्चय–'प्राण दूंगी पर न जाऊंगी वहाँ–शाह की बेगम न कहाऊंगी वहाँ'[4] और उसी स्वर में राणा राजसिंह का यह कहना कि 'धर्म पर अर्पण किया यह गात है'[5] या चूड़ावत का यह कथन कि जब तक राणा प्रभा को व्याह कर नहीं लौटेंगे, वह शाह से युद्ध करता रहेगा, वीरोचित चरित्र के प्रमाण हैं। रानी हांडा का कर्तव्य बोध और पातिव्रत नारी जाति का आदर्श है—

युद्ध में जो आप जीतेंगे कहीं,
अन्य सुख मेरे लिए इस सा नहीं।[6]

राणा राजसिंह के बल और शौर्य का अनुमान करने के लिए 'सुन राणा

१. आत्मार्पण, चतुर्थ सर्ग, पृ० ३६।
२. वही, पद ५०, पृ० ३६।
३. वही, पद ४२, पृ० ३४।
४. ५. पद १९, पृ० ६।
६. पद १७, पृ० २८।

का नाम स्वप्न में, चौंक चौंक उठता था शाह' पर्याप्त है। अपने देश और आन पर मर मिटने वाले चरित्रों की गाथा पढ़कर पाठक के मन में स्वाभाविक रूप से देश प्रेम और राष्ट्रीयता की भावना जागृत होती है।

काव्य की भाषा परिमार्जित खड़ी बोली है जिसमें तत्सम शब्दावली का प्रयोग हुआ है। जैसे—ग्रीव-ग्रंथित, सत्वर, मुंडमाली, संहार-कर्त्री, मखभाग आदि। मुहावरे जैसे—मुँह बाना, वीर गति पाना, फल पाना, लाली रखना, रंग चढ़ना, सुख की नींद सोना सहज रूप में आये हैं। उर्दू के शब्दों से भी कवि को विरक्ति नहीं है। बेखबर, हुक्म, नुकसान, शिकस्त, ख्याल, मंजूर, वक्त आदि आम जनता में प्रचलित शब्दों को अपनाया गया है। व्याकरण की त्रुटियाँ नहीं के बराबर हैं। कहीं-कहीं कवि ने ग्रामीण अंचल में प्रयुक्त क्रियाओं, जैसे— फैलाइयो, आइयो, कीजियो, दीजियो का भी प्रयोग किया है। कहीं-कहीं शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा भी गया है जैसे—विध, नाशन, आदिक रंचक आदि। अभिधा प्रधान प्रसाद गुण सम्पन्न भाषा में, वर्णनात्मक शैली में, प्रायः १९ मात्राओं के छन्द में कवि ने रचना की है।

अलंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास ही प्रायः प्रयोग किये गये हैं। 'प्रबल पापों से प्रपीड़ित है मही,'[१] या 'दीन दशा हो दूर दयानिधि'[२] में अनुप्रास की छटा है। निम्नलिखित पद में रूपक अलंकार का सौष्ठव विद्यमान है—

नव-वधू थी, सुख न कुछ भी था मिला,
और मानस-कमल भी था अधखिला।[३]

वस्तुपरक उपमेयों के लिए कवि ने कुछ भावपरक उपमान भी दिये हैं, जैसे—'कर प्रलय पावक दृगों से स्फूर्ति सी।'[४]

आदि से अन्त तक जहाँ भी अवकाश मिल पाया है, कवि ने देश और समाज की तत्कालीन दशा का चित्र प्रस्तुत किया है—

हीन अपने आप हिन्दू हो रहे
धर्म को धन के लिए हैं खो रहे।[५]

---

१. आत्मार्पण, पद १, पृ० २।
२. वही, पंचम सर्ग, पद ५६, पृ० ६०।
३. वही, चतुर्थ सर्ग, पद ४२, पृ० ३४।
४. वही, पद ५०, पृ० ३६।
५. वही, द्वितीय सर्ग, पद २२, पृ० १६।

कवि का दर्प है—

तुम ऐसे वीरों के दर्शन,
हमें हो रहे दुर्लभ आज।
जो सुख, भोग, प्राण तक तजकर
रखते थे सतियों की लाज।[1]

कवि को ईश्वर में भी पूर्ण आस्था है। उसकी भावना है कि दुष्टनाशन राम को याद करके हर काम का प्रारंभ करने से सफलता मिलती है–'हो जिनकी संतान, तुम्हारी रक्षा वही करेंगे राम'[2] कहकर कवि सब ऊहापोहों से मुक्ति पा लेता है। कवि को जयचंद जैसे देशद्रोहियों के भारत में होने का क्षोभ है। ऐसे लोग नहीं होते तो हिन्दू राज्य का अन्त न होता, यह कवि की धारणा है। अपने देश के गौरव को, सदाचरण को पुनः प्राप्त करने के लिए कवि ईश्वर से बारम्बार प्रार्थना करता है—

हे भगवान्! विश्व में गूँजे
इसी पवित्र गान की तान,
जय जय पूज्य देश! जय भारत!
जय जय प्यारे हिन्दुस्थान।[3]

'आत्मार्पण' के अन्तिम चरण में कवि हिन्दुत्व और नारी-उत्थान की कामना करता है–

हिन्दूपन की धाक जगत में
जम जाए फिर हे जगदीश!
बनें साहसी राणा जैसे
आर्य उठाकर ऊँचा शीश।

प्रकटें प्रभावती सी सतियाँ
देने को स्वदेश का साथ,
लाली रक्खे ललनाओं की
लेकर धर्म-ध्वजा को हाथ।[4]

इस प्रकार भाव और कला दोनों दृष्टियों से 'आत्मार्पण' द्विवेदी-युग का

---

१. आत्मार्पण, पंचम सर्ग, पद ५०, पृ० ५८।
२. वही, पद १४, पृ० ४१।
३. वही, पद ३३, पृ० ५०।
४. आत्मार्पण, पंचम सर्ग, पद ६०, ६१, पृ० ५७।

एक श्रेष्ठ खण्डकाव्य है जिसने तत्कालीन विषम परिस्थितियों में देशवासियों में राष्ट्रीयता, धर्म और कर्त्तव्य-बोध का भाव जगाया और पाठकों की काव्यानुभूति की तुष्टि के साथ उन्हें स्वाधीनता और पूर्व-गौरव को प्राप्त करने के लिए तैयार करने में योग दिया।

**विकट भट**

यह मैथिलीशरण गुप्त की कृति है। गुप्त जी पर स्वतन्त्र रूप से लिखे गये शोध-ग्रन्थों में इसका पर्याप्त विवेचन हो चुका है। जोधपुर के मद्यप राजा विजयसिंह ने एक दिन सहसा पोकरण वाले स्वाभिमानी सरदार देवीसिंह से पूछा कि 'यदि तुम मुझसे रूठ जाओ तो क्या करो'। सरदार ने बात को टाला पर राजा के जिद्द करने पर उत्तर दिया—

'पृथ्वीनाथ, जो मैं रूठ जाऊँ' कहा वीर ने—
जोधपुर की तो फिर बात ही क्या, वह तो
रहता है मेरी कटारी की पर्तली में ही;
मैं यों 'नव कोटी मारवाड़' को उलट दूँ
कहते हुए यों ढाल सामने जो रक्खी थी,
बाएँ हाथ से उन्होंने उलटी पटक दी।[1]

इस पर क्रुद्ध हो राजा ने सरदार को ही नहीं, उसके बेटे जैतसिंह को भी मरवा दिया। फिर देवीसिंह के पौत्र बारह वर्षीय सवाईसिंह को दरबार में बुलाकर ऐसा ही प्रश्न किया। उस बालक के वीरोचित दर्पमय उत्तर से राजा की आँखें खुल गईं। उसने उसे छाती से लगा लिया और सामंत बनाकर आशीर्वाद दिया।

काव्य का प्रमुख रस वीर है। भाषा खड़ी बोली है जिसमें भीड़ पड़ना, मार्ग साफ करना, गाढ़े में आड़ा करना, दाँत खट्टे होना आदि मुहावरों के प्रयोग किये गये हैं। ब्रज भाषा के प्रयोग जैसे—ठौर आदि भी कहीं-कहीं हैं। रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों को अपनाया गया है। कुछ प्रयुक्त उपमानों जैसे—'भोर के भभूके सा प्रविष्ट हुआ साहसी'[2] या 'उठता शरीर मानो अंग में न आता था'[3] आदि में नवीनता है। सर्वत्र अतुकान्त छन्द का प्रयोग है। इतिहास में कल्पना का मिश्रण भी कवि ने किया है।

इस काव्य द्वारा राजपूती शौर्य और स्वाभिमान पर प्रकाश डालकर

---

१. विकट भट : गुप्त जी, पृ० ४-५।

२. ३. विकट भट, पृ० १४।

कवि ने पाठकों के स्वाभिमान और शौर्य को जागृत करने की चेष्टा की है। जनता को उद्‌बोधित करने के साथ ही कवि ने चाटुकारों को भी चुनौती दी है।

**चित्तौड़ विध्वंस :**

'चित्तौड़ विध्वंस' की ऐतिहासिक घटना श्री काली प्रसाद शास्त्री 'श्रीकर' के इस काव्य का उपजीव्य है। एक बार चित्तौड़ के महाराजा विक्रम के अविचार और अत्याचार से त्रस्त होकर सैनिक दल शासन से अलग हो गया। इसी समय मौका देखकर मुजफ्फर का वंशज बहादुर जो बहुत दिन से इस विचार में था कि गुजरात के शासक यवन मुजफ्फर को बन्दी बनाने वाले पृथ्वीराज के वंशजों को पराजित करूँ, अपनी सेना लेकर चढ़ आया। चित्तौड़ महाराज विक्रम के हाथ से निकल गया और महारानी जवाहिर भी इस युद्ध में काम आई। इसे सुनकर शत्रु से अपने सम्मान और स्वधर्म की रक्षा के लिए तेरह हजार क्षत्राणियों ने जौहर-व्रत किया और चित्तौड़ का विध्वंस हो गया।

काव्य का आरंभ 'रुक्मिणी वन्दना' से हुआ है। महारानी जवाहिर और क्षत्राणियों के शौर्य और धर्म-पालन का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कवि ने जनता को देश और धर्म पर मर मिटने की प्रेरणा दी है। प्रमुख रस वीर है। बहादुर के साथ राणा विक्रम के युद्ध में वीरत्व-प्रदर्शन को कवि ने कुशलता से छन्द-बद्ध किया है—

वह एक तजते बाण यह दो, छः उधर तो दस इधर।
धड़ से उड़ा शिर जान पड़ता था नहीं जाता किधर॥
कर में लिए करवाल को धड़ दौड़कर जाता जिधर।
जन नाश करता था अनेकों वीरवर के तुल्य पर॥[1]

इसी प्रकार रानी जवाहिर, जिसे कवि ने चित्तौड़पति की विजयलक्ष्मी कहा है, के युद्ध कौशल का वर्णन भी प्रभावित करता है—

घनघोर समराकाश में तड़िता सदृश वह गर्जती,
जाती इधर से थी उधर, कर में लिए असि तर्जती।[2]

वीर के अतिरिक्त वीभत्स का समावेश वहाँ होता है जहाँ कवि समर-स्थल में क्षत-विक्षत मुण्डहीन रुण्डों और लुण्डों को इधर-उधर लुढ़कते,

१. चित्तौड़-विध्वंस, पद ८, पृ० ५।
२. वही, पद ३५, पृ० ११।

सियारों के झुण्डों के द्वारा नोंचते खसोटते, खून के कुण्डों में लाशों को तैरते हुए दिखाता है।[1] करुण का आभास भी होता है जहाँ जवाहिर रानी युद्ध में मारी जाती है और तेरह हजार रानियाँ चिता में जिन्दा जल मरती हैं, 'वे जानकी सी जननियाँ, वे वीर मातायें सभी, हा ! एक साथ गई'[2] आदि प्रसंग मन को शोकाकुल कर देते हैं।

काव्य की भाषा चित्रोपम खड़ी बोली है जिसमें तत्सम शब्दावली के साथ यत्रतत्र तद्भव और देशज शब्दों का समावेश भी हुआ है। ब्रजभाषा के प्रयोग जैसे--जिनने, दीजै आदि भी मिलते हैं। हा, अहा, अहो, हे आदि शब्दों के प्रयोग के साथ सम्बोधन शैली के दर्शन भी होते हैं, यथा—'आशे ! तुम्हें है त्यागता जन भूलकर कोई नहीं।'[3] छाँह छूना, सिक्का जमना, जम जाना आदि मुहावरों का प्रयोग कर कवि ने भाषा को सशक्त बनाया है। सर्वत्र अट्ठाइस मात्राओं वाले छन्द हरिगीतिका को कवि ने अपनाया है। छन्द भंग नहीं के बराबर है। अलंकारों में अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा को ही प्राय: स्थान मिलता है।[4] उत्प्रेक्षा का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

दोनों दिशा के वायुगति से युद्ध योद्धा कर रहे,
त्रय तत्व मानों लोक को लय कुण्ड में थे भर रहे।

स्थान-स्थान पर कवि की निजी विचारधारा प्रकट हुई है। वह नीति-वादी है और कर्म में विश्वास करता है—

जो काम हैं करते बड़े कहते न वे फिरते कहीं।
कुछ काल में है ख्याति हो जाती स्वयं उनकी वहीं।।[5]
देना सदा सुख आश्रितों को, सज्जनों का कर्म है,
सत् शास्त्र का यह मर्म है, यह धर्म देता शर्म है।[6]

कवि राजपूत-वीरांगनाओं के साहस, देशभक्ति और मर्यादा की रक्षा के प्रति विनत है। महारानी जवाहिर के लिए भी वह कहता है--

१. चित्तौड़-विध्वंस, पद ९, पृ० ५।
२. वही, पद ४७, पृ० १४।
३. वही, पद २७, पृ० ९।
४. वही, पद ५, पृ० ४, पद १८, पृ० ७, पद ४७, पृ० १४, पद १२, पृ० ६, पद १६, पृ० ७।
५. वही, पद १९, पृ० ७।
६. चित्तौड़-विध्वंस, पद २, पृ० १।

वीर प्रसू, वीरांगना तुम स्वर्ग की सोपान हो।
मर्याद हो तुम राष्ट्र की निज देश की अभिमान हो ।।[1]

कवि ने उस समय फैली फूट, निरुत्साह और आतंक की भावना के विनाश के लिए ही इस ओजपूर्ण उत्साहवर्धक काव्य की रचना की। अन्त में भी उसने ईश्वर से प्रार्थना की है—

हे नाथ ! ऐसी कीजिये जिससे मिटे यह भिन्नता।
है प्रार्थना दीजै मिटा ! 'श्रीकर' हमारी खिन्नता ।।[2]

इस प्रकार जिस विशेष उद्देश्य की पूर्ति हेतु यह काव्य लिखा गया, उसकी प्राप्ति में तो यह सफल हुआ ही, खड़ी बोली के लिए मार्ग बनाने में भी यह सहायक हुआ।

**वीरांगना वीरा**

ठाकुर भगवतसिंह कृत 'वीरांगना वीरा' द्विवेदी युग के उन श्रेष्ठ खण्ड-काव्यों में से है जिन्होंने तत्कालीन परिस्थितियों में जन-मानस में उत्साह और राष्ट्रीय भावनाओं का संचार किया। यह काव्य चित्तौड़ के महाराणा उदयसिंह की उपपत्नी वीरा को नायिका के रूप में लेकर लिखा गया है। कवि ने स्वयं भूमिका में लिखा है—

'महाराणा उदयसिंह के २५ राणियाँ थीं किन्तु कठिन कार्यों में राणा जी सदैव अपनी परम प्रिय उपपत्नी वीरांगना वीरा ही से परामर्श लिया करते थे। इसी सती शिरोमणि के सच्चे पतिव्रत, धर्म, देश प्रेम, जात-प्रेम, स्वाधीन प्रियता तथा अपूर्व शौर्यतादि गुणों के वर्णन करने में मैं भी अपनी मंद लेखनी पुनीत करना चाहता हूँ। प्राचीन सत्पुरुषों एवं सती शिरोमणि महिलाओं का इतिहास जानना प्रत्येक सत्पुरुषों का परम कर्तव्य है। गद्य लिखित इतिहास पढ़ने से प्रायः बहुत कम लोगों का चित्त प्रवृत्त होता है, अस्तु इसी आधार पर मैंने यह पुस्तक पद्य छन्दों (हरिगीतिका) में निर्माण किया है। मैंने इसमें बहुत सी बातें इतिहास के प्रतिकूल अपनी तुच्छ कल्पना एवं अनुमान से भी लिख दिया है।'

प्रस्तुत काव्य के अनुसार मुगल सम्राट् अकबर ने एक दिन राणा उदयसिंह के पास राज-कर देने का आदेश भेजा। राणा ने वीरा से सम्मति ली तो वीरा ने राजकर देने को अपना अपमान समझकर उसे न देने की

---

१. चित्तौड़-विध्वंस, पद ४५, पृ० १३।
२. वही, पद ४८, पृ० १४।

राय दी। फलतः राणा का अकबर से युद्ध हुआ। वीरा ने राणा को बहुत उत्साह दिलाया। राणा के शत्रुओं से घिर जाने और बन्दी बना लिए जाने पर वह पुरुष वेश धारण कर स्वयं रण में गई और युद्ध करके राणा को शत्रु के पंजे से छुड़ाकर अपने घर ले आई।

काव्य का आरंभ कवि ने परम्परागत प्रभु वन्दना 'जो निर्विकार, निरीह, निर्गुण, सार्वभू, अखिलेश हैं' से किया है। तुरन्त ही वह अपने मन्तव्य की पूर्ति के लिए सचेष्ट हो उठा है। राणा के पूछने पर कि अकबर को क्या उत्तर भेजना चाहिए, कवि ने वीरा से अविलम्ब कहलवाया है—

बस नाथ ! उस नर घातकी पैशाच अकबर को अभी,
देकर सरस रण स्वाद द्रुत भंजन करो दुर्मद सभी।

हे प्राण बल्लभ ! प्राण प्रिय ! निज देश रक्षा के लिए,
कटिबद्ध रहना ही उचित है, प्राण कर-तल पर लिए।[1]

और इस उत्साहपूर्ण राय से आवेश में आकर उदयसिंह दूत से कह देते हैं—

सह सैन अकबर को सपदि लै आइयो संग्राम में,
है देर करना सर्वथा अनुचित परम शुभ काम में।[2]

फलस्वरूप अकबर चित्तौड़ पर चढ़ाई कर देता है। बहुसंख्यक यवन सेना के घेरे को देखकर उदयसिंह सन्धि करने का विचार करते हैं, तब भी वीरा उन्हें टोक कर उत्प्रेरित करती है–'हा ! मर्द बनकर भी अहो ! यों भीरु बनते हो प्रभो।'[3] इतना ही नहीं वह यहाँ तक कहती है कि—

खर खड्‌ग यह निज हाथ का हृदयेश ! हमको दीजिये,
ये चूरियाँ मम हाथ की, निज हाथ धारण कीजिए।[4]

इस पर क्रोधावेश में राणा कहते हैं कि 'हूँ जा रहा यह शीश दै आऊँगा या रिपु मार के'[5] और युद्ध में जाकर बड़ी वीरता से यवनों से युद्ध करते हैं।

काव्य में आदि से अन्त तक वीर रस व्याप्त है। पर्यवसान भी वीर

---

१. वीरांगना वीरा, पद ३३, पृ० ९।
२. वही, पद ५६, पृ० १५।
३. वही, पद ९४, पृ० २४।
४. वही, पद ९५, पृ० २५।
५. वही, पद ९७, पृ० २५।

रस में होता है। अतः अंगी रस वीर ही है। युद्ध के वर्णन में वीर रस का परिपाक हुआ है—

धारा धरा पर रक्त की, सरि तुल्य ही देखी गई,
उड़ती हुई पग धूलि, नीरद-वृन्द सी लेखी गई।
था चीखना ही दन्तियों का, मेघ गर्जन सा महा,
करवाल थी बिजली बनी, वर वृष्टि वीरों की अहा।[१]

सहयोगी रस के रूप में शृंगार भी यत्रतत्र विद्यमान है। जैसे वीरा के सोते समय के वर्णन में—

आलोक मुख उस सद्म में अति रुचिर था वह हो रहा,
सह छवि क्षपाकर श्रमित ही पर्यंक पर जनु सो रहा।
बिखरे हुए कच कल कपोलों पर पड़े जो थे अहा,
मानो उरग लहरा रहे हैं अरुण सरसिज वर महा।[२]

इस रूप वर्णन में रीतिकालीन प्रभाव दिखलाई पड़ता है। कवि का मन प्रकृति वर्णन में भी रमा है जो उद्दीपन रूप में न होकर आलम्बन रूप में ही किया गया है, उदाहरणार्थ—

शुचि शैल्य सुभग समीर सुरभित सौख्य प्रद था बह रहा,
कर केलि मुकुलित कलिन सों, खेलो खिलो यों कह रहा।
मद मत्त वृन्द मलिन्द भी, यह देख इत उत घूमता,
है अर्ध विकसित कलिन का, रस चूमता मुख चूमता।[3]

भाषा खड़ी बोली है। तत्सम शब्दों जैसे—शुचि, सुभग, सौख्य, चित्रस्थ, विलोक, प्रभृति आदि के साथ ही तद्भव शब्दों जैसे तीक्ष्ण, सैन, चरित आदि के प्रयोग भी मिलते हैं। उर्दू के शब्द जैसे इनकार आदि भी कहीं-कहीं आ गये हैं। खड़ी बोली में ब्रजभाषा का पुट भी है, उदाहरणार्थ एकवचन का बहुवचन रूप जैसे कली का कलिन, कारक की विभक्ति, से का सों तथा क्रियाओं जैसे विनसाइयो, लै आइयो, डरियो तथा यहाँ वहाँ का इत उत आदि। कवि ने प्रत्यय भी लगाये हैं, जैसे अनुशोक। शायद मात्रा पूर्ति के लिए ही कुछ शब्द गढ़े गये हैं, जैसे शौर्य से शौर्यता। मुहावरों जैसे चींटी के पंख निकलना, मुख मोड़ना, शीश चढ़ाना, रण में पीठ देना आदि का

---

१. वीरांगना वीरा, पद १३६, पृ० ३५।
२. वही, पद १३, १४, पृ० ४।
३. वही, पद १२३, पृ० ३२।

प्रयोग कर कवि ने भाषा को और अधिक सशक्त बनाया है। प्रचलित परम्परानुसार मात्रापूर्ति के लिए हा, अहो, अहा, कहो आदि को स्थान देकर सम्बोधन शैली को भी अंशतः अपनाया है।

अलंकारों को कवि ने लादा नहीं है। सहज रूप में आये उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, संदेह आदि अलंकार काव्य के सौंदर्य में वृद्धि ही करते हैं। जैसे—

खर खड्ग शूल प्रचण्ड के अति प्रबल तीक्षण घात से,
होने लगे रिपु ध्वंस यों, जिमि शैल विद्युत पात् से।
विद्युत प्रहार विलोक उनका, धैर्य रिपु खोने लगे,
अथवा प्रबल रण शौर्य लख, चित्रस्थ सब होने लगे।[1]

आरम्भ की दो पंक्तियों में उपमा अलंकार है। खर खड्ग के प्रहारों का उपमान विद्युतपात है और प्रबल रिपु का उपमान शैल। अन्तिम दो पंक्तियों में संदेह अलंकार है। कवि संशय में है कि प्रहारों के कारण रिपु वर्ग या तो धैर्य खो रहा था या युद्ध कौशल को देख चित्र जैसा स्थिर हो गया था। इसी प्रकार उत्प्रेक्षा के भी सुन्दर उदाहरण काव्य में मिलते हैं—

था शुभ्र मौक्तिक माल ग्रीवा बीच ऐसा छाजता,
मानो क्षपाकर विमल तारक मण्डलीयुत राजता।[2]

अलंकरण हेतु प्रयुक्त उपमान प्रायः रूढ़ ही हैं, जैसे मुख के लिए चन्द्रमा, तलवारों और तीरों के वार के लिए विद्युत-पात, हाथियों के चिघाड़ने को मेघ गर्जन, धूल के लिए बादल, बालों के लिए उरग आदि।

सम्पूर्ण काव्य में कवि ने २८ मात्राओं वाले हरिगीतिका छंद का प्रयोग किया है। छंद-भंग नहीं के बराबर है, परन्तु छन्द की मात्रा पूर्ति के लिए कवि ने शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा भी है, यथा—

ज्यों रक्त नेत्रा शिवा तीक्षण शूलकर धारण किये,
वर वीर महिषासुर प्रभृति, संग्राम में दारण किये।
सक्रुद्ध तद्वत् देवि वीरा, चण्डशूल कृपाण लै,
युद्धस्थली भरने लगी, बहु शत्रुओं के प्राण लै।[3]

यहाँ तीक्षण का तीक्षण द्रष्टव्य है। इसी प्रकार कहीं नहीं का नहिं, इनकार का इन्कार आदि का कवि ने प्रयोग किया है।

१. वीरांगना वीरा, पद १४७, पृ० ३८।
२. वही, पद १४, पृ० ४।
३. वीरांगना वीरा, पद २०१, पृ० ५१।

कवि स्वयं क्षत्रिय है, वह स्वाभिमानी है। यह भावना वह जनमानस में भी भरना चाहता है। मुखपृष्ठ पर ही उसने अपनी इसी भावना 'खर-वाण का आघात सहना क्षत्रियों का धर्म है पर वाक्य का दुर्घात सहना कायरों का कर्म है' को अभिव्यक्त किया है। अन्त में भी वह उस साहसी रमणी वीरा का स्तवन करता है–'तू धन्य वीरा ! धन्य तेरी शौर्यता अति धन्य है, करती तुम्हीं सी नारियाँ यों कठिन कार्य अनन्य हैं।'[१]

इस प्रकार भाव पक्ष और कला पक्ष दोनों ही दृष्टियों से यह एक उत्कृष्ट काव्य है जिसने तत्कालीन परिस्थितियों में जन-जागरण करने के साथ ही साहित्य-कोश को भी सम्पन्न किया।

**वसुमती**

श्री दिवाकर प्रसाद शास्त्री कृत 'वसुमती' एक अतुकान्त खण्डकाव्य है। इसकी रचना एक दन्त-कथा पर आधारित है जो उत्तर भारत के निम्न श्रेणी के मुसलमानों में प्रचलित है। इसके अनुसार वे वर्ष में एक बार गाजी के विवाह का साज सजते हैं और परिणय होने के पूर्व उसकी मृत्यु का अभिनय करके उसके लिए रोते हैं। इसी कथा के अर्द्ध ऐतिहासिक रूप को कल्पना से सुसज्जित करके कवि ने अपने इस खण्डकाव्य का आधार बनाया है। यह कथा संक्षेप में इस प्रकार है—

मुहम्मद गोरी के भारत से लूटपाट करके चले जाने के बाद भारतीय समृद्धि की जानकारी पाकर एक मनचला पठान नवयुवक मसऊद कन्दहारी कुछ सैनिकों के साथ लूटपाट करता हुआ 'श्रीवस्तु' (प्राचीन श्रावस्ती) के निकट पहुँच जाता है। वहाँ अचानक ही उसकी दृष्टि सुमुखी गोपकन्या वसुमती पर पड़ जाती है। वह उस पर आसक्त हो जाता है तथा वसुमती के पिता को उसका विवाह स्वयं से कर देने को विवश करता है। वसुमती श्रीवस्तु के नरेश सोहिलदेव की धर्म-भगिनी है और उसने मन ही मन वीर चन्द्रशेखर को पतिरूप में वरण कर लिया है। इस संकट में वह सोहिल देव की सहायता माँगती है। सोहिलदेव और चन्द्रशेखर मिलकर मसऊद का सामना करते हैं। युद्ध में मसऊद तो मारा ही जाता है, चन्द्रशेखर भी वीरगति को प्राप्त होता है। समरस्थली में ही वसुमती सोहिलदेव की आँखों के सामने ही चन्द्रशेखर के शव के साथ चिता में बैठकर सती हो जाती है। सोहिलदेव दुःखी मन से घर लौट आता है।

१. वीरांगना वीरा, पद २०६ (अन्तिम पद), पृ० ५२।

शास्त्री जी ने इस कथा के माध्यम से देश की कन्याओं के सामने एक आदर्श प्रस्तुत किया है। वसुमती ने प्राण दे दिये, किन्तु परधर्मी विदेशी यवन-युवक के साथ विवाह को तैयार नहीं हुई। पाँच सर्गों में विभक्त यह कथा सुसम्बद्ध, सुनियोजित है। काव्य का आरंभ कवि ने परम्परागत ईश-वन्दना से तो किया है पर उसका भी अपना ही ढंग है—

श्रीपति जो अनन्त, अतुलित बल
जगज्जनक-भर्ता-हर्ता है,
काल-चक्र है जिसकी क्रीड़ा
प्रकृति सेविका, पाठक ! पहिले धरो हृदय में उसका ध्यान।

कवि ने कथानक को विस्तार इस प्रकार दिया है कि भारत भूमि का गौरव-गान और भारतीय ललनाओं को अपनी मर्यादा निभाने की प्रेरणा देने का जो कवि का मन्तव्य है, वह सिद्ध होता गया है।

इस काव्य में श्रृंगार, वीर, करुण एवं शान्त रस का समाहार हुआ है। वसुमती का सौंदर्य वर्णन श्रृंगार के उद्रेक में सहायक होता है। यथा—

लज्जा भरे दृग-युगल से
अंकित वदन-राकेश था
घनघोर उमड़े मेघ सम
कुंचित कचों के बीच से विस्तारता यौवन-कला।[1]

वीर रस का परिपाक चन्द्रशेखर और सोहिलदेव के साथ मसऊद के युद्ध के समय होता है। चन्द्रशेखर की मृत्यु पर उसका शव लेकर वसुमती के सती होने और हूह करके जलती दोनों प्रेमियों की चिता को सोहिलदेव द्वारा कलेजा थामकर देखने के समय करुण की उद्भावना हुई है।[2] आरंभ में—'सांसारिक उत्थान-पतन का, है रहस्य ऐसा दुरुह, इसका भी कर लो कुछ अनुमान'[3] अंश में और अन्तिम छन्द—

रह रह उठता था भस्म से किन्तु शब्द
प्रकृत फल तुम्हारा पापियो ! है विनाश।
निज सरबस खो के सत्य के आग्रही हो,
फिर विजय तुम्हारी है सदा धर्म वीरो।[4]

१. वसुमती, द्वितीय सर्ग, छन्द २५, पृ० १३।
२. वही, पंचम सर्ग, पृ० ४२।
३. वही, प्रथम सर्ग, छन्द २, पृ० १।
४. वसुमती, पंचम सर्ग, छन्द ५६, पृ० ४३।

इसमें जहाँ संसार की नश्वरता का संकेत है शान्त का आभास मिलता है।

'वसुमती' की भाषा विशुद्ध खड़ी बोली है। उसमें तत्सम शब्दों की बहुलता है, किन्तु वह दुरूह नहीं है। वस्तुतः इस खण्डकाव्य का कला पक्ष बहुत सशक्त है। विषयानुकूल प्रांजल शब्द विधान, बिम्ब योजना, चित्रोपम वर्णन, आलंकारिक सौंदर्य, प्रवाहपूर्ण अतुकान्त छन्द-बद्धता और प्रस्तुतीकरण का विशिष्ट ढंग उल्लेखनीय है। शब्द-विधान के सौष्ठव को निम्नलिखित उदाहरण से आँका जा सकता है—

वह कमनीय नील नभ-वसना,
श्यामाभा, शारद-विधु-वदनी,
तारामणि सर्वांग भूषिता,
राका-तरुणी का प्रभात ज्यों लूट ले गया हो सर्वस्व।[1]

चित्रोपम वर्णन की बिम्ब योजना बहुत सटीक और समर्थ है। रात के समाप्त होते हुए दृश्य के लिए किसी हारे हुए सेनापति की तरह चन्द्रमा का शर्म से अपना उतरा मुँह पेड़ों के पीछे छिपा लेने का बिम्ब पाठकों को प्रभावित किये बिना नहीं रहता—

मधु रजनी समाप्त प्राया थी,
किसी विजित सेनापति सा विधु,
लज्जित हो अपना मलीन मुख,
पच्छिम के पादप कुंजों में मनो छिपाने जाता था।[2]

प्रस्तुत के लिए अप्रस्तुत अमूर्त उपमानों की योजना जो एकदम नवीन है, कवि की अद्भुत सूझ और सामर्थ्य का परिचय देती है, जैसे—

मुख की तेजोन्मयी शान्ति को,
शौर्य वीर उत्साह बुद्धि को,
आत्मशक्ति शारीरिक बल को,
अहह! सरल यौवनच्छटा को अपहृत कर ले ज्यों व्यभिचार।[3]

भारत की सम्पत्ति लूटकर लुटेरों ने भारत का रूप उसी प्रकार निष्प्रभ कर दिया, जैसे व्यभिचार मुख के तेज को, शौर्य, उत्साह, आत्मशक्ति और

---

१. वसुमती प्रथम सर्ग, छन्द ९, पृ० २।
२. वही, चतुर्थ सर्ग, छन्द १, पृ० २५।
३. वही, प्रथम सर्ग, छन्द ११, पृ० ३।

यौवन की छटा को हर लेता है। यहाँ मूर्त के लिए 'व्यभिचार' जैसा अमूर्त उपमान लाना कवि का वैशिष्ट्य है। इसी प्रकार—

सरल हृदय के सद्भावों को
दयाधर्म की भावुकता को
अनौचित्य, औचित्य-ज्ञान को
सच्चरित्रता के रत्नों को यथा लूट ले तस्कर-स्वार्थ।[1]

लुटेरे यवन ने ऐसे ही भारत को लूटकर रत्नहीन कंगाल कर दिया, जैसे स्वार्थ रूपी तस्कर किसी सरल हृदय के सद्भाव, दया, धर्म, विवेक और सच्चरित्रता को लूटकर उसे कंगाल कर देता है। कवि ने स्थान-स्थान पर वस्तु और दृश्यों के ऐसे वर्णन प्रस्तुत किये हैं कि आँखों के सम्मुख चित्र खिच जाता है—

मूर्धा पर मधु-मध्याह्न-सूर्य
प्रति सैनिक के था दीप्त किन्तु
उसकी कांचन कमनीय कान्ति
रजत प्रभ भालों पर आ आ अठला अठला बलखाती थी।[2]

'वसुमती' की अलंकार योजना अपने समय के अन्य खण्डकाव्यों से एकदम अलग दिखलाई पड़ती है। इसने सहज रूप में काव्य सौंदर्य को निखारा है।

उपर्युक्त पाँचों उदाहरणों में क्रमशः रूपक, उपमा, दृष्टान्त, रूपक और अनुप्रास अलंकारों का प्रयोग किया गया है। इनके अतिरिक्त उत्प्रेक्षा, प्रतीप, यमक आदि का भी स्थान-स्थान पर अच्छा प्रयोग हुआ है। प्रस्तुत पद में रूपक अलंकार के साथ प्रकृति की छटा का उल्लेखनीय चित्र भी कवि ने अंकित किया है—

थी हेम-शिखरों पर प्रभा
दिननाथ की नित नाचती,
नव पद्मिनी दल मत्त हो
प्रांगण सरोवर में विमोहक हास से था हंस रहा।[3]

'वसुमती' का छन्द-विधान एकदम नया और ताजा लगता है। कवि ने

---

१. वसुमती, प्रथम सर्ग, छन्द १२, पृ० ३।
२. वही, पंचम सर्ग, छन्द १, पृ० ३१।
३. वही, द्वितीय सर्ग, छन्द १६, पृ० १३।

इसकी नवीनता और विशिष्ट गठन को ले कर दावा किया है कि 'आप इन छन्दों को किसी पिंगल ग्रन्थ में नहीं पा सकते' और निश्चय ही उसने अपने दावे को सार्थकता दी है। इस खण्डकाव्य के छन्द अपने ढंग के निराले हैं। तुकान्त न होते हुए भी उसमें एक सरल गति, व्यापक साम्य, प्रवाह और लयात्मकता है। उदाहरणार्थ—

सोलह बसन्तों ने सविधि
कुसुमेष के आदेश से
लेकर सकल कुसुमावली
अब तक समर्च्चन था किया इस हेम लतिका रूप का।[1]

आज से लगभग साठ वर्ष पूर्व अतुकान्त छन्द में इस प्रकार की सम्यक् गति और प्रवाह का होना विशेष रूप से उल्लेखनीय है। तुकान्त न होते हुए भी प्रथम तीन चरणों में १४-१४ मात्राएँ और चतुर्थ चरण में २८ मात्राओं के क्रम का निर्वाह कवि ने सर्वत्र किया है जिससे छन्द में विशेष संगीतात्मकता आ गई है।

इस प्रकार 'वसुमती' द्वारा कवि ने न केवल यवनों की विलासात्मक प्रवृत्ति और भारतीय नारी के आदर्श रूप का दिग्दर्शन कराया है, बल्कि खड़ीबोली की सामर्थ्य एवं अपने अभिव्यंजना कौशल को भी रेखांकित किया है।

**दिल्ली-पतन**

पं० कालीप्रसाद शास्त्री कृत 'दिल्ली-पतन' में जयचन्द और पृथ्वीराज की परस्पर अनबन के कारण मुहम्मद गोरी के पुनः भारत पर आक्रमण करने से दिल्ली के पतन होने की प्रख्यात ऐतिहासिक कथा है। जयचन्द की पुत्री राजकुमारी संयोगिता के चाहने से दिल्लीपति पृथ्वीराज स्वयंवर समारोह के बीच संयोगिता का हरण कर उससे विवाह कर लेते हैं। इस पर जयचन्द अपने को बहुत अपमानित महसूस करता है। वह मुहम्मद गोरी को दिल्ली पर आक्रमण करने के लिए बुलाता है। कई बार पृथ्वीराज गोरी को हराता रहा था, इस बार जयचन्द के षडयन्त्र के कारण पृथ्वीराज को गोरी बन्दी बना लेता है। दिल्लीपति पृथ्वीराज चौहान की हार के साथ दिल्ली का भी पतन हो जाता है।

काव्य का आरम्भ मंगलाचरण से हुआ है। तत्कालीन उपदेशात्मक

१. वसुमती, द्वितीय सर्ग, पद २६, पृ० १४।

प्रवृत्ति के अनुरूप ही स्थल-स्थल पर कवि ने स्थिति का और उसके कुफल का उल्लेख करते हुए अपनी रचना के द्वारा घर की फूट से घर का नाश हो जाने का दुष्परिणाम दिखाया है। कवि का मन्तव्य है कि पाठक इससे शिक्षा लें और कभी गलती न करें।

इसमें वीर और शृंगार रस का समाहार है। युद्ध के उल्लेख में वीर रस का उद्रेक हुआ है। यथा—

जलती हुई द्वेषाग्नि भारी स्वार्थ कुण्डों में पड़ी,
शिर रक्त आहुति गव्य पाकर हो गई भीषण बड़ी।
वह रक्त रंजित चण्डिका रण की समर के स्थान में,
थी धर, गले में मुंडमाला, रक्त के रतपान में।[1]

शत्रु को आमंत्रित करने के जघन्य दुष्कर्म के प्रति कवि के मन का घृणा का भाव पाठकों तक संप्रेषित होता है। द्विवेदी युग में भी देश पराधीन था और जनता पराधीनता की यातनाओं को भुगत रही थी, अतः आजाद देश को पराधीन बना देने वाले उस व्यक्ति विशेष के प्रति जनता का क्रोध और घृणा का भाव उभरता है। कवि का कहना है—

जयचन्द ! तेरे नाम पर धिक्कार सौ सौ बार है।
तुझ नीच ने ही देश भारत की कराई हार है।[2]

इस काव्य की भाषा सामान्य खड़ीबोली है जिसमें अन्य भाषा या बोलियों के शब्दों का समायोजन नहीं किया गया है। अट्ठाइस मात्राओं के छन्द का प्रयोग कवि ने 'हरिगीतिका' छन्द के वजन पर किया है।

अन्त में कवि का ईश्वर में आस्थावादी स्वर भी मुखर हुआ है। वह ईश्वर से प्रार्थना करता है कि भारत के घरों से फूट हट जाय, विज्ञान की उन्नति हो, शान्ति की स्थापना हो, हम स्वतंत्र हो जायें और भारत देश सुख और प्रेम से परिपूर्ण हो। यथा—

प्रभुवर ! प्रथा दो तोड़ भारत के घरों में फूट की।
विज्ञान से सम्पन्न हों हम शान्ति हो इस लूट की।
होंवे स्वतन्त्र समेत हम हैं नाथ ! यह अभ्यर्थना।
सुख प्रेम से परिपूर्ण भारत हो यही है प्रार्थना।[3]

---

१. दिल्ली पतन—पद २८, पृ० १०।
२. वही, पद ५४, पृ० १६।
३. दिल्ली पतन—पद ५५, पृ० १६।

इसकी नवीनता और विशिष्ट गठन को ले कर दावा किया है कि 'आप इन छन्दों को किसी पिंगल ग्रन्थ में नहीं पा सकते' और निश्चय ही उसने अपने दावे को सार्थकता दी है। इस खण्डकाव्य के छन्द अपने ढंग के निराले हैं। तुकान्त न होते हुए भी उसमें एक सरल गति, व्यापक साम्य, प्रवाह और लयात्मकता है। उदाहरणार्थ—

सोलह बसन्तों ने सविधि
कुसुमेष के आदेश से
लेकर सकल कुसुमावली
अब तक समर्च्चन था किया इस हेम लतिका रूप का।[1]

आज से लगभग साठ वर्ष पूर्व अतुकान्त छन्द में इस प्रकार की सम्यक् गति और प्रवाह का होना विशेष रूप से उल्लेखनीय है। तुकान्त न होते हुए भी प्रथम तीन चरणों में १४-१४ मात्राएँ और चतुर्थ चरण में २८ मात्राओं के क्रम का निर्वाह कवि ने सर्वत्र किया है जिससे छन्द में विशेष संगीतात्मकता आ गई है।

इस प्रकार 'वसुमती' द्वारा कवि ने न केवल यवनों की विलासात्मक प्रवृत्ति और भारतीय नारी के आदर्श रूप का दिग्दर्शन कराया है, बल्कि खड़ीबोली की सामर्थ्य एवं अपने अभिव्यंजना कौशल को भी रेखांकित किया है।

**दिल्ली-पतन**

पं० कालीप्रसाद शास्त्री कृत 'दिल्ली-पतन' में जयचन्द और पृथ्वीराज की परस्पर अनबन के कारण मुहम्मद गोरी के पुनः भारत पर आक्रमण करने से दिल्ली के पतन होने की प्रख्यात ऐतिहासिक कथा है। जयचन्द की पुत्री राजकुमारी संयोगिता के चाहने से दिल्लीपति पृथ्वीराज स्वयंवर समारोह के बीच संयोगिता का हरण कर उससे विवाह कर लेते हैं। इस पर जयचन्द अपने को बहुत अपमानित महसूस करता है। वह मुहम्मद गोरी को दिल्ली पर आक्रमण करने के लिए बुलाता है। कई बार पृथ्वीराज गोरी को हराता रहा था, इस बार जयचन्द के षडयन्त्र के कारण पृथ्वीराज को गोरी बन्दी बना लेता है। दिल्लीपति पृथ्वीराज चौहान की हार के साथ दिल्ली का भी पतन हो जाता है।

काव्य का आरम्भ मंगलाचरण से हुआ है। तत्कालीन उपदेशात्मक

---

१. वसुमती, द्वितीय सर्ग, पद २६, पृ० १४।

प्रवृत्ति के अनुरूप ही स्थल-स्थल पर कवि ने स्थिति का और उसके कुफल का उल्लेख करते हुए अपनी रचना के द्वारा घर की फूट से घर का नाश हो जाने का दुष्परिणाम दिखाया है। कवि का मन्तव्य है कि पाठक इससे शिक्षा लें और कभी गलती न करें।

इसमें वीर और श्रृंगार रस का समाहार है। युद्ध के उल्लेख में वीर रस का उद्रेक हुआ है। यथा—

जलती हुई द्वेषाग्नि भारी स्वार्थ कुण्डों में पड़ी,
शिर रक्त आहुति गव्य पाकर हो गई भीषण बड़ी।
वह रक्त रंजित चण्डिका रण की समर के स्थान में,
थी धर, गले में मुंडमाला, रक्त के रतपान में।[1]

शत्रु को आमंत्रित करने के जघन्य दुष्कर्म के प्रति कवि के मन का घृणा का भाव पाठकों तक संप्रेषित होता है। द्विवेदी युग में भी देश पराधीन था और जनता पराधीनता की यातनाओं को भुगत रही थी, अतः आजाद देश को पराधीन बना देने वाले उस व्यक्ति विशेष के प्रति जनता का क्रोध और घृणा का भाव उभरता है। कवि का कहना है—

जयचन्द ! तेरे नाम पर धिक्कार सौ सौ बार है।
तुझ नीच ने ही देश भारत की कराई हार है।[2]

इस काव्य की भाषा सामान्य खड़ीबोली है जिसमें अन्य भाषा या बोलियों के शब्दों का समायोजन नहीं किया गया है। अट्ठाइस मात्राओं के छन्द का प्रयोग कवि ने 'हरिगीतिका' छन्द के वजन पर किया है।

अन्त में कवि का ईश्वर में आस्थावादी स्वर भी मुखर हुआ है। वह ईश्वर से प्रार्थना करता है कि भारत के घरों से फूट हट जाय, विज्ञान की उन्नति हो, शान्ति की स्थापना हो, हम स्वतंत्र हो जायें और भारत देश सुख और प्रेम से परिपूर्ण हो। यथा—

प्रभुवर ! प्रथा दो तोड़ भारत के घरों में फूट की।
विज्ञान से सम्पन्न हों हम शान्ति हो इस लूट की।
होंवे स्वतन्त्र समेत हम हैं नाथ ! यह अभ्यर्थना।
सुख प्रेम से परिपूर्ण भारत हो यही है प्रार्थना।[3]

---

१. दिल्ली पतन—पद २८, पृ० १०।
२. वही, पद ५४, पृ० १६।
३. दिल्ली पतन—पद ५५, पृ० १६।

आचार्य द्विवेदी उस समय साहित्य-सर्जन द्वारा जागृति और स्वातंत्र्य-चेतना की जो लहर लाना चाहते थे, शास्त्री जी ने न केवल उसमें योगदान दिया, बल्कि खड़ीबोली में रचना करके उसका मार्ग भी प्रशस्त किया।

**वीर हमीर**

'वीर हमीर' खण्ड काव्य लगभग १७ वर्ष की अल्पायु में लिखी गयी डा० रामकुमार वर्मा की एक ऐतिहासिक कृति है। राजपूतों की शरणागत रक्षा के प्रतिपाद्य को लेकर लिखे गये इस काव्य का कथानक इस प्रकार है—

एक बार एक मंगोल से यवनराज अलाउद्दीन खिलजी के यहाँ कुछ अपराध हो गया। दण्ड के भय से अपनी रक्षा के लिए वह रणथम्भौर के राजा वीर हमीर की शरण में आया। हमीर ने उसे शरण दे दी। कुपित होकर अलाउद्दीन खिजली ने रणथम्भौर दुर्ग पर चढ़ाई कर दी। वहाँ के राजा वीर हमीर ने अपने बहादुर सैनिकों के साथ उसका सामना किया। यवनों के पाँव उखड़ गये और वे भागने लगे। तभी एक नमकहराम राजपूत सरदार सरज़न स्वार्थवश खिलजी से जा मिला और उसे रणथम्भौर का भेद देने लगा। भेद पाकर भागते हुए यवन लौट आये। वीर हमीर ने पुनः युद्ध के लिए जाते समय अपनी रानी को जौहर के सम्बन्ध में कुछ हिदायतें दीं। सारे सैनिक जान हथेली पर लेकर लड़े और यवनों को खदेड़ दिया। राजपूतों ने यवन झण्डा छीन लिया और उसे ऊपर उठाए हुए हर्ष विभोर लौटे। यवन झंडा ऊँचा उठा हुआ देख रानी ने समझा कि यवन जीत गये और रणथम्भौर की ओर आ रहे हैं। उसने सब राजपूत रमणियों सहित जौहर कर लिया। राजा हमीर और उसके वीर सैनिक जब नगर में आये तो जौहर का समाचार पा बहुत दुःखी हुए। वीर हमीर ने क्षोभ से अपना सर कलम कर लिया। यह समाचार पाकर कृतघ्न सरजन फिर यवनों को लेकर आया। बाकी सरदार लड़ते हुए मंगोल सहित युद्ध में मारे गये और सुनसान किले पर अलाउद्दीन खिलजी ने अपना झण्डा फहरा दिया।

ऐसा लगता है कि वीरत्व, स्वदेश प्रेम, शरणागत और आन बान की रक्षा की भावना से ओतप्रोत ऐतिहासिक कथानक का चयन वर्मा जी ने द्विवेदी-युगीन राष्ट्रीयता और आदर्शवादी प्रवृत्ति से प्रेरित होकर ही किया। वीर हमीर के चरित्र के माध्यम से वे अपनी बात को प्रखर स्वर दे सके हैं। कथानक सुगठित और सशक्त है। घटनाएं परस्पर सम्बद्ध हैं। क्रम कहीं नहीं टूटा है। कल्पना के माध्यम से कवि ने इतिहास को धुंधला नहीं किया है। काव्य का आरम्भ तत्कालीन परम्परागत ईश-वन्दना से हुआ है—

तव मनुज का रूप लेकर धर्म-रक्षा जो करे।
वह हमारे साथ हो सब विघ्न-बाधाएँ हरे ॥[1]

इसके अनन्तर ही कवि का देश-प्रेम प्रकट होने लगता है। अपने देश भारत के सुयश और माहात्म्य का परिचय वह पाठक को देना आरम्भ कर देता है। यथा—

भव्य-भारत पूर्व से ही शान्तियुत गुणवान है,
कर्म पर बलिदान होना ही यहाँ की बान है।
सत्य-पथ का अनुसरण करना यही अभिमान है,
बस, इसी से आज भी इसके गुणों का गान है ॥[2]

कवि ने काव्य के नायक के चरित्र के माध्यम से कथा को विकसित करते हुए अपने भारत और भारतवासी वीरों के उज्ज्वल अतीत को स्थान-स्थान पर अंकित किया है। वीर हमीर के मुख से कवि ने कहलाया है—

सत्य पर बलिदान होना ही हमारा कर्म है,
दीन-दुखियों को बचाना ही हमारा धर्म है।
दुख नहीं, शरणागतों के हेतु यदि तन भी कटे,
है मुझे धिक्कार ! यदि पग तनिक भी पीछे हटे ॥[3]

द्वितीय सर्ग 'वाग्युद्ध' में कवि ने भारतीय वीरों की वीरता और दृढ़ निश्चय का परिचय दिया है। हमीर के दृढ़ निश्चय का वर्णन करते हुए वह कहता है कि 'चाहे चन्द्रमा चन्द्रिका को छोड़ दे या सूर्य पश्चिम में उदय होने लगे या सागर मर्यादा लाँघ जाय, पर हमीर ने जो हठ कर लिया, वह कर लिया, वह अवश्य पूरा होगा।'[4]

मात्र राजपूत युवक ही अपनी आन के लिए नहीं मर मिटते, राजपूत ललनाएँ भी अपनी मातृभूमि और मर्यादा के लिए जीवित जल जाने में भी नहं हिचकतीं—

हम सभी तैयार—'जौहर' धर्म करने के लिए,
मान से निज मातृ भू पर मुदित मरने के लिए।[5]

---

१. कृत्तिका, वीर हमीर—पद १, प्रथम संस्करण १९६६, पृ० २०७।
२. कृत्तिका, वीर हमीर—पद २, पृ० २०७।
३. वही, पद २९, पृ० २१२।
४. वही, सर्ग २, पद १९, २१, २२, २३, पृ० २१८-२१९।
५. वही, सातवाँ सर्ग, पद २२, पृ० २३९।

अन्य कई स्थानों पर भी चरित्र चित्रण के माध्यम से कवि ने अपनी विचारधारा को अभिव्यक्ति दी है, जैसे—

दास बन कर जो जिये तो इस जगत में क्या जिये।[1]
हाय कैसी फूट है इस आर्य की सन्तान में।[2]
बस, तुम्हारी धूल ही में धर्म-हित हम सब मरें।[3]

राष्ट्र-प्रेम-प्रधान इस काव्य का पर्यवसान वीरत्व में ही होता है, अतः इसका अंगीरस वीर ही है। स्थान-स्थान पर वीररस का अच्छा परिपाक हुआ है। अलाउद्दीन खिलजी से वीर हमीर के युद्ध के समय का एक दृश्य प्रस्तुत है—

रक्त की नदियाँ बहीं, कर बाहु, पग कटने लगे,
इस तरह से उभय दल में वीर-गण छटने लगे।
हो रही झंकार थी तलवार की सब ओर से,
नाद 'जय-जय' हो रहा था दुर्ग रणथम्भौर से।[4]

सहयोगी रस करुण है जिसका उद्रेक विशेष रूप से जौहर के उपरान्त हमीर के रणथम्भौर लौटने पर होता है। पाठक का मन करुणा में डूब जाता है, यथा—

वज्र ! गिर पड़, शीश को क्षणमात्र ही में तोड़ दे,
जीव ! तू इस देह को क्षणमात्र ही में छोड़ दे।
अवनि ! फट तू शीघ्र ही मुझको समाने दे अभी,
मुझ सदृश हतभाग्य कर सकता नहीं उन्नति कभी॥[5]

अपनी सारी शक्ति लगाकर शत्रु पर विजय प्राप्त करके लौटने पर जौहर की सूचना–अपनी प्रिय रानी की राख मात्र की प्राप्ति किस हृदय को खण्ड-खण्ड नहीं कर देगी। कवि को अभीप्सित रसोद्रेक में पर्याप्त सफलता मिली है। काव्य में प्रकृति के सुन्दर चित्र भी रस-वर्षा करते हैं, जैसे युद्ध सर्ग के आरम्भ में रात के बीतने पर तारों के डूबने के साथ पक्षियों के मधुर कलरव का वर्णन।[6] या छठें सर्ग में सरजन के शत्रुपक्ष में मिल जाने पर

---

१. कृत्तिका, वीर हमीर, पद २०, पृ० २३९।
२. वही, पद १०, पृ० २३७।
३. वही, नवाँ सर्ग, पद ५, पृ० २४६।
४. वही, पाँचवाँ सर्ग, पद १२, पृ० २२९।
५. वही, सर्ग १०, पद ८, पृ० २४८।
६. वही, सर्ग ५, पद १, पृ० २२७।

विषम परिस्थिति पैदा हो जाने पर कवि ने प्रकृति को भी उसमें सम्मिलित दिखाया है, यथा—

व्योम में नक्षत्र गण का तेज बिलकुल मन्द था।
थी उषा की लालिमा अरविन्द का बन बन्द था।
चन्द्र टेढ़ा मुख लिए नभ में प्रभा से हीन थे।
चक्रवाक प्रभात लखकर हर्ष में लवलीन थे ॥[1]

शुद्ध सरल खड़ीबोली में लिखे गये इस काव्य में मनोगत हर्ष-विषाद की भावनाओं की अच्छी अभिव्यक्ति हुई है। मात्राओं की पूर्ति के लिए तत्कालीन कवियों द्वारा अपनाये गये अहो, अहा, हा, हाय, हे आदि शब्दों का प्रयोग वर्मा जी ने भी स्थान-स्थान पर किया है। उन्होंने उस युग में प्रचलित सम्बोधन शैली को भी अपनाया है, उदाहरणार्थ—

दुष्ट ! तेरे नाश पाने का जुड़ा सामान है।[2]
मातृ-भूमे ! आज तक तुमसे बड़ा सुख है मिला।[3]

अलंकार निरूपण की प्रवृत्ति भी वर्मा जी में परिलक्षित होती है। उन्होंने उत्प्रेक्षा और अनुप्रास को अधिक अपनाया है। कवि ने उपमेय में उपमान की बड़ी सुन्दर सानुरूप संभावना निम्नलिखित पद में की है—

फिर बड़े सद्भाव से मुख से वचन निकले अहा !
कमल से मानो मधुर मकरन्द धीरे से बहा ॥[4]

जौहर हो चुकने के बाद जब वीर हमीर रणथम्भौर पहुंचते हैं तो जौहर से पहले का दृश्य उनकी कल्पना में घूम जाता है। भस्म होने से पूर्व मातृ-भूमि के चरणों में नत रानी के सुन्दर मुख के लिए शशि के उपमान और उसके पीछे झुके सहस्रों वीरांगनाओं के मुखों के लिए कमलों के उपमान की समानता अभूतपूर्व छवि की सृष्टि करती है, यथा—

मातृ-भू प्रति नत हुआ होगा सुमुख कर जोड़ के,
शशि सहित मानो झुके हों कंज कोष सकोड़ के।[5]

अनुप्रास की छटा निम्नलिखित छन्द में द्रष्टव्य है—

---

१. कृत्तिका, वीर हमीर—सर्ग ६, पद ७, पृ० २३२।
२. वही, सर्ग २, पद ६, पृ० २१६।
३. वही, सर्ग ९, पद ४, पृ० २४५।
४. वही, सर्ग ९, पद २, पृ० २४५।
५. वही, सर्ग १०, पृ० २४९।

नारियों के मंजु मुख पर मृदु मधुर मुस्कान हो ।[१]

रचना में छन्द-भंग नहीं के बराबर है। कहीं-कहीं यदि मात्रा बढ़ी भी है तो कवि ने फुटनोट के द्वारा उसे ह्रस्व करके पढ़ने का निर्देश दे दिया है। छन्द-निर्वाह और तुकान्त के कारण यत्र-तत्र शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा भी है, जैसे कीजिये का कीजैं, जाओ का जाव, जिन्होंने का जिनने, उन्होंने का उनने, सब लोगों के लिए सभों, सुनने के लिए सुन्ना, सकता के लिए सक्ता आदि।

निष्कर्ष यह है कि कवि की प्रारंभिक कृति होते हुए भी इसने कवि और उसकी कविता दोनों की एक अलग पहचान उस युग में बनाई, खड़ीबोली के विकास में सहायता दी और जनता को जागरूक करते हुए राष्ट्रीयता का एक प्रेरणादायक वातावरण तत्कालीन दासता की शृंखलाओं को काटने के लिए तैयार किया।

**पद्मिनी**

लोकनाथ सिलाकारी कृत 'पद्मिनी' खण्डकाव्य में चित्तौड़ की रानी पद्मिनी की प्रख्यात ऐतिहासिक कथा है। अलाउद्दीन खिलजी पद्मिनी के रूप की ख्याति सुनकर उसे अपनी रानी बनाना चाहता है। वह उसे प्रलोभन देता है, डर दिखाता है, पर वह सहमत नहीं होती। अन्त में वह अपने देश और मर्यादा के लिए जौहर व्रत का पालन करती है, पर अलाउद्दीन की बात स्वीकार नहीं करती।

कवि का उद्देश्य राष्ट्रीय भावना जगाना और दृढ़ चरित्र होने की प्रेरणा देना है। आरंभ में कवि ने स्वयं कहा है—

देश का गौरव बचाना ही हमारा धर्म है,
जाति का उत्थान करना ही हमारा कर्म है।
जन्मभूमी स्वर्ग से बढ़कर समझना धर्म है,
आर्य ऋषियों के कथन का मित्रवर यह मर्म है।[२]

जातीय भावना को कवि ने महत्त्व दिया है और जन्मभूमि को स्वर्ग से भी बढ़कर माना है। पार्थिव देह की नश्वरता की ओर संकेत करते हुए कवि ने देश के हित में प्राण देने को महान् कृत्य माना है जो इससे विमुख होता है, वह मृतक के समान है—

इस अनित्य शरीर का प्रिय एक दिन अवसान है,
आधार भय कर मित्र वर तब वही समशान है।

१. कृत्तिका, वीर हमीर, सर्ग ६, पद १६, पृ० २३४।
२. पद्मिनी : लोकनाथ सिलाकारी, पद ३, पृ० १।

निज देश के हित प्राण देना कार्य यही महान् है,
जो विमुख है निज देश से वह नीच मृतक समान है ॥[1]

देशभक्ति का भाव सम्पूर्ण काव्य में व्याप्त होने से उत्साह को निरन्तर उत्कर्ष मिला है, अतः वीर ही इसका प्रमुख स्वर है। कवि ने बार-बार अपने देशभक्तिपूर्ण उद्गारों को प्रकट करके पाठकों को देश पर मर-मिटने के लिए प्रेरित किया है।[2] अलाउद्दीन खिलजी द्वारा पद्मिनी को अपनी रानी बनाने की इच्छा-पूर्ति के लिए कहे गये प्रसंगों में रतिभाव को स्थान मिला है, किन्तु खिलजी के कामी और अवांछित नायक होने से वहाँ रसोद्रेक के स्थान पर रसाभास होता है, उदाहरणार्थ—

यदि बनो रानी हमारी पति तुम्हारा छोड़ दूँ।
ना करो तो समझ लो मैं शीश उसका फोड़ दूँ।
मान लोगी जो प्रजा तो तुम्हारी छोड़ दूँ।
यदि नहीं तो छीनने तुमको किले को तोड़ दूँ ॥[3]

भाषा खड़ीबोली है जिसमें अन्य भाषाओं और बोलियों के शब्दों का समावेश नहीं के बराबर है। रचना इतिवृत्तात्मक है। यत्र-तत्र उपमा, रूपक अलंकारों का प्रयोग कवि ने किया है। यथा—

ललित तिय लालित्यमय उस पद्मिनी के पास में,
सूर्य सम सुन्दर सुभग राणा भवन आकाश में।
जब गये आनन्द प्रभा तब छा गई आवास में,
सूर्य सा पहुँचा वहाँ सुन्दर कमल के पास में ॥[4]

कवि ने २८ मात्राओं का छन्द प्रयुक्त किया है, पर पिंगल के नियमों का पालन उसने नहीं किया और स्थान-स्थान पर छन्द-भंग हो गया है।

इस काव्य की विशेषता उसका स्वदेशभक्ति और नैतिकता का स्वर है। कामी पुरुष को धिक्कारते हुए कवि ने उसे अपमान का पात्र बताया है। चरित्र को महत्त्व देते हुए कवि कहता है—

जिसको नहीं निज चरित का हृदय में कुछ मान है।
उचित उसका है मरण वह कीट पशु समान है ॥[5]

इसी प्रकार स्त्रियों को पातिव्रत की शिक्षा भी कवि ने दी है—

---

१. पद्मिनी : लोकनाथ सिलाकारी, पद १२, पृ० ४।
२. वही, पद ९०, पृ० २३, पद ११६, पृ० ३०।
३. वही, पद ३५, पृ० ९।
४. पद्मिनी : लोकनाथ सिलाकारी, पद ९२, पृ० २४।
५. वही, पद २६, पृ० ७।

नारि को पतिदेव को सर्वस समझना चाहिए।
धर्म पर उनको सदा आरूढ़ रहना चाहिए।[१]

स्पष्ट है कि द्विवेदी जी की प्रेरणा और युगीन परिवेश से प्रभावित होकर सिलाकारी जी ने इस काव्य की रचना की, अतः द्विवेदी युग की प्रायः समस्त विशेषताओं का इस काव्य में समाहार हुआ है और इसी दृष्टि से इस रचना का अपना महत्त्व है।

**सुहराब और रुस्तम**

यह काव्य विद्याभूषण 'विभु' की कृति है जिसमें फारस के प्रसिद्ध योद्धा रुस्तम और उसके पुत्र सुहराब की कहानी है। कथा आठ 'उच्छ्वास' (सर्ग) में विभक्त है। प्रथम उच्छ्वास में सुहराब अपने पिता से मिलने के लिए सेना के साथ समनगां से कूच करता है। वह यह समझता है कि फारस के वीरों के साथ युद्ध करने पर उसे अपने पिता रुस्तम के दर्शन अवश्य हो जायेंगे, क्योंकि विपक्षी दल की ओर से वह युद्ध करने अवश्य आयेगा। द्वितीयोच्छ्वास में सुहराब तूरान के सेनापति पीरान से रुस्तम से मल्लयुद्ध करने की अपनी इच्छा प्रकट करता है और मल्ल-युद्ध होना निश्चित हो जाता है। तृतीयोच्छ्वास में दूत रुस्तम को बुलाकर लाता है। रुस्तम अपने को बिना प्रकट किये सोहराब से युद्ध करने को तैयार हो जाता है। चतुर्थोच्छ्वास में दोनों का मल्लयुद्ध होने से पहले रुस्तम सोहराब को देखने जाता है। सुहराब भी रुस्तम का पता लगाना चाहता है, पर दोनों को एक दूसरे का परिचय नहीं मिल पाता। पंचमोच्छ्वास में दोनों का मल्लयुद्ध होता है। पहली बार सुहराब रुस्तम को नीचे गिरा देता है, परन्तु दूसरी बार रुस्तम सुहराब को नीचे गिरा देता है और उसकी छाती में फरसा घोंप देता है। षष्ठ उच्छ्वास में घायल सुहराब रुस्तम को बताता है कि वह उसका पुत्र है और मुद्रा देखते ही रुस्तम सन्न हो जाता है। सुहराब की छाती से परशु (फरसा) निकालते ही रुधिर का पनाला बहने लगता है और उसका प्राणान्त हो जाता है। सप्तमोच्छ्वास में रुस्तम सुहराब के लिए विलाप करता है—

कभी ऐसा ! कहीं ऐसा हुआ है ?
स्वयं गिरने अहो ! खोदा कुंआ है।
अकेला लाड़ला प्यारा दुलारा।
कलेजे में परशु निज हाथ मारा।[२]

---

१. पद्मिनी : लोकनाथ सिलाकारी, पद ५३, पृ० १४।
२. सुहराब और रुस्तम—सप्तम उच्छ्वास, पद ८, पृ० ३८।

अष्टमोच्छ्वास में रुस्तम सुहराब के शव को उसकी माँ तहमीना के पास समनगां ले जाता है। वह विलाप करते-करते प्राण विसर्जित कर देती है।

यह फारस की कथा है जो भारतीय परिवेश से मेल नहीं खाती, अतः कम कवियों ने इस पर कलम चलाई है। 'विभु' जी का दृष्टिकोण नियतिवादी है। वे मानते हैं—

न टलती आ गई है जब किसी की।
न चलती एक भी है तब किसी की।[1]

इसी के अनुसार कथानक चुनकर उन्होंने इसका प्रत्यक्ष उदाहरण भी पिता के हाथों पुत्र की हत्या द्वारा प्रस्तुत कर दिया है।

काव्य का आरंभ परम्परागत वन्दना से न करके कवि ने विश्वनियन्ता के स्मरण के साथ किया है—

नियन्ता विश्व के विभु निर्विकारी।
अनेकों अभिनयों के सूत्रधारी—
जवनिका-पात प्रतिपल मंच पर है।
करुण-क्रन्दन नहीं कल्लोल-स्वर हैं।[2]

इस प्रकार आरंभ से ही कवि ने ईश्वर की माया की चर्चा करके अकस्मात कुछ प्रतिकूल घटित हो जाने का आभास पाठक को दे दिया है। तहमीना की मृत्यु के साथ काव्य की समाप्ति होती है, अतः इसका अंगीरस करुण है। षष्ठ उच्छ्वास में सुहराब की मृत्यु से ही शोक घनीभूत होने लगता है। अपने हाथ से अपने बेटे की मृत्यु हो जाने पर रुस्तम का विलाप मन को हिला देता है—

तनय मेरे न अब मुझको रुलाओ,
तुम्हीं क्यों सो गये मुझको सुलाओ।
न रूठो पुत्र ! मुझसे शीघ्र आओ,
मधुर वाणी मुझे अपनी सुनाओ।[3]

सुहराब की माँ तहमीना जब अपने इकलौते बेटे का शव देखती है तो वह भी मर्मांतक विलाप करती है—

बचूँगी मैं न अब मुझको बचाओ,
जलूँगी मैं चिता जल्दी रचाओ।

---

१. सुहराब और रुस्तम—सप्तम उच्छ्वास, पद १९, पृ० ४०।
२. वही, प्रथम उच्छ्वास, पद १, पृ० १।
३. वही, अष्टम उच्छ्वास, पद १८, पृ० ४६।

पिऊंगी घोर विष मुझको पिलाओ,
वृथा है यत्न, क्यों मुझको जिलाओ।[1]

पाठक आश्रय के मन के शोक से तादात्म्य करता है और करुण-रस का उद्रेक होता है। इसके अतिरिक्त वीररस का उदय सुहराब और रुस्तम के मल्लयुद्ध के समय होता है। कवि कहता है—

गिरे कोई न कम कोई किसी से,
कुपित मृगराज से लड़ते इसी से।[2]

काव्य की भाषा खड़ीबोली है जिसमें उर्दू शब्दों जैसे तमाशा, मौत, नाहक, दगा आदि का प्रयोग हुआ है। देशज शब्द जैसे बकोटे, बिचारी आदि, तद्भव शब्द जैसे द्विषमन (दुश्मन), बालिश के साथ ही तत्सम दुरूह शब्दों जैसे—त्वेश, द्वीपि, उद्भट, शोकच्छद आदि के प्रयोग भी कवि ने किये हैं। मात्रा पूरी करने के लिए शब्दों को कहीं-कहीं जोड़ा-तोड़ा भी गया है, जैसे स्वार्थता, मृत्यून्मुखी आदि। अह, ओह, अहा, हा, हा हंत आदि का द्विवेदी-कालीन प्रचलित प्रयोग इसमें भी है। मुहावरों जैसे—चींटी के पंख जमना, दुन्दुभी पीटना, काल आना, पाँव देना आदि और कहावतों में जैसे—'न जाने ऊँट यह किस ओर बैठे' को भी स्थान मिला है। अलंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा ही प्रायः दिखलाई पड़ते हैं। उदाहरणार्थ—उत्प्रेक्षा—

पुलिन पर सैन्य के तम्बू तने हैं,
घने मधुकोष ही मानो बने हैं।[3]

प्रस्तुत सेना के तम्बुओं में अप्रस्तुत मधुकोषों की संभावना कवि ने की है। उपमा जैसे 'बुराई फैलती अति शीघ्रता से, बढ़े विष बेल ज्यों बहु तीव्रता से'[4] और अनुप्रास जैसे—'गिरा कल कल्पना के कूल तरु को'[5] भी कहीं-कहीं मिलते हैं। कवि का भाषा पर अधिकार न होने से तत्सम शब्दों, मुहावरों, अलंकारों आदि के प्रयोग करने पर भी भाषा सुसंस्कृत और समृद्ध नहीं बन पाई है।

कवि ने सर्वत्र २० मात्रा का छन्द अपनाया है। छन्द-भंग नहीं के बराबर है। जहाँ मात्राएँ कम हुई हैं, कवि ने उपसर्ग, परसर्ग जैसे विनिन्दित, स्वार्थता आदि लगाकर छन्द को अनुशासन में बाँधे रखा है।

---

१. सुहराब और रुस्तम—अष्टम उच्छ्वास, पद ३०, पृ० ४९।
२. वही, पंचम उच्छ्वास, पद २२, पृ० २८।
३. वही, उच्छ्वास २, छन्द २, पृ० ९।
४. ५. वही, उच्छ्वास ८, छन्द १, पृ० ४३।

उपदेश प्रधान इस काव्य में राष्ट्रीयता की भावना तो दिखाई नहीं पड़ती, किन्तु तत्कालीन स्थिति को स्पर्श अवश्य किया गया है—

जगत में स्वार्थता का राज्य छाया,
सभी हैं जानते अपना पराया।
विनिन्दित दासता से पेट भरता,
मनुज पड़ लोभ में क्या क्या न करता।।[1]

इस प्रकार इस काव्य में मनोवैज्ञानिक तथ्यों पर जोर देते हुए माँ की अत्यधिक ममता और भाग्यवादिता का उल्लेख कवि ने विशेष रूप से किया है। मर्मस्पर्शी करुण-प्रसंग को लेकर चलने के कारण यह काव्य अधिक पढ़ा गया और इस प्रकार खड़ीबोली के प्रचार-प्रसार में अप्रत्यक्ष रूप से इसने योग दिया ।

**देवल देवी**

विद्याप्रेमी दीनानाथ 'अशंक' ने देवल देवी के माध्यम से माताओं को निर्भीक होने और अपनी सन्तानों को देश पर न्यौछावर होने की प्रेरणा देने की शिक्षा दी है। दिल्लीपति पृथ्वीराज चौहान विजयपाल की पुत्री को ब्याह कर लौट रहे थे। रास्ते में उनके कुछ सैनिकों ने महोबा के एक बाग को नष्ट कर डाला। वीर क्षत्राणी देवल देवी के पुत्र आल्हा और ऊदल ने उन्हें वहाँ से खदेड़ दिया। आल्हा, ऊदल के पास एक बढ़िया घोड़ी थी। महोबा के राजा को वह अच्छी लगी और उसने उसे आल्हा-ऊदल से माँगा। इनकार करने पर राजा ने उन्हें महोबा छोड़ देने का आदेश दिया। दोनों माँ सहित महोबा छोड़कर चले गये। इतने में दिल्लीपति ने महोबा पर आक्रमण कर दिया। इस संकट में महोबा के राजा-रानी ने आल्हा-ऊदल से महोबा के रक्षार्थ आने के लिए अनुरोध किया। पिछले अपमान को स्मरण कर दोनों ने आने से इनकार कर दिया। अपनी मातृभूमि की रक्षा हेतु इनकार करने पर देवल देवी ने उन्हें धिक्कारा—

पर ये मेरे पुत्र हहा!
स्वकुल कलंकी क्रूर महा।
वीर-जन्य हो निकले यों
हों मृगेन्द्र-सुत जम्बुक ज्यों।[2]

---

१. सुहराब और रुस्तम—उच्छ्वास १, छन्द १९, पृ० ६।
१. देवल देवी—तृतीय सर्ग, पद ३९, पृ० ३०।

इस पर वे प्राण हथेली पर लेकर लड़े और वीरगति को प्राप्त हुए। देवल देवी जैसी स्वाभिमानी वीर प्रसूता की ललकार ने उन्हें अमर कर दिया।

इस इतिवृत्त का प्रारम्भ देवल देवी की यशगाथा से ही होता है—

आल्हा ऊदल की माता,
देवल देवी विख्याता।
वीर वधू मूर्धन्या थी,
शक्तिमती गण गण्या थी।
उसी प्रवीरा माता की,
शक्ति-रूपिणी ख्याता थी।
हम शुभ गाथा गाते हैं,
मुख्य विषय पर आते हैं।[1]

काव्य का प्रमुख रस वीर है। महोबा के बाग में लड़ाई में और उसके उपरान्त पृथ्वीपति के साथ आल्हा-ऊदल के युद्ध में उत्साह का भाव उत्कर्ष पाता है। भाषा सामान्य खड़ीबोली है जिसमें अन्य भाषा एवं बोलियों के शब्द नहीं के बराबर हैं। अलंकारों का प्रयोग भी नगण्य है, एकाध स्थान पर उपमा के दर्शन होते हैं। अहा, अहो, हहा आदि के साथ सम्बोधनात्मक 'कहो' आदि का प्रयोग भी कवि ने किया है। प्रत्येक चरण में १४ मात्राओं वाले हाकलि छन्द को 'अशंक' जी ने अपनाया है जिसके हर चरण के अन्त में गुरु के अनुशासन का पालन किया है, यथा—

क्या चन्देला वीरों में,
सिद्ध प्रकृत रणधीरों में।
अब इतना बल भी न रहा
करें कि रिपु का साम्य हहा।।[2]

सम्पूर्ण काव्य में राष्ट्रप्रेम और देशभक्ति का स्वर है। देश की पराभवता के समय में कवि ने इस कृति के द्वारा अपना सन्देश दिया—

पर जो प्राणी है मरता,
मातृभूमि का हित करता।

---

१. देवल देवी—प्रथम सर्ग, पृ० २, ३।
२. वही, सर्ग २, पद २०, पृ० १७।

वह कहलाता सत्तम है,
मृत्यु उसी की उत्तम है।[1]

इस प्रकार इस काव्य ने देश भक्ति के स्फुरण के साथ जनता में एक नई शक्ति का संचार तो किया ही शीघ्र कंठस्थ हो जाने वाले ओजप्रद प्रवहमान हाकलि छंद के प्रयोग से खड़ी बोली को लोकप्रिय बनाने में भी योग दिया।

**धर्मवीर हकीकत राय**

ठाकुर गदाधर सिंह भृगुबंशी ने लोकादर्श का कथानक प्रस्तुत कर मुसलमान शासकों और काजियों के निर्मम और पक्षपातपूर्ण साम्प्रदायिक रवैये पर प्रकाश डाला है। कथा इस प्रकार है—

बागमल खत्री का पुत्र हकीकत राय अपने वैदिक धर्म के प्रति अत्यन्त आस्थावान् था। उसके माता-पिता ने भी उसे ऐसे संस्कार दिये थे। वह नियम से गीता पाठ और भगवद्भजन करता था। कुछ बड़ा होने पर उसके पिता ने उसे अरबी-फारसी भाषा पढ़ने के लिए मौलवी के यहाँ भेजा। वहाँ उसकी तीव्र बुद्धि देखकर अन्य मुसलमान लड़के उससे ईर्ष्या करने लगे। एक दिन लड़कों में आपस में कुछ झगड़ा हो गया। मुसलमान लड़कों ने देवी भवानी को बुरा भला कहा। हकीकत राय ने भी उलट कर उत्तर दे दिया कि जो तुम मेरी भवानी को कहते हो, वह तुम्हारी फातिमा को लगे। मुसलमान लड़के अपने धर्म का अपमान देख तेजी में आ गये। १७वीं शताब्दी में मुसलमान शासकों का ही बोलबाला था। उन लड़कों ने उसे मारा पीटा। मौलवी के बाहर से लौटने पर उनसे शिकायत की। मौलवी गुस्से में भर आये और उसे कैद करवा दिया। मुकदमा चला—हाकिम अदीना बेग ने मामला लाहौर के सूबा अदालत में भेजने का निर्णय दिया। मौलवी के उकसाने पर सूबा अदालत ने हकीकत राय को मुसलमान होने या मृत्यु का दण्ड दिया। उसके पिता बागमल एवं माता कौरा ने उसे लाख समझाया उसकी नव-विवाहिता का ध्यान दिलाया, पर वह धर्म से च्युत नहीं हुआ। जल्लादों से हंसते-हंसते उसने अपनी गर्दन धड़ से अलग करवा ली, पर अपना हिन्दू धर्म छोड़ मुस्लिम धर्म स्वीकार नहीं किया। अन्त समय में भी उसने कहा—

अधर्म मृत्यु, धर्म जीवन याद रखना सर्वदा।
यह तत्त्व वेदों का हृदय में याद करना सर्वदा।

---

१. देवल देवी—सर्ग २, पद २४, पृ० १८।

सब ज्ञान के भण्डार का है बीज इसको जानना।
तत्त्व मानव-जन्म का इसको सदा पहचानना ॥[१]

इस काव्य के माध्यम से स्थान-स्थान पर कवि ने धर्म के प्रति अपनी भावना को व्यक्त किया है—

इक धर्म ऐसा अमर है जो नाश हो सकता नहीं,
होता न छेदन शस्त्र से, नहिं दग्ध हो सकता कहीं।[२]

अपनी देवी की पाषाण मूर्ति को वह मुसलमानों की रसूलजादी फातिमा से किसी प्रकार कम नहीं समझता—

माना कि पत्थर से बनाई ही गई हैं वह सही,
पर देख लो वह कम नहीं उस खाक मुट्ठी से कहीं।[३]

हकीकत राय के इस कड़वे सत्य कथन पर 'खाक मुट्ठी' मात्र के प्रयोग पर ही काजी ने उसे मौत की सजा दे दी।

करुण में पर्यवसान होने से काव्य का अंगीरस करुण ही है। जल्लादों के बीच कटघरे में खड़े हकीकत के विषय में जब कवि लिखता है—

हा ! चार प्यादों से घिरा वह कटघरे में बन्द है।
अरु कमर रस्सी से कसी कर हथकड़ी में बन्द है।[४]

पाठक की आँखें अश्रुप्लावित हो उठती हैं। इसी प्रकार वध के पूर्व जब वह अपने साथियों और सगे सम्बन्धियों से विदा लेता है तो मन शोक-विह्वल हो जाता है—

फिर सब उपस्थित सज्जनों माता-पिता को बोध कर।
तुमसे विदा मैं हो रहा हूँ धर्म-मग को सोध कर।[५]

भक्ति और शान्तरस सहयोगी के रूप में आये हैं। हकीकत राय की उक्ति—'जैसी भवानी और देवी मान्य हैं मेरे लिए'[६] या 'था पूर्व से जिसको किया भगवान ने अर्पण मुझे'[७] में उसकी भक्ति-भावना निहित है। जहाँ कवि

---

१. धर्मवीर हकीकत राय, पद १६६, पृ. ४३।
२. वही, पद १५५, पृ० ३९।
३. वही, पद ५५, पृ० १४।
४. वही, पद ९८, पृ० २५।
५. वही, पद १६४, पृ० ४२।
६. वही, पद ४७, पृ० १२।
७. वही, पद १६५, पृ० ४२।

नाते-रिश्तों की असारता, देह की नश्वरता की बात करता है, वहाँ निर्वेद को प्रश्रय मिलता है, जैसे —

माता, पिता, पत्नी सभी का चन्द दिन ही साथ है,
अरु पाँच तत्वों से रचा यह देह नस्वर पाथ है।[1]

काव्य की भाषा सामान्य खड़ी बोली है। तद्भव और देशज शब्दों का भी प्रयोग किया गया है, जैसे–लहा, खसा, तुरत, डोलना आदि। मात्रापूर्ति के लिए शब्दों को बिगाड़ा भी गया है, जैसे छत्तीस का छत्तिस, नहीं का नहिं, पशु का पशू, उन्नति का उन्नती, अस्तु का अस्तू, प्रलोभन का पलोभन आदि। उर्दू के शब्दों जैसे–बदजात, नसीहत, मर्ज़ी, दिक़, ख़ाक़,तवज्जुह, मशविरा, सितम, बेज़ार, तअस्सुब, इसरार, कुफ्र, सियापा आदि का बहुतायत है। साथ ही तत्सम शब्दों यथा—मन्तव्य, पावन, द्रवित, कूप, नश्वर, असमंजस आदि भी पाये जाते हैं। मुट्ठी गरम करना, सूई की नोक से ऊँट का निकलना आदि मुहावरे भी प्रयुक्त हुए हैं। व्याकरण-दोष मिलते हैं। स्त्रीलिंग क्रिया के लिए पुल्लिग क्रिया का प्रयोग है, जैसे—किया बहु-दुर्दशा, शैतानी किया, चुगली किया आदि। इतिवृत्तात्मक काव्य होने से अलंकारों का विशेष प्रयोग नहीं है। कहीं-कहीं उपमा और रूपक अलंकार दिखलाई देते हैं, जैसे—

जनु मूर्तिवत् पत्थर बने हैं मौन दर्शक गण सभी[2]
विकसित बदन है, पाठ गीता का हकीकत कर रहा।
है ज्ञान-रवि-परकाश से मन मलिनता-तम हर रहा॥[3]

ठाकुर साहब ने 'हरिगीतिका' के वजन पर २८ मात्राओं का चतुष्पदी छन्द प्रयोग किया है। तुकान्त के लिए उन्होंने शब्दों को विकृत भी किया है, जैसे–'रूप से' का तुकान्त 'चूप से',[4] 'देखा गया' का तुकान्त 'चलता भया'[5] दिया है।

अन्त में कवि की राष्ट्रीयता और देश-प्रेम की भावना ने जोश मारा है–

जिससे तुम्हारा अरु तुम्हारे देश का कल्याण हो।
जग अमर हो शुभ कीरती अरु देश का उत्थान हो।

---

१. धर्मवीर हकीकत राय—पद १३३, पृ० ३४।
२. वही, पद ६२, पृ० १६।
३. वही, पद ९६, पृ० २५।
४. वही, पद १४७।
५. वही, पद १६१।

भगवन ! गदाधर की विनय है आपसे यह सर्वदा।
निज धर्म पर ही दृढ़ रहे यह जाति-मानव भी सदा।[1]

और ईश्वर से यही विनय करते हुए परम्परागत अपनी वंश एवं परिचय विरुदावली देकर कवि ने काव्य की समाप्ति की है।

इस प्रकार इस कृति के माध्यम से हिन्दी के प्रसार के साथ राष्ट्रीयता और देश-प्रेम के सामान्य वर्ण्य-विषय से हटकर धर्म से जुड़ा हकीकत राय का चरित्र लेकर कवि ने जनता में धर्म के प्रति दृढ़ होने की भावना भी उभारी।

**स्वतंत्रता पर वीर बलिदान**

श्री रघुनन्दन प्रसाद शुक्ल कृत यह काव्य रूस में अत्याचारी जार के शासनकाल से सम्बन्धित है। काव्य के अन्दर के कवर पृष्ठ पर अंकित है—

आ ! हम दीनों पर आज शक्ति तू भी अजमा ले,
रह जाय नहीं अरमान जुल्म जी भर कर ढाले।
भर ले पापों से घड़ा न रहने पावे खाली,
हमने भी 'बलि' होने की धूनी देख ! रमा ली।

भूमिका में लिखा है 'धुआँ से आग के और धूम विशिष्ट आग से धुआँ के साम्भविक संस्थिति की सम्भावना का पर्याप्त प्रयोग करते हुए रूस की एक कहानी के आधार पर लिखा हुआ यह खण्डकाव्य हम आप वाचकों के सामने उपस्थित करते हैं।' इसकी यह भूमिका इसकी कथा का संकेत करती है। रूस में जार के शासन-काल में प्रजा पर अत्याचार की हद हो गई। जार का मंत्री एन्ड्रीज़ कुर्सकी भला आदमी था। उसने इस अत्याचार के विरोध में इस्तीफा दे दिया। उसी समय जार को गुप्तचरों से रूस पर तातारियों द्वारा धावा बोले जाने की सूचना मिली। जार ने कुर्सकी से इस समय जनता को साथ देने के लिए राजी करने के लिए अनुनय विनय की। जार के अपनी करनी पर पश्चाताप प्रकट करने पर कुर्सकी राजी हो गया, उसने जनता को तातारियों से लड़ने के लिए जोश दिलाया—

दुनियाँ में कोई भी न हुआ उत्पन्न अमर है।
सिर पड़ा ओखली में फिर मूसल का क्या डर है।
बच्चे मेरे सुख भोग करें, हम ही दुख सह लें।
चल सिंह नाद वह करें कि अरिदल के दल दहलें।।[2]

---

१. धर्मवीर हकीकत राय, पद १६१।
२. स्वतंत्रता पर वीर बलिदान : रघुनन्दन प्रसाद शुक्ल, पद ८०, पृ० २१।

और उसका कहना मानकर रूसी जनता तातारियों पर टूट पड़ी और तातारियों को हरा दिया। मंत्री ने वायदे के अनुसार जार से स्वराज्य की माँग की, पर जार ने बेईमानी की और प्रजा पर फिर अत्याचार करने लगा। इस पर क्षुब्ध हो कुर्सकी घर छोड़ कर कहीं चला गया। जनता अपने नेता के गायब हो जाने से और परेशान हो गई। ऐसे में पादरी फिलिप आगे आये। उन्होंने अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति दीन-दुखियों में बाँट दी और स्वयं हाथ से सूत कातकर कपड़ा पहना। उन्होंने जनता को स्वतंत्रता का मंत्र बताते हुए जेलों को देवमन्दिर बताया। जार ने फिलिप पर जादूगरी करने का झूठा आरोप लगाकर बहाने से उन्हें गिरफ्तार करवा लिया। जेल में जार ने फिलिप को कई प्रकार से लालच दिया, डर भी दिखाया पर वह वीर कर्त्तव्य से नहीं डिगा। इस पर जार ने उसे फाँसी दे दी। स्वतंत्रता के लिए वह वीर बलिदान हो गया।

द्विवेदी जी के आह्वान पर जिन कवियों ने राष्ट्रीयता और स्वातंत्र्य-चेतना को जाग्रत करने के लिए कलम चलाई उनमें रघुनन्दन प्रसाद शुक्ल भी रहे। उन्होंने स्वातंत्र्य-संघर्ष के इस कथानक को अपने काव्य का उपजीव्य बनाया और इसके द्वारा पाठकों के मन में अत्याचारी शासन के प्रति विद्रोह की भावना पैदा की। कवि ने फिलिप के द्वारा कहलवाया—

ये जेल देव-मन्दिर हैं, हम स्वदेश-सेवी के।
उसमें स्वतंत्रता है—हम पूजक उस देवी के।[1]

इसका प्रभाव भारतीयों पर भी पड़ा और वे स्वाधीनता के लिए त्याग करने को आगे आये। त्याग और संघर्ष की इस रचना में अंगी रस करुण है। फिलिप को फाँसी लगने के साथ इस काव्य का अन्त होता है।[2] रूसियों के तातारियों से युद्ध के समय वीर रस का उद्रेक हुआ है—

पद-रज ने उड़कर किया सूर्य शशि मण्डल झम्पित।
लग गये निखिल ब्रह्मांड चाल से होने कम्पित।
जाते ही अरिदल पर टूटे पड़े ये वीर बाज से।
गिर पड़े गसे गिरीन्द्र-गण पर ज्यों महा-गाज से।[3]

अन्यत्र भी स्थान-स्थान पर कवि पाठकों के उत्साह भाव को जगाता है—

---

१. स्वतंत्रता पर वीर बलिदान, पद १०३, पृ० २६।
२. वही, पद १११, पृ० २८।
३. वही, पद ७, पृ० २।

अब किसी तरह से मुक्त दासता से होना है।
सोचें! कुछ साहस करें! बैठ नाहक रोना है!
चुप रहने से कार्य एक भी कभी न सरता।
सब यही सोच उठ पड़ें क्या नहीं मरता करता?[१]

कवि ने अत्याचारी शासक के राज्यकाल के सन्नाटे के वातावरण का वर्णन किया है। प्रजा को हरपल अपने प्राणों का भय बना हुआ था, ऐसा लगता था कि प्रलय हो जायगा और पूरा रूस श्मशान बन जायगा।[२] इस स्थिति में वीर फिलिप ने स्वतंत्रता पर बलिदान किया। उन्होंने जार के प्रस्ताव को ठुकराते हुए कहा—

रुपये ले लें! हम? क्या क्या हम भूखों मरते हैं?
कब देश-भक्त मरने से बतलाओ डरते हैं।[३]

काव्य की भाषा सामान्य खड़ी बोली है। शब्दों का अशुद्ध प्रयोग है, जैसे—शानी (सानी), सामिल (शामिल), आशन (आसन), विस्मर्ण (विस्मरण) आदि। अंग्रेजी के शब्द जैसे—नोट करना, पास करना आदि के साथ मुहावरों का भी प्रयोग मिलता है। उदाहरणार्थ—

सोना छूते मिट्टी होता, दुर्दिन है क्या री?
जिसका हित करता, वही लगाता मुँह में स्याही।[४]

कवि ने कहावतों को भी अपनाया है, जैसे—'सिर पड़ा ओखली में फिर मूसल का क्या डर है?'[५] व्याकरण की कुछ अशुद्धियाँ हैं। पुल्लिंग के लिए स्त्रीलिंग की क्रिया का प्रयोग किया गया है, जैसे—गीत निराली। कहीं-कहीं ध्वन्यात्मकता के दर्शन भी होते हैं, जैसे—'डंडों ने गाया तड़तड़ गीत, दमदम पर फटफट मिली गालियाँ'[६] आदि। अलंकारों के नाम पर कहीं-कहीं उपमा, रूपक का प्रयोग हुआ है। उपमा का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

बस अहंकार ही हुआ नृपति का विपद मूल सा,
जो खटक रहा रूसी हृदयों में महाशूल सा।[७]

---

१. स्वतंत्रता पर वीर बलिदान, पद ३५, पृ० ९।
२. वही, पद ७, पृ० २।
३. वही, पद १०९, पृ० २८।
४. वही, पद ९५, पृ० २४।
५. स्वतंत्रता पर वीर बलिदान, पद ८०, पृ० २१।
६. वही, पद २४, पृ० ७।
७. वही, पद २१, पृ० ६।

निष्कर्ष यह है कि काव्यत्व की दृष्टि से यह काव्य महत्त्वपूर्ण नहीं है, किन्तु युग की माँग के अनुरूप जन उद्‌बोधन और स्वातंत्र्य-चेतना जगाने में इसने विशिष्ट भूमिका निबाही।

इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि ऐतिहासिक वर्ण्य-विषय पर आधारित खण्डकाव्यों ने देश में राजनीतिक एवं सामाजिक चेतना तो जगाई ही, साहित्य के विकास के लिए भी मार्ग प्रशस्त किया। घटनाओं और तथ्यों के उल्लेख द्वारा आदर्श प्रस्तुत करके उपदेश और प्रेरणा देने की प्रवृत्ति ने इन काव्यों में इतिवृत्तात्मकता को स्थान दिया। इस राष्ट्रीय आन्दोलन और पुनरुत्थानवादी चेतना को जगाने के लिए अपनी भाषा में लिखने पर नेताओं और साहित्यकारों द्वारा विशेष बल दिये जाने से कविता में खड़ी बोली का वर्चस्व स्थापित हुआ। हिन्दी को विशाल शब्द-भण्डार के साथ लोकप्रियता भी मिली। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह हुई कि इतिहास में, विशेषकर मुगलकालीन इतिहास में संक्षेप में उल्लिखित कुछ चरित्र और घटनायें एक विशद फलक पर सामने आईं। इस प्रकार इतिहास ने भाषा और साहित्य को विकसित होने में सहयोग दिया।

•

षष्ठ अध्याय

# काल्पनिक खण्डकाव्य : तात्विक विवेचन

इस युग में पौराणिक और ऐतिहासिक काव्यों के अतिरिक्त काल्पनिक कथा को आधार बनाकर भी अपेक्षित उद्देश्य की सिद्धि हेतु अनेक काव्य लिखे गये। इस पृष्ठभूमि में भी वही देश-प्रेम, पराभव से मुक्ति, कुरीतियों और शोषण से छुटकारा पाने की प्रवृत्ति प्रमुख थी। इसीलिए इन काल्पनिक काव्यों के नायक और वातावरण भी राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत हैं। श्री रामनरेश त्रिपाठी, रामचरित उपाध्याय, नाथूराम शर्मा 'शंकर', आनन्दि प्रसाद श्रीवास्तव, 'मीर' आदि के काव्य इसके प्रमाण हैं। कल्पना का आधार लेकर चलने में एक और भी लाभ हुआ कि रचनाकारों ने निर्बन्ध रूप से अपने चिन्तन और धारणा के अनुसार चरित्र और कथानक को मोड़ देकर अभीष्ट प्रभाव पाठकों पर डाला। इन खण्डकाव्यों ने देश में राष्ट्रीयता की लहर उठाने और सामाजिक सुधार लाने में भी विशेष योग दिया। यहाँ इन कृत्तियों का तात्विक विवेचन प्रस्तुत है—

| | |
|---|---|
| भाग्य चक्र–१९०६ ई० | प्रेम पथिक–१९१३ ई० |
| बूढ़े का ब्याह–१९१४ ई० | प्रेम पथिक–१९१५ ई० |
| भगतिन बिलैया–१९१६ ई० | किसान–१९१६ ई० |
| अनाथ–१९१७ ई० | मिलन–१९१७ ई० |
| देवदूत–१९१८ ई० | गर्भरण्डारहस्य–१९१९ ई० |
| पथिक–१९२० ई० | वीर बाला–१९२० ई० |
| रसाल वन–१९२० ई० | देवसभा–१९२२ ई० |
| उषाकाल–१९२३ ई० | शान्ति प्रताप–१९२३ ई० |

**भाग्य चक्र :**

काल्पनिक आख्यान पर आधारित रामचरित सिंह 'वल्लभ' का खण्ड-काव्य 'भाग्य चक्र' एक ऐसे चरित्रवान व्यक्ति की गाथा है जो जरूरतमन्द और कंगाल होने पर भी पराया धन लेना पाप समझता है। वह कष्ट उठा लेता है पर किसी के आगे हाथ नहीं फैलाता। कथा के माध्यम से कवि ने अपनी विचारधारा को अभिव्यक्ति दी है। यह कथा संक्षेप में इस प्रकार है—

एक निर्धन युवक निराशा की दयनीय स्थिति में जंगल में भटकता है।

उसे रात हो जाती है। भय से उसके रोम खड़े होने लगते हैं, तभी उसे एक तपस्वी दिखलाई पड़ता है। वह उसे आश्वस्त करता है और अपनी कुटिया पर ले जाता है। तपस्वी अपना आधा वस्त्र उसे दे देता है और आग जलाकर शीत से उसकी रक्षा करता है। पथिक तपस्वी को अपनी दुःख भरी गाथा सुनाता है—हाल ही में मेरी माता की मृत्यु हो गई है और मैं बहुत दुःखी हूँ। परिवार में वृद्ध पिता, अल्प-वयस्का बहिन, पत्नी और एक छोटा पुत्र है। जब तक मेरे पितामह थे, सुख-सम्पदा की कमी नहीं थी। भरा-पूरा संयुक्त परिवार था। चचेरे भाई यद्यपि मूर्ख और गंवार थे, तब भी शान्ति थी। किन्तु दादा की मृत्यु होते ही असहमति हुई, विवेक नष्ट हो गया। हानि-लाभ की तमीज जैसे जाती रही। सबने बँटवारा कर लिया, मुकदमेबाजी पर उतर आये, इसी में सब धन-सम्पत्ति समाप्त हो गई। मुझे धनार्जन के लिए विवशतावश परदेश जाना पड़ा। मैं कई राजाओं की सेवा में रहा। वहाँ मुझे सम्मान तो बहुत मिला पर कोरे सम्मान से पेट नहीं भरता। घर भर प्रायः उपवास करता रहा। जब श्रीमानों की सेवा से आशा और अपेक्षा पूर्ण नहीं हुई तो 'गिरि-गर्भ-सुवर्ण' की खोज में जंगल में भटक रहा हूँ। वैरागी ने उसे अगले दिन ही उसका सब कष्ट दूर हो जाने की सान्त्वना दी।

प्रातः नित्यक्रिया से निपटने के बाद बैरागी उसे जंगल में एक स्थान पर ले गया और बताया कि वहाँ रत्न जवाहरात युक्त अपार सम्पत्ति दबी पड़ी है। योगी ने तहखाने का मुँह खोला और पथिक के साथ अन्दर प्रविष्ट हुआ। ढेर सारे हीरा, पन्ना, लाल, जवाहरातों आदि को देखकर पथिक बहुत प्रसन्न हुआ, किन्तु वह किसी सोच में पड़ गया और फिर बोला कि वह उन सबको लेकर अपना दुःख दूर नहीं करेगा। तपस्वी ध्यान द्वारा यह जान गया कि परधन होने के कारण पथिक इसे ग्रहण नहीं कर रहा है। उसने पथिक की बहुत प्रशंसा की। उसे ऋषि, मुनि तुल्य निष्काम बतलाया। उसी समय तहखाने के मुख के कपाट और निचले तल पर अंकित संस्कृत के आलेख पर पथिक की दृष्टि पड़ी। उसे देखते ही सूखे काठ की तरह वह धरती पर गिर पड़ा। पथिक की ऐसी अवस्था देखकर योगी व्यग्र हो उठा। धीरे-धीरे पथिक ने आँखें खोलीं और बुदबुदाया—'तव गति अगम अगोचर नाथ' और उसने कपाट के निम्नतल की ओर इंगित किया। उस आलेख को पढ़कर योगी को अत्यन्त विस्मय हुआ और उसने पथिक से उसके वंश का परिचय पूछा। पथिक ने अपना परिचय दिया। तहखाने के तल पर लिखा था—'परम प्रतापी प्रसिद्ध पुण्यलोक क्षत्रिय कुल दीप राजा शालिवाहन थे, उनके वंशज

वीरवर रघुवीर सिंह के शैशवकाल में शत्रुभय से मंत्री ने खजाने को 'सत्तावन के दुस्सह साल' यहाँ गाड़ दिया। पथिक ने कहा—'वह सुरक्षित है। राजा मंत्री के साथ महानिर्दयी शत्रु के साथ मारे गये। मैं इसी वंश का क्षुद्र दीन बालक हूँ।' यह सुनकर योगी बहुत प्रसन्न हुआ, उसने उसे सारा खजाना उठा ले जाने की आज्ञा दी। योगी की आज्ञा मानकर पथिक समस्त खजाना ढोकर घर ले गया। इस प्रकार भाग्य-चक्र से पथिक का दुःख दूर हो गया।

इसी कथा को इतिवृत्तात्मक ढंग से वल्लभ जी ने कहा है। द्विवेदी युगीन प्रचलित प्रवृत्ति के अनुसार काव्य के आरंभ में 'जय बजरंगबली' लिखा है। भाषा खड़ी बोली है जिसमें उर्दू और ग्रामीण शब्दों का प्रयोग भी है। शब्दों के प्रयोग द्रष्टव्य हैं, जैसे उर्दू के 'तमीज' शब्द का निम्नलिखित पद में प्रयोग—

> नहीं किसी के मन में कुछ भी हानि लाभ की रही तमीज।
> अपनी अपनी जोरू जोता ले बाँटे धन धरती बाग,
> पुनः परस्पर ही मुकद्दमेबाजी की लहकाई आग।[१]

यहाँ 'तमीज' का प्रयोग करके कवि ने एक पूरे दृष्टिकोण को व्यंजित कर दिया है। प्रचलित लोक व्यवहृत भाषा के कुछ प्रयोग भी हैं, जैसे आग के साथ 'लहकाना' शब्द का प्रयोग, अपने बीबी बच्चों, खेतिहर भूमि के लिए 'जोरू जोता' का प्रयोग। अलंकारों का प्रयोग बहुत कम है। सहज रूप में स्वयंमेव ही कुछ अलंकार आ गये हैं जिनमें उपमा विशेष है। उपमान रूढ़ हैं, यथा—

> दीन पथिक अति नम्र भाव से वनवासी के मुख की ओर,
> लगा देखने सजल नयन से उदित चन्द्र को यथा चकोर।[२]

सम्बोधन शैली का प्रयोग करते हुए उस युग में कवियों द्वारा आम रूप से प्रयुक्त शब्दों अहो, हाय, अरे आदि का प्रयोग कवि ने भी किया है, उदाहरणार्थ—

> बोला परम दयालु तपस्वी 'अहो पथिक वर ! हो तुम धन्य,
> इस दुरवस्था में भी तुम सा मनुज नहीं है निश्चय अन्य।
> पर संचित धन के लेने में वत्स ! समझते हो तुम पाप,
> सहते हो पर हाय ! दीनता-जनित दुःख पीड़ा सन्ताप।[3]

---

१. भाग्य चक्र, पृ० ४।
२. भाग्य चक्र, पद ३१, पृ० ७।
३. वही, पद ४२, पृ० ९।

उपर्युक्त पद में और अन्यत्र भी कवि का आदर्श परक दृष्टिकोण प्रकट हुआ है कि श्रेष्ठ पुरुष वही है जो दुःख सहले, पर पराये धन को हथियाने की कामना न करे। कवि भाग्यवादी है और मनुष्य के अच्छे बुरे दिनों को भाग्य का फेर मानता है। ईश्वर में भी वल्लभ जी की पूरी आस्था है। काव्य के अन्त में भी उन्होंने लिखा है—

> जगदीश्वर की दया दृष्टि से हुआ तत्क्षण सब दुख दूर,
> फैल गया सुख शान्ति चतुर्दिक प्रेम प्रमोद मोंद भरपूर।[1]

तुकान्त शैली में सर्वत्र ३० मात्रा का छन्द कवि ने अपनाया है जिसमें प्रवाह है। द्विवेदी युग के आरंभिक वर्षों में जब कि खड़ी बोली चलना सीख रही थी, इस प्रकार की शुद्ध और व्याकरण-सम्मत भाषा का प्रयोग निश्चय ही वल्लभ जी की सक्षमता है। कलेवर छोटा होने पर भी जिस पूर्णता और सुनियोजित ढंग से कथा को कवि ने प्रस्तुत किया है, उसमें रोचकता के साथ ही आदर्श का समावेश किया है, वह द्रष्टव्य है।

निष्कर्ष यह है कि जैसा आचार्य द्विवेदी जी चाहते थे कि कविगण आदर्श-परक इस प्रकार की रचनायें लिखें कि लोगों का खड़ी बोली का पद्य पढ़ने की ओर झुकाव हो, उसे वल्लभ जी ने पूरा किया है।

**प्रेम पथिक :**

'प्रेम पथिक' जयशंकर प्रसाद का उत्पाद्य कथा पर आधृत सर्ग विहीन खण्डकाव्य है। किशोर और चमेली साथ-साथ पले। दोनों एक दूसरे को प्रेम करने लगे। चमेली का विवाह दूसरे युवक से हो गया। किशोर घर छोड़कर दूर चला गया। चमेली विधवा हो गई और जंगल में कुटी बना कर रहने लगी। एक दिन भटकता हुआ किशोर भी वहाँ पहुंच गया। दोनों ने एक दूसरे को पहिचान लिया। उनका प्रेम व्यक्ति से ऊपर उठकर समष्टिगत हो गया। किशोर ने चमेली को अपने प्रेम को विश्वात्मा के प्रेम में मिला देने के लिए प्रेरित किया—

> आत्म समर्पण करो उसी विश्वात्मा को पुलकित होकर।
> प्रकृति मिला दो विश्व-प्रेम में, विश्व स्वयं ही ईश्वर है।[2]

और हृदय हृदय से मिलकर एक धारा बन सागर की ओर उन्मुख हो गया। रूपगत प्रेम भावगत हो गया, ऐन्द्रिक प्रेम अतीन्द्रिय हो गया। प्रेम

---

१. भाग्य चक्र, पद ५२, पृ० ११।
२. प्रेम पथिक : प्रसाद, तृतीय संस्करण, पृ० ३०।

को केन्द्र बिन्दु बनाकर प्रसाद ने प्रकृति मानव और विश्वात्मा को एक सूत्र में जोड़ा है। मानव का व्यक्ति से प्रेम विस्तृत और विशाल होकर प्रकृति से जुड़ता है और अधिक विशाल और उदात्त हो जाने पर विश्वात्मा, ईश्वर से जुड़ जाता है—यही प्रसाद का दार्शनिक चिन्तन है। प्रेम का यह उदात्त रूप, विराट स्वरूप है द्विवेदी युग को प्रसाद की बहुमूल्य देन है। प्रसाद ने अपने काव्य का आधार, कल्पना प्रसूत ऐसी कथा को, अपने हृदयगत भावों को संसार के सामने रखने के लिए ही बनाया। सच्चा प्रेम करने वाले की दृष्टि संकुचित न होकर बहुत उदार होती है। प्रिय की देह मिले न मिले, वह उसे हृदय से प्रेम करता है, उसके मंगल की कामना करता है, उसके प्रेम में मग्न सारा विश्वमय देखता है और सारे विश्व से प्रेम करता है। प्रतीकवाद, छायावाद और रहस्यवाद के बीज समेटे यह कथानक नियतिवादी प्रसाद के रचना शिल्प और भाव सौंदर्य का आधार पाकर अमर हो गया।

प्रेम की इस कृति का अंगी रस श्रृंगार है। संयोग और वियोग दोनों के बहुत अच्छे चित्र प्रसाद ने खींचे हैं। प्रकृति में मानवीय संवेदनाओं की अनुभूति काव्य की मार्मिकता को बढ़ा देती है। 'करुणा-यमुना प्रेम जाह्नवी का संगम है भक्ति प्रयाग'[1] या 'खिली चाँदनी में खिलते थे एक डाल में युगल कुसुम'[2] या 'छोड़ दिया सुखधाम सकल आराम, प्रेमपथ-पथिक हुआ'[3] में श्रृंगार का उदात्त तत्त्व निहित है। प्रकृति चित्रण भी अत्यन्त सजीव है। साथ ही उसमें सूक्ष्मता भी है जैसे–'बह जाता था उषा-काल में दक्षिण-मलयज सुखकारी'[4] भारत के दक्षिण की ओर समुद्र है, अतः शीतल समीर दक्षिण से ही आयेगी।

भाषा खड़ी बोली है। तत्सम शब्दावली होते हुए भी वह परिपक्व नहीं है। कहीं-कहीं दुरूह शब्दों जैसे पण्य (पृ० १३), वीरुध (पृ० ९), अभ्र (पृ० २१), प्रत्न (पृ० २६) आदि का प्रयोग भाषा के प्रवाह और सहजता में बाधक होता है। प्रसाद की किशोर वय की प्रारम्भिक रचना होने से ही भाषा में यह शैथिल्य और कमियाँ आ गई लगती हैं। विभक्ति या सर्वनाम सम्बन्धी कुछ भूलें भी हैं। देशज शब्दों जैसे मुद, चंगेर, कन्दील आदि का तथा कुछ अन्य प्रयोग जैसे तारा सा टक लगाना, चारों दृग आँसू बहाना, आदि भी खटकते हैं। अभिधा का बाहुल्य है किन्तु लक्षणा, व्यंजना भी

१. प्रेम पथिक, पृ० २८।
२. वही, पृ० १४।
३. वही, पृ० २०।
४. वही, पृ० २०।

काव्य में विद्यमान हैं। तत्कालीन प्रचलित अलंकारों अन्योक्ति, रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, प्रतीप आदि का ही प्रायः प्रयोग है। मूर्त के लिए अमूर्त उपमान उल्लेखनीय हैं, जैसे लतिका का ईश-दया सी छाना, देह का वीणा के तारों सा बजना आदि। ताटंक छन्द के वजन पर ३० मात्राओं का छन्द जिसमें तुकान्त का बन्धन नहीं है, कवि ने अपनाया है जो लोकप्रिय हुआ। प्रचलित अहो, अहा आदि सम्बोधन शैली के और मात्रापूरक शब्दों का प्रयोग प्रसाद ने भी किया है।

उल्लेखनीय बात यह है कि यह एक विशुद्ध व्यक्तिवादी रचना है। द्विवेदी युगीन प्रवृत्तियों—राष्ट्रीयता, स्वदेश प्रेम, वीरोल्लेख, अतीत गौरव-गान आदि की छाप इस पर नहीं पड़ सकी। कवि ने एक चिरन्तन भाव प्रेम को लिया है और गहराई से उस पर अपना चिन्तन और दृष्टिकोण प्रस्तुत कर न केवल कविता को लोकप्रिय बनने की जमीन दी, बल्कि एक चिरंतन शाश्वत सत्य का आलोक भी 'प्रेम पथिक' में भर दिया जिसने युग को एक नई आस्था, नूतन दृष्टिकोण दिया।

**बूढ़े का ब्याह**

सैयद अमीर अली 'मीर' ने अपनी इस कृति द्वारा वृद्धि-विवाह की भर्त्सना की है। कथा काल्पनिक है। मिर्जापुर निवासी एक पचपन वर्षीय वृद्ध धनीराम दस वर्षीय बालिका चम्पा से विवाह कर लेता है। चम्पा वृद्ध से सन्तुष्ट नहीं हो पाती। वह उसके सेवक युवक छबीला की ओर आकृष्ट होती है और एक दिन उसके साथ घर से भाग जाती है। वृद्ध की इस धक्के से मृत्यु हो जाती है। चम्पा के पिता छःकौड़ी को जब यह पता चलता है तो वह पण्डित सूदनलाल को कोसता तो है पर चम्पा को फिर अपने घर नहीं ले जाता। छबीला भी चम्पा को छोड़कर भाग जाता है और वह बड़े बुरे दिन गुजारती है। वह मजदूरी करके पेट भरती है और इसी प्रकार एक दिन मर जाती है।

पुस्तक के मुखपृष्ठ पर 'एक शिक्षाप्रद पद्य कहानी' लिखा है। अनमेल विवाह और वृद्ध-विवाह के दुष्परिणाम दिखाकर कवि ने वृद्धों को विवाह न करने की शिक्षा दी है। कवि विषयासक्त वृद्ध का उपहास करता है—

देखो तो बूढ़े की बातें, पहुँच चुका यम का फर्मान,
तो भी उसको बना हुआ है अभी जवानी का अर्मान।[1]

---

१. बूढ़े का ब्याह, प्रथम परिच्छेद, पृ० ६।

काव्य में ब्राह्मण-वर्ग पर, पण्डितों पर, अवसरवादी लोगों पर और काम-पिपासुओं पर भी स्थान-स्थान पर व्यंग्य किया गया है। 'है अफसोस नहीं अब इसमें, पिछला सा अभिमान रहा'[१] ब्राह्मण के लिए कवि की इस उक्ति में उसके मन की व्यथा स्पष्ट झलकती है।

पैसे के लालच में किस प्रकार पंडित लोग जन्मतिथि तक बदल देते हैं, इसे कवि ने ब्राह्मण सूदन द्वारा वृद्ध धनीराम को दिये गये इस आश्वासन से दर्शाया है—

जन्म-पत्रिका मुझे दीजिये, वर्ष पाँच कम कर दूँगा,
दुष्ट ग्रहों की शान्ति तुष्टि कर,आयु वृद्धि कर वर दूँगा।
किसी गृही को करके राजी, शुभ सम्बन्ध मिला दूँगा,
करे अँधेरा दूर भवन का, चन्द्र-आननी ला दूंगा।[२]

कुछ माता-पिता भी पैसे लेकर अन्यनी कन्याओं को बूढ़े वर को नीलाम कर देते हैं। इस तथ्य पर प्रकाश डालते हुए वह समाज के ठेकेदारों को धिक्कारता है कि—

खुले खजाने कन्या विक्रय करें, कहें यह पाप नहीं,
औरों को शरमाते हैं पर शरमाते हैं आप नहीं।[३]

काव्य का प्रमुख भाव रति है जो स्थान-स्थान पर प्रकट हुआ है। धनीराम नवपरिणीता चम्पा से कहता है—

इसी तरह से हे प्यारी ! अब मेटो मेरा हृदय विषाद।
हम से तुम, तुम से हम लूटें, जीवन भर सुख शान्ति-प्रसाद॥[४]

किन्तु बूढ़े धनीराम के इस रतिभाव से पाठक तादात्म्य नहीं कर पाता। जहाँ कवि ने छबीला के साथ चम्पा के रति-प्रसंग का वर्णन किया है, वहाँ भी रसोद्रेक नहीं होता, क्योंकि वहाँ रति-प्रसंग का नायक एक नौकर है, जैसे—

मन-तुरंग दोनों के छूटे, तोड़ तोड़ कर लाज लगाम,
धर्म विचारा गिरा टिका नहिं, हुआ प्रबल आरोही काम।[५]

---

१. बूढ़े का व्याह, पृ० ६।
२. वही, पृ० ५।
३. वही, द्वितीय परिच्छेद, पृ० १४।
४. वही, तृतीय परिच्छेद, पृ० १९।
५. वही, चतुर्थ परिच्छेद, पृ० २२।

करुण का आभास वहाँ होता है जहाँ छबीला के साथ चम्पा के भाग जाने के शोक में धनीराम की मृत्यु हो जाती है, वह बिना बिस्तर के खाली जमीन पर पड़ा दम तोड़ देता है —

धनीराम के देखो शव को, तकिया पलंग न बिस्तर है,
धरनी की जंघा के बदले, पड़ा हाय ! धरती पर है।
आज पास में उसके कोई, बेटा-बहू न प्रियवर है,
जिसके लिये सहा था सब कुछ, नहीं वही चम्पा घर है।[1]

छबीला के छोड़ देने पर परित्यक्त चम्पा अकस्मात अपने पिता छःकौड़ी से मिलने पर खूब रोती है। उसका यह विलाप भी शोक का संचार करता है, जब वह कहती है —

अब आता है ऐसा जी में, धरती फटे समाऊँ मैं,
पाप-मुक्ति के लिये इसी क्षण गिरि पर चढ़ गिर जाऊँ मैं।[2]

हल्का सा वात्सल्य का पुट वहाँ मिलता है जहाँ चम्पा की बुरी हालत देखकर छःकौड़ी को क्षोभ होता है और वह सुधबुध खो बैठता है।[3] प्रकृति वर्णन भी कहीं-कहीं दिखलाई देता है, यथा —

लौट रही थीं गायें घर को और बसेरे को खग-वृन्द,
मंद मंद मुसकुरा रहा था, नील व्योम में दोयज-चन्द।[4]

भाषा सामान्य खड़ी बोली है जिसमें देशज शब्द, जैसे-ठिकरा, बिचारी, मकारा आदि तदभव शब्द जैसे-ब्याह, भरम, घरनी, उर्दू शब्द आराम, फर्मान, सिरताज, आखिर, खूब, गुलाम, अफसोस आदि के प्रयोग किये गये हैं। कहावतों जैसे—'पीर पराई वे क्या जानें जिन्हें बिवाई फटी नहीं,'[5] 'ओछी पूँजी खसमें खाय'[6] आदि को काव्य में स्थान मिला है। मुहावरों का किंचित् शुद्धीकरण कर जैसे तिनके का सहारा के स्थान पर तिनके का आधार, आँख देखते मक्खी निगलना के स्थान पर आँख देखते मक्खी खाना और कहीं ज्यों के त्यों जैसे खुले खजाने, धुआँ उड़ाना, सोने की चिड़िया, धरती फटना

---

१. बूढ़े का ब्याह, पंचम परिच्छेद, पृ० २९।
२. वही, सप्तम परिच्छेद, पृ० ३८।
३. वही, पृ० ३८।
४. वही, पृ० ३४।
५. वही, प्रथम परिच्छेद, पृ० ३।
६. वही, द्वितीय परिच्छेद, पृ० ९।

आदि को कवि ने अपनाया है। इतिवृत्तात्मक वर्णन होते हुए भी यत्रतत्र उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा अलंकारों के प्रयोग कर कवि ने कथन को अधिक सशक्त बनाया है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

उपमा— नील गगन के रम्य चन्द्र सा, देख प्रिया का चन्द्र-वदन,
केवल नयन-सिन्धु में उनके, लगा मारने लहर मदन।[1]

रूपक— स्वार्थ-वारुणी पीकर तुमने, चश्मा-लोभ लगाया जब,
भला बुरा भूला, कृत छोटा बड़ा, दृष्टि में आया तब।[2]

उत्प्रेक्षा— सुनते ही दुस्समाचार यह, धनीराम गिरा हुआ अचेत,
मानो उस पर पड़ा बज्र हो, आया उसे नहीं फिर चेत।[3]

कवि ने मात्रिक छन्द अपनाया है। प्रत्येक चरण में ३० मात्राएँ हैं, १६ और १४ मात्राओं पर यति है। छन्द-भंग न होने देने के लिये शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा भी गया है। कहीं बड़ी मात्राओं के स्थान पर छोटी मात्राएँ जैसे नहीं का नहिं, भाई का भाइ, कहीं 'र' के स्थान पर रकार जैसे अरमान के स्थान पर अर्मान भी प्रयुक्त हैं। कुछ नये शब्दों को भी गढ़ा है, जैसे गृहस्थ के लिये गृही, अन्त-काल के लिये अन्तक, मक्कार से मक्कारा आदि व्याकरण दोष भी है। पुल्लिग क्रिया के स्थान पर स्त्रीलिंग क्रिया प्रयोग की गई है, जैसे 'प्यार से पाली थी' आदि।

जहाँ कवि कहता है—'यह जग बाजार है, जीव सौदा है, मृत्यु गाहक हैं'[4] वहाँ उसकी दार्शनिकता प्रकट हुई है। वह चिन्ता को चिता मानता है, मुसलमान होकर भी विरंचि की बात करता है और सौ कुपुत्रों से भी एक सुपुत्री की श्रेष्ठता में विश्वास करता है। बुरे काम का परिणाम अच्छा नहीं होता, बिना विचारे किया गया काम पूरा नहीं होता, माँ बाप बच्चों के भावी जीवन के उत्तरदाता हैं, न्यायालयों में उभय पक्षों के धन का धुआँ उड़ता है, काम-ज्वर का ताप सबसे भयंकर होता है आदि उसकी मान्यताएँ हैं। रचना के अन्त में देश-प्रेम का स्वर भी मुखर हुआ है—

पति पत्नी में पूर्ण प्रेम हो जिससे हो उत्तम सन्तान,
करें देश का जो मुख उज्ज्वल, रक्खें अपने कुल का मान।[5]

---

१. बूढ़े का व्याह, तृतीय परिच्छेद, पृ० १८।
२. वही, सप्तम परिच्छेद, पृ० ३६।
३. वही, पंचम परिच्छेद, पृ० २८।
४. वही, द्वितीय परिच्छेद, पृ १२।
५. बूढ़े का व्याह, सप्तम परिच्छेद, पृ० ३९।

निष्कर्ष यह है कि इस उपदेशात्मक काव्य के द्वारा मीर साहब ने सामाजिक कुप्रथाओं पर कुठाराघात करते हुए समाज को सही रास्ता दिखाया, साथ ही मुसलमान होकर भी खड़ी बोली का प्रयोग कर हिन्दी के विकास में उल्लेखनीय भूमिका अदा की।

**प्रेम पथिक :**

श्री हरिप्रसाद द्विवेदी 'वियोगी हरि' 'कृत प्रेम-पथिक' में एक पथिक का अपने गुरु के मार्गदर्शन द्वारा प्रेम नगरी पहुँचने का विवरण है। गंगा के किनारे स्वामी हितानन्द की कुटी में एक दिन एक श्रान्त क्लान्त पथिक आकर पड़ रहा। स्वामी ने उसे उठाया, फल फूल खिलाया और हाल पूछा। उसने बताया—'मैं कांचनवती नगरी का निवासी हूँ जहाँ के लोग विषयी एवं स्वार्थी हैं। मैं भी ऐसा ही एक युवक हूँ। मेरे मन में भी 'इदं सर्वं विश्व का भाव है। एक दिन स्वप्न में मुझे प्रीतमपुरी नगर का दर्शन हुआ और हितानन्द स्वामी के पास चलने की प्रेरणा मिली। मैं चल दिया। अब आप मिल गये हैं मेरा उद्धार कीजिये।' गुरु ने उसे बताया कि जहाँ मन में उमग, उत्साह, दृग में प्रेमासव और उत्कंठा होती है, वहाँ मोह को नष्टकर और शील को धारण कर अहंकार, अविद्या को तजकर विवेक का अवलम्ब लेकर ही व्यक्ति आगे बढ़ता है। वह कुमति और भ्रम से दूर होकर क्षमा को अपनाता है। संतोषी बनकर, इच्छाओं को त्यागकर, वह सौन्दर्यान्वित प्रकृति की उपासना करता है। इस प्रकार वह आत्मज्ञान की प्राप्ति करता है पराविद्या अर्थात अध्यात्म विद्या का पान करता है। तो उसे शब्द-ब्रह्म का फल मिलता है। इस विधि से आत्मा को जगाने पर तुम्हें महाविद्या-सिद्धि मिलेगी और फिर प्रियतम पुरी भी दिखाई देगी। जब रूप-द्वार पर पहुँचोगे तो प्रिय की छवि के दर्शन होंगे। पथिक इसी प्रकार आगे बढ़ा, दृश्य बदल गया, उसे देखकर वह चकित हो गया। उस क्षण पथिक ही परमेश्वर हो गया और उसे परमगति प्राप्त हुई।

सम्पूर्ण काव्य भक्ति-प्रेम से ओत-प्रोत है। आरंभ में ही स्वामी कहता है—

> चहै जो प्रेमात्मा इहि मग सुपंथी ! पग धरै।[1]

प्रेमात्मा पथिक इस पथ पर चल निकलता है। प्रेमाभक्ति इतनी तीव्र होती है कि वह व्याकुल हो उठता है —

> कबै प्यारो ऐहैं मुख-छबि दिखैहै रस-भरी।
> चितै है त्यों दै हैं कर कमल, रै है किहि घरी।

१. प्रेम पथिक : वियोगी हरि, पृ० ६।

लगा लै है ही सों मधुर मुसकैहै चित हरै ।
पराशान्ती पै है यह पथिक वाको कब परै !!![१]

भाषा ब्रज है जिसमें खड़ी बोली का भी पुट है। जैसे 'पराशान्ती छाई, गति परम पाई तिहि जबै'[२] में छाई और पाई खड़ी बोली में प्रयुक्त क्रियाएँ हैं। उर्दू और अन्य भाषाओं के शब्दों का प्रयोग नहीं के बराबर है। अभिधा में लिखे गये इस इतिवृत्तामक काव्य में अलंकार सौष्ठव भी नहीं है। कवि ने सर्वत्र शिखरिणी छन्द का प्रयोग किया है और हर चरण में १७ वर्ण हों, इसका ध्यान रखा है। उस समय की प्रचलित परिपाटी के अनुसार काव्य के अन्तिम छन्द में कवि ने स्वयं कहा है —

बनो पंथी प्यारे ! इहि मग मिलै प्रीतम मणी,
जु प्रेमी ह्वै गावे तिहि पथ दिखावे शिखरिणी ।
सनेही की यात्रा अति विसद संछेपहिं कही,
'हरी' कैसे पी की छवि लिखहि ही की हिय रही ।[3]

स्पष्ट है कि यह रचना आत्मपरक और स्वान्तःसुखाय है। उस परम स्नेही ईश्वर के पास पहुँचने की यात्रा बहुत लम्बी है, पर 'हरि जी' ने उसे संक्षेप में कहा है। अपनी इस कृति द्वारा कवि ने भक्ति की धारा बहाकर लोक-रूचि को कविता की ओर उन्मुख किया।

**भगतिन बिलैया :**

एक पुरानी लोक कथा पर आधारित 'भगतिन बिलैया' नामक श्रीहरद्वार प्रसाद गुप्त कृत खण्डकाव्य समाज के पाखण्डी और ढोंगी लोगों की पोल खोलता है। गुप्त जी ने अर्चना के रूप में हिन्दी साहित्य के मन्दिर में अपनी यह कृति अर्पित की है। पुस्तक की भूमिका में लेखक ने स्वयं लिखा है —

'कई कवि एवं धुरन्धर लेखक अनेक पुस्तकों से हिन्दी साहित्य मन्दिर भर रहे हैं अतः मैंने भी अपने टूटे-फूटे शब्दों की पुस्तिका को प्रकाशित करने का साहस किया है।'

कल्पना प्रधान इस काव्य की कथा इस प्रकार है—'एक वृक्ष के कोटर में एक अन्धा गिद्ध रहता था। वहाँ बहुत सी चिड़ियाँ भी रहती थीं। चिड़ियाँ उसके लिए खाना जुटा देती थीं और बदले में वह चुग्गे की तलाश में चिड़ियों

---

१. प्रेम पथिक : वियोगी हरि, पृ० २६।

२. वही, पृ० २८।

३. प्रेम पथिक, पृ० २९।

के जाने पर उनके बच्चों की रखवाली किया करता था। एक दिन एक धूर्त बिल्ली उधर आ निकली। उसने अन्धे गिद्ध को फुसलाकर और अपने भगतिन होने का विश्वास दिलाकर तर्क वितर्क के उपरान्त उससे कोटर में रहने की अनुमति ले ली। चिड़ियों को इस बात का पता भी न चला। गिद्ध को दिखाई तो देता नहीं था अतः बिल्ली चिड़ियों के बच्चों को खा-खाकर उनकी हड्डियों को सरलता से गिद्ध के पास रख देती थी। जब बच्चों की संख्या घटने लगी तो चिड़ियों ने तलाशी ली। गिद्ध के आस-पास अपने बच्चों की हड्डियों को पड़ी देख उन्होंने सोचा कि यही उनके बच्चों को खाता है। धूर्त और पाखण्डी भगतिन बिल्ली तो आँख बचाकर वहाँ से भाग ली और बेचारे निरपराध गिद्ध को चिड़ियों द्वारा मौत का शिकार होना पड़ा।

कथानक में संगठन है और प्रवाह है। वह जीवन के व्यावहारिक पक्ष पर प्रकाश डालता है। पाखण्डी और स्वार्थी लोगों से पाठक को सचेत और सतर्क करता है। द्विवेदी युगीन कृति होने से इसमें आदर्श और उपदेश की प्रधानता है। कवि काव्य के अन्त में भी कहता है—

हो जिससे पहिचान न उसका पद पद खूब विचार करो,
उसे समझ लो भली भाँति, तब उसके संग व्यवहार करो।[१]

नीति विषयक सम्मति भी कवि ने दी है, जैसे—

कर्म प्रवृत्त पूर्व सब सोचें, क्या होगा परिणाम कहीं।
तो फिर क्यों पछतावा होवे, बिगड़े भी कुछ काम नहीं।[2]

साथ ही कवि ने शनैः शनैः कथा के विकास द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से अपने उपदेशात्मक मन्तव्य को काव्य में ढाला है।

इस उपदेश प्रधान विवरणात्मक कथा-काव्य में पूर्ण रसात्मकता की स्थिति नहीं आ पाती। शान्त, भक्ति, निर्वेद, करुण आदि रस यत्र-तत्र प्रकट होते हैं, पर अंगी रस के रूप में कोई उभर कर नहीं आता। भक्ति रस का आभास होता है, जब बिल्ली कहती है—

प्रातः संध्या नियमपूर्वक गंगा नित्य नहाती हूँ।
बैठ कुशासन पर निशि-वासर हरि का ध्यान लगाती हूँ॥
सन्ध्या करती आँख मूँदती फिर तब नाक दबाती हूँ।
रामायण गीता का करती पाठ भजन भी गाती हूँ॥[3]

---

१. भगतिन बिलैया : हरद्वार प्रसाद गुप्त, पद १२८, पृ० ३३।

२. वही, पद ३३, पृ० ९।

३. वही, पद ५८, पृ० १५।

राम जानते हैं अपने भक्तों को, अपने से प्यारा।
रूप अनेकों धारण करके, दुःख हरें उनका सारा ॥[1]

बिल्ली के माध्यम से ही कवि ने भगवान् के प्रति अपने मन की आस्था को अभिव्यक्ति दी है, यहाँ उसकी ईश्वर-भक्ति बोलती है—

जब हरि भक्त दुःख पाते हैं, तब हरि भी अकुलाते हैं।
जिसी रूप में होते, दौड़े दुःख छुड़ाने आते हैं ॥[2]

इसी प्रकार 'हाय ! हाय ! री री दुनिया ! तेरा तो अजब तमाशा है'[3] पद में संसार के विचित्र रवैये के प्रति कवि का क्षोभ प्रकट हुआ है।

काव्य की भाषा खड़ी बोली है जिसमें ब्रज भाषा और उर्दू के शब्दों के प्रयोग के साथ शब्दों के तद्भव रूपों और ब्रज भाषा के क्रिया पदों के प्रयोग भी हैं, जैसे कीजै, लीजै, अलाप, अजब, जिसी, जभी आदि। भाषा पुष्ट नहीं है। अहो, अहा आदि को सम्बोधनात्मक तथा विस्मयादि बोधक द्विवेदी कालीन प्रवृत्ति के अनुसार प्रयोग किया गया है। कवि ने ३० मात्रा के छन्द का प्रयोग किया है। तुकान्त के लिए गुप्त जी ने शब्दों को विकृत भी किया है, यथा—

'सता राम भक्तों को कोई अपना सुख कल्यान चहे'[4] में 'चाहे' शब्द को 'चहे' कर देना। कहीं-कहीं क्रियाओं में गलत लिंग का प्रयोग किया गया है, जैसे—'नर जाता है जहाँ वहाँ पर भाग्य साथ भी जाती है।'[5] इसमें भाग्य पुल्लिग होने पर भी उसमें स्त्रीलिंग वाचक क्रिया का प्रयोग है जो व्याकरण की दृष्टि से त्रुटिपूर्ण है। गुप्त जी ने सामान्यतः अभिधा में अपनी बात कही है, पर यत्र-तत्र उन्होंने लक्षणा, व्यंजना शब्द शक्तियों को भी अपनाया है। एक स्थान पर आप कहते हैं—

कोई बाहर बेर दीखता, भीतर से पर क्रूर महा,
बाहर भीतर एक सदृश कोई बिरला अंगूर रहा।[6]

यहाँ बेर और अंगूर के लाक्षणिक प्रयोग से कवि ने उक्ति के प्रभाव में

१. भगतिन बिलैया : हरद्वार प्रसाद गुप्त, पद ९३, पृ० २४।
२. वही, पद ९४, पृ० २४।
३. वही, पद ७४, पृ० १९।
४. वही, पद ९३, पृ० २४।
५. वही, पद ९१, पृ० २३।
६. वही, पद १२६, पृ० ३३।

वृद्धि कर दी है। कवि ने मुहावरों का भी अच्छा प्रयोग किया है—दाल में काला, जान के लाले पड़ना, पेट छिपाना, फेर फार करना, गुरु घण्टाल, काल आना आदि लोक प्रचलित मुहावरों के प्रयोग से कवि ने कृति को लोक जीवन के अधिक समीप लाने का प्रयास किया है।

अलंकारों का प्रयोग काव्य में कम है। उपमा और रूपकालंकार एवं उदाहरण मिलते हैं, जैसे—

ईश्वर को पाकर योगी ऋषि, हैं प्रसन्न होते जैसे।
अभिलाषा जब पूरी होती, सब प्रसन्न होते वैसे ॥[1]

यहाँ ईश्वर प्राप्ति की योगियों की प्रसन्नता के लिए, सामान्यजनों की अभिलाषा की पूर्ति होने पर प्राप्त प्रसन्नता का उपमान विशेष प्रभावपूर्ण नहीं है।

इसको सुनकर बिल्ली का मन-मूषक गजों उछलता था।[2]

उपमेय मन में उपमान मूषक का आरोपण कर कवि ने यहाँ रूपकालंकार की उद्‌भावना की है जो काव्यत्व की दृष्टि से श्रेष्ठ नहीं कही जा सकती।

प्रतीक रूप में बिल्ली को सामने लाकर समाज के धूर्त और पाखंडी लोगों के चरित्र को कवि ने उजागर किया है। एक स्थान पर भगतिन बिल्ली कहती है—

'मेरा वह अब काम हो गया, करना जो इसके संग था,
दोष सिद्ध-शिर मढ़ दूं' कह आरम्भ किया जो छल ढंग था।[3]

संसार में सब प्राणी उसी एक परमपिता परमेश्वर की सन्तान हैं, फिर भेद-भाव क्यों ? अपनी इस विचारधारा को कवि ने अभिव्यक्ति दी है—

जीव जीव से घृणा करे, यह दुखकर कैसी बात अहो।
एक पिता के पुत्र सभी, तब उचित यही क्या बात कहो ॥[4]

इसके साथ ही कवि का भाग्यवादी दृष्टिकोण भी उभर कर आया है—

गुप्त रूप या प्रकट रूप में, नर संग रहे भाग्य छाया,
अपना निश्चित समय ताक कर, प्रकट करे निज कल माया।[5]

---

१. भगतिन बिलैया : हरद्वार प्रसाद गुप्त, पद १०५, पृ० २७।
२. भगतिन बिलैया : हरद्वार प्रसाद गुप्त, पद १०४, पृ० २७।
३. वही, पद १०७, पृ० २७।
४. वही, पद ८, पृ० ३।
५. वही, पद ९१, पृ० २३।

प्रस्तुत पंक्ति 'भेष कुछ और कर्म कुछ और जगत में देख रहा'[1] कवि का अपना अनुभव है। इस प्रकार 'भगतिन बिलैया' को आधार बनाकर कवि ने समाज में व्याप्त छलछन्द का पर्दाफाश करने का प्रयत्न किया है। काव्यत्व की दृष्टि से यह काव्य समृद्ध नहीं है।

**किसान :**

'किसान' श्री मैथिलीशरण गुप्त का चर्चित खण्डकाव्य है। इसमें शोषित भारतीय किसान की शोचनीय दशा पर कवि ने प्रकाश डाला है। कलुआ किसान जमींदार के उत्पीड़न से घबराकर आरकाटी के कहने में आकर अपनी पत्नी कुलवन्ती के साथ फिजी चला जाता है। वहाँ भी कुलीगीरी में में गोरों के द्वारा उसे पशुवत् जीवन जीना पड़ता है। एक अधिकारी द्वारा बलात्कार के प्रयास के कारण कुलवन्ती जान दे देती है। एन्ड्रूज और पियर्सन कलुआ को उस जाल से निकल भागने में मदद करते हैं। अपने देश में आकर वह अपनी पत्नी के फूल नदी में बहाता है। फिर सेना में भरती हो टिगरिस के किनारे वीर गति पाता है। उसकी अन्तिम इच्छा है—

'मेरे साथ देश के सारे दुःखों का भी हो अवसान।'[2]

दक्षिण अफ्रीका में प्रवासी भारतीयों से सम्बन्धित कानूनों के लिए १९१५ ई० की बम्बई कांग्रेस के दसवें प्रस्ताव में खेद प्रकट किया गया था।[3] इसी वर्ष फिजी में 'गिरमिट प्रथा' बन्द की गई थी और प्रवासी भारतीयों के त्राण के लिए प्रयास किये गये। मुक्त हुए लोग अंग्रेज शासकों का आभार मानते हुए उनके लिए मर मिटने के लिए सेना में भरती होने को तैयार होने लगे थे। इसी वातावरण से प्रभावित हो गुप्त जी की कलम से 'किसान' काव्य का सृजन हुआ।

आत्म कथात्मक शैली में लिखे गये इस आत्म चरित्र प्रधान खण्डकाव्य में कलुआ और कुलवन्ती के माध्यम से कवि ने तत्कालीन समाज में कृषकों और मजदूरों की हालत का चित्रण किया है। द्विवेदी युग की काव्य प्रवृत्ति से उत्प्रेरित पराधीनतावश होने वाले कष्टों को सामने लाकर जन-मानस में स्वतन्त्र होने की भावना को उद्वेलित करना ही कवि का मन्तव्य है।

---

१. भगतिन बिलैया : हरद्वार प्रसाद गुप्त, पद ६२, पृ० १६।

२. किसान : मैथिलीशरण गुप्त, संस्करण २००५ वि०, पृ० ४७।

३. कांग्रेस का इतिहास—भाग २ : डा० पट्टाभि सीतारमया, सम्पादक श्री हरिभाऊ उपाध्याय, प्रथम संस्करण, पृ० १०१।

करुण रस प्रधान यह काव्य किसान के प्रति पाठक की सहानुभूति जगाता है। यत्र-तत्र शृंगार, वीभत्स, निर्वेद और शान्त रस का भी समावेश है। बाल्य-जीवन के स्मरण में प्रकृति चित्रण भी कवि ने किया है। नैराश्य भावना पर कवि की ईश्वर में आस्था और नियतिवादी दृष्टि विजय पाती है। सम-सामयिक अन्य समस्याओं, यथा-महामारी, अनावृष्टि, अनाचार, सैन्यजीवन, महाजन, पुलिस और कारिंदों के रवैये पर भी कवि की लेखनी चली है।

भाषा सामान्य खड़ी बोली है जिसमें दीजो, लीजो जैसे क्रियाओं के प्रयोग भी हैं। चलते मुहावरे भी आए हैं, जैसे—हाथ छूटना, दूध पीना, मेल मिलाना, खेल बिगाड़ना, आग लगाना आदि। इसकी भाषा का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

बनता है दिन रात हमारा रुधिर पसीना,
जाता है सर्वस्व सूद में फिर भी छीना।
हा हा खाना और सर्वदा आँसू पीना,
नहीं चाहिए नाथ, हमें अब ऐसा जीना।[1]

काव्य में सर्वत्र अभिधा मूलक प्रसाद गुण सम्पन्न वर्णन है। कवि ने उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास आदि सामान्य प्रचलित अलंकारों का प्रयोग किया है। भाषा समृद्ध नहीं है, फिर भी शोषित किसान के मन की कचोट, कुलवन्ती का अपनी लाज बचाने के लिए उठाया गया कदम और अपनी मातृभूमि के प्रति लगाव अपरिष्कृत भाषा में भी पाठक के हृदय पर गहरा प्रभाव डालते हैं।

अन्त में गुप्त जी ने किसान का ब्रिटिश शासक के प्रति जो कृतज्ञ होने और उसके लिए अपनी जान दे देने का भाव दिखलाया है, वह खटकता है, क्योंकि उस समय स्वाधीनता प्राप्ति के लिए ब्रिटिश शासकों के प्रति जनता के मन में विद्रोह की जो भावना जगानी अभीष्ट थी, उसमें इससे विघ्न पड़ता है। उल्लेख्य है कि काव्य की दृष्टि से उत्कृष्ट न होते हुए भी इस रचना ने समाज में शोषण के प्रति आवाज उठाने की चेतना उस युग में जागृत की।

**अनाथ :**

सियारामशरण गुप्त की कृति 'अनाथ' की कथावस्तु उत्पाद्य है जिसमें

---

१. किसान (प्रार्थना शीर्षक), संस्करण २००५ वि०, पृ० ९।

कवि ने उस समय की सामाजिक और प्रशासनिक स्थिति का ज्वलन्त चित्र खींचा है, कथानक बहुत दर्दनाक है। पहिले सर्ग में एक छोटे से जीर्ण शीर्ण घर में गरीब मोहन की पत्नी यमुना अपने ज्वरग्रस्त बेटे मुरलीधर को भूख से छटपटाता देख रही है। यमुना एक मात्र बचा लोटा गिरवी रखकर मोहन को चून लाने को कहती है। दूसरे सर्ग में चून लेकर आते समय रास्ते में चौकीदार मोहन को डाट डपट में धक्का दे देता है और चून बिखर जाता है। मोहन के मात्र 'यह क्या' कहने पर चौकीदार उसे थाने ले जाता है। वहाँ कान्सटेबिल बेगार में उसे पंखा खींचने बिठा देता है। तीसरे सर्ग में मरणासन्न भूखा मुरलीधर अपने छोटे भाई के क्लेश की चिन्ता करता है। वह सन्निपात ज्वर में आ जाता है। इतने में नशे में चूर काबुली वाला अपना पैसा वसूल न होने पर जमुना को घसीट कर उसे कोठी पर काम करने लिवा जाता है। चौथे सर्ग में मोहन मालगुजार से मुक्ति पाने पर विक्षिप्त सा घर की ओर चल पड़ता है, तभी सिपाही जबर्दस्ती उसे कचहरी ले जाता है। वहाँ वेश्या का नाच गाना चल रहा होता है और मोहन को महल के बाहर बैठा दिया जाता है। उसी समय उसे मुरलीधर की मृत्यु, यमुना के गायब होने एवं अपने छोटे बेटे के अकेले रोने का समाचार मिलता है। मोहन रोता हुआ घर की ओर दौड़ता है कि एक तेज ठोकर खाकर गिर जाता है। उसका सिर फट जाता है और वह वहीं ढेर हो जाता है।

कथानक सुगठित एवं सुसम्बद्ध है। शोषक और शोषित, समाज और सामाजिक व्यक्ति सम्बन्धी कुछ विचारणीय प्रश्न कवि ने उठाये हैं। मालगुजारों और महाजनों आदि पूंजीपति वर्ग का कमजोर वर्ग पर ज्यादती का मार्मिक चित्र प्रस्तुत कर जनता की संवेदना को जगाया है। कवि का उद्देश्य पाठक वर्ग में इस प्रकार की भावना पैदा करना है कि सम्पन्न लोग निर्धनों को स्वयं न सताएँ और जो भी सताए उसका विरोध कर परिश्रमी, लगनशील गरीब मजदूरों और किसानों की सहायता करें।

रचना का पर्यवसान करुण रस में हुआ है, दुःखान्त काव्य है। भूखे बीमार बच्चे की दयनीय दशा का चित्र मार्मिक है—

हड्डी-हड्डी निकल रही सारे तन की,
है नितान्त ही क्षीण ज्योति उसके जीवन की।
मच्छर भी जो उसे काटते हैं आ आकर,
जाते वे भी नहीं उड़ाये हाथ उठाकर।[1]

---

१. अनाथ : सियारामशरण गुप्त, पद ७, पृ० ५।

लहू पसीना एक करके अन्न उपजाने वाले, बेगार में पकड़े जाने वाले ये किसान कुत्तों से भी गए बीते हैं। इनके नारकीय जीवन के चित्रण के साथ इन पीड़ित हृदयों की आक्रोश पूर्ण आह भी कवि ने दिखाई है—

यह याद रखना किन्तु तुम भी, बच नहीं सकते कभी,
बस एक घर की आग से है गाँव जल जाता सभी।[1]

शोक, भय, विस्मय, क्रोध आदि के चित्र हृदय को छूते हैं। भाषा प्रसाद गुण सम्पन्न सरल और मुहावरेदार खड़ी बोली है। घर की आग, मुँह खोलना, आपत्ति का मारा, लहू पसीना एक करना, हड़प जाना, भूल पड़ना आदि मुहावरे प्रयोग किये हैं। द्विवेदी युगीन सम्बोधन शैली के प्रयोग अहा, अहो, हा, हरे, हाय आदि किये गये हैं। कहीं-कहीं वर्णन में नितान्त इति-वृत्तात्मकता आ गई है।[2] यत्र-तत्र भाषा भी शिथिल है,[3] पर कहीं बहुत प्रवहमान भी है।[4]

उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अर्थालंकारों का प्रयोग है। छन्दों में विविधता है, किन्तु अधिकांश १६ मात्राओं वाले शृंगार छन्द का प्रयोग किया है। एकाध स्थान पर तुकान्त खंडित भी है।[5]

द्विवेदी युगीन सामान्य प्रवृत्ति के अनुरूप कवि नियतिवादी नहीं है, उसे कर्म में विश्वास है। मानवता को नकारने वालों की भर्त्सना करते हुए अपनी इस कृति द्वारा कवि ने तत्कालीन समाज में अत्याचार और अन्याय के प्रति विद्रोह की चेतना जागृत की है।

**मिलन :**

रामनरेश त्रिपाठी के प्रख्यात खण्डकाव्य 'मिलन' को बहुत सराहना प्राप्त हुई। देशभक्ति और राष्ट्रप्रेम को केन्द्रबिन्दु बनाकर पाँच सर्गों में परिमार्जित खड़ी बोली में त्रिपाठी जी ने इस काव्य की रचना की। विजया और आनन्द तूफान में बिछुड़ जाते हैं, दोनों एक मुनि को मिलते हैं, वह उन्हें जिन्दगी देने के साथ ही उनमें स्वदेश प्रेम का मंत्र फूंकता है। दोनों जीजान से देश-सेवा करते हैं, बिछुड़ते हैं और अन्त में फिर मिल जाते हैं।

१. असाय : सियारामशरण गुप्त, चतुर्थ सर्ग, पद १३, पृ० ३०।
२. वही, पद ८, पृ० ५।
३. वही, पद २२, पृ १५।
४. वही, पद ११, पृ० ६।
५. वहीं, पद १९, पृ० २३।

यह त्रिपाठी जी का प्रथम खण्ड काव्य होते हुए भी हर दृष्टि से अत्यन्त सम्पन्न है। इस काव्य की विशेषता यह है कि प्रेमाख्यानक होते हुए भी यह मांसल स्थूल शृंगार से दूर उदात्त प्रेम के कर्त्तव्य बोध से अनुप्राणित है। कवि ने इसके माध्यम से तत्कालीन-परिस्थिति-सापेक्ष्य देश-सेवा की भावना का निरूपण किया है। गांधी-दर्शन की छाप इसमें आदि से अन्त तक है। रूढ़िगत परम्परावादी प्रेम-काव्य की मान्यताओं को छोड़कर कवि ने स्वच्छन्दतावादी दृष्टिकोण अपनाया है। उस समय जब प्रथम विश्व युद्ध चल रहा था-आजादी की लड़ाई में भी तेजी आ रही थी। इस रचना ने उसे आगे बढ़ाने में बहुत योग दिया। पहिले परिच्छेद में ही कवि ने लिखा—

पर-पद दलित स्वदेश-भूमिका चलो करें उद्धार।
हम मनुष्य होकर क्यों छोड़ें निज पैतृक अधिकार।[1]

अस्थि चर्म मय कंकालों में
जो कुछ बल है शेष।
संचय कर रिपु रहित करूंगा
अपना प्यारा देश।[2]

विजया नवजागरणमय युग की नारी की सच्ची प्रतिनिधि है जिसने समष्टि के कल्याण के लिये अपना व्यष्टिगत सुख त्याग दिया है। वह अबला नहीं शक्तिसम्पन्ना है, व्यवधान नहीं, प्रेरणास्रोत है, पतिव्रता है जिसने विरह में आहें भरना नहीं नूतन जोश से स्वतंत्रता संग्राम में जूझना सीखा है।[3]

'मिलन' में कवि ने प्रेम की व्याख्या भी की है, वह प्रेम को स्वर्ग और स्वर्ग को प्रेम बताता है।[4] प्रेम विश्व का प्राण है, विश्व का संस्थापक है।[5]

अंगी रस शृंगार है। बियोग और संयोग शृंगार की उत्कृष्ट उक्तियों से काव्य भरा पड़ा है। साथ ही वीर, करुण, शान्त सहयोगी के रूप में हैं। प्रकृति चित्रण भी बहुत सुन्दर है। प्रसाद, माधुर्य एवं ओज तीनों गुणों से युक्त अभिधात्मक काव्य–धारा मन को अभिभूत कर देती है। तत्सम पदावली है जो कहीं-कहीं संस्कृतनिष्ठ भी हो गई है। उदाहरण—'परिध-समान प्रलम्ब

१. मिलन, चतुर्थ संस्करण, पद १९, पृ० ४
२. वही, सातवां संस्करण, पृ० ५
३. वही, नवां संस्करण, पृ० ७२-७४
४. मिलन, बारहवाँ संस्करण, पृ० २९
५. वही, चतुर्थ संस्करण, पद १३, पृ० ११

युगल भुज पृथुल कठिन भुजदण्ड'[1] पंक्ति ली जा सकती है। श्रुति सुखकर शब्द चयन इसकी विशेषता है। देशज शब्द जैसे ठौर, ढिग, मेस, तुरत आदि का प्रयोग भी है। मुहावरे जैसे कौड़ी का मुहताज होना, कलेजा थामना, गाज पड़ना, पैर उखड़ना आदि सहजता से आए हैं।

अलंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, प्रतीप, मानवीकरण, यमक, उदाहरण, रूपकातिशयोक्ति, दृष्टान्त, अनुप्रास आदि ने काव्य सौन्दर्य में वृद्धि की है। मूर्त और अमूर्त दोनों प्रकार के उपमान प्रस्तुत पुस्तक में मिलते हैं। कवि के स्वर में देश भक्ति के साथ-साथ ईश्वरानुराग, नियतिवादिता, उपदेशात्मकता और कर्तव्य-बोध भी है।

'मिलन' की भावगत और कलागत विशेषताओं की पर्याप्त चर्चा पूर्व लिखित कई ग्रन्थों में हो चुकी है।[2] अतः यहाँ उसका पिष्टपेषण करना और दृष्टान्त प्रस्तुत करना अनावश्यक है। यह कहना अत्युक्ति नहीं होगी कि काव्यत्व और विषयवस्तु दोनों ही दृष्टि से 'मिलन' द्विवेदी युग का अत्यन्त सफल और समृद्ध खण्डकाव्य है।

**देवदूत :**

पं० रामचरित उपाध्याय ने काल्पनिक कथा का आधार लेकर देशभक्ति और राष्ट्र-प्रेम से परिपूर्ण खण्डकाव्य 'देवदूत' की रचना की। कवि ने इसे 'पूर्व भाग' और 'उत्तर भाग' दो खण्डों में विभाजित कर दिया है। पूर्व भाग में एक भारतीय पुरुष अपने सद् कर्मों के बल से जीता जागता देवलोक में पहुँच गया। देवलोक बहुत अच्छा था, पर अपने देश भारत के समक्ष उसे वह फीका लगा। वह वहाँ उदास हो गया। उसे दुःखी देखकर एक दिन एक देवता ने उससे उसकी उदासी का कारण पूछा। भारतीय पुरुष ने उसे बताया कि उसे भारत देश को छोड़कर स्वर्ग में रखे जाने का दुःख है। उसने उस देव से भारत में दूत बनकर अपना संदेश ले जाने को कहा। भारतवर्ष की धरती और संस्कृति की प्रशंसा करते हुए उसने भारत के दर्शनीय स्थलों के विषय में विस्तार से बताते हुए दूत को भारत पहुंचने का मार्ग बताया।

इसके आगे की कथा उत्तर भाग में है। भारत पहुँचने पर उस देव दूत को कहाँ और किस प्रकार उठना-बैठना, रहना होगा, यह सब भारतीय ने

१. मिलन, चतुर्थ संस्करण, पृ० ३७।

२. द्विवेदी युगीन काव्य : पूनम चन्द तिवारी।
द्विवेदी युग का हिन्दी काव्य : रामसकल राम शर्मा।

देवदूत को समझाया। भारत के इतिहास और तत्कालीन व्यवस्था पर प्रकाश डालते हुए भारत के गुणों और विशेषताओं को बताते हुए उसने देवदूत से अपना सन्देश भारतवर्ष को पहुँचाने को कहा—

कल्प वृक्ष सा पनप रहा है,
प्रकटित भी होंगे फल फूल।
धर्ममूल दृढ़ रह अपने को,
सपने में भी कभी न भूल।[1]

इसके बाद उस भारतीय ने देवदूत से कहा कि मेरे सन्देश के उत्तर में भारतवासी जो सन्देश मेरे लिये तुम्हें दें, वह मुझे लाकर दे देना—

मेरे सन्देशे सुन वह भी
जो कुछ मेरे लिये कहें,
सत्वर आकर उसे सुनाना,
भूल न जाना स्मरण रहे।

मानो प्यासे हुए किसी को
अमृत घूंट पिला देना,
या मुरझाये चन्दन-तरु में
अनुपम फूल खिला देना।[2]

'उत्तर भाग' की समाप्ति के बाद कवि ने एक परिशिष्ट 'स्वर्ग में नरक' अलग से जोड़ा है जिसमें भारतीय अपने देश की याद कर करके देवलोक को भी नरक के समान महसूस करता है।

कवि ने जानकर ऐसे कथानक का चयन किया है जिससे वह अपने अगाध देश-प्रेम और जन्म-भूमि के गौरव गान को अभिव्यक्ति दे सके। स्वदेश-सुयश-मण्डन के अपने उद्देश्य को निरन्तर ध्यान में रखते हुए कवि ने कथा को विस्तार दिया है। कथानक में संगठन तो है पर घटना-क्रम में अपेक्षित गति और रोचकता नहीं है। एक विशेष ध्येय की प्राप्ति हेतु सायास कथा को विस्तार दिया गया प्रतीत होता है।

कवि अपने देश का असीम भक्त है और 'देवदूत' में आद्यन्त उसकी इसी देश भक्ति-भावना के दर्शन होते हैं। आरम्भ में ही वह कहता है—

---

१. देवदूत : पं० रामचरित उपाध्याय, उत्तर भाग, पद ५४, पृ० ५९।
२. वही, उत्तर भाग, पद ५७, पृ० ६०।

सच कहता हूँ—भरत-भूमि के
ग्राम तुल्य हैं स्वर्ग नहीं,
मुझे मिले साकेत-रेणु यदि
भले मिले अपवर्ग नहीं।[1]

अपनी इस राष्ट्र प्रेम की भावना से वह इतना अभिभूत है कि देवदूत को भारत भेजते समय बहुत सारी बातें समझाता है, न करने वाले कामों के विषय में भी हिदायतें देता है, जैसे —

यदि स्वराज्य की सभा वहाँ पर
होती हो तो मत जाना,
यदि जाना तो चुप हो रहना
बक उठना मत मनमाना।[2]

वह दूत को कहता है कि तुम स्वयं ही भारत में जाकर उसकी महानता का अनुभव करोगे, स्वयं उसे इन्द्रपुरी से भी अधिक श्रेष्ठ मानने लगोगे —

रामायण को पढ़ सुनकर जब
रामचरित को जानोगे,
इन्द्रपुरी से अधिकाधिक तब
रामपुरी को मानोगे।[3]

भारत भूमि की विशिष्टता सिद्ध करने के लिये वह यहाँ तक कहता है कि—

ब्रज की भूमि देख तुम लेना
स्वर्ग भूमि से प्यारी है,
देव सत्य कहता हूँ मथुरा
तीन लोक से न्यारी है।[4]

इस प्रकार विविध वर्णनों द्वारा कवि पाठक के हृदय में देशभक्ति का भाव जगाता है। अपनी बात को अधिक सशक्त रूप से प्रस्तुत करने के लिये सरल खड़ी-बोली में रचित इस काव्य में उपाध्याय जी ने मुहावरों और कहावतों का अच्छा प्रयोग किया है, जैसे—फूंक फूंककर पैर रखना, धूल

१. देवदूत—पूर्व भाग, पद ११, पृ० ६।
२. देवदूत— पूर्व भाग, पद ३०, पृ० १६।
३. वही, पद ३४, पृ० १८।
४. वही, पद ३८, पृ० २०।

में मिलना, आँखें लाल होना, चाल चलना आदि। अलंकार निरूपण में कवि की सचेष्ट प्रवृत्ति नहीं है। वर्णन और विवरण के सम्यक स्पष्टीकरण में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि सहज रूप में आ गये हैं। यथा —

जिस भारत में भूप तुम्हारा
देवराज भी जाता है,
भिक्षुक सा जाकर वह उसके
आगे कर फैलाता है।[1]

देवराज इन्द्र को भिक्षुक का उपमान देकर कवि ने भारत की महत्ता प्रदर्शित की है। अपने आशावादी दृष्टिकोण को अधिक गहरा रंग देने के लिये एक स्थान पर कवि कहता है कि —

कंचुक छोड़ दिव्य तन विषधर
श्वास छोड़ता है जैसे,
बन्धक मुक्त सिंह हो गज के
शीश तोड़ता है जैसे।

वैसे ही निज प्रति बन्धक को
तू भी दूर भगावेगा,
मत हताश हो भारत, तेरा
फिर पहला दिन आवेगा।[2]

इस काव्य में अलंकारों का निरूपण उल्लेखनीय है। कहीं भारत को मर्यादा-सागर, कहीं दानी मानी पण्डित का उपमान देकर कवि ने रचना के सौंदर्य में अभिवृद्धि की है, जैसे —

मर्यादा-सागर नागर है
गुण-रत्नों से मण्डित है,
कृष्ण केसरी तू भू पर है
दानी, मानी, पण्डित है।[3]

सूर्य के निकलने में पृथ्वी के हँसने की संभावना कर कवि ने उत्प्रेक्षा का अच्छा समायोजन किया है —

---

१. देवदूत—पूर्व भाग, पद १२, पृ० ७।
२. वही, पद १२, पृ० ७।
३. वही, उत्तर भाग, पद ५४, पृ० ५९।

शारद-घन पश्चिम जाते थे
चलती पूर्वी वायु रही,
सूर्य उदित होता आता था
मानो हँसती रही मही ।[1]

१६ मात्राओं के छंद में ही कवि ने सम्पूर्ण काव्य की रचना की है। तुकान्त और लयात्मकता का निर्वाह निरन्तर कवि ने किया है। छन्द-भंग भी नहीं के बराबर है।

इस लघु खण्डकाव्य में उपाध्याय जी ने संवादात्मक सम्बोधन शैली को स्थान दिया है। भारतीय द्वारा बार बार दूत को सम्मति और निर्देश देने के क्रम में संवादों और सम्बोधनों का स्वरूप द्रष्टव्य है —

देवपुरी की चाल न चलना,
तुम्हें वहाँ यदि हो जीना ।[2]
देश ! समय है महाबली तुम
करो प्रतीक्षा कुछ उसकी ।[3]

कवि की आशा है, आकांक्षा है, सहज विश्वास है कि —

नहीं निरक्षर मनुज एक भी
भारत में रह जावेगा,
भिक्षुक खोजे भी न मिलेगा
ऐसा दिन भी आवेगा ।[4]

द्विवेदी युगीन उपदेशात्मक प्रवृत्ति में कहीं-कहीं कवि का अपना दृष्टि-कोण भी सामने आया है —

सच कहता हूँ समय सदा से,
सबका पलटा खाता है।
मन में यही भरोसा रखना,
जो आता सो जाता है ।[5]

---

१. देवदूत—उत्तर भाग, पद ४२, पृ० ५३।
२. वही, पूर्व भाग पद २१, पृ० १६।
३. वही, उत्तर भाग, पृ० ४२।
४. वही, पद २६, पृ० ४५।
५. वही, पद ३६, पृ० ५०।

किन्तु तत्कालीन कवियों की सामान्य प्रवृत्ति के अनुरूप उपाध्याय जी भाग्यवादी नहीं हैं —

भाग्य भरोसे क्योंकर होगा
भला मनोरथ सिद्ध कभी ।[1]

कवि की अपनी आस्था है कि भोग-विलास में संलिप्त रहना दुःख का कारण है और देश सेवा सुख का साधन। काव्य के नायक भारतीय के चित्रांकन में भी उनकी यह भावना स्पष्ट दिखलाई पड़ती है ।[2]

इस प्रकार द्विवेदी युगीन काव्य-धारा में अवगाहन करते हुए उपाध्याय जी ने अपने 'देवदूत' में न केवल राष्ट्रीयता का सशक्त संदेश ही दिया, वरन् वे खड़ी बोली के विकास में भी सहायक हुए।

**गर्भरण्डा रहस्य :**

इस काव्य में नाथूराम शर्मा 'शंकर' ने माँ के गर्भ में ही विधवा मान ली गई एक कन्या की करुण गाथा के माध्यम से समाज पर व्यंग्य किया है।

गर्भवती लीला के घर एक दिन एक ज्योतिषी आता है और उसका हाथ देखकर बताता है कि वह एक पुत्री को जन्म देगी, किन्तु वह पुत्री अपने पिता के लिए भारी है, अतः पुत्री के प्रसव के साथ वह अपने पति को खो देगी। लीला इससे बहुत उद्विग्न हो जाती है और ज्योतिषी से इस विपत्ति के निराकरण का उपाय पूछती है। धूर्त ज्योतिषी उसे एक अनुष्ठान करने को कहता है जिससे अगर गर्भ में ही उसकी कन्या विधवा हो जाय तो वह स्वयं विधवा होने से बच जायगी। ज्योतिषी यह उपाय बताता है कि एक ऐसे सद्यः जात लड़के से जो मरणासन्न हो, उदरस्थ कन्या के प्रतीक स्वरूप एक गुड़िया का विवाह करा दिया जाय। इस प्रकार लड़के के मरते ही कन्या गर्भ में ही विधवा हो जायगी। लीला ने इस प्रकार के मरणासन्न शिशु को खोजा पर वह उसे न पा सकी। ज्योतिषी ने एक सहस्र रुपये लेकर उसकी व्यवस्था करने का वायदा किया। उसके जाने पर लीला ने अपने पति को यह बात बताई। पति ने उसे ढोंग और अन्धविश्वास बताकर लीला को रोका, पर उसने आत्महत्या की धमकी दी और पति चुप हो गया। पंडित जी एक हजार रुपये ले गये और नियत समय पर एक पुड़िया लेकर आये जिसमें उनके कथन के अनुसार मरणासन्न बालक का लिंग था। एक लकड़ी के पट्ट पर वर (लिंग) और कन्या (गुड़िया) को बिठाकर विधि विधान से पंडित जी

१. देवदूत—उत्तर भाग, पद २५ पृ० ४४।
२. देवदूत—पूर्व भाग, पद २, पृ० २।

ने विवाह सम्पन्न करा दिया और फिर गुड़िया का श्रृंगार उतार कर उसकी विधवा जैसी दशा कर दी गई। यथासमय लीला के पुत्री कमला का जन्म हुआ।

जब कमला विवाह योग्य हुई तो लीला के पति ने पुत्री के विवाह के लिए अन्ध-विश्वासी लीला को बहुत समझाया पर वह विधवा पुत्री के विवाह के लिए किसी प्रकार नहीं मानी और उसका पति अपमानित और क्षुब्ध होकर घर छोड़कर चला गया।

युवती कमला काम-पीड़ित हुई और भावाकुल होकर मूर्च्छित हो गई। लीला ने सोच विचार कर कमला की दिशा-परिवर्तन करने के लिए वल्लभ सम्प्रदाय के गुरु गोकुलनाथ को ब्रज से बुलाकर कमला को दीक्षा दिला दी। गुरु की उगली पीक को चाटकर कमला ने गुरु मन्त्र पाया।

वसन्त ऋतु में कमला फिर बुरी तरह काम से पीड़ित हुई। बेटी का दिल बहलाने को लीला उसे गोकुल ले गई। होली के पर्व पर गुरु जी की कृष्ण के रूप में शिष्या रूप गोपियों से होली खेलने की लीला चली। इस बहाने अन्य चेलियों के साथ रसिया गुरु ने इस अनाघ्रात कमल पुष्प का रस लेना चाहा। गुरु जी के संकेत पर दूती कमला को जबरन खींचकर उनके पास ले गई, पर मौके पर कमला साहस करके मन्दिर में टंगी तलवार उठाकर गुरु जी पर झपटी और वे डर कर भाग गये। कमला ने अब सच्चे ईश्वर में मन रमाया। एक दिन उसने सपना देखा कि ब्रह्मर्षि उससे प्रणय-याचना कर रहे हैं, उसने कुछ शर्तें रखीं, इसी बीच उसकी आँख खुल गई। उसने देखा उसके पिता की मृत्यु का संवाद पाकर उसकी माँ रो रही है। वह भी रोने लगी। कुछ दिन बाद दोनों माँ बेटी तीर्थ यात्रा पर हरिद्वार गईं। वहाँ कुम्भ के मेले में हैजे से उसकी माँ मर गई। अकेली हो जाने पर उसने विधवाओं के सुधार का व्रत लिया और भगवद् भजन करती हुई अपने काम में जुट गई।

प्रस्तुत काव्य में कवि ने समाज की थोथी मान्यताओं, अन्ध विश्वासों और कुरीतियों पर कठोर प्रहार किया है।

भूमिका में प्रकाशक ने लिखा है—'विधवा-विवाह का प्रचार न होने से आर्य जाति की जो दुर्गति हो रही है उसे देखकर आठ-आठ आँसू रोना पड़ता है—पुरुष वृद्धावस्था तक अपने अनेक विवाह कर सकते हैं पर विधवाओं के विवाह का विचार करने मात्र से 'सनातन धर्म' की नौका डगमगाने और

बुनियाद थरथराने लगती है। विधवायें मार की मार न सहन कर गुप्त रूप से अनेक अनुचित कर्म भले ही करें पर उनके लिए विवाह की आयोजना करना घोर घृणित और महानिन्दनीय काम है।'[1] इसी में आगे प्रकाशक पुन: लिखता है—'यह कल्पित कथा पढ़ने वाले को पकड़ कर उसके हृदय को जकड़ लेती है। मूर्खा स्त्रियों को बहकाकर धूर्त लोग किस प्रकार स्वार्थ सिद्ध करते हैं—'पंडिताई' और 'पुरोहिताई' का जटिल जाल फैलाकर विवेक शून्य वंचक किस प्रकार गर्भस्थ बालक के जीवन को नष्ट भ्रष्ट कर डालते हैं—इत्यादि अनेक अद्भुत घटनाओं का रहस्योद्घाटन इस पुस्तक द्वारा बड़ी ही मार्मिकता और उत्तमता से किया गया है।'[2] भूमिका के अन्त में कवि ने कामना की है कि देश में विदुषियों का जन्म हो, सधवायें सुधरें और विधवाओं का उद्धार हो।

काव्य का आरम्भ ईश वन्दना से न हो कर कमला के इस कथन से होता है—

शंकर ! मान कुमन्त्र, जननी ने विधवा जनी।
मैं अबला परतन्त्र, विवश गर्भरण्डा बनी॥

\+ + +

मैं अपना अनुभूत अमंगल दरसाती हूँ,
उच्च कुलों पर आज अश्रु-विष बरसाती हूँ।[3]

कमला के इस स्वर में कवि ने विधवा की मर्मांतक पीड़ा को मुखरित किया है। इस रचना में अन्यत्र भी विधवाओं पर इतना कड़ा प्रतिबन्ध और निर्मम अंकुश लगाने की भर्त्सना कवि ने कमला के द्वारा करवाई है; जैसे—

विधवा-दल से बैर, ले रहे हैं खल कब का।
हम दुखियों का शाप, नाश कर देगा सबका।[4]

आदर्शपरक और उपदेशमूलक रचना होने से कोई रस उभर कर नहीं आया है, पर रति भाव प्रमुख है। कवि ने नदियों के सागर से मिलन के साथ सधवा नारी का अपने पति के प्रति प्यार को ही प्रकट नहीं किया है, अक्षत योनि विधवा के क्षोभ का भी उल्लेख किया है, यथा—

---

१. गर्भरण्डा रहस्य : नाथूराम शर्मा 'शंकर'; भूमिका, पृ० १।
२. वही, पृ० ४-५।
३. वही, पृ० १।
४. वही, पृ० ५७।

नदियाँ वेग बढ़ाय, पाय पानी जल-धर से।
मिलती हैं तज मान, प्राण-वल्लभ सागर से।
यों सधवा सुख भोग, प्यार पति पै करती हैं।
दुखिया अक्षत योनि, बाल विधवा मरती हैं ॥[1]

काव्य की भाषा खड़ी बोली है जिसमें अन्य भाषा एवं बोलियों के शब्द और क्रियापद भी आ गये हैं, जैसे—बढ़ाय, पै, सुमरी आदि। इतिवृत्तात्मक रचना होने से अलंकारों को कम स्थान मिला है। कहीं-कहीं उपमा, रूपक, यमक और अनुप्रास के दर्शन होते हैं। उदाहरणस्वरूप—'सत्य एक अखिलेश, सब ओर सपना सा है'[2] में उपमा अलंकार, 'परखा पाप प्रचण्ड प्रमादी पामरपन में'[3] में अनुप्रास एवं 'बस न करेंगे आज, तुझे बस में कर लेंगे'[4] में यमक के दर्शन किये जा सकते हैं। सोरठा आदि छन्दों का प्रयोग भी है पर अधिकांश रचना में रोला छन्द का प्रयोग ही है। मुहावरों और कहावतों के प्रयोग नहीं के बराबर हैं, फिर भी फबतियों और फटकार को अपनी वचन-वक्रता से प्रभावपूर्ण बनाकर चुभते हुए करारे व्यंगों द्वारा 'शंकर' ने तत्कालीन गद्दीधारियों और समाज के ठेकेदारों को सोचने को मजबूर कर दिया है। सहज बोधगम्यता एवं संप्रेषणीयता के साथ कवि ने व्यंग में शिष्टता और मर्यादा भी बरती है।

इस खण्डकाव्य ने बहुत स प्रश्न समाज के सम्मुख उठाये। पुरुष तो विधुर होने पर ही नहीं, एक पत्नी के रहते हुए भी दूसरा विवाह कर लेता है फिर बाल विधवा भी क्या दूसरे विवाह की हकदार नहीं? विधवा विवाह शास्त्र-सम्मत नहीं तो बिना विवाह किये गर्भ-धारण क्या शास्त्र सम्मत है? कुछ कटु सत्यों और अनुभूत वास्तविकताओं पर भी कवि ने प्रकाश डाला है, जैसे—अन्धविश्वास व्यक्ति का समस्त विवेक हर लेता है। पैसा कमाने के लिए पाखंडी ज्योतिषी भोली-भाली स्त्रियों को बरगलाते हैं, उन्हें पतन की राह पर ले जाते हैं।

इन अनेक स्थितियों और प्रश्नों को मनोवैज्ञानिक ढंग से चित्रित करते हुए कवि ने पाठकों के मर्म पर सीधी चोट की है और इन कुरीतियों और

१. गर्भरण्डा रहस्य, पृ० ११३।
२. वही, पृ० १।
३. वही, पृ० ५२।
४. वही, पृ० ६२।

कुप्रवृत्तियों के कुपरिणामों से प्रत्यक्ष करवाकर जनता को वैसा न करने की प्रेरणा दी है। अन्त में भी कवि ने यही कहा है—

पाठक ! प्यार पवित्र गर्भरण्डा पर कर लो।
कमला की ध्रुव-धर्म धीरता मन में धर लो॥
कर दो मुझे प्रसन्न, लेख से और वचन से।
कवि का आदर, मान कौन करता है धन से॥[1]

**पथिक**

पं० रामनरेश त्रिपाठी जी का 'पथिक' द्विवेदी युग का एक प्रख्यात और चर्चित खण्डकाव्य है। त्रिपाठी जी ने इसकी रचना रामेश्वरम् के समुद्र तटीय सौंदर्य से अभिभूत होकर की थी। पथिक को नायक बनाकर उसके माध्यम से अपने प्रकृति प्रेम, स्वदेश प्रेम, जाति-गौरव और दर्शन-सम्बन्धी विचारों को कवि ने अभिव्यक्ति दी है। प्राकृतिक सौंदर्य का दीवाना पथिक एक साधु के सत्संग से स्वदेश सेवा में प्रवृत्त होता है। वहाँ के अत्याचारी राजा को प्रजा के हित में कार्य करने को समझाता है। देश का भ्रमण करते हुए प्रजा को भी कर्तव्य-बोध और अन्याय के विरोध का उपदेश देता है। राजा क्रोधित होकर उसे प्राण-दण्ड देता है। उसकी पत्नी और पुत्र भी राजदण्ड के शिकार होते हैं। उसका आत्मोत्सर्ग देख प्रजा की आँखें खुलती हैं, वह राजा को पदच्युत कर देती है और पथिक की समाधि बनाकर उसे पूजती है।

द्विवेदी युगीन प्रवृत्ति के अनुरूप ही जनमानस में अत्याचार, अन्याय और अराजकता के प्रति विरोध और विद्रोह की भावना जगाना कवि का उद्देश्य है। प्रकृति प्रेम में संपृक्त अपने भावुक नायक को कवि ने इस प्रकार ढाला है कि उन्हें अपने वांछित के निरूपण में पूर्ण सफलता मिली है।

काव्य का पर्यवसान शान्त रस में हुआ है किन्तु संयोग और वियोग श्रृंगार के बहुत मर्मस्पर्शी उद्धरण 'पथिक' में हैं। करुण रस का दर्शन तब होता है, जब पथिक, उसके पुत्र एवं पत्नी का नृशंसता से वध कर दिया जाता है। कहीं-कहीं भावों में इतनी गहराई और स्वाभाविकता है कि पाठक-का मन आन्दोलित हो उठता है—

---

१. गर्भरण्डा रहस्य, पृ० ८३।

हे भगवान घास मैं होती—प्रिय उस पर पग धरते ।[1]
एक बार आओ आँखों में तुम्हें मूंद मैं लूंगी,
देखूंगी मैं फिर न और को, तुम्हें देखने दूंगी ।[2]

इसकी भाषा तत्सम शब्दावली प्रधान प्रांजल एवं परिमार्जित खड़ीबोली है जिसमें यत्रतत्र व्रज के शब्द-धाय, धरूँगा आदि भी आ गये हैं। कवि ने कुछ नये शब्द भी गढ़े हैं, जैसे लतिकालिंगित, वितरुंगा, मुकुलका, विनयिता, पागलिनी, छायाशायित आदि। ध्वनि व्यंजक, कर्णप्रिय कोमल कान्त, सामासिक पदावली कवि की विशेषता है। कुछ देशज शब्द जैसे—बूड़ना, कढ़ना, जुड़ाते, पठाऊँ, बाँच, उड़ीक, असवारी का प्रयोग भी मिलता है। कहीं एकदम बोलचाल की सीधी सरल भाषा भी है। उर्दू के शब्द जैसे हुक्म, नसीब, गुल, हौंसला आदि भी स्वाभाविक तौर पर प्रयुक्त हुए हैं। कहावतों और मुहावरों, यथा—कली खिल उठी जी की, फूले नहीं समाते, निर्भय गाल बजाते, धूल धूसरित होना, कौड़ी के मोल बिकाऊँ आदि भी सहज रूप में दिखलाई देते हैं। कहीं-कहीं मुहावरों के प्रचलित प्रयोग से हटकर भी त्रिपाठी जी ने उन्हें लिया है, जैसे आँख उठना—

सौतिन आँख प्रथम उठ आती ।[3]

अलंकार योजना उल्लेखनीय है। रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, मानवीकरण, प्रतीप आदि उस युग में प्रचलित अलंकारों में प्रयुक्त उपमानों में नवीनता है। मूर्त उपमेय के लिये अमूर्त उपमानों का अच्छा प्रयोग किया है। अनुप्रास का बाहुल्य है। प्रकृति चित्रण में कवि का मन रमा है। उसका स्वतंत्र और उद्दीपक रूप में चित्रण भी कवि ने किया है जो बहुत सजीव एवं प्रभविष्णु है। छायावाद का श्रीगणेश तो इस काव्य ने किया ही है, सुदूर रहस्यवाद का आभास भी इसमें मिलता है।

निष्कर्ष रूप में इतना कहा जा सकता है कि काव्यत्व और भावपक्ष दोनों ही दृष्टि से यह एक सफल रचना है। गाँधीवादी विचारधारा के साथ राग तत्व की सरस व्यंजना करते हुए इसने तत्कालीन समाज को नयी दिशा देने के साथ ही यह नया संदेश भी दिया—

कुंजी है इस अखिल विश्व की यह मस्तिष्क तुम्हारा ।[4]

---

१. पथिक—सर्ग ४, पृ० ४९ ।
२. पथिक—सर्ग ४, पृ० ४८ ।
३. वही, पृ० ४८ ।
४. पथिक—सर्ग २, पृ० ३५ ।

**वीर बाला**

'वीर बाला' द्विवेदी युग का एक उत्कृष्ट खण्डकाव्य है। मनुष्य के जीवन में निरन्तर उलट फेर होते रहते हैं। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अपने धैर्य साहस और प्रयत्न से मनुष्य संघर्ष करके किस प्रकार सफलता की प्राप्ति करता है, इसका एक आदर्श उदाहरण 'वीर बाला' की कथा द्वारा कवि ने प्रस्तुत किया है। एक वीर राजपूत युवक वीरेश अपनी सौतेली माँ के दुराग्रह के कारण अपने पिता राजा अजय द्वारा राज्य से निकाल दिया गया है। वह जंगल में भटक रहा था कि एक शेर सामने पड़ गया है। कनकगढ़ के राजा इन्द्रसेन की वीर पुत्री कुमारी शान्ता अचानक ही वहाँ आ निकली और उसने तीर द्वारा शेर को मारकर उसकी रक्षा की। शान्ता तथा उसकी अन्य सखियाँ बराबर ही एक राजपूत रमणी दुर्गावती से अस्त्रशस्त्र चलाने की शिक्षा लिया करती थीं, अतः शान्ता भी इस विद्या में निपुण हो गई थी। कनकगढ़ में शान्ता का स्वयंवर होने पर वीरेश भी उसमें सम्मिलित हुआ। उसने स्वयंवर की शर्त को पूरा कर दिया और दोनों का विवाह हो गया। एक दिन वीरेश शिकार खेलने गया। जंगल में एक मृग का पीछा करते-करते वह एक दुष्ट राजकुमारी के चंगुल में फँस गया। राजकुमारी ने उससे विवाह करने के लिए जबर्दस्ती की। वीरेश शान्ता को प्यार करता था अतः उससे विवाह करने के लिए मना कर दिया। इस पर दुष्ट राजकुमारी ने उसे आग में जिंदा जला देने का डर दिखाया। उसने उसके लिए चिता तैयार करवायी और वीरेश को उसमें जला देने को उद्यत हो गयी। इधर वीरेश के न लौटने पर चिन्तित हो शान्ता तपस्विनी का वेश बनाकर उसे ढूँढ़ने निकली। वह ऐन मौके पर वहाँ पहुँच गई, जहाँ दुष्ट राजकुमारी उसे जीवित चिता की भेंट करने को तैयार थी। राजकुमारी शान्ता राजकुमार के बदले स्वयं चिता में जलने को तैयार हो गई और उसने वीरेश को छुड़वा दिया। चिता में आग सुलगाई ही गई थी कि संयोगवश वीरेश के पिता राजा अजय सीबिया के यवनों से युद्ध करने जाते हुए वहाँ जा निकले। उन्होंने शान्ता को बचा लिया। वीरेश भी उस युद्ध में शामिल हुआ और यवनों से वीरतापूर्वक युद्ध करते हुए घायल होकर गिर पड़ा। शान्ता वहाँ भी पहुँच गई और उसकी सेवा-सुश्रुषा की। दोनों का मिलन हो गया। राजा अजय अपने बेटे वीरेश को और शान्ता को देख बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने वीरेश को युवराज घोषित कर दिया और पुत्र एवं पुत्रवधू शान्ता का अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक स्वागत किया।

घटना प्रधान इस काव्य में कवि ने त्याग की चरम सीमा दिखाकर प्रेम का उदात्त स्वरूप प्रस्तुत किया है। एकपत्नी-व्रत और पातिव्रत्य दोनों का उत्कर्ष वीरेश और शान्ता के माध्यम से कृतिकार ने प्रकट किया है। वीरेश जीवित जल जाने को तैयार हो गया किन्तु उसने अपनी पत्नी के रहते दूसरा विवाह करना स्वीकार नहीं किया। इसी प्रकार शान्ता ने भी अपने पति वीरेश की जान बचाने के लिए जिन्दा आग में जल जाना सहर्ष स्वीकार कर लिया। कथानक में प्रवाह और रोचकता है,पाठक का औत्सुक्य निरन्तर जाग्रत रहता है।

काव्य का आरम्भ परम्परागत ईश-वन्दना से हुआ है—

देव तुम सर्वत्र हो सब में तुम्हारा रंग है।
यह जगत सारा तुम्हारा एक छोटा अंग है॥
ध्यान जाता है जिधर तुम दृष्टि आते हो वहीं।
है अनोखी चित्रमय रचना तुम्हारी हर कहीं॥[1]

काव्य का पर्यवसान श्रृंगार में हुआ है, अतः अंगीरस भी श्रृंगार ही है। वीरेश और शान्ता के पुनर्मिलन पर कवि का यह रूप-वर्णन द्रष्टव्य है—

रुचिर दम्पती स्वीय छटा इस पर विलसाती,
पुनः मैथिली राम सदृश शोभा बन जाती।
अथवा यदुपति और रुक्मिणी की आकृति है,
नहीं नहीं कुसुमेष सहित प्यारी यह रति है।[2]

वीरेश-शान्ता की जोड़ी कवि को राम-सीता, कृष्ण-रुक्मिणी या कामदेव-रति सी प्यारी लगती है। शान्ता सिंह से वीरेश की रक्षा करती है, इस पर वीरेश का यह कथन—

राजकन्ये ! प्राण जिसने केशरी का हर लिया,
है उसी नाराच ने मेरा हृदय-वश कर लिया।
वीर बाले ! मूर्ति है अंकित तुम्हारी चित्त पर,
है नहीं यह चित्र मिटने का हृदय से जन्म भर।[3]

शान्ता के प्रति वीरेश की आसक्ति का परिचायक है और सच में अन्त समय तक जहाँ वह दुष्ट राजकुमारी द्वारा जीवित जलाया जाने वाला

---

१. वीर बाला—पहिला पद।
२. वीर बाला—आठवाँ सर्ग, पद २४, पृ० ८४।
३. वही, पहिला सर्ग, पद २८, पृ० ८।

होता है, अपनी प्रियतमा का यही चित्र उसके हृदय में रहता है जिसका साक्षी यह पद है—

> आह शान्ता के लिए इस भाँति जलना धन्य है,
> प्रेम पथ पर साथ प्रेमी तुल्य चलना धन्य है।
> प्रेम-प्रण मेरा हृदय यह टूटने देगा नहीं,
> उस समय भी शान्त शान्ता ध्यान भूलेगा नहीं।[1]

विप्रलंभ श्रृंगार की इस उक्ति में विरह की मार्मिक कचोट तो है ही, प्रेम की अपूर्व निष्ठा भी है। प्रेमी जीवित जलने को तैयार है पर अपनी प्रिया के प्रति अविश्वासी होने को नहीं। उसका यही प्यार शान्ता के हृदय में भी वियोग की पीड़ा और प्रिय की स्मृति पैदा करता है। वह कहती है-

> दूर हूँ कोसों, अलग हूँ नाथ से, प्राणेश से,
> मैं यहाँ पीड़ित, वहाँ पर नाथ होंगे क्लेश से।[2]

इस काव्य में एक स्थान पर रसाभास भी है जब दुष्ट राजकुमारी वीरेश से प्रणय निवेदन करती है। ऐसी स्त्री जो अपने प्रेमी को जिन्दा जला सकती हो, प्रेम का मूल्य क्या समझेगी, अतः जब वह कहती है—'सब निछावर है तुम्हीं पर, मम हृदय-स्वामी बनो'[3] तो रसोद्रेक न होकर रसाभास होता है।

वीर रस का परिपाक सीथिया के यवनों से युद्ध करते समय होता है। शत्रुओं के सिरों का कटकर गिरना, रुण्ड-मुण्डों से मैदान का पट जाना, खून की नदी बहना आदि दृश्य वीर रस का संचार करते हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

> सामने आया उसी का शीश झट से कट गया,
> कुछ छनों में रुण्ड मुण्डों से धरातल पट गया।
> मच गई सारे समर में इस समय थी खलबली,
> और रण की भूमि से शोणित-नदी सी बह चली।[4]

प्रकृति के भी कुछ अच्छे चित्र कवि ने दिये हैं। इसमें सूर्योदय के सौन्दर्य, शीतल पवन, पक्षियों के कलरव आदि का वर्णन है।[5]

---

१. वीर बाला—पाँचवाँ सर्ग, पद ५१, पृ० ५५।
२. वही, चौथा सर्ग, पद २२, पृ० ३९।
३. वही, पाँचवाँ सर्ग, पद ३५, पृ० ५१।
४. वही, सातवाँ सर्ग, पद १८, पृ० ७३।
५. वही, प्रथम सर्ग, पद ४, पृ० २।

'वीर बाला' काव्य खड़ी बोली में लिखा गया है। तत्सम बहुला भाषा में तद्भव और देशज शब्दों के साथ उर्दू के शब्दों का प्रयोग भी कवि ने किया है। तत्सम शब्दों जैसे कान्ति, पृथक, अघ, स्वीय, रुचिरांगी, सुभट, विपुल, अनन्य, प्रत्युपकार आदि। तद्भव शब्द जैसे नहिं, निछावर, कपूत, राज, छन आदि। ब्रज भाषा और देशज शब्द जैसे इनने, विदारे, बिलसाना सुहाना, खलवली, सोंतकर, लतपत, मेलने (डालना) आदि, उर्दू शब्द जैसे फबना, हना आदि ने मिलकर भाषा को प्रवाह दिया है। द्विवेदी युगीन प्रवृत्तिगत शब्द अहो, अहा, आह, हा, आदि के साथ ही कवि ने सम्बोधन शैली में राजकन्ये, मातृभूमि, काल-निर्दय आदि का प्रयोग कर वर्णन को कहीं-कहीं संवादात्मकता दे दी है। क्रियाओं में कहीं-कहीं नये प्रयोग किये गये हैं, जैसे आदर से आदरूँ, जन्माया, अर्प देना, स्वीकारना आदि।

छन्दों में विविधता है। कवि ने गीतिका, मालिनी, मन्दाक्रान्ता, शिखरिणी, वसन्ततिलका, दिक्‌पाल, रोला, नाराच, चौपदे आदि छन्दों का प्रसंगानुसार प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ—

चौपदा—
उसी स्नेहमय मंजु आशा लता में
लगी है कली मोहनी और प्यारी।
हृदय खोल दो, अब न अनुराग ढाँको
बनो मुग्ध प्राणेश-प्यारी कुमारी।[1]

गीतिका— नीर बुद्‌बुद् के सदृश यह लोक है, संसार है,
और पानी की लहर सा जीव का व्यवहार है।
पर मनुज भ्रम में पड़ा कुछ सोचता गुनता नहीं,
नित्य अपने को समझकर और की सुनता नहीं।[2]

मालिनी छन्द का प्रयोग द्विवेदी युगीन काव्यों में कम हुआ है, पर 'वीर बाला' में इसका काफी प्रयोग है—

तन मन धन सारा अर्प देते सदा हैं,
परहित, रुचि ही है साधुओं की विचित्रा।
व्रत दुख सह के भी पालते सर्वदा हैं,
अनुपम जग में है कीर्ति पाते पवित्रा।[3]

---

१. वीर बाला—तीसरा सर्ग, पद ५३, पृ० ३३।
२. वही, छठाँ सर्ग, पद २४, पृ० ६५।
३. वी ब्बाला—छठां सर्ग, पद ३३, पृ० ६७।

मात्रिक छन्दों में मात्राओं की पूर्ति के लिए कवि ने ह्रस्व का दीर्घ, दीर्घ का ह्रस्व स्वर कर दिया है, यथा—नहिं (नहीं), पक्षि (पक्षी), त्यागन (त्यागना), अर्प (अर्पण), टुट पड़ा (टूट पड़ा), अनूपम (अनुपम)। इसी प्रकार के अन्य भी बहुत से प्रयोग हैं।

अलंकार निरूपण में कवि का मन विशेष नहीं रमा है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, संदेह आदि सामान्य प्रचलित अलंकारों का प्रयोग ही विशेषत: कवि ने किया है। संदेह अलंकार और उपमा दोनों का एक ही उक्ति में यहाँ अच्छा प्रयोग है—

सनसनाता नाग सा निकला अनोखा वाण था,
मन्त्र पढ़ छोड़ा हुआ अथवा कहीं सप्राण था।[1]

इसी प्रकार निम्नलिखित छन्द में रूपक और उपमा का प्रयोग द्रष्टव्य है—

पर नवल मुख-चन्द्र पर कुछ व्यग्रता सी छा गई,
रवि उदय को देख जैसे कुमुदिनी सकुचा गई।[2]

प्रतीप भी अवलोकनीय है—

है कमल में वह चमक, शशि में न वह सुकुमारता
श्री युगल मिश्रित मुख श्री की अनूपम चारुता।[3]

यहाँ प्रसिद्ध उपमान शशि और कमल के मुख उपमेय के आगे उपेक्षित हो रहे हैं अतः प्रतीप अलंकार है। उपमा के कुछ सुन्दर प्रयोग मिलते हैं, यथा—

नव-वधू सी आँकती है, आड़ में रवि की किरण।[4]

साथ ही कहीं-कहीं ऐसे उपमान भी हैं जो सादृश्य धर्म का निर्वाह ठीक से नहीं करते अतः चित्र में विघ्न पड़ता है, जैसे—

प्रबल शस्त्र रिपु के, अहो ढाल पर थे,
युवक के मृदुल फूल के तुल्य पड़ते।[5]

शस्त्रों का ढाल पर पड़ना कितना भी धीमे हों, फिर भी वह फूल ढलने की भाँति कोमल होकर ढाल पर नहीं पड़ सकते।

---

१. वीर बाला—तीसरा सर्ग, पद ३६, पृ० २९।
२. वही, पद २४, पृ० २६।
३. वही, तीसरा सर्ग, पद ११, पृ० २२।
४. वही, छठाँ सर्ग, पद ४, पृ० ६०।
५. वही, सातवाँ सर्ग, पद २५, पृ० ७४।

कवि ने भाग्य और दैवयोग से अधिक अपने कर्म और बाहुबल पर जोर दिया है। एक स्थान पर वीरेश के मुख से उसने कहलाया है—

लालसा थी बाहु बल से कुछ करूँ शुभ कर्म मैं।[1]

उसने कुछ नैतिक शिक्षा भी दी है, जैसे क्रोध को तज देना चाहिए, परहित के लिए दुःख भी सह लेना चाहिए।[2]

साथ ही पत्नी के लिए पति के महत्त्व को दर्शाते समय कवि की स्वयं की धारणा स्पष्ट मुखरित हुई है—

स्वामी वही, गुरु वही, हित है, सखा है,
माली अनन्य उसके सुख की लता का।
ऐसी समान प्रिय पूजित देवता सा,
सर्वस्व है स्वपति एक पतिव्रता का।[3]

इस प्रकार वीर बाला शान्ता और वीरेश के माध्यम से उस समय संकटग्रस्त जनता को धैर्य, वीरता और देश-प्रेम और चरित्र निर्माण का उपदेश कवि ने दिया। विभिन्न छन्दों और अलंकारों के प्रयोग द्वारा हिन्दी खड़ी बोली के विकास में भी कवि का योगदान सराहनीय है।

**रसाल वन**

पं० गिरिजा दत्त शुक्ल 'गिरीश' की कृति 'रसाल वन' बाबू पुरुषोत्तम दास टण्डन की सम्मति के साथ प्रकाशित हुई। इसमें बहू पर सास-नन्द के अत्याचार की कथा है। पूर्वार्द्ध 'कालिन्दी तीर' में कवि ने विमला को वन में अकेले रोते हुए पड़े दिखाया है। अँधेरे में एक राही उससे ठोकर खाता है और उसके रोने का कारण पूछता है। इतने में बिजली चमकती है और दोनों एक दूसरे को पहिचान जाते हैं। राही विमला का पिता होता है। विमला पिता से लिपट कर रोती है।

उत्तरार्द्ध 'विपद घटा' में नलिनी और ललिता दो सखियों के संवाद द्वारा विमला पर बीती विपत्ति की पूर्व कथा को जोड़ा गया है। पिता के साथ पहिले दिन आई बहिन विमला की दुखद कहानी नलिनी अपनी सखी ललिता को सुनाती है कि किस प्रकार बेदर्दी से उसकी सास, ननद, जिठानी ने उसे मारा और सताया, फिर देवर द्वारा जंगल में यमुना के किनारे

---

१. वीर बाला—पाँचवाँ सर्ग, पद ५८, पृ० ५७।
२. वही, सातवाँ सर्ग, पद ३३, पृ० ६७।
३. वही, पृ० ८१।

छुड़वा दिया। नलिनी कहती है कि विमला की बातें सुनकर उसे ससुराल जाने से भय हो गया है।

पुस्तक में पं० श्रीधर पाठक की सम्मति भी है–'गिरीश जी कृत 'रसाल वन' नामक नूतन पद्य-प्रबन्ध-काव्य के अनेक गुणों से युक्त है। यह एक होनहार नवयुवक कवि की प्रथम रचना है जो दृढ़ आशा दिलाती है कि प्रौढ़ावस्था प्राप्त होने पर आपसे मातृभाषा की और भी प्रशंसनीय सेवा बन पड़ेगी।'

काव्य का आरम्भ प्रकृति वर्णन से होता है—

तरल तरंगवती रवितनया बहती थी कलरव करती,
शशि तारक चंचल छाया पड़ श्यामल जल में मन हरती।

सम्पूर्ण काव्य में वर्णन चित्रात्मक है, रूप वर्णन[1] बहुत सुन्दर है, किन्तु, रतिभाव रस की अवस्था तक नहीं पहुँच पाया है। इसी प्रकार विमला के कष्ट और उसे दी गई यातनाओं के विषय में सुन करुणा उमड़ती है, पर वह करुण रस का रूप नहीं ले पाती।

इसकी भाषा प्रसाद और माधुर्य गुण सम्पन्न परिष्कृत खड़ी बोली है। उर्दू और अंग्रेजी शब्दों का व्यवहार नहीं के बराबर है। संस्कृत के अनुसार विशेषण जैसे भव भीता, भाग्य-विहीना आदि मिलते हैं। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास के अतिरिक्त अपन्हुति और प्रतीप आदि अलंकारों का सुन्दर प्रयोग उल्लेखनीय है। उदाहरणस्वरूप—

अपन्हुति– अलक नहीं थे वदन-कमल पर अतिकुल ने डेरे डाले,
खंजन मद भंजन करते थे चंचल लोचन मतवाले।[2]

प्रतीप—मृदुल भुजा अवलोकन करके लज्जित तरु-शाखाएँ थीं।
तन लावण्य विलोक निराला लज्जा मान लताएँ थीं।[3]

राही के विमला से दुःखी होने का कारण पूछने में कवि की संवाद-पटुता के दर्शन होते हैं—

है तू कौन ? बता हे बाले ! आई है किस भाँति यहाँ ?[4]

इस उक्ति के लिए रूपक के प्रयोग में कवि ने जो उपमान दिये हैं, वे

---

१. रसाल वन : पं० गिरिजादत्त शुक्ल, पृ० ९, १०।

२. वही, पृ० ९।

३. वही, पृ० १०।

४. वही, पृ० ४।

एकदम नवीन और विशिष्ट हैं—'प्रश्न-मही पर गिरकर शंका-जलमय-तर्क-घड़ा फूटा'[1] प्रश्न की धरती पर गिरकर शंका से भरे जल वाले तर्क के घड़े का फूटना एकदम नया और ताजा बिम्ब देता है। इसी के साथ कहीं-कहीं एकदम सीधी-सादी बिना किसी विशेष चित्र को उभारे बात भी सामने आई है, जैसे—'क्रमशः दस बजने की बेला आई शोभन शान्ति लिए'[2] या जब कवि ने सास के झगड़ालू रूप का वर्णन किया है—'रोगों से चंगी होती थी, जब थी झगड़ा कर पाती'[3] आदि। कवि ने सर्वत्र ३० मात्रा का तुकान्त छन्द प्रयोग किया है। छन्द-भंग नहीं के बराबर है।

इस काव्य का उद्देश्य परिवारों में होने वाली सास, नन्द की ज्यादतियों को सामने लाकर बहू के प्रति सहानुभूति जगाना और सासों को ऐसा न करने के लिए उन्मुख करना है। इसी से कवि ने ऐसे वर्णन दिये हैं—

> यों ही कहती सास कराला, दीन भगिनी पर झपटी।
> चीनी पर चींटे सी, लोहू की प्यासी डायन लपटी।[4]

उपदेशात्मक और आदर्शोन्मुख इस काव्य के अन्तिम पद में कवि अबलाओं के संकट काटने की ईश्वर से प्रार्थना करता है—

> चिन्तित और विकल नलिनी के लोचन में जो जल छलका,
> और रसाल विपिन में विमला के दृग में जो जल ढलका।
> उससे भारत के सदनों में सिक्त वसन बनने वाली,
> अबलाओं के संकट काटो, विनय यही है वन माली।

इस प्रकार समाज की एक आम समस्या के निदान का प्रयास करते हुए कवि ने अपने प्रतिभा सम्पन्न काव्यत्व का परिचय दिया है। उस समय इस प्रकार की भाषा और उपमानों का प्रयोग निश्चय ही सराहनीय है।

**देव सभा**

पं० रामचरित उपाध्याय कृत 'देव सभा' में एक भारतीय का अपने देश के प्रति उत्कट प्रेम दिखाया गया है। एक बार शरद ऋतु में देवताओं की सभा जुड़ी। विष्णु सभापति बने। एक भारतीय की आत्मा ने अपने देश की महिमा का गान करते हुए उसके छूट जाने पर दुःख व्यक्त किया और पराधीन

---

१. रसालवन : पं० गिरिजादत्त शुक्ल, पृ० ४।
२. वही, पृ० ३।
३. वही, पृ० १३।
४. वही, पृ० १७।

भारत माँ के कष्ट निवारण हेतु पुनः अपने देश भारत जाने की इच्छा प्रकट की। उसने अतीत की सुखी एवं समृद्ध स्थितियों का उल्लेख करते हुए देश की वर्तमान अराजक और भ्रष्ट स्थिति का वर्णन किया। इस पर इन्द्र ने इस प्रश्न पर उस भारतीय आत्मा से सब देवताओं की राय लेने के लिए अवकाश माँगा। दूसरे दिन उसी स्थान पर फिर दूसरी बैठक हुई। इन्द्र ने स्वयं भारत जाकर उसका कष्ट दूर करने की इच्छा प्रकट की तो अन्य देवताओं ने बीस भारतीयों को वहाँ की स्थिति सुधारने के लिए वहाँ भेजने की राय दी। इन्द्र से उन्होंने अपने पार्षद भेज देने को भी कहा। इस पर भारतीय ने भारत की नौकरशाही की क्रूरता बताई। विष्णु ने भारतीय को यह कहकर कि अन्यायी का पतन शीघ्र होता है, जैसा तुम चाहोगे हम करेंगे सान्त्वना दी। भारतीय ने कहा कि भारत का हित वही करेगा जो विदेशी भाषा, भूषा आदि के चक्कर में न फंसे। विष्णु ने भारतीय को भारत के शीघ्र स्वाधीन होने की आशा दिलाते हुए फिलहाल अपने कुछ पार्षदों को भारत सुधार के लिए भेज देने का प्रस्ताव किया। भारतीय सन्तुष्ट हुआ और सभा विसर्जित हुई। इस कथा की समाप्ति के उपरान्त कवि ने चौदह पृष्ठों का आज्ञा-सर्ग परिशिष्ट के रूप में दिया है जिसमें अंग्रेजों की हुलिया बताकर विष्णु अपने पार्षदों को उन्हें डपटने और दण्ड देने की आज्ञा देते हैं।

कवि ने बिना किसी ईश-वन्दना के ऋतु-वर्णन 'वर्षा बीती सुखद शरत के समय समुज्ज्वल हुई मही' के साथ अपनी बात आरम्भ की है। कवि का उद्देश्य भारतवासियों को मिलने वाले कष्टों का उल्लेख करके उनके निवारण के उपाय करना है। उसका विचार है—

नर होकर भी, नारकीय है,
भारतीय वह रहा नहीं।
कहा न जिसने सत्य, देश के,
लिए विविध दुख सहा नहीं।[1]

इसी से उसमें आक्रोश है, पीड़ा है। भारत माँ की दुर्दशा देख, बच्चों की दयनीय हालत देख वह सिहर उठता है—

वस्त्र बिना भारत अबलाएँ, कर सकतीं स्नान नहीं।
मैले कुचैले चिथड़े से तन ढंके हुए हैं काँप रहीं।
बच्चे उनके सूख सूखकर, नंगे भूखे फिरते हैं।
अस्थि मात्र है उनके तन में, लुढ़क लुढ़क कर गिरते हैं।[2]

---

१. देव सभा : पं० रामचरित उपाध्याय, पहली बैठक, पद १७, पृ० ९।
२. देव सभा : पं० रामचरित उपाध्याय, पहली बैठक, पद ४२, पृ० २२।

कवि इस स्थिति से जनता को अवगत करा कर उसके मन में कचोट उत्पन्न कर इससे उबरने का संकल्प लेने के लिए उसे उद्यत करना चाहता है। स्पष्ट शब्दों में वह घोषणा करता है—

जो सर्वस्व निछावर कर दे, स्वयं देश-दुख हरने को।
विमुखों के मुख मर्दन कर दे, गर्दन दे जो मरने को।
धर्म कर्म के मर्म तत्व को, स्वत्व सहित जो प्राप्त करे।
भारत का हित वही करेगा, सत्त्व शठों पर व्याप्त करे।[1]

सम्पूर्ण काव्य देश-प्रेम की भावना से ओत-प्रोत है। देश-प्रेम का स्थायी भाव रति ही है अतः एक प्रकार से श्रृंगार ही इसका प्रमुख रस है। स्थान-स्थान पर भारतीय के माध्यम से कवि ने अपना देश-प्रेम सम्बन्धी उद्‌गार प्रकट किये हैं—

मेरा भारत पराधीन हो, प्रतिदिन गारत होता है।
आरत होकर तार स्वर से, दुष्टों से दुख रोता है॥

\+ \+ \+

इसीलिए है नम्र निवेदन, मुझे मिले अब छुटकारा।
दमन नीति से दबा हुआ, रोता होगा भारत प्यारा॥[2]

काव्य की भाषा सामान्य खड़ी बोली है। देशज शब्दों जैसे—टिकस, गारत आदि, मुहावरों जैसे—नाकों दम होना, आसन डोलना, दो दो हाथ करना, हठ ठानना आदि के प्रयोग कवि ने किये हैं। कुछ मुहावरों को कवि ने अपने ढंग से अपनाया है, जैसे—'टेढ़ी उँगली' के स्थान पर 'सीधी उँगली रखने से घी कभी निकल सकता है क्या'[3] या 'सच्चों के हथकड़ी पड़ी है झूठे कुरसी तोड़ रहे'[4] में रोटी तोड़ना के लहजे में कुरसी तोड़ना आदि।

अलंकार-प्रदर्शन पर कवि का ध्यान नहीं है। स्वाभाविक रूप से उपमा, रूपक, अनुप्रास आदि का समावेश कहीं-कहीं हो गया है, जैसे—

जहाँ कपट की लपट नहीं थी,
वहीं दपट है दुष्टों की।

---

१. देव सभा : पं० रामचरित उपाध्याय दूसरी बैठक, पद ५६, पृ० ६२।
२. वही, पहली बैठक, पद ९–११, पृ० ५–६।
३. वही, पहली बैठक, पद ६१, पृ० ३२।
४. वही, पद ३५, पृ० १८।

रपट रात दिन वहीं लगी है,
पुष्टों की हरमुष्टों की।[1]

यहाँ प्रथम चरण में कपट, लपट, द्वितीय, तृतीय चरण में क्रमशः दपट और रपट में 'प' और 'ट' वर्ण की आवृत्ति कई बार हुई है जो यहाँ वृत्यानुप्रास का अच्छा उदाहरण है।

काव्य में सर्वत्र तुकान्त छन्द प्रयुक्त है। पहिले चरण में १६ मात्राएँ और दूसरे चरण में १४ मात्राओं का क्रम है। छन्द-भंग बचाने में कहीं-कहीं व्याकरण की अशुद्धि हो गई है, जैसे उपर्युक्त उदाहरण में 'मैल कुचैले' में। यहाँ 'मैल कुचैले' के स्थान पर मैले-कुचैले' होना चाहिए।

इस प्रकार उपाध्याय जी ने अपनी कल्पना-सामर्थ्य द्वारा अपने वांछित को अभिव्यक्ति देकर पराधीन देश की निराश जनता में उत्साह की ज्योति जलाकर उसका पथ-निर्दिष्ट किया। खड़ी बोली के विकास में योग देते हुए काव्य के अन्त में स्वयं विष्णु भगवान से कवि ने कहलाया—

समयोचित सब कार्य, समझ कर करना होगा।
डरना यम से भी न, समर में मरना होगा।
पारिषदो! अब शीघ्र उठो, मत देर लगाओ।
भारत का उद्धार करो, भारत यश गाओ॥

**उषा काल :**

'उषा काल' आनन्दिप्रसाद श्रीवास्तव की कृति है जिसमें कवि ने दो मित्रों के बीच कुछ असामान्य घटनाओं की सर्जना कर कई दृष्टिकोणों से जीवन के विविध पहलुओं पर प्रकाश डाला है। पहिले सर्ग 'कानन' में एक नृपति और उसका अन्तरंग मित्र नरेन्द्र मृगया के लिए वन में जाते हैं। नृपति कुछ आगे निकलकर एक मृग का शिकार कर लेता है। जब राजा उसे उठाने का उपक्रम करता है तो एक सौम्य साधु आता है और निरपराध जानवर को मारने के लिए राजा की भर्त्सना करता है। राजा क्रुद्ध होकर साधु को मारने के लिए तलवार खींचता है कि नरेन्द्र आ जाता है और उसका हाथ पकड़ लेता है। इस पर अपमानित महसूस कर राजा नरेन्द्र से भिड़ जाता है। लड़ाई में नरेन्द्र का एक वार राजा की गर्दन पर पड़ता है और वह मृतप्राय हो जाता है। घबराकर नरेन्द्र साधु से जड़ी बूटी लाने को कहता है। साधु बूटी लाकर राजा के घाव पर लगाता है। राजा बच जाता

१. देव सभा : पहली बैठक पद २९, पृ० १५।

है और राज्य को लौटता है। दूसरे सर्ग 'कक्ष' में नरेन्द्र को दण्ड देने से पहिले राजा नरेन्द्र द्वारा किये गये पिछले उपकारों के विषय में सोचता है। तीसरे सर्ग 'कारागार' में बन्दी नरेन्द्र अपने मित्र राजा के कृत्य पर विचार करता है। इस मित्रता के आरम्भ से अब तक की सारी स्मृतियाँ उसे कचोटती हैं। इधर राजा नीति नियम के अनुसार अपने मित्र को प्राण-दण्ड देने पर बहुत क्षुब्ध होता है। चौथे सर्ग 'पाश-गृह' में नरेन्द्र की पत्नी राजा के इस निर्णय पर उसे बुरा भला कहती है। इस प्रतिरोधात्मक स्थिति में नरेन्द्र उसे समझाता है, पर वह नरेन्द्र के न रहने की स्थिति की कल्पना कर हृदय द्रावक विलाप करती है। फाँसी पर चढ़ने से पहिले नरेन्द्र उपस्थित समुदाय से भाव-भीनी विदा लेता है। नरेन्द्र को नियमानुसार तीन बार फाँसी के फन्दे पर चढ़ाया जाता है पर हर बार खिचते ही डोर टूट जाती है और वह नीचे बँधे जाल पर बिना चोट खाये गिर जाता है। नरेन्द्र समझ जाता है कि यह उसके मित्र की राजनियम को पालन करते हुए उसे बचाने की चाल है कि डोर कच्चे सूत से बनाई गई है। साधु नरेन्द्र की विक्षिप्त सदृश दुःखी पत्नी को लाकर नरेन्द्र से उसका पुनर्मिलन कराता है और स्वयं कहीं चला जाता है। राजा और प्रजा सन्तुष्ट और प्रसन्न होते हैं।

कथानक सुसम्बद्ध एवं प्रवाहपूर्ण है। घटना-क्रम रोचक है और निरन्तर औत्सुक्य बनाये रखता है। कवि ने दिखलाया है कि जीवन में किस प्रकार किसी आत्मीय को भी गलत काम करने से रोकने के लिए त्याग करना पड़ता है। जीवन में दुःख भी आते हैं पर दुःख के बाद सुख का, निराशा के बाद आशा का उषा-काल भी आता है।

मंगलाचरण से काव्य का शुभारंभ होता है और फिर कवि इतिवृत्तात्मक वर्णन में निमग्न हो जाता है। इसमें शृंगार और वीर रस प्रमुख हैं। नरेन्द्र की अपनी पत्नी के प्रति प्रतिबद्धता उसके रति भाव की पुष्टि करती है—

मेरे शिर पर तुम गौरव-मुकुट हो,
मेरे मन-शिथिलता-वृद्ध की लकुट हो।[1]

इसी प्रकार नरेन्द्र के लिए उसकी पत्नी का कथन—'मेरे सौख्य के समग्र साज तुमको विदा'[2] पति के प्रति उसके अनन्य प्रेम का परिचायक है। मित्र का सच्चा प्रेम भी इस काव्य में दिखलाई देता है, जब राजा के घायल हो जाने पर नरेन्द्र कहता है—

---

१. उषा काल : आनन्दि प्रसाद श्रीवास्तव, पृ० ५२।
२. वही, पृ० ५९।

प्राण ले के मेरा तुम इनको जिलाओ द्रुत,
मेरा शव, स्वस्थ तन इनका मिलाओ द्रुत।[1]

साधु को बचाने के चक्कर में दोनों की परस्पर लड़ाई में वीरत्व का दर्शन होता है, यथा—

बिज्जु की लकीरें चारों ओर मानो छाई थीं,
देह दोनों की उन्हीं के व्यूह में समाई थीं।
जिस ओर देखो उसी ओर असि आई थी,
जानें कहाँ बिम्ब, कहाँ असि की सचाई थी।[2]

नरेन्द्र फाँसी के तख्ते पर चढ़ने के पूर्व जब उपस्थित जन समुदाय, अपने बच्चे और पत्नी से चिर-विदा माँगता है तो शोक का संचार होता है, उदाहरणस्वरूप—

सारे मृदुनेत्र, सारे श्रवण विदा दो आज,
शुद्ध मेरी वासना के भवन विदा दो आज।
कोमल अधर दुग्ध रदन विदा दो आज,
सुवन सरल केलि-सदन विदा दो आज।[3]

काव्य की भाषा परिष्कृत खड़ी बोली है। देशज शब्द जैसे—चोखी, चौकड़ी, औचक, माथ, लकुट आदि का प्रयोग कवि ने किया है। उर्दू एवं अन्य भाषाओं के शब्दों का प्रयोग नहीं के बराबर है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास, सन्देह आदि अलंकारों की छटा द्रष्टव्य है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

उपमा—रन्जित घनों का दल मत्त विचरण कर,
हन्स सा उदित तारे चुनता था मोद भर।[4]

रूपक—एक दूसरे के दृग-मुकुरों में देख मुख,
करते थे प्राप्त हम दोनों ही स्वर्गीय सुख।[5]

सन्देह--चक्र ही सुदर्शन या आ गये थे दो वहाँ,
या रवि-परिधियाँ थीं विज्जु-ग्रास को वहाँ।[6]

---

१. उषा काल : आनन्दि प्रसाद श्रीवास्तव, पृ० २०।
२. वही, पृ० १६।
३. वही, पृ० ६६।
४. उषा काल, पृ० ४४।
५. वही, पृ० ४५।
६. वही, पृ० १६।

छन्द बंगला के पयार छन्द के ढंग पर प्रयुक्त किया गया है। कवि ने हिन्दी पिंगल का अनुसरण नहीं किया है। हिन्दी में कवित्त छन्द के आधे के सदृश यह छन्द चलता है जिसमें वर्णों की गणना और लय तथा मात्रा का निर्वाह होता है। यहाँ प्रत्येक चरण में समान वर्ण नहीं हैं। जहाँ अन्त में दीर्घ है वहाँ प्रत्येक चरण में १५ वर्ण हैं, जहाँ अन्त में ह्रस्व है वहाँ १६ वर्ण हैं। जैसे—

सारी चौकड़ी की उस स्थिरता में लीनता,
ग्रसे स्नेह-शशि राहु-लालसा-मलीनता।
श्याम मृति-अंक में शरीर स्वर्ण-कृत वह,
मंजु बाल-तन-शरजाल अधिकृत वह।[1]

स्थान-स्थान पर कवि की नियतिवाद, पुनर्जन्म के सिद्धान्त और परिवर्तन के प्राकृतिक नियम में आस्था प्रकट हुई है।[2] प्रथम सर्ग में 'क्या जाने भविष्यत के गर्भ में छिपा है क्या, भाग्य में लिखा है क्या या लिख के लिपा है क्या?'[3] पंक्तियों में भी कवि की भाग्यवादिता के दर्शन होते हैं। अन्तिम अंश में अपने काव्य के प्रमुख चरित्र नरेन्द्र के जीवन में आनन्द का उषाकाल दिखलाकर कवि कामना करता है—

फूलें सभी जीवन कमल यों ही सब काल,
यों ही सब जीवनों में आवे दिव्य उषाकाल।[4]

इस प्रकार इस काव्य के माध्यम से कवि ने अन्याय का प्रतिरोध, सच्ची मैत्री, राज-धर्म, अनुशासन एवं सत्य-निष्ठा का प्रतिपादन करते हुए कर्त्तव्य भावना के प्रति पाठकों को सचेष्ट किया और अपने दायित्वों के प्राणप्रण से निर्वाह की शिक्षा दी। खड़ी बोली के परिष्करण एवं प्रसार में सहायक होते हुए श्रीवास्तव जी ने छन्द में भी विशिष्ट प्रयोग किया।

**शान्ति प्रताप :**

श्री अलगूराय 'आनन्द' ने अपनी इस कृति में अपने काव्य के नायक प्रताप को सदाचारी एवं ज्ञानी के रूप में चित्रित किया है। प्रताप पद्मा के प्रेम-पाश में पड़कर विषय-वासना में लिप्त हो अपने कर्त्तव्य से विमुख हो जाते हैं। मौका देखकर उनके शत्रु उनको परास्त करने का उद्योग करते

१. उषाकाल, पृ० १३।
२. वही, पृ० ६३, पृ० ३६।
३. वही, पृ० २०।
४. वही, पृ० ६९।

हैं। उनकी अकर्मण्यता जनता में उनकी छवि को धूमिल कर देती है। अचानक वह अपनी तेजस्विता की क्षति और जनता की आक्रोशमय उपेक्षा को महसूस करते हैं और सचेत होते हैं। वे पराक्रम दिखाते हैं, शत्रुओं को परास्त करते हैं और अन्त में अपनी पत्नी शान्ति को पुनः प्राप्त करते हैं।

अविद्या अथवा मायाजन्य भोगवाद से मानव को मुक्ति दिलाना ही कवि का उद्देश्य है। कवि ने स्वयं भी भूमिका में कहा है—'इसी कथा भाग से उपरोक्त विषय का निदर्शन यहाँ किया गया है जिसमें स्थल-स्थल पर आवश्यकतानुसार राजनीतिक, सामाजिक एवं अन्य विषय आ गये हैं।' साथ ही कवि ने कवियों और लेखकों को आर्थिक विपन्नता से बचाने के लिए प्रयास करने का संकेत भी भूमिका में यह लिखकर किया है कि 'कविता-कर्म दुरूह है और पूर्ण हार्दिक स्वच्छन्दता एवं स्वतन्त्रता की अपेक्षा रखता है। भूखे पेट पराधीनता में हृदय की तन्त्री बज नहीं सकती यह निश्चित है और यही कारण है कि इस श्वेत-युग ने लेखकों में मौलिकता का अभाव कर दिया है।'

काव्य के मुख पृष्ठ पर संस्कृत में लिखा है—'सशान्तिमाप्नोति न काम-कामी'—इसी के अनुसार काव्य का नायक कर्त्तव्य का पालन करके ही शान्ति को प्राप्त करता है। इसका प्रमुख रस श्रृंगार है, सहयोगी वीर है। लोक संस्कृति, लोक भाव एवं लोक भाषा का गहरा पुट इस काव्य की विशेषता है। लोक-जीवन से प्रभाव ग्रहण करने के कारण कविता में एक विशिष्ट सोंधापन आ गया है—

गैया बन बन चरैं संग लगि लैरू सोहैं।
बछरू बाँ बाँ करैं ठमकि द्रुति भजि मन मोहैं।
पुलकित गोती करति, हुँकरि चल दृग लगहरिया।
चाटति बछरहिं उमँगि, न छटकति लखति तिहरिया।[1]

इस काव्य में कहीं ब्रजभाषा की प्रमुखता है और कहीं खड़ी बोली की। लगता है कवि का दोनों भाषाओं पर अधिकार है। उदाहरण के लिए—

कोउ बमेठी भाँजि, आपनी कला दिखावहिं,
कोउ उँड़ारी मारि, बालकहिं हँसत लोकावहिं।[2]

इस उद्धरण में ब्रजभाषा की प्रमुखता है और निम्नलिखित दृष्टान्त में—

प्रकृष्टता भाव भरी हुई कथा
सुवीरता शोभन-चातुरी हरी।

---

१. शान्ति प्रताप : अलगूराय 'आनन्द', प्रथम सर्ग, पद ४६, पृ० ४७।
२. वही, पद ५२।

प्रताप की भावुकता ठगी हुई
अतीव पद्मा उसमें विलीन थी।[1]

खड़ी बोली की प्रमुखता है। इतना ही नहीं संस्कृतनिष्ठ पदावली का भी सौष्ठव इस काव्य में है। यथा—

व्यतीत मेघ पावसा अकासशोभ निर्मलं।
विनष्ट धूम्र अग्नि कै नियुक्त मोह मानसं।[2]

इन छन्दों को पढ़ते-पढ़ते बरबस हरिऔध जी का स्मरण हो आता है। अतुकान्त छन्दों और संस्कृत-निष्ठ छन्दों में उनकी झलक स्पष्ट मिलती है। छन्दों में विविधता दिखलाई देती है। पहिले सर्ग में रोला मात्रिक छन्द का, दूसरे सर्ग में वर्णिक वृत्त भुजंग प्रयात का प्रयोग कवि ने किया है, उदाहरण-स्वरूप दूसरे सर्ग से एक छन्द प्रस्तुत है—

प्रजापालिनी वृत्ति को देखि को है
नहीं जासु को चित्त आनन्द मोहै।

तीसरे सर्ग में अतुकान्त छन्द को अपनाकर कवि ने पुरातन के साथ नूतन का संगम किया है।

सम्पूर्ण काव्य में कवि की दृष्टि नैतिकतावादी ही है। पत्नी को छोड़ प्रेमिका पद्मा के साथ रहने में प्रताप को सामाजिक उपेक्षा और निरादर सहना पड़ता है। वह अपने दायित्व और कर्त्तव्य तक को भूल जाते हैं और अन्त में पद्मा से अलग होने पर ही वे शत्रुओं को पराजित कर के पुनः अपनी पत्नी शान्ति को प्राप्त करते हैं।

इस प्रकार यह काव्य आदर्शोन्मुख और उपदेशात्मक तो है ही अभिव्यंजना कौशल की दृष्टि से भी उल्लेखनीय है।

इस प्रकार इन काल्पनिक खण्डकाव्यों ने भी देश में राष्ट्रीय चेतना जगाने एवं कुरीतियों के निराकरण में योग दिया। कल्पित चरित्रों के सशक्त एवं मार्मिक चित्रण ने पाठकों के मन को झकझोरा जिससे न केवल स्वदेश पर मर मिटने वाले युवकों की टोलियाँ तैयार हुईं, सामाजिक बुराइयों जैसे—विधवा विवाह, अछूत-प्रथा, अनमेल विवाह, कुली-प्रथा और शोषण के विरुद्ध भी एक जमात खड़ी हो गई। इन खण्डकाव्यों की यह भी विशेषता है कि ये खड़ीबोली में ही लिखे गये। इस प्रकार खड़ी बोली के परिष्कार और विकास में भी इन काव्यों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। ●

१. शान्ति प्रताप—तृतीय सर्ग, पद १।
२. वही, पंचम सर्ग, पद २।

सप्तम अध्याय

# निर्बन्ध खण्ड-काव्य

इस युग में कुछ ऐसे खण्डकाव्य लिखे गये हैं जिनके कथा-सूत्र अत्यन्त क्षीण हैं। खण्डकाव्य में कथानक कवि की उद्देश्य सिद्धि का एक महत्त्वपूर्ण साधन होता है और वह अभीष्ट प्रभाव की सृष्टि में सहायक होता है, किन्तु इन काव्यों में कथा-सूत्र का उपयोग केवल भावात्मक प्रसंग-सृष्टि के माध्यम के रूप में किया गया है। खण्डकाव्य के प्रबन्ध में जैसी सुसम्बद्धता, एक-सूत्रता और अखण्डता अपेक्षित है, उसका इन काव्यों में अभाव है। इनमें प्रबन्ध और मुक्तक दोनों के गुणों का समन्वय एवं समाहार है। अतः ऐसे काव्यों को जिनका कथा-सूत्र बँधा हुआ या सुगुम्फित नहीं है, पर जिनमें खण्डकाव्य के अन्य गुण विद्यमान हैं, निर्बन्ध खण्डकाव्य की संज्ञा दी जा सकती है। इनमें से कुछ काव्य जैसे—ग्रन्थि, उद्धव-शतक आदि काव्यत्व की दृष्टि से अत्यन्त उत्कृष्ट हैं। इसमें छन्द कथा-सूत्र में बँधे होने पर भी बहुत कुछ स्वच्छन्द और रस निर्भर हैं। द्विवेदी-युगीन खण्डकाव्यों पर विचार करते समय इन पर विचार न करना असंगत होगा, अतः इस अध्याय में ऐसे उपलब्ध खण्डकाव्यों पर संक्षेप में विचार किया जा रहा है।

**दयानन्द दिग्दर्शन :**

इस काव्य के रचयिता श्री नारायण प्रसाद बेताब 'कल्पित' हैं। इसमें चार मुसद्दसों में स्वामी दयानन्द का चरित्र वर्णित है। कथानक में क्रम-बद्धता और तारतम्य नहीं है। पूरा काव्य कवि ने तकासव मुसम्मत सालिक और हज़ज मुसम्मत सालिक में लिखा है। पहले मुसद्दस में स्वामी दयानन्द को मूर्ति पूजा पर अविश्वास होने का कारण कवि ने ३१ बहरों में तकासव में लिखा है। तकासव और भुजंग प्रयात छन्द की ध्वनि एक है। उदाहरणार्थ—

किया उसने झूंठा चढ़ावा वह सारा,
दिया ताव मूंछों पै और यह पुकारा,
करे तो कोई बाल बांका हमारा,
महादेव सुनते रहे दम न मारा।

यकीं था मगर मूलशंकर के दिल में,
कि जिन्दा न जायेगा चूहा यह बिल में।[1]

महर्षि दयानन्द का चरितांश मुसद्दसों में लिखा गया है, अतः 'ऋषि', 'मुनि' शब्द का प्रयोग बार-बार आना स्वाभाविक है। हज़ज सुसम्मत सालिक और कुलाधारी का दूना ये समान ध्वनि वाले छन्द हैं। मुसद्दस २ में कुल ३२ बहर हैं। यह अक्टूबर १९१३ में लिखा गया, इसमें स्वामी जी का समावर्तन संस्कार वर्णित है। मुसद्दस ३ अक्टूबर १९१५ में लिखा गया, इसका शीर्षक 'ऋषि की जिन्दगी बख्श मौत' है जो ३४ बहरों में लिखा गया है। मुसद्दस ४ में २१ बहर हैं, इसका शीर्षक है—'शास्त्र और शस्त्र दोनों बस में हैं।'

इस काव्य की भाषा उर्दू मिश्रित खड़ी बोली है। अभिव्यक्ति पक्ष शिथिल है, पर मुसम्मतों में अपनी रफ्तार है।

**द्रौपदी चीरहरण और आल्हा**

यह काव्य पण्डित लोधेश्वर त्रिपाठी द्वारा रचा गया है। इसका मुद्रण लीडर प्रेस प्रयाग से सन् १९१४ ई० में हुआ। इसका कथानक महाभारत से लिया गया है। द्रौपदी चीरहरण का ख्यात प्रसंग इसकी कथावस्तु का उपजीव्य है। जैसा कि नाम से ही विदित होता है, इसमें कथा पर कम उसकी आल्हा पद्धति पर विशेष जोर दिया गया है, इसीलिए इसमें कथावस्तु के तारतम्य के उस सुसंगठन का निर्वाह नहीं हो पाया है जो एक सफल खण्ड-काव्य के लिए अपेक्षित होता है। आल्हा के साथ इसमें कुंडलियों का प्रयोग भी कवि ने किया है। भाषा खड़ी बोली है जिसमें ब्रज भाषा के शब्द और क्रियापद आये हैं। इसे पढ़ते-पढ़ते पाठक उत्साह और जोश से भर उठता है। आल्हा पद्धति में लिखे गये इतिवृत्तात्मक काव्यों में इसका स्थान उल्लेखनीय है। उदाहरण के लिए इसके निम्नलिखित दो पद प्रस्तुत हैं—

जबै युधिष्ठिर पासा लीन्हा बाजी लिखैं मुसद्दी लागि।
हारि जीति तब को चूको ना अैसे बचन कही अनुरागि॥
पहली बाजी माँ लिख दीन्हों सगरो कोस धर्म के राज।
लीन्हा पासा जब हाथे में असगुन देखि परो सिरताज॥[2]

**महात्मा गौतम बुद्ध**

इस काव्य के कृतिकार श्री शंकरशरण गुप्त हैं जिन्होंने आरम्भ में ईश-

---

१. दयानन्द दिग्दर्शन, पद ७, पृ० ६।
२. द्रौपदी चीरहरण और आल्हा, पद ७३, ७४, पृ० ७।

वन्दना 'निराकार साकार, रमत चराचर में सदा, ईश्वर वेदागार, माँगहुँ शरणागत प्रभू'[1] देकर भगवान बुद्ध के जीवन की प्रमुख घटनाओं को काव्य-बद्ध किया है। इसका प्रकाशन संवत् १९७२ वि० में श्री सिद्ध गोपाल शुक्ल हिन्दी ग्रंथ भण्डार कार्यालय, कोसवाँ, कानपुर द्वारा हुआ। इसमें कुल १५ पृष्ठ और ५८ पद हैं। शुरू के पदों में विश्रृंखलित कथा खण्ड है। ५३ से ५६ पद तक कर्मसार है। ५७वें और ५८वें पद में जीव की मुक्ति का उपदेश है। भाषा अपरिष्कृत खड़ी बोली है। व्याकरण की त्रुटियाँ हैं। काव्यत्व की दृष्टि से कमजोर काव्य है। इतिवृत्त मात्र है। उदाहरण के लिए निम्न-लिखित पद लिया जा सकता है—

सुन्दर बसन अपने उसे कर से उठा के दे दिया।
और उसके वस्त्र बदले में पुराने ले लिया॥
पहन के वे वस्त्र गौतम भेष योगी बन गये।
दास को समझाय के निज पुर विदा करते भये॥[2]

**कृषक-क्रन्दन**

इसके रचयिता पं० गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' हैं। इसका प्रथम संस्करण संवत् १९७३ वि० में श्री शिवनारायण मिश्र, प्रताप पुस्तकालय, कानपुर द्वारा प्रकाशित हुआ और मुद्रण श्री राम किशोर गुप्त, साहित्य प्रेस, चिरगाँव (झाँसी) से हुआ। इसमें एक दुःखी किसान के जीवन की घटनाओं को कवि ने कथा सूत्र में पिरोया है। यह कथा-सूत्र श्रृंखलाबद्ध और सुसंगठित नहीं है। बेबस और अभावग्रस्त कृषक के जीवन की ये घटनायें 'कृषक क्रन्दन', 'आर्तकृषक' और 'दुखिया किसान' इन तीन शीर्षकों में समाविष्ट हैं।

**महाराजा रूप सिंह**

'महाराजा रूप सिंह' काव्य के लेखक, सम्पादक और प्रकाशक तीनों पं० रामदीन पाराशर, किशनगढ़ (राजस्थान) हैं। संवत् १९७४ वि० में स्टैंडर्ड प्रेस, रामनाथ भवन, इलाहाबाद से मुद्रित हुआ। यह १४ पृष्ठीय निबन्ध खण्ड-काव्य राजपूताने के इतिहास पर आधारित है। बलहठ बंका देवड़ा, रण बंका राठौर महाराजा रूपसिंह कृष्णगढ़ के राजकुल में जन्मे एक अत्यन्त वीर एवं प्रतिभाशाली राजा थे, जिन्होंने सत्य का पक्ष लेकर औरंगजेब और दारा की लड़ाई में दाराशिकोह का साथ दिया। रूपसिंह जी

१. महात्मा गौतम बुद्ध, छन्द १, पृ० १।
२. महातमा गौतम बुद्ध, पद ३३, पृ० ८।

मौजा राजपुरा की लड़ाई में औरंगजेब के हाथी के हौदे का रस्सा काटते हुए वीर गति को प्राप्त हो गये। इस काव्य में राजा रूपसिंह के यश और वीरता को प्रदर्शित करने के लिए उनके जीवन की कुछ उल्लेखनीय घटनाओं को कवि ने काव्य में बाँधा है। कथावस्तु में सहज तारतम्य नहीं है, कहीं-कहीं तो रूपसिंह से कोई बात कहलवाते हुए बीच में ही कवि स्वयं सम्पुट की तरह अपनी पंक्तियाँ 'क्या क्या बड़ाई हम करें' दुहराना आरम्भ कर देता है। कुछ पद विरदावली के रूप में प्रस्तुत किये गये लगते हैं। हर पद के बाद आरम्भ की दो पंक्तियों को टेक के रूप में दोहराया गया है। उदाहरणस्वरूप—

क्या क्या बड़ाई हम करें नृप रूप सिंह की,
देती गवाही आज भी तारीख हिन्द की,
इस शेर दिल की जीवनी है बहुत ही बड़ी,
उसमें की चन्द बातें सुनाते हैं इस घड़ी,
तबिअत जु आप लोगों की पढ़ने में कुछ लड़ी,
छेड़ेंगे तो फिर और भी इक दासताँ बड़ी,
क्या क्या बड़ाई हम करें नृप रूपसिंह की,
देती बड़ाई आज भी तारीख हिन्द की।[1]

इसकी भाषा उर्दू बहुला देवनागरी है जिसमें तद्भव और प्रचलित बोलियों के शब्द भी आ गये हैं, जैसे—

दुख दर्द पूछने दोऊ जाते पिदर के पास,
मुल्को दिरम खजाने की रखते नहीं हम आस।[2]

इसके पद वीर रस प्रधान हैं। उदाहरण के लिए युद्ध भूमि में रूपसिंह का यह कथन लिया जा सकता है—

तो आज की लड़ाई में वह सबको बता दो,
रण बाँकुड़ा राठौर यह प्रत्यक्ष दिखा दो।
यवनों को मारकाट अभी रण से भगा दो,
वीरों की तरह या यहीं सर अपना कटा दो॥
क्या क्या बड़ाई हम करें नृप रूपसिंह की,
देती गवाही आज भी तारीख हिन्द की।[3]

---

१. महाराजा रूपसिंह, पृ० १।
२. वही, पृ० ६।
३. महाराजा रूपसिंह, पृ० १०।

इस काव्य के चौराहे-चौराहे गाये जा सकने वाले पदों ने उस समय की परिस्थितियों में जन-जागृति लाने में योग दिया।

**मातृ वन्दना**

पं० ईश्वर प्रसाद शर्मा कृत यह काव्य सात 'दर्शन' में विभक्त है। इसका प्रकाशन संवत् १९७६ वि० में हुआ। इसमें भारत माता के सपूतों का उल्लेख किया गया है। कथा-सूत्र विश्रृंखल है। इसमें वर्णित सभी चरित्र माता की वन्दना करते हैं। इसका मूल स्वर राष्ट्रीयता है, उदाहरणार्थ—

करो मिल मातृभूमि गुणगान।
सम्मिलित हों सातों जाती,
क्या मदरासी क्या गुजराती,
यू० पी०, पंजाबी, बंगाली माता की सन्तान।
बौद्ध, सिक्ख, मुस्लिम, ईसाई,
हिन्दू, जैन, पारसी भाई,
मातृभक्त बन हो माता के सब सच्चे अभिमान।[1]

इसकी भाषा खड़ी बोली है। काव्यत्व की दृष्टि से शिथिल रचना है। इस लघु कृति द्वारा कवि ने देशवासियों में स्वदेश-प्रेम भरने की चेष्टा की है। अन्त में कवि ने लिखा है—

अपने तन से, मन से, धन से
और नहीं तो प्राण पवन से
जननी जन्म भूमि को कर दो, रुचिकर स्वर्ग प्रधान।[2]

**ग्रन्थि**

निर्बन्ध खण्डकाव्यों के अन्तर्गत उल्लेखनीय रचना 'ग्रन्थि' के रचयिता श्री सुमित्रानन्दन पन्त हैं। इस पुस्तक का प्रकाशन इण्डियन प्रेस लि० प्रयाग ने किया है। इस कृति का प्रथम संस्करण यद्यपि सन् १९२९ में निकला, किन्तु जैसा लेखक ने स्वयं अपनी पुस्तक के आरम्भ में विज्ञापन में लिखा है—'ग्रन्थि मैंने सन् १९२० के जनवरी मास में लिखी थी—उच्छ्वास की तरह इसका कथा-भाग भी बहुत थोड़ा है पर शायद स्पष्ट उससे अधिक.......' इसका लेखन काल सन् १९२० ई० है। ४६ पृष्ठीय, ४ सर्गीय इस काव्य में

१. मातृ वन्दना, दर्शन ७, पद ३।
२. मातृ वन्दना, दर्शन ७, पद ३२।

कथा बस इतनी है कि एक संध्या नायक की नाव ताल में डूब गई–जब वह होश में आया तो उसने अपने को एक सुमुखि की गोद में लेटा पाया। दोनों तरफ से प्यार प्रकट हुआ, पर उस षोडषी बालिका की परिणय-ग्रन्थि किसी और युवक से बाँध दी गई–नायक विरहाग्नि में दग्ध होता रहा। कथा तत्त्व की इसी सूक्ष्मता के कारण यह काव्य खण्ड-काव्य का आभास तो देता है पर शास्त्रीय खण्डकाव्य की कोटि में नहीं आता।

कथा के छोटे से कलेवर में भी कवि ने भावना को इतना विस्तार दिया है कि पाठक अभिभूत हो जाता है। अजस्र भाव-धारा, प्रवाहपूर्ण मर्मस्पर्शी शैली और प्रेमी की विरह-जन्य अकृत्रिम कचोट की सहज अभिव्यक्ति पाठक का मन बाँध लेती है।

प्रांजल और परिष्कृत खड़ी बोली युक्त अतुकान्त पदावली में रचित पन्त का यह काव्य द्विवेदी-युग में अपना अलग वैशिष्ट्य रखता है। परिमार्जित शब्द चयन, ध्वन्यात्मकता, संगीतात्मकता एवं सुकुमारता के साथ प्रथम पुरुष की आत्मकथात्मक शैली में किया गया वर्णन कवि और पाठक के बीच की दूरी को जैसे मिटा देता है। प्रथम सर्ग के प्रथम पद में ही भाषा का लालित्य एवं भावों की उदात्तता द्रष्टव्य है—

तरणि के ही संग तरल तरंग से,
तरणि डूबी थी हमारी ताल में,
सान्ध्य-निःस्वन से गहन जल-गर्भ में,
था हमारा विश्व तन्मय हो गया।[1]

पन्त की बिम्ब योजना और चित्रोपमता अवलोकनीय है, यथा—

इन्दु पर, उस इन्दुमुख पर, साथ ही,
थे पड़े मेरे नयन, जो उदय से,
लाज से रक्तिम हुए थे, पूर्व को,
पूर्व था, पर वह द्वितीय अपूर्व था।[2]

उपदेशोन्मुख इतिवृत्तात्मक के उस काल में स्वानुभूतिपरक शुद्ध प्रेम को लेकर लिखी गयी यह रचना काव्यत्व की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है। अनुभूति की गहराई के साथ अभिव्यक्ति की सम्पन्नता 'ग्रन्थि' को द्विवेदी-युगीन उत्कृष्टतम निर्बन्ध खण्डकाव्य की श्रेणी में ला खड़ा करती है। इसमें प्रयुक्त

---

१. ग्रन्थि–सर्ग १ (एक बार), पृ० ३।
२. वही, पृ० ५।

अलंकार मात्र शोभा नहीं बनते, माधुर्य-वर्षण भी करते हैं। पन्त जी ने अनुप्रास, यमक, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अन्योक्ति, दृष्टान्त आदि का अच्छा प्रयोग किया है। यथा—

अनुप्रास—मधुप बाला का मधुर मधु मुग्ध राग,
पद्म-दल में सम्पुटित था हो चुका।[1]

रूपक— कुटिल भावी के अंधेरे कूप में
और कितने हैं अभी आँसू छिपे-
छलकती आँखें उन्हें प्रिय ! फिर कभी
भेंट देंगी कर-कमल में आपके।[2]

उपमा— जब अचानक अनिल की छवि में पला
एक जल-कण, जलद-शिशु सा, पलक पर
आ पड़ा सुकुमारता सा, गान-सा,
चाह-सा, सुधि-सा, सगुन-सा, स्वप्न-सा।[3]

प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने एक साकार वस्तु स्वरूप जल-कण के लिए निराकार अनुभूति स्वरूप उपमानों की माला सजा दी है जो उस एक बूंद आँसू की महत्ता को बहुत बढ़ा देती है।

उपसर्ग और प्रत्यय प्रयुक्त करने की द्विवेदी युगीन परिपाटी से ग्रन्थि का कवि भी अछूता नहीं रहा है। अहह, हा आदि का प्रयोग 'ग्रन्थि' में भी मिलता है। कवि ने अतुकान्त काव्य शैली का प्रयोग किया है, पर कवि स्वयं उससे तुष्ट नहीं है, जैसा कि आरम्भ में विज्ञापन में पन्त जी ने स्वयं लिखा है—'छन्द तुकान्त नहीं हैं। अतुकान्त का सौन्दर्य स्वरूप तब मेरे हृदय में प्रस्फुटित नहीं हो पाया था, अपने साहित्य में उन दिनों जैसा ढंग प्रचलित था, उसी के अनुरूप मैंने भी किसी तरह अपनी इस कहानी को यह बेतुका लिबास पहना दिया। पर हिन्दी में बड़ी ही मनोहर तथा परिपूर्ण प्रास हीन सृष्टि हो सकती है।'[4] कवि के अतुकान्त में प्रवाह है, निरन्तरता है, प्रायः हर पंक्ति में उन्नीस मात्राओं में एक सुनिश्चित गति है, यथा—

---

१. ग्रन्थि–सर्ग १, पृ० ४।
२. वही, सर्ग ४, पृ० ४६।
३. वही, सर्ग २, पृ० १९।
४. ग्रन्थि–आरम्भ का विज्ञापन, पृ० १।

चपल पलकों में छिपे सौन्दर्य के
सहज दब कर, हृदय मादकता मिली
गुदगुदी के स्निग्ध-पुलकित-स्पर्श को
समुत्सुक होने लगा था प्रतिदिवस ।[१]

किस सहजता से कवि ने अपने आपको खोलकर रख दिया है, अतुकान्त होते हुए भी गीतितत्त्व की झंकृति इसमें अन्तर्हित है। अपने 'ग्रन्थि' काव्य के माध्यम से पन्त के कवि ने अपने स्वानुभूत प्रेम के संयोग, वियोग और चिरन्तन अनुभूतियों के रागात्मक तत्व को अभिव्यक्त किया है, यथा नायक का कथन—

प्रेमकण्टक से अचानक विद्ध हो
जो सुमन तरु से विलग है हो चुका,
निज दया से द्रवित उर में स्थान दे
क्या न सरस-विकाश दोगी तुम उसे ?[२]

और फिर नायिका का उत्तर—

नाथ ! कह अतिशय मधुरता से दबे,
सरस स्वर में सुमुखि थी सकुचा गई।
उस अनूठे-सूत्र ही में हृदय के,
भाव सारे भर दिये ताबीज से।[३]

इसमें गहरी भावानुभूति के साथ-साथ सूक्ष्म कल्पना का योग भी है। द्विवेदी युग की समकालीनता को जीते हुए भी कवि का तत्त्व बोध और प्रातिभ दृष्टि बहुत दूरगामी है। 'ग्रन्थि' में कहीं-कहीं छायावाद ही नहीं सुदूर रहस्यवाद तक की झलक उपलब्ध है, यथा—

कौन सी ऐसी परम वह वस्तु है
भटकते हैं मनुज-गण जिसके लिए ?
कौन सा ऐसा चरम-सौन्दर्य है
खींचता है जो जगत के हृदय को ?[४]

समकालीन कवियों का भी अप्रत्यक्ष रूप से अनायास ही कवि की लेखनी

---

१. ग्रन्थि सर्ग ३, पृ० २७।
२. वही, सर्ग १, पृ० ७।
३. वही, सर्ग १, पृ० ७।
४. वही, सर्ग ४, पृ० ४०।

पर प्रभाव पड़ा है जिसमें एकाध स्थान पर तो यह छाया इतनी गहरी है कि आभास होता है, सामने 'हरिऔध' का 'प्रियप्रवास' आ गया हो, जैसे—

विरहिणी की कल्पना कर, एक दिन
एक पीले-पात में अपनी दशा
विविध यत्नों से सुलाकर, मैं उसे
बार बार लगा चुकी हूँ हृदय से।[1]

प्रेम वंचित निराश नायक की उक्ति से कवि की नियतिवादी धारणा भी स्थान-स्थान पर प्रस्फुटित हुई है, यथा—

नियति ! तुम निर्दोष और अछूत हो,
सहज हो सुकुमार, चकई का तुम्हें,
खेल अति प्रिय है, सतत कृश-सूत्र से,
तुम फिराती हो जगत को समय-सा।[2]

इसी प्रकार से प्रेम और प्रेमियों के प्रति अश्रु और आशा आदि के प्रति कवि ने अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है।

रचना का शीर्षक 'ग्रन्थि' भी सार्थक है, एक स्थान पर कवि ने लिखा है—

हाय ! मेरे सामने ही प्रणय का
ग्रन्थि-बन्धन हो गया, वह नव कमल
मधुप सा मेरा हृदय लेकर किसी
अन्य मानस का विभूषण हो गया।[3]

विवशता-जन्य विषाद की यह निराशाजनक स्थिति पाठक की सहानुभूति जीत लेती है। नायक ने जिससे प्यार किया, उसकी गाँठ किसी दूसरे के साथ बँध गई और वह एकाकी रह गया।

प्रेमपरक इस काव्य का अंगी रस शृंगार है। राग तत्त्व से आरम्भ होकर पर्यवसान भी उसी में होता है। आदि से अन्त तक संयोग और वियोग जनित अनुभूति के अनेक हृदयग्राही बन्ध बरबस ही पाठक को सिहरा देते हैं। रति भाव में विभोर पाठक रससिक्त हो उठता है। संयोग शृंगार के कुछ चित्र, जैसे—

---

१. ग्रन्थि सर्ग २, पृ० २१।
२. वही, सर्ग ३, पृ० ३४।
३. वही, सर्ग ३, पृ० ३०।

शीश रख मेरा सुकोमल-जाँघ पर
शशि-कला सी एक बाला व्यग्र हो,
देखती थी म्लान-मुख मेरा, अचल
सदय, भीरु, अधीर, चिन्तित दृष्टि से।[1]

निज पलक, मेरी विकलता साथ ही,
अवनि से, उर से मृगेक्षणि ने उठा,
एक पल, निज स्नेह श्यामल दृष्टि से,
स्निग्ध कर दी दृष्टि मेरी दीप-सी।[2]

पाठक का मुग्ध मन यथार्थ और कल्पना जनित रस तरंगों में डूब जाता है। आँखों में चित्र तैरता है और अन्तर में रसानुभूति, यही काव्य की सफलता है। नायिका की विवाह-ग्रन्थि दूसरे युवक से जुड़ जाने पर विरह-विदग्ध नायक अपनी पीड़ा की प्रतिच्छाया प्रकृति में देखता है, यह एक सार्वजनीन, सार्वकालिक अनुभूत सत्य है जिसे बड़ी सफलता से पन्त जी ने अपनी रचना में उतारा है। उदाहरणार्थ—

ओस-जल से सजल मेरे अश्रु हैं,
पलक-दल में डूब के बिखरे पड़े।
पवन पीले पात में मेरा विरह,
है खिलाता दलित मुरझे फूल-सा।[3]

वियोग-व्यथित कवि अवसाद और निराशा के गर्त में आकर डूबा है, उसे लगता है कि भविष्य में भी उसे अभी बहुत कुछ सहना है और इसी से अन्तिम पद में उसकी लेखनी मुखर हो उठती है कि—

कुटिल-भावी के अंधेरे-कूप में
और कितने हैं अभी आँसू छिपे—
छलकती-आँखें उन्हें प्रिय ! फिर कभी
भेंट देंगी कर-कमल में आपके।[4]

कवि का कथन इतना सहज और सशक्त है कि तुरन्त संप्रेषित होता है

१. ग्रन्थि—सर्ग १, पृ० ४।
२. वही, सर्ग १, पृ० ९।
३. वही, सर्ग ४, पृ० ४३।
४. वही, सर्ग ४, पृ० ४६।

और स्वाभाविक रूप में पाठक की मनःस्थिति से साधारणीकरण कर श्रृंगार रस की निष्पत्ति करता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट ह कि पन्त जी की 'ग्रन्थि' एक ओर द्विवेदी-युगीन परम्पराओं से जुड़ी है और दूसरी ओर आगामी छायावादी प्रवृत्तियों का स्पर्श भी करती है। अपनी विचारधारा, संदेश और विशिष्ट काव्य-वैभव-सिद्ध यह रचना द्विवेदी युग की उल्लेखनीय कृति है।

**उद्धव-शतक :**

'उद्धव-शतक' जगन्नाथदास रत्नाकर कृत अत्यन्त प्रसिद्ध और बहुचर्चित काव्य है। विभिन्न ग्रन्थों और लेखों में अनेक आलोचकों द्वारा इसके काव्य-सौन्दर्य पर विचार किया गया है। अतः यहाँ संक्षेप में उल्लेख्य कुछ बातों तक ही सीमित रहकर इस काव्य पर विचार किया जा रहा है। यह काव्य कृष्ण और गोपियों के प्रेम सम्बन्धी प्रसिद्ध पौराणिक प्रसंग पर आधृत है, अन्य कृष्ण काव्यों की तरह श्रीमद्भागवत ही इसकी कथा का भी उपजीव्य है। भक्तिकालीन भ्रमर-गीत परम्परा इसका मुख्य प्रेरणास्रोत प्रतीत होती है, क्योंकि कृष्ण से वियुक्त गोपियों की विरह व्यथा का मार्मिक चित्रण और ज्ञान-योग के ऊपर प्रेम-भक्ति का स्थान बतलाना ही इस काव्य का अभीष्ट है।

'उद्धव-शतक' के सम्बन्ध में सबसे पहले विचारणीय प्रश्न यह है कि इसे खण्डकाव्य या प्रबन्धात्मक रचना माना जाय या शुद्ध मुक्तक काव्य की श्रेणी में रखा जाय। जैसा कि रसाल जी ने इस काव्य के प्राक्कथन में लिखा है—'यदि हम प्रस्तुत काव्य को देखते हैं तो ज्ञात होता है कि इसमें प्रबन्ध-काव्य और मुक्तक दोनों का सुन्दर सामंजस्य है, अर्थात् इसमें एक घटना विशेष की कथा भी है और साथ ही इसका प्रत्येक छन्द स्वतन्त्र सा भी है।'[1]

यह कथन सही है। लेकिन घटना का बहुत क्षीण सूत्र मात्र लिया गया है। मथुरा में यमुना में स्नान करते समय एक कमल को देखकर कृष्ण को राधिका की स्मृति आती है, वे बेसुध हो जाते हैं। किसी प्रकार उद्धव उन्हें बाहर लाते हैं और कीर द्वारा अचानक राधा-नाम सुनकर उनको होश आता है। इस घटना के बाद उन्हें नंद, यशोदा, यमुना तट पर गोपियों के साथ रास, वन-विहार, गोपी, ग्वाल-बाल सबकी स्मृति व्याकुल कर देती है, ब्रज के सुखद दिनों की तुलना में त्रिलोक का ठाकुर कहलाना उन्हें तुच्छ लगने

१. उद्धव-शतक—प्राक्कथन, संस्करण १९६० ई०, पृ० २०।

लगता है। परम ज्ञानी उद्धव कृष्ण की इस विरह-विह्वलता को देखकर आश्चर्यचकित रह जाते हैं। उद्धव यह स्थिति देखकर कृष्ण को 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म,' 'एको हं द्वितीयो नास्ति' आदि के ज्ञान द्वारा उपदेश देकर शान्त करना चाहते हैं। कृष्ण उन्हें केवल यह उत्तर देते हैं कि एक बार गोकुल जाकर यह ज्ञानोपदेश दे आओ, उसके बाद हमें सिखलाना तो हम मान लेंगे। उद्धव गोकुल जाकर ज्ञान और योग सम्मत उपदेश से गोपियों को प्रभावित करना चाहते हैं, किन्तु उलटे स्वयं गोपियों के गंभीर प्रगाढ़ प्रेम से प्रभावित होते हैं और वापस आकर भाव विह्वल होकर गोपियों तथा ब्रज की दशा का कृष्ण से वर्णन करते हैं। उन्हें सारा योग-ज्ञान भूल जाता है। वे गोपियों के प्रेम के कायल हो जाते हैं। इस प्रकार व्याज से कृष्ण का ज्ञानी उद्धव को गोकुल भेजना, गोकुल में उद्धव-गोपी संवाद और प्रेम-विभोर उद्धव का मथुरा वापस आकर कृष्ण से गोपी-दशा निवेदन इसका कथा-सूत्र है जिसमें चित्रोपम भाषा में रत्नाकर जी ने गोपियों के तर्कों और उनकी विरह-दशा का मार्मिक चित्रण किया है।

'उद्धव-शतक' नाम से यह भी स्पष्ट है कि रत्नाकर जी ने शतक-काव्यों की मुक्तक परम्परा को ध्यान में रखकर इस काव्य की रचना की है। इस-लिए इसके छन्द एक घटना-सूत्र में अनुस्यूत होते हुये भी स्वच्छन्द हैं और उनके स्वतंत्र रसास्वादन में कोई बाधा नहीं उपस्थित होती। कालिदास कृत 'मेघदूत' में भी कथा-सूत्र इसी प्रकार बहुत क्षीण है और उसके पद स्वतंत्र रूप से भी रस निर्भर हैं। संस्कृत के विश्वनाथ आदि आचार्यों ने उसे खण्ड-काव्य माना है। इस दृष्टि से उद्धव शतक को भी खण्ड काव्य जैसी प्रबन्धात्मक रचना मानकर इसे निर्बन्ध-खण्डकाव्य कहा जा सकता है।

इस काव्य के रचना-काल के सम्बन्ध में यह उल्लेख्य है कि यद्यपि वर्तमान रूप में उद्धव-शतक की सम्पूर्ण रचना संवत् १९८६ वि० में पूरी हुई, किन्तु कवि ने मन में इसका भावात्मक स्वरूप रचकर द्विवेदी युग में सं० १९७७ वि० तक उद्धव-विषयक ८०-८५ छन्द लिख लिए थे। यह अलग बात है कि सं० १९७८ वि० में वे खो गये। उनमें से कुछ उन्हें स्मरण रहे और कुछ की रचना उन्हें पुनः करनी पड़ी।

रत्नाकर जी ब्रजभाषा के अत्यन्त प्रतिभाशाली और मर्मज्ञ कवि थे। आधुनिक युग के अन्य किसी कवि का ब्रजभाषा पर वैसा अधिकार नहीं दिखाई पड़ता, जैसा रत्नाकर जी का था। उन्होंने बहुत समय तक ब्रज में

रहकर भाषा और साहित्य का सहज अध्ययन किया था। रसाल जी के शब्दों में 'महाकवि रत्नाकर ने इस वर्तमान समय में, जब खड़ी बोली के राज्य में ब्रजभाषा की मधुर और सुरीली पदावली शुद्ध एवं पूर्ण रूप में सुनाई भी नहीं पड़ती, यह सराहनीय कार्य गौरवपूर्ण सफलता के साथ किया है। .... रत्नाकर जी के काव्य में ब्रजभाषा का वह शुद्ध रूप मिलता है जिसमें साहित्योचित एकरूपता है'[1] ब्रजभाषा की कवि-परम्परा में महाकवि रत्नाकर को निस्सन्देह सर्वश्रेष्ठ कवियों में माना जायगा।

उद्धव शतक में विप्रलम्भ शृंगार की प्रधानता है, यद्यपि प्रेम-भक्ति भी इसका प्रतिपाद्य है। कृष्ण और गोपियां आलम्बन, ब्रजभूमि, यमुना, कदम्ब आदि प्रेम लीला के स्थान उद्दीपन हैं। भाव-विह्वलता के कारण कृष्ण का कण्ठावरोध, आँखों से अश्रु-प्रवाह, हिचकी आदि और गोपियों तथा उनकी प्रेम-वेदना से प्रभावित उद्धव में प्रेम-जन्य पुलक, अश्रु-प्रवाह, उच्छ्वास, कम्प आदि अनेक अनुभावों तथा स्मृति, औत्सुक्य आदि संचारी भावों से पुष्ट रति भाव का शृंगार रस में पूर्ण परिपाक इस काव्य में मिलता है। अनुभावों का तो ऐसा चित्रात्मक वर्णन रत्नाकर ने किया है कि उस स्थिति का पूरा बिम्ब आँखों के सामने उपस्थित हो जाता है। एक साथ अनेक अनुभावों का ऐसा सुन्दर गुँफन कदाचित ही किसी अन्य काव्य में मिले। उद्धव की प्रेम विह्वलता की इस दशा को उदाहरण रूप में ले सकते हैं—

दीन-दसा देखि ब्रजबालनि की ऊधव कौ,
गरि गौ गुमान ज्ञान गौरव गुठाने से।
कहै रत्नाकर न आए मुख बैन नैन,
नीर भरि ल्याए भए सकुचि सिहाने से॥
सूखे से, स्रमे से, सकबके से, सके से, थके,
भूले से, भ्रमे से, भभरे से, भकुवाने से।
हौले से, हले से, हूले-हूले से, हिये में हाय,
हारे से, हरे से, रहे हेरत, हिराने से॥[2]

इसी प्रकार विरहाकुल गोपियों की दशा के इस वर्णन को देखा जा सकता है—

१. उद्धव शतक—प्राक्कथन, संस्करण १९६०, पृ० ५३।
२. उद्धव शतक—छन्द २८, पृ० ३३।

सुनि सुनि ऊधव की अकह कहानी कान,
कोऊ थहरानी, कोऊ थानहिं थिरानी है।
कहै रत्नाकर रिसानी, बररानी कोऊ
कोऊ बिलखानी, बिकलानी, बिथकानी है।
कोऊ सेद-सानी, कोऊ भरि दृग-पानी रहीं,
कोऊ घूमि-घूमि परीं भूमि मुरझानी हैं।
कोऊ स्याम-स्याम कै बहकि बिललानी कोऊ
कोमल करेजौ थामि सहमि सुखानी हैं॥[1]

अलंकारों के प्रयोग में रत्नाकर ने भावोत्कर्ष को सदा ध्यान में रखा है। अलंकार के लिये अलंकार का प्रयोग उन्होंने नहीं किया है। अनुप्रास, वीप्सा, श्लेष आदि शब्दालंकारों तथा उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास आदि अर्थालंकारों का मुख्यतः प्रयोग हुआ है। चित्रात्मकता और काव्य सौन्दर्य के लिए ये ही अलंकार अधिक उपयुक्त हैं। अनुभावों की तरह ही एक ही छन्द में कई अलंकारों का एक साथ समाहार भी दिखलाई पड़ता है।

उद्धव शतक की एक प्रमुख विशेषता नाटकीय ढंग की संवाद-योजना है। छन्दों में कथोपकथन की इतनी सुन्दर योजना की गई है कि लगता है जैसे दो पात्र सचमुच वार्ता कर रहे हों। उद्धव और गोपियों का उत्तर-प्रत्युत्तर इसके कारण बहुत ही प्रभावपूर्ण हो गया है।

रत्नाकर जो बहुज्ञ कवि के रूप में प्रख्यात थे। इस बहुज्ञता का उपयोग अपने काव्यों में उन्होंने कुशलतापूर्वक किया है। उद्धवशतक में वैद्यक, रसायन, वेदान्त, तर्कशास्त्र आदि के सिद्धान्तों का यथा स्थिति उचित उपयोग किया गया है और इससे काव्य की प्रभावोत्पादकता बढ़ी है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि उद्धवशतक घनाक्षरी या कवित्त में लिखे गये शतकों की परम्परा का एक अत्यन्त उत्कृष्ट काव्य माना जायगा। मुक्तक प्रधान होते हुए भी कथात्मक सूत्र के कारण इसकी प्रभविष्णुता और बढ़ गई है। इसे शुद्ध खण्डकाव्य की श्रेणी में तो नहीं रखा जा सकता, तब भी निर्बन्ध खण्डकाव्य या प्रबन्ध-काव्य का आभास देने वाली यह एक उत्कृष्ट रचना है। उद्धव शतक असंदिग्ध रूप से ब्रजभाषा काव्य परम्परा में एक मील का पत्थर है, यद्यपि इसके बाद ब्रजभाषा में इतनी सशक्त रचना नहीं दिखलाई पड़ती।

---

१. उद्धव शतक, छन्द ३३, पृ० ४०।

स्पष्ट है कि इन निर्बन्ध खण्डकाव्यों ने भी द्विवेदी युग के चिन्तन और स्वरूप को प्रखर बनाया। पुराण, इतिहास और कल्पना जन्य कथा-सूत्रों का आधार लेकर इस प्रकार के जो काव्य लिखे गये, उन्होंने जन-जागृति और राष्ट्रीय चेतना के विकास में तो सहयोग दिया ही, भाषा और साहित्य का उन्नयन भी किया। 'ग्रन्थि' और 'उद्धव-शतक' जैसे काव्य मात्र इतिवृत्तात्मक न होकर भाव एवं अभिव्यंजना दोनों ही दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध हुए। ऐसे काव्यों ने ही द्विवेदी युग में स्वच्छन्दतावाद और छायावाद का बीजारोपण किया।

•

अष्टम अध्याय

# खण्ड काव्यों का भाव-पक्ष

भाव और कला का परस्पर वही सम्बन्ध है जो आत्मा और देह का। यद्यपि दोनों अविभाज्य हैं तथापि विवेचन की सुविधा के लिए काव्य के दो पक्ष मान लिए गए हैं—(१) भाव पक्ष या अनुभूति पक्ष, (२) कला-पक्ष या रूप पक्ष। एक को अंतरंग और दूसरे को उसका बहिरंग पक्ष कहा जा सकता है। भाव-पक्ष काव्य में प्राण-प्रतिष्ठा करता है, वह उसकी आत्मा है। कलापक्ष या रूप-पक्ष उसकी सार्थक और प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति का माध्यम है जिसके बिना उसका संप्रेषण संभव नहीं और बिना इस संप्रेषण के काव्य रचना का उद्देश्य ही पूरा नहीं होता।

भाव-पक्ष के अन्तर्गत काव्य के समस्त वर्ण्य विषय आ जाते हैं और कला-पक्ष में वर्णन-शैली के समस्त प्रकार। किसी भी काव्य के आस्वादन और सौंदर्य-बोध के लिए दोनों पक्ष महत्त्वपूर्ण हैं। भारतीय काव्य-शास्त्रीय परम्परा के अनुसार काव्य का मूल उद्देश्य रस-बोध कराना है, पाठक को रस-सिक्त करना है। रस-सिद्धि के प्रमुख आधार भाव हैं जो विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के संयोग से इस अवस्था को प्राप्त कराते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मत है कि प्रत्यक्ष बोध, अनुभूति और वेगयुक्त प्रवृत्ति इन तीनों के गूढ़ संश्लेष का नाम भाव है। काव्याचार्यों ने कुल बयालीस भाव बतलाये हैं जिनमें नौ स्थायी भाव एवं तैंतीस संचारी भाव हैं। ये नौ स्थायी भाव रति, हास, उत्साह, क्रोध, विस्मय, भय, शोक, जुगुप्सा और निर्वेद हैं जो विभाव, अनुभाव एवं संचारी भावों के सम्पर्क में आ, परिपक्वावस्था को प्राप्त होकर क्रमशः श्रृंगार, हास्य, वीर, रौद्र, अद्‌भुत, भयानक, करुण, वीभत्स एवं शान्त रस का उद्रेक करते हैं। इनके अलावा वातसल्य और भक्ति के उदात्त भावों को भी बाद के आचार्यों ने रसोद्रेक में सक्षम बताया और उनसे निस्सृत रस वात्सल्य और भक्ति को स्वतंत्र रस के रूप में अभिहित किया।

पाश्चात्य काव्य शास्त्री काव्य के चार तत्व—राग, कल्पना, बुद्धि और शैली मानते हैं। प्रथम तीन का सम्बन्ध भाव-पक्ष से एवं चौथे तत्व शैली का सम्बन्ध वे कला-पक्ष से मानते हैं। राग अनुभूति है, कल्पना जिसमें रंग भरती है और बुद्धि जिसे संयमित करती है। इस प्रकार पाश्चात्य दृष्टिकोण से भी काव्य कल्पना और बुद्धि का संयोग ही भावों के सशक्त संप्रेषण के लिए आवश्यक है। उपस्थित भाव का विभाव समन्वित संवेदना-जन्य कलात्मक संप्रेषण ही रस-सिद्धि कराता है। यह काव्य के उत्कर्ष की चरमावस्था है।

द्विवेदी युगीन खण्ड-काव्यों में वीर रस की प्रधानता है पर शृंगार, रौद्र, वीभत्स, करुण, शान्त आदि अन्य रस भी मिलते हैं। वीर रस का स्थायी भाव उत्साह है। उस समय देश पर अंग्रेजों का आधिपत्य था। पराधीनता की विभीषिका से सारा जन-मानस त्रस्त था। लोग दासत्व के शिकंजे से मुक्ति चाहते थे। उनके हृदय में देश-प्रेम और राष्ट्रीयता की चिनगारी विद्यमान थी जिसे विदेशी शासकों ने कहीं आतंक से तो कहीं विविध प्रलोभनों द्वारा दबा दिया था। देश पर संकट के ऐसे समय में द्विवेदी युगीन कवियों ने विदेशी शासकों के इस अत्याचार और परतन्त्रता की त्रासदी को चुनौती के रूप में स्वीकार किया। उस समय राष्ट्रीयता जैसे युग-धर्म बन गई थी। उन्होंने भारतीय पुराण और इतिहास से स्वाभिमानी महापुरुषों और साध्वी वीर रमणियों के उद्‌बोधक चरित्र चुन-चुनकर उन्हें अपनी सशक्त लेखनी से जनता के बीच खड़ा करके उस दबी चिनगारी को प्रज्ज्वलित कर दिया। वीर अर्जुन, भीम, अभिमन्यु, अनिरुद्ध, हमीर, चन्द्रगुप्त मौर्य, राणा प्रताप, उदयसिंह, अमरसिंह, देवलदेवी, वीरांगना वीरा आदि जैसे साहसी और आदर्श पात्रों को नायक के रूप में प्रस्तुत कर जयद्रथ-वध, कीचक-वध, अभिमन्यु का आत्मदान, उषा-हरण, वीर हमीर, मौर्यविजय, हल्दी घाटी की लड़ाई, प्रणवीर प्रताप, वीरांगना वीरा, देवलदेवी, आत्मार्पण, महाराणा का महत्व, विकट भट, मेवाड़-गाथा, चारण, चित्तौड़-विध्वंस, सोहराब और रुस्तम जैसे वीर रस प्रधान खण्डकाव्यों की रचना की गई। इन काव्यों में वीरता और उत्साह का दर्शन मुख्यतः युद्ध के प्रसंगों में होता है। उनमें वर्णन इतना जोशीला और ओजपूर्ण है कि पाठक पढ़ते ही उत्साह से भर जाता है, उसकी नस-नस फड़कने लगती है। उदाहरण के लिए 'हल्दी घाटी की लड़ाई' के इस युद्ध प्रसंग को लिया जा सकता है—

पूरब से रजपूत और पश्चिम से यवन बहादुर आय।
जुटे वीर घनघोर मेघ सम नेजा, तीर सेल हर्षाय॥
मुट्‌ठभेड़ होते युगदल में, चली जुन्नबी अरु गुजराति।
बंदरी, सिंधी चली सिरोही, ऊना कन्ती और चपाति॥
तोमर और तमंचा तेगा, तवंर से लेकर बाँक कटार।
बिछुआ और विगुरदा खंजर नेजा और तेज मुठमार॥
छप्प छपा छप चली मेवारी, नेजा किये करेजा टूक।
भाला और पियालिया चट चट छूटे, कूदे धरि असे मूठ॥[1]

1. हल्दी घाटी की लड़ाई : कवि माणिक।

आलम्बन शत्रु पक्ष के सिपाही, उद्दीपन तेज हवा, अनुभाव छप्प छपा छप कर तेजी से चलना, तोमर, तमंचा, नेजा चलाना, संचारी आवेश, दर्प आदि हैं जो संयुक्त होकर वीर रस का उद्रेक करते हैं। ऐसे वीर रसात्मक वर्णन को पढ़ते-पढ़ते पाठक या श्रोता भी उत्साह और जोश से भर जाता है, यही कवि की सफलता है।

'जयद्रथ-वध' में अनाचारी जयद्रथ धोखे से अभिमन्यु को मार देता है और जयद्रथ के वध की प्रतिज्ञा करके अर्जुन उससे युद्ध करते हैं। कवि द्वारा प्रस्तुत इस वर्णन को पढ़कर आँखों के सामने युद्ध का सजीव चित्र उपस्थित हो जाता है। यथा—

शर रूप खर रसना पसारे, रिपु रुधिर पीती हुई,
उत्कृष्ट भीषण शब्द करती जान मन चीती हुई।
अर्जुन कराग्रोत्साहिता प्रत्यक्ष कृत्या मूर्ति सी,
करने लगी गाण्डीव-मौर्वी प्रलय काण्ड स्फूर्ति सी।[1]

वीर अर्जुन के हाथों में तीर पर तीर छोड़ती धनुष की प्रत्यंचा जो जीभ बढ़ाये शत्रुओं का खून पी रही है, कृत्या की मूर्ति सी, स्फूर्ति का अवतार सी प्रत्यंचा एक के बाद एक शत्रुओं को हृत करती हुई प्रलय का दृश्य उपस्थित कर रही है। चारो ओर वीरता और जोश से भरा वातावरण है। इसे पढ़ते-पढ़ते पाठक की भावना का तादात्म्य आश्रय की भावना से हो जाता है। वास्तव में व्यक्ति का भाव जब लोक का भाव बन जाता है तभी वह रसोद्रेक की अवस्था को प्राप्त होता है।

'मौर्य विजय' के एक चित्र में युद्ध के मैदान में भयंकर शस्त्रों की चमक, अनेक वीरों का गिर गिर कर मरना, हाथी-घोड़ों की रेल पेल से आसमान तक धूल छा जाना घमासान युद्ध का एक चित्र उपस्थित करता है—

शस्त्र चमकने लगे भयंकर समर स्थल में,
मरने लगे अनेक वीर गिरकर पल पल में।
उड़ उड़कर बहुधूल व्योम-मण्डल में छाई,
इस प्रकार हो उठी वहाँ पर घोर लड़ाई।[2]

ओज और उत्साह से भरा हुआ यह वर्णन पाठक के हृदय के सुप्त

१. जयद्रथ वध : मैथिलीशरण गुप्त, साठवाँ संस्करण, पृ० ६४।
२. मौर्य विजय : सियारामशरण गुप्त, द्वितीय सर्ग, संस्करण २०१३, पृ० २१।

उत्साह को जागृत करता है और आश्रय के साथ पाठक का तादात्म्य कराता है।

'सोहराब और रुस्तम' का भी युद्ध का यह दृश्य अवलोकनीय है--

भिड़ें दोनों भरे आवेश दोनों।
दिखाते हैं विपुल वे त्वेश दोनों॥
गिरे कोई न कम कोई किसी से।
कुपित मृगराज से लड़ते इसी से॥[1]

रुस्तम और सोहराब दोनों ही अत्यन्त वीर और कुशल योद्धा थे। इनकी परस्पर लड़ाई का सादृश्य कवि ने शेरों के एक दूसरे पर झपटते और क्रुद्ध होकर लड़ने से किया है। इसे पढ़कर पाठक की कल्पना में एक दृश्य आता है, और वह आवेश का अनुभव करता है। सुप्त उत्साह जागृत होने के साथ ही उसके हृदय में वीर रस का उद्रेक होता है। दो ही पंक्तियों में पूरा प्रभाव छोड़ने वाला यह चित्र भी द्रष्टव्य है--

गुँथी बिजलियाँ दो मानो रण व्योम में
वर्षा होने लगी रक्त के बिन्दु की।[4]

यह युद्ध वीर नायक के उद्दाम उत्साह से परिपूर्ण संग्रामरत चेष्टाओं का सजीव चित्र उपस्थित करता है। इसी प्रकार सियारामशरण गुप्त ने चन्द्रगुप्त मौर्य जैसे सशक्त ऐतिहासिक पात्र को अपने काव्य का नायक बनाकर उसके द्वारा उत्साह का अजस्र स्रोत प्रवाहित किया है--

वीरो, सच्चा युद्ध बैरियों को सिखला दो,
आर्यों का बल-वीर्य आज जग को दिखला दो।

अपनी कीर्ति-ध्वजा आज सब ओर उड़ा दो,
मातृभूमि को विपज्जाल से शीघ्र छुड़ा दो।[3]

देखो, तुम हो आर्य वीर, यह भुला न देना,
अपनी सारी कीर्ति सदा को सुला न देना।

---

१. सोहराब और रुस्तम : विद्याभूषण 'विभु', पंचम उच्छ्वास, पद २२, पृ० २८।

२. महाराणा का महत्त्व : जयशंकर प्रसाद।

३. मौर्य विजय : सियारामशरण गुप्त, द्वितीय सर्ग, संस्करण २०२० वि, पृ० १७।

आर्यों की सन्तान श्रेष्ठ हैं—हम बलधारी–
जान जाय यह बात आज यह पृथ्वी सारी।
जो कार्य तुम्हारे योग्य है करके दिखला दो अभी,
ये म्लेच्छ भूलकर भी इधर मन न करें जिसमें कभी ॥[1]

इस प्रकार की रचनाओं ने पाठकों और श्रोताओं के हृदयों को झकझोर दिया। मातृभूमि को संकट से मुक्त करने की, विदेशी तत्वों और देश घातियों को देश से निकाल देने की भावना तेज हुई और उत्साह का भाव जागा जो कवियों का अभिप्रेत था।

पुरुषों के ही नहीं वीर नारियों के अद्भुत शौर्य और देश की स्वतन्त्रता के लिए जान हथेली पर लेकर लड़ने के उदाहरण भी कवियों ने प्रस्तुत किये। ठाकुर भगवतसिंह ने लिखा—

ज्यों रक्त-नेत्रा शिवा तीक्षण शूलकर धारण किये,
वर वीर महिषासुर प्रभृति संग्राम में पारण किये।
सक्रुद्ध तद्वत देवि वीरा चण्डशूल कृपाण लै,
युद्ध स्थली भरने लगी, बहु शत्रुओं के प्राण लै।[2]

अपने देश और स्वाभिमान के लिए एक नारी का मृत्यु भय छोड़कर इस प्रकार युद्ध के मैदान में आना, देश के युवकों के लिए एक चुनौती, एक सबल प्रेरणा बना।

इसी प्रकार सुरेन्द्रनाथ तिवारी ने अलाउद्दीन के अत्याचार से त्रस्त बदनौर की राजकुमारी वीरांगना तारा की दृढ़ संकल्प शक्ति और कभी हार न मानने वाले अनन्त उत्साह का चित्र खींचा है—

आरक्त थे युग नेत्र तारा के, हृदय के क्रोध से,
भुजदण्ड दोनों थे फड़कते वीरता के बोध से।
यद्यपि हुई थी हार, पर उत्साह, साहस पूर्ण थी,
बल में भरोसा था, हृदय में वीरता सम्पूर्ण थी।[3]

एक बार हार हो जाने पर भी वीरांगना तारा ने पुनः अपनी शक्ति संजोयी—फिर युद्ध किया और अन्त में अपनी भूमि पुनः जीत कर ही रही। इसी प्रकार के अदम्य उत्साह की अपेक्षा कवि पाठकों से करता है।

---

१. मौर्य विजय : सियारामशरण गुप्त, द्वितीय सर्ग, संस्करण २०३० वि०, पृ० १७।
२. वीरांगना वीरा : ठाकुर भगवतसिंह, पद २०१, पृ० ५१।
३. वीरांगना तारा : सुरेन्द्रनाथ तिवारी, प्रथम संस्करण १९२४, पृ० ३७।

'कीचक वध' के तो मुखपृष्ठ पर ही कवि ने 'वीर रस पूर्ण सचित्र खण्ड-काव्य' लिख दिया है। दुष्ट के प्रतीक रूप में कीचक की भूमिका और उसके संहारकर्ता के रूप में भीम का साहस और पराक्रम कवि ने दिखलाया है। प्राचीन भारत के गौरव का स्तवन करते हुए गुप्त जी ने अन्याय और अराजकता के उस समय में जनता को निर्भीक होकर संकट का सामना करने की प्रेरणा दी है—

किन्तु वीर वर कभी न नियमित पथ से विचलित होते हैं,
कभी न अपने ध्येय धर्म की मर्यादा को खोते हैं।

+ + +

देखो वीरो कभी जंग से तनिक नहीं डर जाना तुम,
धैर्य धारकर जो भी संकट आवे सहते जाना तुम।[1]

प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठक के मन में नूतन स्फूर्ति जगाती हैं।

वीर रस के अन्तर्गत रसशास्त्रियों ने युद्धवीर के साथ ही दानवीर, दयावीर और धर्मवीर की भी गणना की है। द्विवेदी युग में इन सभी प्रकार के वीरों के उदाहरण मिलते हैं, जैसे—

जब तक देश स्वतन्त्र न होगा,
मिट कर अत्याचार।
तब तक मैं संयमी रहूँगा,
ब्रह्मचर्य व्रत-धार।[2]

ये प्रण 'मिलन' के वीर नायक आनन्द का है। वह धर्मवीर है। देश के स्वतन्त्र नहीं होने तक वह ब्रह्मचारी रहने की कठिन प्रतिज्ञा भी करता है।

'मेवाड़ गाथा' में लोचनप्रसाद पाण्डेय ने धर्मवीर का अच्छा चित्र प्रस्तुत किया है, यथा—

रंग महल तज कर तरुओं के नीचे जिसने किया निवास।
खाँड़ खीर तज घासों की जड़ खाई अथवा रहा उपास।
तृण सम राज भोग सुख तजकर सह कर निज दारुण सन्ताप।
क्षत्रियत्व निज रक्खा जिसने, जय जय जय वह वीर प्रताप।[3]

---

१. कीचक वध : शिवदास गुप्त 'कुसुम', तृतीय सर्ग, छन्द २।
२. मिलन : रामनरेश त्रिपाठी, नवाँ संस्करण, पृ० ५७।
३. मेवाड़ गाथा : लोचनप्रसाद पाण्डेय, सर्ग ५, छन्द ९।

राणा प्रताप धर्मवीर हैं, जिन्होंने सुस्वादु व्यंजन, महलों में रहना और समस्त राज-सुख तिनके के समान त्याग दिया, पर अपना क्षत्रियत्व नहीं त्यागा।

'धर्मवीर हकीकत राय' में बहादुर हकीकत धर्मवीर का अच्छा उदाहरण है। उसने हंसते-हँसते धर्म के लिए अपने प्राण दे दिये—

धड़ से पृथक सिर हो गया, पर धर्म को छोड़ा नहीं,
पर चमचमाती खड्ग धारा से बदन मोड़ा नहीं।[1]

'दानवीर' के लिए 'मेवाड़ गाथा' का निम्नलिखित उदाहरण पर्याप्त है—

इतना था वह धन तब हो सकता था जिससे भामाशाह,
बारह वर्षों तक पच्चीस हजार मनुष्यों का निर्वाह।
तुझसे स्वामी भक्त चतुर मन्त्रीवर आत्म त्यागी वीर,
भारत में क्या दुर्लभ है इस वसुधा में भी धार्मिक धीर।[2]

वीर भामाशाह ने राणा प्रताप को देश की रक्षा के लिए अपना सारा धन दे दिया। लोचन प्रसाद पाण्डेय ने भामाशाह की दान-वीरता का अपने काव्य में प्रभावपूर्ण वर्णन किया है।

'दया वीर' के लिए राणा प्रताप का वीरत्व प्रसिद्ध है। प्रसाद के 'महाराणा का महत्त्व' का निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य है—

बस बस, ऐसे समाचार न सुनाइये
शीघ्र ही उसके स्वामी के पास अब
भेज दीजिये, बिना एक भी दुख दिये
सैनिक लोगों से मेरा सन्देश यह
कहिये, कभी न कोई क्षत्रिय आज से
अबला को दुख दे, चाहे हो शत्रु की।[3]

शत्रु सरदार खानखाना की बेगम को बन्दी बना लेने पर राणा प्रताप इस तरह कह कर उसे तुरन्त शत्रु को भिजवा देते हैं।

श्रृंगार रस यद्यपि रस-राज है, इसमें आत्म-प्रसार के लिए सर्वाधिक अवकाश होने के कारण आनन्द प्राप्ति की सम्भावना सबसे अधिक होती है

१. धर्मवीर हकीकत राय : ठा० गदाधर सिंह भृगुवंशी, पद २, पृ० १।
२. मेवाड़ गाथा : लोचनप्रसाद पाण्डेय, सर्ग, ५, छन्द ३७।
३. प्रसाद वांगमय : सं० रत्नशंकर प्रसाद, पृ० १३५, महाराणा का महत्व।

तथापि द्विवेदी युग में श्रृंगारपरक रचनायें वीर की अपेक्षा कम हुई। राष्ट्रीयता, सुधार और नैतिक जागृति की आदर्शोन्मुख भावना के प्राबल्य के कारण श्रृंगार दब गया। रीतिकालीन उन्मुक्त श्रृंगार की आलोचना द्विवेदी जी ने स्वयं की, फलतः उस समय श्रृंगार का मर्यादित रूप ही सामने आया। उदाहरण के लिए गुप्त जी के 'शकुन्तला' काव्य को ले सकते हैं। यह 'मेघदूत' पर आधारित है। दोनों में बहुत कुछ वर्णन साम्य भी है। किन्तु श्रृंगार का जो अतिरेक मेघदूत में है, गुप्त जी के इस काव्य में वह नहीं है। उनकी और द्विवेदी जी की मनोवृत्ति के अंकुश ने उन्हें श्रृंगार के वर्णन में मुखर नहीं होने दिया है। जहाँ कालिदास ने 'मेघदूत' में संयोग श्रृंगार का मनोयोग से वर्णन किया है, वहाँ गुप्त जी दो वाक्यों में किनारा कर गये हैं, जैसे—

कार्य्य-कथन-सादृष्य किया जा सकता कैसे ?
समझेंगे बस वही मिलें जो सहसा ऐसे।[1]
हम हैं यहाँ अशक्त मिलन सुख समझाने में
प्रणयिजनों के चरित्र नहीं आते गाने में।[2]

इसका यह तात्पर्य नहीं है कि द्विवेदी युग में श्रृंगार रस बिलकुल उपेक्षित रहा। श्रृंगार के दोनों पक्षों-संयोग और वियोग का चित्रण काव्यों में यत्रतत्र हुआ है, केवल परम्परागत नायक-नायिका-भेद, रूप सज्जा, रतिक्रीड़ा एवं ऊहात्मक वर्णन को नकारा गया है। आलम्बन रूप में नायक नायिका, उद्दीपन रूप में सूरज चन्दा, पतझड़ वसन्त, नद नदी, पत्र-पुष्प, पशु-पक्षी, फल-फूल, लता-विटप, चन्दन चाँदनी आदि, अनुभाव रूप में कटाक्ष, हाव-भाव, मुस्कान, मूर्च्छा, संकोच आदि और संचारी रूप में स्वेद, आवेग, विषाद, औत्सुक्य आदि का आकलन कवियों ने श्रृंगार के रसोद्रेक हेतु किया है। कई खण्ड-काव्यों, जैसे—'इन्दुमती परिणय', 'मैथिली मंगल', 'उषा हरण', 'पतिव्रतादर्श', 'सावित्री उपाख्यान', 'मिलन', 'पथिक', 'शकुन्तला', 'आत्मार्पण', 'वीरबाला', 'उषाकाल', 'रसालवन', 'भंग में रंग', 'शान्तिप्रताप', आदि में किसी न किसी रूप में श्रृंगार का वर्णन मिलता है। मैथिलीशरण गुप्त ने अपने खण्डकाव्य 'शकुन्तला' में श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का चित्रण किया है, किन्तु संयोग-पक्ष का वर्णन अपेक्षाकृत

१. शकुन्तला : मैथिलीशरण गुप्त, तेरहवाँ संस्करण, पृ० १६।
२. वही, पृ० २२।

कम और अत्यधिक संयमित है। 'शकुन्तला' का दुष्यन्त और शकुन्तला के संयोग श्रृंगार का यह चित्र देखा जा सकता है—

हर्षित होते थे हार गूँथ कर दोनों,
पहनाते थे फिर उन्हें परस्पर दोनों।
पल पल में फिर वे उन्हें बदल लेते थे,
मिल कर पौधों को कभी सलिल देते थे।[1]

श्री रामशरण गुप्त 'शरण' के खण्डकाव्य 'पतिव्रतादर्श' में राजा नल के अंक में सोई दमयन्ती का चित्र द्रष्टव्य है—

यह कह कर नल-अंक मध्य रख मुख-मयंक को,
सजल नयन-पर जुटा, मिटा आतंक, शंक को।
कंत-कंठ में निज मृणाल की माल डाल कर,
बेसुध सी सो गई, वृक्ष की सघन डाल तर।[2]

'बूढ़े का व्याह' की निम्नलिखित पंक्तियों में भी संयोग श्रृंगार का परिपाक हुआ है—

मन तुरंग दोनों के छूटे, तोड़ तोड़ कर लाज लगाम,
धर्म विचारा गिरा टिका नहिं, हुआ प्रबल आरोही काम।
दास नहीं अब रहा छबीला, नहीं स्वामिनी चम्पा अब,
दो तन में मन एक रहा रम, है मनोज अनुकम्पा अब।[3]

संयोग का एक अत्यन्त सहज मनोवैज्ञानिक चित्र 'मिलन' के अन्तिम पद में है—

चन्द चूम लूँ ! बोला मन में
जैसे ही आनन्द।
आकर लगा तुरत ओठों से
मधुर सुधाधर चन्द।[4]

अपनी प्रेमिका का मुख चूमने की इच्छा होते ही प्रेमिका का मुख उसके अधरों से मिल गया। आलम्बन प्रेमिका का सुधामय मुखड़ा, अनुभाव चुम्बन

---

१. शकुन्तला : मैथिलीशरण गुप्त, संस्करण २००७ वि०, पृ० १७।
२. पतिव्रतादर्श : रामशरण गुप्त 'शरण', पूर्वार्द्ध, पृ० ९।
३. बूढ़े का व्याह : सैयद अमीर अली मीर, चतुर्थ परिच्छेद, पृ० २२,२३।
४. मिलन : रामनरेश त्रिपाठी, नवाँ संस्करण, अन्तिम पद, पृ० ८४।

लेना, उद्दीपन एकान्त, विजया की गोद में आनन्द का लेटा होना है, सहचारी हर्ष, औत्सुक्य आदि हैं।

भावों को रस-दशा तक पहुँचाने के लिए विभावों का चित्रात्मक वर्णन या रूप वर्णन महत्वपूर्ण माना गया है। आलोच्य काल के कवियों ने भावों के साथ-साथ विभावों, विशेष रूप से आलम्बन का प्रभावपूर्ण एवं चित्रात्मक वर्णन किया है। उदाहरण के लिए मैथिली मंगल से निम्नलिखित उद्धरण प्रस्तुत हैं—

कोई अंचल को कर चंचल काम-पताका बना फहरा रही थी।
+ + +
कोई हार घिरे हुए काम के कन्दुकों को हँसती थहरा रही थी।
+ + +
आधे खुले हुए, आधे मुँदे हुए थे उनके मद-मत्त विलोचन,
देह समुद्र में शुभ्र जवानी का ज्वार किया करता था सुक्रीड़न।[1]

यहाँ 'मैथिली मंगल' में कोहवर सर्ग में कवि ने शृंगार सज्जित युवतियों की स्थिति और क्रिया-कलापों से रति-भाव का चित्रण किया है। आलम्बन युवतियाँ हैं, अनुभाव अंचल फहराना, हँसना, थहराना, अधरखुले नेत्र आदि हैं, उद्दीपन काम पताका जैसा साड़ी का अंचल, जड़ाऊ हार आदि है और संचारी हर्ष, रोमांच है।

इसी खण्ड काव्य में कवि ने सीता का जो रूप-वर्णन 'मोद सर्ग' में किया है, वह भी रतिभाव को उद्दीप्त करता है—

नवनीत सी थी देह कोमल, वर्ण चम्पक सा रहा,
दशनावलि-छवि की मनोरम कुन्द कुसुमों सी महा।
भृकुटी धनुष में हर्ष की डोरी ललित थी तन रही,
लज्जा विनय-छवि-मूर्ति 'माता मैथिली थीं बन रहीं।[2]

'वसुमती' में भी नायिका का रूप-वर्णन शृंगार की भावभूमि को उर्वर करने के लिए आया है—

लज्जा भरे दृग-युगल से
अंकित वदन राकेश था।
घनघोर उमड़े मेघ सम

---

१. मैथिली मंगल : पं० शुकलाल प्रसाद, दाम्पत्य सर्ग, छन्द ३६, पृ० २३१।
२. वही, मोद सर्ग, छन्द ६६, पृ० २११।

कुंचत कचों के बीच से विस्तारता यौवन कला।
सोहल बसन्तों ने सविधि
कुसुमेष के आदेश से
लेकर सकल कुसुमावली
अब तक समर्चन था किया इस हेम लतिका रूप का।[1]

'शकुन्तला' के अप्रतिम सौंदर्य के वर्णन द्वारा गुप्त जी भी नायक के मन में रति-भाव को उद्दीप्त करते हैं—

दोनों ओर कपोल देश पर से थे केश छूटे पड़े
हो के लोल समीर से ललित यों वे दीखते थे बड़े—
श्रेणी वद्ध मुखारविन्द पर थे वे भृंग मानो अड़े
थे किंवा घन वृन्द इन्दुवर को स्वच्छन्द घेरे खड़े।[2]

केवल नायिका के रूप का वर्णन ही नहीं नायक के रूप का भव्य वर्णन भी इन खण्डकाव्यों में मिलता है, यथा—

थे मानो प्रत्यक्ष इन्द्र वे अवनीतल के,
थे उनके भुज यशः स्तंभ-से अतुलित बल के।
थी विशाल अत्यन्त सुदृढ़तर उनकी छाती,
उज्ज्वल आँखें दीप्ति सर्वदा थीं बरसाती।

था भव्य शीश पर मणि-जटित मुकुट सुशोभित हो रहा,
जो रवि—किरणों से और भी था आलोकित हो रहा॥[3]

'मिलन' में नायक आनन्द का रूप वर्णन भी द्रष्टव्य है—

सिकुड़न रहित ललाट ललित अति उन्नत कला निधान।
पौरुष-पूर्ण विशद वृक्षस्थल वृषभ-कंध-बलवान॥
परिधि समान प्रलम्ब-युगल-भुज पृथुल कठिन भुजदण्ड।
अंग अंग से छलक रही थी, शोभा, शक्ति प्रचण्ड॥[4]

इन रूप वर्णनों का उद्देश्य नायक नायिका के मन में एक दूसरे के प्रति आकर्षण और प्रेम के भाव को सहज बनाना और उससे पाठक का तादात्म्य

---

१. वसुमती : दिवाकर प्रसाद शास्त्री, द्वितीय सर्ग, पद २५-२६, पृ० १३-१४।
२. शकुन्तला : मैथिलीशरण गुप्त, अभिशाप सर्ग, संस्करण २००७, पृ० २०।
३. मौर्य विजय : सियारामशरण गुप्त, द्वितीय सर्ग, संस्करण २०३०, पृ० १५।
४. मिलन : रामनरेश त्रिपाठी, पृ० ४५।

स्थापित कराना है। नारी के आंगिक सौकुमार्य और मान्सल सौन्दर्य को श्रृंगार में विशेष स्थान मिला है । इसी से रसराज के वर्णन में नारी के अंग-प्रत्यंग का आपाद नख-शिख पर्यन्त चित्रण किया गया है। नख-शिख वर्णन रति-भाव को रस-दशा तक पहुँचाने में विशेष भूमिका निभाता है। द्विवेदी युगीन खण्डकाव्यों में भी नख-शिख वर्णन यत्रतत्र मिलता है, यद्यपि रीति काव्य की तरह वह अश्लीलत्व की सीमा को प्रायः नहीं छूता, जैसे इन्दुमती-परिणय में—

भ्रमर रंग के केश, नासा अति कमनीय शुकहु कीतें अति प्यारी।

\+ \+ \+

आनन अम्बुज सरिस किधों जस पूरन चन्दा ।

× \+ \+

दशन दामिनी ज्योति किधों मोती मानिक सम ।

\+ \+ \+

अधर बिम्ब सों मिलत किधों विद्रुम के पल्लव ।

\+ \+ \+

कम्बु रूप शुभ ग्रीव, जस मृणाल की नाल बाहु ।

\+ \+ \+

कुच कीरक कै कमल कलश कै रतिपति गेंदा ।
चक्रवाक गज कुम्भ भनत आवत नहिं भेदा ।।
कटि सूक्ष्म अति सूक्ष्म लखत बहु दृष्टि किये तें ।
कहा बड़ाई होय केहिरिन रूप दिये तें ।।[1]

कवि ने यहाँ रूढ़ उपमानों के प्रयोग से इन्दुमती के सौंदर्य को साकार कर रतिभाव को पुष्ट किया है ।

'उषा हरण' भी एक ऐसा ही चित्र है। रामदत्त राय शर्मा ने नायिका उषा के यौवन का नख-शिख वर्णन बसन्त के सांगरूपक द्वारा किया है—

भूषण विविध सजेउ सब अंगन, मनहु पुष्प बहु छायो ।
गाल गुलाब बिम्ब फल अधरन, निज सौंदर्य लजायो ।
रूप राशि शर छवि भरिवारी, भंवर नितम्ब लखाई ।

१. इन्दुमती परिणय : खुन्नामल शर्मा, उत्तरार्द्ध, पृ० ५४-५५ ।

केहरि कटि रखवार उदर शुभ, रेखा बीचि सुहाई ।।
केदलि खम्भ जंघ तट मोहत, कटि किंकिणि खग बोलें ।
मन्द मन्द गति सजति मराली, पद पंकज जनु डोलें ।।
बार सिवार, मीन छवि नयन, कोइलि कंठ लजायो ।
यह ऋतुराज सुभग सर पायेउ, यौवन राज सुहायो ।।
भौंह कमान नयन शर तीक्षण, लइ नृप करत अखेटा ।
लखि रतिनाथ हिये निज हारो, परेउ जु तासु चपेटा ।।[1]

नायिका के रूप का यह उल्लेख, अंग-अंग का यह मादक सौंदर्य-वर्णन रति भाव को उद्दीप्त करने में प्रमुख भूमिका निभाता है ।

'रसाल-वन' के कृतिकार पं० गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' के काव्य की नायिका विमला के नख-शिख का सौन्दर्य-वर्णन उल्लेखनीय है—

अलक नहीं थे वदन कमल पर अलिकुल ने डेरे डाले ।
खंजन मद भंजन करते थे चंचल लोचन मतवाले ।
कीर विलोक मनोहर नासा पिंजड़े में था बंद हुआ ।
रुचिर अधर रस-लोलुप वेसर से था रस कमनीय हुआ ।
व्रीड़ित परम बना था बिम्बा अधर अरुणिमा दर्शन से ।
पल्लव लाल प्रवाल सभी श्रीहत निज मद-मर्दन से ।
था न श्याम तिल कल कपोल पर, एक भ्रमर रस पीने में,
लीन हुआ था, निजता खो के, विकच कमल के सीने में ।

\+ \+ \+

मृदुल भुजा अवलोकन करके लज्जित तरु शाखायें थीं ।
तन लावण्य विलोक निराला लज्जा मग्न लताएँ थीं ।
चाल मरालों को सिखलाती आई वहाँ अपर बाला ।
निज पट की अनुपम सितता से ज्योत्स्ना मुख करती काला ।[2]

नायिका विमला आलम्बन है, उसकी सुन्दर अलकें, आँखें, नासिका, अधर, भुजा आदि उद्दीपन हैं, मराली चाल और नयन-विलास अनुभाव हैं, हर्ष, मुग्धत्व, व्रीड़ा संचारी हैं ।

कहीं-कहीं रीतिकालीन परिपाटी पर भी कवियों ने नख-शिख वर्णन किया है । नाथूराम शर्मा 'शंकर' के 'गर्भरण्डा रहस्य' में नायिका के अंगों का

१. उषा हरण : रामदत्त राय शर्मा, पूर्वार्द्ध, पृ० ५ ।
२. रसाल-वन : गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश,' ( विपद घटा ), पृ० ९-१० ।

समग्र चित्र भी उसी परम्परा की झलक देता है। उदाहरणार्थ—

पंकज, कदली, कंबु, चाप, चपला शशि तारे।
दाड़िम, श्रीफल, सेब, सरस-बिम्बा अरुणारे॥

भृंग, भुजंग, कुरंग, कीर, कोकिल, हरि हाथी।
मुझ नबला के अंग बने इन सबके साथी।[1]

यहाँ पंकज हाथ, कदली जंघा, कंबु ग्रीवा, चाप भौंहें, चपला मुस्कान, शशि मुख, तारे पुतली के तारे, दाड़िम दाँत, श्रीफल पयोधर, सेब कपोल, बिम्बाफल ओष्ठ, भृंग काली पुतली, भुजंग वेणी, कुरंग नेत्र, कटि नासिका, कोकिल कण्ठ-स्वर, हरि कटि, हाथि गति के लिए प्रयोग किये गये हैं।

स्थूल सौंदर्य वर्णन के साथ मनोदशाओं का सूक्ष्मांकन भी हुआ है जो हृदयस्थ रति भाव की प्रगाढ़ता की झलक देता है। एक स्थान पर नायिका नायक के अधिकाधिक संसर्ग में आने की कामना करती हुई कहती है—

हे भगवान बास मैं होती प्रिय उस पर पग धरते।
अति कृतज्ञ होती, प्रिय पद की धूल मुझे तुम करते।[2]

यह राग की, प्रेम की चरम सीमा है। 'मैं घास हो जाऊँ और प्रिय मुझ पर पैर रखें, मैं धूल हो जाऊँ प्रिय के पैरों में लिपटूँ'—प्रेमी स्वयं को सर्वथा अकिंचन कर प्रिय में जैसे अपनेपन को समा देना चाहता है। इसी प्रकार प्रिय को अपने पलकों में मूँदकर रख लेने का भाव—किसी और को उसे नहीं देखने देने का भाव—'देखूँगी मैं फिर न और को तुम्हें देखने दूँगी'[3] प्रिय के प्रति प्रेमी की अनन्य प्रीति और लगाव प्रकट करता है।

शृंगार रस के दूसरे पक्ष वियोग या विप्रलम्भ शृंगार का वर्णन द्विवेदी युगीन काव्यों में संयोग पक्ष से अधिक विस्तृत हुआ है। इसका एक कारण कदाचित द्विवेदी युगीन मर्यादा सापेक्ष्यता है। संयोग-वर्णन में अश्लीलत्व का समावेश हो सकता है किन्तु वियोग की वेदना में, कचोट में अश्लीलता का अवकाश न के बराबर रहता है। भारतीय काव्य-शास्त्र में विप्रलम्भ शृंगार के चार भेद माने गये हैं-अभिलाषा हेतुक (पूर्वराग), ईर्ष्याहेतुक (मान),

---

१. गर्भरण्डा रहस्य : नाथूराम शंकर, पृ० १५।
२. पथिक : रामनरेश त्रिपाठी, चौथा सर्ग, पद ९, पृ० ४९।
३. वही, पद ३, पृ० ४८।

प्रवास हेतुक एवं करुण।[1] आलोच्य खण्ड काव्यों में अभिलाष-हेतुक और प्रवास हेतुक विप्रलम्भ को ही प्रायः स्थान मिला है। ईर्ष्या और करुण का समाहार न के बराबर हुआ है।

अभिलाष हेतुक विप्रलम्भ में स्वप्न-दर्शन, गुण-श्रवण या साक्षात-दर्शन से उत्पन्न पूर्वरागजन्य विरह आता है। अपने 'उषाहरण' खण्डकाव्य में रामदत्त राय शर्मा ने स्वप्न में ही अनिरुद्ध के प्रेम-पाश में आबद्ध की गई उषा के मुख से स्वप्न टूटने पर जो विरहजन्य उक्तियाँ कहलाई हैं, वे अभिलाष हेतुक वियोग-शृंगार के अच्छे उदाहरण हैं। इसी प्रकार 'इन्दुमती परिणय' में युवराज अज नींद में इन्दुमती का दर्शन करते हैं और उस पर आसक्त हो जाते हैं। नींद टूटने से प्रिय की वह छवि लुप्त हो जाती है। अज को प्रिय का इस प्रकार आँखों के सामने से दूर हो जाना सहन नहीं होता। इस वियोग में वे विलाप करते हैं—

नहीं अब नींद हू आवै, दरस प्रिय कौ जो चरव पावै,
कहाँ जाऊँ किसे पूंछू मुझे को हाल बतलावै ?
मनोहर चित्त हरन मूरति कमल नयनी सुभग सूरत,
कहाँ हौ गुप्त हे प्यारी ? यहाँ तव दास अति आरत।[2]

आलम्बन स्वप्नगत इन्दुमती है, अनुभाव सोने की चेष्टा, करवट बदलना है, उद्दीपन बार-बार आने वाली इन्दुमती की स्मृति है और संचारी उद्वेग, विषाद है।

प्रवास हेतुक विप्रलम्भ में कार्यवश, शापवश या संभ्रमवश नायक का देशांतर गमन होता है।[3] साथ ही प्रवासजन्य विरह तभी होगा जब नायक नायिका संभोग-रत हो चुके हों। मात्र दर्शन के बाद ही यदि दोनों एक दूसरे से बिछुड़ जायँ तो वह प्रवास हेतुक विप्रलंभ की कोटि में नहीं आयेगा। दुष्यन्त शकुन्तला का विरह इसी से प्रवास हेतुक विप्रलंभ की कोटि में आता

---

१. 'अपरस्तु अभिलाष विरहेर्ष्या प्रवास शाप हेतुक इति पंच विधः' काव्यप्रकाश, उल्लास ४, रसभेद प्रकरण
'स च पूर्वराग मान प्रवास करुणात्मकश्चतुर्धास्यात्।' ३।१८७
—साहित्य दर्पण, कविराज विश्वनाथ।

२. इन्दुमती : खुन्नामल शर्मा, अष्टम तरंग, पृ० ३६।

३. 'प्रवासो भिन्नदेशित्वं कार्याच्छापाच्च संभ्रमात्।' ३।२०४
—साहित्य दर्पण, कविराज विश्वनाथ।

समग्र चित्र भी उसी परम्परा की झलक देता है। उदाहरणार्थ—

पंकज, कदली, कंबु, चाप, चपला शशि तारे।
दाड़िम, श्रीफल, सेब, सरस-बिम्बा अरुणारे।।

भृंग, भुजंग, कुरंग, कीर, कोकिल, हरि हाथी।
मुझ नबला के अंग बने इन सबके साथी।[1]

यहाँ पंकज हाथ, कदली जंघा, कंबु ग्रीवा, चाप भौंहें, चपला मुस्कान, शशि मुख, तारे पुतली के तारे, दाड़िम दाँत, श्रीफल पयोधर, सेव कपोल, बिम्बाफल ओष्ठ, भृंग काली पुतली, भुजंग वेणी, कुरंग नेत्र, कटि नासिका, कोकिल कण्ठ-स्वर, हरि कटि, हाथि गति के लिए प्रयोग किये गये हैं।

स्थूल सौंदर्य वर्णन के साथ मनोदशाओं का सूक्ष्मांकन भी हुआ है जो हृदयस्थ रति भाव की प्रगाढ़ता की झलक देता है। एक स्थान पर नायिका नायक के अधिकाधिक संसर्ग में आने की कामना करती हुई कहती है—

हे भगवान वास मैं होती प्रिय उस पर पग धरते।
अति कृतज्ञ होती, प्रिय पद की धूल मुझे तुम करते।[2]

यह राग की, प्रेम की चरम सीमा है। 'मैं घास हो जाऊँ और प्रिय मुझ पर पैर रखें, मैं धूल हो जाऊँ प्रिय के पैरों में लिपटूँ'—प्रेमी स्वयं को सर्वथा अकिंचन कर प्रिय में जैसे अपनेपन को समा देना चाहता है। इसी प्रकार प्रिय को अपने पलकों में मूँदकर रख लेने का भाव—किसी और को उसे नहीं देखने देने का भाव—'देखूँगी मैं फिर न और को तुम्हें देखने दूँगी'[3] प्रिय के प्रति प्रेमी की अनन्य प्रीति और लगाव प्रकट करता है।

श्रृंगार रस के दूसरे पक्ष वियोग या विप्रलम्भ श्रृंगार का वर्णन द्विवेदी युगीन काव्यों में संयोग पक्ष से अधिक विस्तृत हुआ है। इसका एक कारण कदाचित द्विवेदी युगीन मर्यादा सापेक्ष्यता है। संयोग-वर्णन में अश्लीलत्व का समावेश हो सकता है किन्तु वियोग की वेदना में, कचोट में अश्लीलता का अवकाश न के बराबर रहता है। भारतीय काव्य-शास्त्र में विप्रलम्भ श्रृंगार के चार भेद माने गये हैं-अभिलाषा हेतुक (पूर्वराग), ईर्ष्याहेतुक (मान),

---

१. गर्भरण्डा रहस्य : नाथूराम शंकर, पृ० १५।
२. पथिक : रामनरेश त्रिपाठी, चौथा सर्ग, पद ९, पृ० ४९।
३. वही, पद ३, पृ० ४८।

प्रवास हेतुक एवं करुण।[1] आलोच्य खण्ड काव्यों में अभिलाष-हेतुक और प्रवास हेतुक विप्रलम्भ को ही प्रायः स्थान मिला है। ईर्ष्या और करुण का समाहार न के बराबर हुआ है।

अभिलाष हेतुक विप्रलम्भ में स्वप्न-दर्शन, गुण-श्रवण या साक्षात-दर्शन से उत्पन्न पूर्वरागजन्य विरह आता है। अपने 'उषाहरण' खण्डकाव्य में रामदत्त राय शर्मा ने स्वप्न में ही अनिरुद्ध के प्रेम-पाश में आवद्ध की गई उषा के मुख से स्वप्न टूटने पर जो विरहजन्य उक्तियाँ कहलाई हैं, वे अभिलाष हेतुक वियोग-शृंगार के अच्छे उदाहरण हैं। इसी प्रकार 'इन्दुमती परिणय' में युवराज अज नींद में इन्दुमती का दर्शन करते हैं और उस पर आसक्त हो जाते हैं। नींद टूटने से प्रिय की वह छवि लुप्त हो जाती है। अज को प्रिय का इस प्रकार आँखों के सामने से दूर हो जाना सहन नहीं होता। इस वियोग में वे विलाप करते हैं—

नहीं अब नींद हू आवै, दरस प्रिय कौ जो चरव पावै,
कहाँ जाऊँ किसे पूँछू मुझे को हाल बतलावै?
मनोहर चित्त हरन मूरति कमल नयनी सुभग सूरत,
कहाँ हौ गुप्त हे प्यारी? यहाँ तव दास अति आरत।[2]

आलम्बन स्वप्नगत इन्दुमती है, अनुभाव सोने की चेष्टा, करवट बदलना है, उद्दीपन बार-बार आने वाली इन्दुमती की स्मृति है और संचारी उद्वेग, विषाद है।

प्रवास हेतुक विप्रलम्भ में कार्यवश, शापवश या संभ्रमवश नायक का देशांतर गमन होता है।[3] साथ ही प्रवासजन्य विरह तभी होगा जब नायक नायिका संभोग-रत हो चुके हों। मात्र दर्शन के बाद ही यदि दोनों एक दूसरे से बिछुड़ जायँ तो वह प्रवास हेतुक विप्रलंभ की कोटि में नहीं आयेगा। दुष्यन्त शकुन्तला का विरह इसी से प्रवास हेतुक विप्रलंभ की कोटि में आता

---

१. 'अपरस्तु अभिलाष विरहेर्ष्या प्रवास शाप हेतुक इति पंच विधः'
काव्यप्रकाश, उल्लास ४, रसभेद प्रकरण
'स च पूर्वराग मान प्रवास करुणात्मकश्चतुर्धास्यात्।' ३।१८७
—साहित्य दर्पण, कविराज विश्वनाथ।

२. इन्दुमती : खुन्नामल शर्मा, अष्टम तरंग, पृ० ३६।

३. 'प्रवासो भिन्नदेशित्वं कार्याच्छापाच्च संभ्रमात्।' ३।२०४
—साहित्य दर्पण, कविराज विश्वनाथ।

है, क्योंकि कण्व-ऋषि के आश्रम में उनका गांधर्व विवाह हो चुका था। राजा दुष्यन्त के छोड़कर चले जाने पर शकुन्तला का विरह प्रवास जन्य है-

कुसुमायुध दिनरात घात करता रहता है,
तव मिलनातुर देह दाह दुस्सह सहता है।
विधु-वियोग से विमुद कुमुदिनी होती सत्वर,
पर विधु-मन की कौन जान सकता है प्रियवर।[1]

यहाँ आलम्बन दुष्यन्त, उद्दीपन कुसुमायुध, अनुभाव प्रलाप, अश्रुपात तथा संचारी औत्सुक्य और विषाद है। विरहिणी अपनी विरहजन्य पीड़ा की बात कहते-कहते यह भी सोच रही है कि मेरे प्रिय की मेरे वियोग में क्या दशा होगी। प्रिय की मनः स्थिति के विषय में विरह-जन्य औत्सुक्य इस वर्णन की विशेषता है। औत्सुक्य की यह स्थिति स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक भी है। शाप-वश वियोग होने पर जब अँगूठी देखने पर दुष्यन्त को शकुन्तला की याद आ जाती है तो वे उसके विरह में संतप्त होते हैं—

यों ही विलाप करके थे नृप अधीर होते,
चैतन्य लाभ में फिर थे पूर्व तुल्य रोते।

वे स्वप्न का मिलन भी निद्रा बिना न पाते,
जो चित्र देखते तो थे अश्रु विघ्न लाते।

उद्यान में कभी वे उन्मत्त से विचरते,
करके स्मरण प्रिया का बहुविधि विलाप करते।

बस देखकर लताएँ उसके समान कुछ कुछ,
करते विलोचनों को सन्तोष दान कुछ कुछ।[2]

आलम्बन स्मृति में विद्यमान प्रिया की मूर्ति है। अनुभाव विलाप करना, उन्मत्त सा घूमना आदि हैं। उद्दीपन चित्र और लताएँ हैं। संचारी व्यग्रता, विषाद, याद आना आदि हैं, सब मिलकर वियोग श्रृंगार की सृष्टि करते हैं।

'वीर बाला' में अपने प्रिय के प्रवासी होने पर शान्ता का विलाप अत्यन्त मार्मिक है—

है मुझे पर दैव ने उनसे पृथक हा! कर दिया,
हाय! यह अधिकार भी है छीन अब मुझसे लिया।

---

१. शकुन्तला : गुप्त जी, तेरहवाँ संस्करण, पृ० १५।
२. शकुन्तला : गुप्त जी, स्मृति सर्ग, पृ० ३४-३५।

दूर हूँ कोसों, अलग हूँ नाथ से, प्राणेश से,
मैं यहाँ पीड़ित, वहाँ पर नाथ होंगे क्लेश से।[1]

यहाँ भी नायिका अपने क्लेश की बात करते-करते अपने प्रिय के विरह जन्य क्लेश के विषय में भी सोचती है।

श्री रामशरण गुप्त 'शरण' के 'पतिव्रतादर्श' खण्डकाव्य में प्रवास-जन्य विरह का अत्यन्त मार्मिक चित्रण हुआ है। भावुक कवि की सहृदयता चरम सीमा पर पहुँच गई है जब राजा नल के चले जाने पर विरह विदग्धा दमयन्ती की विरह वेदना को कवि ने वाणी दी है—

उस अबला के हृदय नित्य जलती विरहानल,
श्वास-लपट से झुलस गया था वदन-कमल-दल।
चक्षु मार्ग से अश्रु-पटल अविरत गति चलता,
अतः श्यामता पलकों पर थी, पुनि निर्बलता-
श्री अंग अंग से सूचना-व्याकुलता थी दे रही।
पर मधुर हास युत वचन का, पर्दा वह डाले रही।[2]

वियोग में दमयन्ती ही नहीं उसके प्रियतम नल भी अपनी प्रिया के विरह से व्याकुल हैं—

प्राण प्रिये! मम हिये नित्य तुम वास किये हो,
होता उर न विदीर्ण, क्योंकि सुख-आश दिये हो।
पर बिन देखे दर्श, दुखी दृग द्रवते दर दर-
व्यर्थ हुई हा दृष्टि, सृष्टि सब रही तिमिर भर।
सब समझ बूझ जाती रही,
नहीं सूझता पन्थ भी-
भगवन्त! दुःख वा देह का,
नहीं कहीं क्या अन्त भी।[3]

दमयन्ती के हृदय पट पर स्थापित छवि आलम्बन, आँखों का बरसना, इधर-उधर भटकना, दृष्टि का अशक्त सा लगना अनुभाव, प्रिय की याद उद्दीपन, विषाद, व्यग्रता संचारी हैं। आश्रय राजा नल वियोग श्रृंगार से परिपूरित अधीर और संतप्त हैं।

---

१. वीर बाला—चौथा सर्ग, पद २२, पृ० ३९।
२. पतिव्रतादर्श : रामशरण गुप्त 'शरण', उत्तरार्द्ध, पद १३९।
३. वही, छन्द ११५, पृ० ३।

श्री रामनरेश त्रिपाठी के 'पथिक' की नायिका अपने प्रवासी प्रिय को निद्रावस्था में देखती है पर जागते में स्पर्श क्या देखने को भी तरस जाती है—

सोकर खोती है दुनियाँ, मैं हाय ! जागकर खोती ।
आते पास आँख लगते ही, खुलते ही छिप जाते ।[1]

वियोग की एक स्थिति का बहुत स्वाभाविक चित्रण कवि ने किया है।

'कंस-वध' में कृष्ण के मथुरा चले जाने पर वियोगिनी गोपियों की मानसिक स्थिति का मनोवैज्ञानिक अंकन पाठक जी ने किया है, जब वे वायु को बरजती हैं—

न कर तू द्विगणित पीर समीर !
बना कर हमको अधिक अधीर,
उड़ाती बार-बार क्यों चीर,
जानती नहीं पवन ! पर-पीर।[2]
अश्रुगण ! करो हृदय में वास।
सींचते रहना प्रिय-आवास ।
कहीं यह प्रेम विरह की आग,
लगा दे नहीं हृदय में दाग।[3]

शापहेतुक विरह श्रृंगार का नियोजन विशेषतः गुप्त जी की 'शकुन्तला', आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव के 'उषाकाल', रामनरेश त्रिपाठी जी के 'पथिक', खुन्नामल शर्मा के 'इन्दुमती परिणय', 'वीर बाला', प्रसाद के 'प्रेम पथिक', अलगूराय 'आनन्द' के 'शान्ति प्रताप' आदि में हुआ है । शापहेतुक में नायक नायिका से दूर जाने को किसी शाप या विशेष दबाव से बाध्य किया जाता है । 'शकुन्तला' में अपने प्रिय के ध्यान में मग्न शकुन्तला को दुर्वासा ऋषि क्रोध-वश शाप दे देते हैं और उसी के प्रभाव से उसका प्रियतम उसे स्वीकार नहीं करता । वह वियोग में तिल-तिल जलती है—

अपने हत विधि की ही निन्दा की उसने रो रोकर।[4]
यही कहा उसने कि—कहाँ अब मैं अभागिनी जाऊँ ?
माँ धरणी ! तू मुझे ठौर दे, तुझ में अभी समाऊँ ।।[5]

१. पथिक : रामनरेश त्रिपाठी, चौथा सर्ग, पद ५, पृ० ४८ ।
२. कंस-वध : श्यामलाल पाठक, सप्तम सर्ग, पद ७, पृ० ५३ ।
३. वही, पद १०, पृ० ५४ ।
४. शकुन्तला : मैथिलीशरण गुप्त, तेरहवाँ संस्करण, पृ० ३१ ।
५. वही, पृ० ३२ ।

यह विरह की दयनीय अवस्था है, जब नायिका अपनी मृत्यु तक की कामना करने लगती है। यही दशा अँगूठी मिलने से वास्तविकता का भान होने पर नायक दुष्यन्त की होती है। उसे अपनी प्रियतमा के गुण और प्रीति बार-बार विह्वल करती है। उसका स्मरण कर करके वह अधीर होता है और अपने को कोसने लगता है—

शुचि सौम्य मूर्ति वैसी विधि ने रची न होगी,
पर इस विपत्ति से वह जीती बची न होगी।
कैसा नृशंस हूँ मैं, निज वंश-मूल-घाती,
तजते हुए प्रिया को मेरी फटी न छाती।[1]

'उषाकाल' में नरेन्द्र को राजाज्ञा द्वारा कारागार में रखने पर उसके वियोग में उसकी प्रियतमा की अवस्था का चित्र श्रीवास्तवजी ने दिया है-

बिखरे थे बाल, क्षत विक्षत हुआ था वेश,
मुख पर था न मानो जीवन का लेश शेष।[2]

'प्रेम-पथिक' में किशोर की प्रेयसी चमेली का सम्बन्ध जब दूसरे युवक के साथ कर दिया जाता है तो चमेली से अलग होने पर किशोर की व्याकुल उक्ति हृदय में करुणा जगाती है—

जीवन का सर्वस्व, प्रेम की पुतली किसको अर्पित है?
अहा चमेली से क्यों ऐसे अलग किया जाता हूँ मैं-
भग्न हृदय उस गृह से बिछुड़ा, जैसे टूटा फल तरु से।[3]

चमेली आलम्बन है, आह भरना अनुभाव, तरु से टूटे फल का ध्यान उद्दीपन, विषाद, व्यग्रता संचारी हैं। आश्रय किशोर के हृदय में करुणात्मक विप्रलम्भ शृंगार का उदय होता है।

'उषा-हरण' में अनिरुद्ध को वाणासुर द्वारा ब्रह्मशर के पाश में बाँध लेने पर वियोगिनी उषा उसकी अनिष्ट की आशंका से पछाड़ खाती है—

लखि प्रीतम वश-पाश, उषा व्याकुल अवनि परि,
मूर्छित किय अति त्रास, चेत नहिं कछु देहि हारि।[4]

---

१. शकुन्तला : मैथिली शरण गुप्त, तेरहवाँ संस्करण, पृ० ३४।
२. उषा काल : आनन्दी प्रसाद श्रीवास्तव, पृ० ७१।
३. प्रेम पथिक : जयशंकर प्रसाद, तृतीय संस्करण, पृ० १९।
४. उषा हरण : रामदत्त राय शर्मा, पृ० ३२।

राजा नल जुए में हार जाने पर वन चले जाते हैं। दमयन्ती भी उनके साथ जाती है, पर वे चुपचाप उसे सोती छोड़ चल देते हैं। दुर्दैव की मारी दमयन्ती जब जागती है तो प्राणनाथ को न पाकर आर्तस्वर में पुकारती है—

हा प्यारे, कित गये ? बता, तू ही, अब चातक !
वा मिथ्या कह पिया, किया पातक रे घातक !

\+ \+ \+

हा हृदय ! हहरि हत भाग्य क्यों खंड खंड होता नहीं।
रे जीव ! दुःखद यह देह तजि क्यों वियोग खोता नहीं।[1]

आलम्बन नल हैं, उद्दीपन चातक है, अनुभाव अपने को कोसना है, कंपन है, संचारी उद्वेग, आक्रोश, विषाद है। लेखक, पात्र और पाठक के भाव का तादात्म्य होता है।

करुण विरह नायक अथवा नायिका की मृत्यु होने पर किन्तु फिर उसके जी उठने पर होता है। द्विवेदी युगीन काव्यों में ऐसी परिस्थिति केवल एक काव्य 'भंग में रंग' में सावित्री सत्यवान की कथा में होती है। वहाँ सावित्री को विश्वास होता है कि वह सत्यवान को जिला लेगी अतः वह विलाप नहीं करती।

आलोच्य युग के कवियों ने संयोग वियोग दोनों प्रकार के श्रृंगार वर्णन में ऊहात्मक या वस्तु-व्यंजनात्मक शैली को स्थान नहीं के बराबर दिया है। भारतीय काव्य-शास्त्रीय परम्परागत रीति के अनुसार न तो संयोग पक्ष में इन कवियों ने नायिका भेद, उनकी चेष्टाओं, विकारों, दूती-प्रसंग आदि को महत्त्व दिया है न वियोग पक्ष में मान्य दस अवस्थाओं—अभिलाषा, चिन्ता, गुण कथन, स्मृति, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता, मरण सभी का रूढ़ रूप में वर्णन किया है। यथार्थ के धरातल पर अनुभूत प्रेम की सहज स्थितियों और सम्भावित गतियों का मर्यादित एवं स्वाभाविक चित्रण इस युग के श्रृंगार वर्णन की विशेषता है। 'मिलन' में विजया किसी भी हालत में आनन्द का साथ छोड़ने को तैयार नहीं। वह कहती है—

साथ रहूँगी, पद सेऊँगी, छाया सम सब काल।
मेरे नाथ ! न छोड़ूँगी मैं, यह तव बाहु विशाल।[2]

---

१. पतिव्रतादर्श : रामशरण गुप्त 'शरण', पूर्वार्द्ध, पद २९, ३०, पृ० १५।
२. मिलन : रामनरेश त्रिपाठी, नवाँ संस्करण, पृ० ९७।

इसी प्रकार—

शक्ति नहीं जो नाथ तुम्हारा, सुन भी सकूँ प्रयाण ।
रहते प्राण न जाने दूँगी, मेरे जीवन प्राण ।[1]
मेरे पथिक सघन छाया में होंगे कहीं जुड़ाते ।[2]

दूर बैठे प्रिय की बात-बात में याद आना कि इस समय वे ऐसा कर रहे होंगे, वियोग में भावनात्मक संयोग कराता है । आत्म प्रसार की यह भावना ही आनन्द की सर्जक है और आनन्द रस का मूल है ।

वीर और श्रृंगार रस के बाद इन खण्ड काव्यों में करुण रस को अन्य रसों की अपेक्षा अधिक स्थान मिला है । करुणा मानव हृदय की मूल प्रवृत्ति है । इसका प्रभाव मानव-मन पर बहुत व्यापक और गहरा होता है । इसीलिए काव्य में जहाँ भी करुण दृश्य की उद्भावना होती है, यदि शोक की अभिव्यक्ति सशक्त है तो वहाँ इसकी निष्पत्ति अन्य रसों की तुलना में शीघ्र और अधिक प्रभावशाली होती है । नायक नायिका या उनके किसी स्वजन के परलोक वास से शोक सन्तप्त होने पर करुण रस पर्यवसायी शोक का वर्णन किया गया है । जयद्रथवध, अभिमन्यु का आत्मदान, किसान, रसालवन, अनाथ, आत्मार्पण, वसुमती, सोहराब और रुस्तम, इन्दुमती परिणय आदि खण्डकाव्य करुण रस प्रधान हैं । कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

हाय प्रिया ! हे प्राण प्रिया ! तुम क्यों नहिं मो दिशि हेरौ ?
घोर नींद अस क्यों तुम सोई ? कित चलि कियौ बसेरौ ?
हाय वल्लभा ! तुम बिन मोकौं पल हौ मनौ बुगेरौ ।
सो तुम बिन मैं आज जियत जिय तजै न क्यों तन मेरौ ?[3]

आकाश से पुष्पमाल गिरने पर सुकुमारी इन्दु की दैवात् मृत्यु पर राजा अज के इस विलाप में इन्दु का पार्थिव शरीर आलम्बन है, अज का विलाप, रुदन अनुभाव हैं, विषाद, दैन्य, व्याकुलता संचारी हैं । इन सबसे परिपूर्ण होकर करुण रस का परिपाक हुआ है ।

सियारामशरण गुप्त के काव्य में करुण रस का प्राधान्य है । 'अनाथ' में मुरलीधर की भूख से मृत्यु का वर्णन पाठक को करुणार्द्र कर देता है—

१. मिलन : रामनरेश त्रिपाठी, नवाँ संस्करण, पृ० १२ ।
२. पथिक : रामनरेश त्रिपाठी, पद ११, पृ० ४९ ।
३. इन्दुमती परिणय : खुन्नामल शर्मा, नवम तरंग, पृ० १३७ ।

माँ जल ही दे कहा रुग्ण ने क्षीण-स्वर से—
यमुना के दृग-युग्म हो गये युग निर्झर से।

+ + +

माँ ! अब तो दे मुझे एक रोटी खाने को
भूख लगी है प्राण हो रहे हैं जाने को।
वह क्या देती ? हाय ! सिसक कर वह फिर रोई—
इन दुखियों का क्या न सहायक होगा कोई ?[1]

आलम्बन मरणासन्न मुरलीधर बालक है, अनुभाव यमुना का सिसकी लेना, बड़बड़ाना है, उद्दीपन अन्नाभाव, गरीबी है, आश्रय बालक की माँ यमुना है जिसकी शोक विह्वलता पाठक को भी शोक विह्वल बना देती है।

इसी प्रकार का एक दृश्य 'पथिक' में है, जब पथिक की भार्या विष का कटोरा उठाकर पी जाती है और प्राण-विहीन भूमि पर गिर जाती है। अबोध नन्हा बच्चा अपनी माँ की लाश से लिपट कर कहता है—

कहने लगा सो गयी क्यों तू माँ ! उठ चल अब घर को।
मुझे लगी है भूख अकेला जाऊँ कहाँ किधर को ?
माँ ! तू कुछ न खिलाती मुझको, कभी न दूध पिलाती,
सारे दिन रोती रहती है, खेल कभी न खिलाती।[2]

'जयद्रथवध' और 'अभिमन्यु का आत्मदान' में अभिमन्यु की मृत्यु पर युधिष्ठिर, अर्जुन, उत्तरा आदि का विलाप अत्यन्त मार्मिक है जो मन में करुणा का संचार किये बिना नहीं रहता—

फिर तो पीछे सुन हाल गिरे धरणी पर तुरत अचेत हुए,
फिर चेतित हो कातर स्वर से—सच बेटा ! क्या तुम खेत हुए ?
कहते उठ बैठे पागल से—तुमको अभि और बताना था।
हा ! दुख में मुझको त्याग, तुम्हें क्या चला अकेला जाना था।[3]

अभिमन्यु के चिर वियोग से शोक का स्थायी भाव घनीभूत हुआ है। आलम्बन बेटे का शव, अनुभाव कातर होना, अचेत होना, पागल सा प्रलाप करना, संचारी उद्वेग, मोह, उन्माद, अपस्मार हैं। एक और प्रसंग—

---

१. अनाथ : सियारामशरण गुप्त, प्रथम सर्ग, पद ११, १२, पृ० ६।
२. पथिक : रामनरेश त्रिपाठी, चौथा सर्ग, पद ३१, ३२, पृ० ५२।
३. अभिमन्यु का आत्मदान : कमलाप्रसाद वर्मा, सातवाँ सर्ग, पृ० २४।

हा ! नेत्र युत भी अन्ध हूँ, वैभव सहित भी दीन हूँ,
वाणी विहित भी मूक हूँ, पद युक्त भी गतिहीन हूँ ।
हे नाथ घोर विडम्बना है, आज मेरी चातुरी,
जीती हुई भी तुम बिना, मैं हूँ मरी से भी बुरी ।[1]

अभिमन्यु के शव को देखकर उसकी षोडषी पत्नी उत्तरा का यह हृदय-द्रावक विलाप करुण रस का उद्रेक करता है ।

'विकट भट' में जोधपुर के मद्यप राजा विजयसिंह द्वारा पोकरण सरदार देवीसिंह को मरवा दिये जाने की सूचना जब उसकी पत्नी के पास पहुँचती है तो उस शोक संतप्ता की अवस्था का करुण चित्र दो पंक्तियों में ही कवि ने पूरा खींच दिया है जो पाठक को करुणा विगलित कर देता है—

पृथ्वी पर लोट वह रोई डाढ़ मार के,
व्योम की भी छाती पर होने लगी लीक-सी ।[2]

'सुहराब और रुस्तम' में पिता के हाथों पुत्र की मौत पर उपस्थित करुण वातावरण सबकी आँखें नम कर देता है । अपरिचित योद्धा जिसे रुस्तम ने द्वन्द्व युद्ध में जान से मार दिया, स्वयं उसी का पुत्र था । जब रुस्तम को यह पता चलता है तो वह अपने आप को धिक्कारता है, कोसता है, बिलखता है—

पिताजी साम का वंशज यही है ।
अहो मुझ पतित का अंशज यही है ।
घराना आपका मैंने डुबाया ।
कफन में पुत्र को अपने सुलाया ॥

तुम्हें किस भाँति मुँह अपना दिखाऊँ ।
कहाँ जाऊँ, करूँ क्या, गरल खाऊँ ?
अरी माँ आ कड़ी कर आज छाती,
कफन में देख ले सुहराब नाती ।[3]

तनय मेरे न अब मुझको रुलाओ,
तुम्हीं क्यों सो गये मुझको सुलाओ ।

---

१. जयद्रथ वध : मैथिलीशरण गुप्त, साठवाँ संस्करण, पृ० ८६ ।
२. विकट भट : मैथिलीशरण गुप्त, चतुर्थावृत्ति–२००३ वि०, पृ० ९ ।
३. सुहराब और रुस्तम : विद्याभूषण विभु, सप्तमोच्छ्वास, पद २६, २७, पृ० ४२ ।

न रूठो पुत्र ! मुझ से, शीघ्र आओ,
मधुर वाणी मुझे अपनी सुनाओ।[1]

आलम्बन सुहराब की मृत देह है, अनुभाव रुस्तम का आँसू बहाना, छाती पीटना है, उद्दीपन पुत्र की मीठी वाणी आदि की स्मृति है, संचारी ग्लानि, विषाद, स्मृति आदि हैं। शोक का संवेग इतना तीव्र है, अभिव्यक्ति इतनी मार्मिक है कि पाठक उससे तादात्म्य स्थापित करता है। फलतः यहाँ करुण रस की निष्पत्ति हुई है।

हास्य रस द्विवेदी युगीन खण्डकाव्यों में बहुत कम प्राप्त होता है, क्योंकि उस युग में मनोविनोद और मनोरंजन को कवियों ने नगण्य स्थान दिया है। 'मैथिली-मंगल' में जानकी के विवाह के उपरान्त 'कुँवर कलेवा' आदि प्रसंगों में युवती सालियाँ राम के साथ परिहास करती हैं—

नाते में वह भावी कान्ता आपकी,
होती जाती, श्वश्रु माता आपकी।
रसिक राज, हे कौशलेन्द्र बतायेंगे,
विकट समस्या को किस विध सुरझायेंगे ?[2]

इसी प्रकार एक कन्या बैठे हुए राम के जामे को पलंग की चादर से बाँध देती है, जब राम उठते हैं तो चादर भी साथ में खिच जाती है और सब लोग हँस पड़ते हैं। कवि लिखता है—

एक सुदामा ने जामा को राम के,
पलंग-वसन में बाँध दिया बहु दाम के।

जाने को प्रभु उठे कमल धर हाथ में,
खिंचकर जाने लगा वसन भी साथ में।[3]

हास्य-रस के प्रसंग में जानकी की ननद की उस समय की ठिठोली उल्लेखनीय है, जब जानकी पहिली बार रसोई में खाना बनाने जाती हैं। ननद कहती है।

---

१. सुहराब और रुस्तम : विद्याभूषण विभु, अष्टमोच्छ्वास, पद १८, पृ० ४६।
२. मैथिली मंगल : शुकलाल प्रसाद, कुँवर कलेवा सर्ग, छन्द ११४, पृ० ७७।
३. मैथिली मङ्गल : पं० शुकलाल प्रसाद, प्रमोद सर्ग, छन्द १४८–१५०, पृ० १२२–१२३।

भाभी ! नमक यह है इसे तुम डाल देना क्षीर में,
ये हैं करेले, छोड़ देना रायता औ खीर में।
यह गुड़ इसे तुम भाजियों में छोड़ देना सत्य ही,
मत भूल जाना, डाल देना दाल में भी यह दही।[1]

इस निर्देश तालिका को पढ़ते-पढ़ते पाठक अनायास मुस्करा उठता है।

रौद्र-रस का समावेश भी इन काव्यों में हुआ है। रौद्र का स्थायी भाव क्रोध है। अधिक उत्साह से आवेश और आवेश से परिस्थितिजन्य क्रोध उत्पन्न होता है। इसी से प्रायः वीर रस के वर्णन के साथ ही रौद्र रस का वर्णन मिलता है। 'आत्मार्पण' में हाँडारानी के कटे सिर को देखकर चूड़ावत के उत्साह में क्रोध मिल जाता है और वह रौद्र रूप धारण कर लेता है—

धन्य कह कर 'जयति दुर्गे' बोलकर,
शीश का लम्बा चुटीला खोलकर।
ग्रीव-ग्रंथित शीघ्र जूड़े को किया,
रक्त रंजित सिर हृदय पर धर लिया।
शीश बाला का हुआ शोभित नया,
मुण्डमाली वीर 'हर' सा बन गया।
तेज की नव दीप्ति उसमें छा गई,
या स्वयं देवी हृदय में आ गई।[2]

आलम्बन रक्तरंजित कटा सिर है, अनुभाव जोर जोर से जयकार करना, चुटीले की माला बनाकर पहिनना आदि, संचारी आवेग, उग्रता आदि हैं। इसी क्रोधावेश में चूड़ावत कह उठता है—

धर्म विरोधी मिलें शत्रु जो,
कर दो उनका छेदन भाल।
अरि-शोणित से रण-चण्डी का,
खप्पर भरो, लाल तत्काल।[3]

'इन्दुमती परिणय' में स्वयंवर में पराजित होने पर जब राजा लोग अज से युद्ध करने लगे तो वह क्रुद्ध हो उठा। उस वीर का कोप रौद्र रूप में बदल गया। वह ताक ताक कर एक एक का संहार करने लगा, यथा—

१. मैथिलि मंगल : पं० शुकलाल प्रसाद, प्रमोद सर्ग, छन्द ७४, पृ० २१२।
२. आत्मार्पण : द्वारिकाप्रसाद गुप्त 'रसिकेन्द्र', चतुर्थ सर्ग, पृ० ३६।
३. वही, पंचम सर्ग, पृ० ४२।

निज बैरी पहिचान रोष करि करि शर मारैं।
प्रकटत निज निज शक्ति नाम कुल देव उचारैं।
भयो जबहिं गज युद्ध चक्र दुहुँ दिशि तैं चालै।
कटे अनगिनत शीश उड़ै, शर अन्तर घालै ॥[1]

'कीचक वध' में कीचक द्वारा द्रौपदी से अश्लील, अभद्र व्यवहार किये जाने पर भीम के मन में क्रोध उत्पन्न होता है। पूर्व योजना के अनुसार वह द्रौपदी का वेश बदलकर बैठता है और कीचक के आते ही क्रोधपूर्वक उस पर चढ़ दौड़ता है—

भट भीम हटाकर मुख से घूँघट का पट
पकड़ा कीचक का केश पाश जाकर झट
बोले, 'हे कामी ! देख सुन्दरी आई
तेरे चुम्बन हित मृत्यु संग ले आई
घमसान युद्ध होने लग गया परस्पर
गिर गया अन्त में कीचक पृथ्वी तल पर
ज्यों पिसिताकांक्षी सिंह चढ़े हाथी पर
त्यों भीम कूद कर पहुँच गये छाती पर।[2]

आलम्बन कीचक, अनुभाव बाल पकड़ना, छाती पर चढ़ना, व्यंग्य करना है, उद्दीपन कीचक की चेष्टाएँ हैं, संचारी अमर्ष, आवेश आदि हैं। विभाग, अनुभाव, संचारी के समायोजन से क्रोध रौद्र रस में परिणत हो गया है।

'मौर्य विजय' में भी एक स्थान पर रौद्र का उद्रेक हुआ है, जब सिल्यूकस क्रोधित होकर चन्द्रगुप्त को ललकारता है।[3]

वीभत्स रस का स्थायी भाव जुगुप्सा है। किसी वीभत्स दृश्य को देख कर मन में घृणा का भाव उत्पन्न होता है, वितृष्णा होती है, हम आँख मूँद मुँह फेर लेते हैं या वहाँ से हट जाना चाहते हैं, यही वीभत्स की पहिचान है। 'चित्तौड़ विध्वंस' का निम्नलिखित वर्णन द्रष्टव्य है—

थे मुण्डहीन अनेक कितने रुण्ड थे बहु लुण्ड थे।
थे भुण्ड रण में पिण्ड के बहु रक्त-पूरित कुण्ड थे।

---

१. इन्दुमती परिणय : खुन्नामल शर्मा, पंचम सर्ग, पृ० ९५।
२. कीचक वध : शिवदास गुप्त 'कुसुम', पंचम सर्ग, अन्तिम ३ छन्द।
३. मौर्य विजय : सियारामशरण गुप्त, संस्करण २०३० वि०, पृ० २६।

मार्तण्ड-मण्डल के सदृश शिर ले रहे बहु तुण्ड थे ।
थे खण्ड खाते पिण्ड के सुप्रचण्ड शिव के झुण्ड थे ।।[1]

यहाँ रुण्ड, लुण्ड, भुण्ड रक्त पूरित कुण्ड आदि आलम्बन विभाव हैं, पिण्डों के खण्ड खाते हुए सियारों के समूह उद्दीपन हैं, अपस्मार, मोह, आवेग संचारी हैं, अनुभाव वितृष्णा है। इस समग्र सामग्री के सम्मिलन से वीभत्स रस की निष्पत्ति हुई है ।

इसी प्रकार 'इन्दुमती परिणय' का निम्नलिखित अंश लिया जा सकता है—

इक नाग अति बलवन्त योधन दंत बिच धरि दाबहीं ।
गहि सुंड मद्दत मुंड करि करि खंड बहु महि डारहीं ।
बहु बहत डोलत रुण्ड मुंडन कोउ काकर पूछहीं ।
दल बाँधि जम्बुक आय बहु विधि स्वाद लै लै भक्षहीं ।।[2]

आलम्बन भूमि पर पड़े खण्डित मुण्ड और रुण्ड, उद्दीपन श्रृंगालों का स्वाद ले लेकर उन्हें खाना, संचारी अपस्मार आदि, अनुभाव वितृष्णा आदि हैं जो वीभत्स का संचार करते हैं। ऊपर की दो पंक्तियों में भयानक रस की झलक मिलती है ।

'सैरन्ध्री' में भीम का कीचक को आलिंगन में लेकर मसल देना मन में भय का भाव जाग्रत करता है। कवि ने जिस ढंग से उसे प्रस्तुत किया है कि उसका गला घुट गया, साँस आ जा नहीं सकी, मुख, आँख, कान, नाक से खून का फव्वारा छूट गया, हड्डियाँ चड़ चड़कर टूट गईं, यह सब मन में जुगुप्सा पैदा करता है। यथा—

चिल्लाता क्या शब्द-सन्धि थी किधर गले की ?
आ जा सकी न साँस उधर से इधर गले की ।
मुख, नयन, श्रवण, नासादि से शोणितोत्स निर्गत हुआ ।
बस हाड़ों की चड़ मड़ हुई, यों वह उद्धत हत हुआ ।[3]

यहाँ कवि की प्रवृत्ति मात्र वीभत्स के प्रस्तुतीकरण की ओर नहीं है। भीम का भीमत्व, अद्भुत शौर्य और कीचक का क्रूर विनाश दिखाना भी कवि का इष्ट है। अतः निस्सृत रस वीर का सहायक भी कहा जा सकता

१. चित्तौड़ विध्वंस : कालीप्रसाद शास्त्री 'श्रीकर', पद ९, पृ० ५ ।
२. इन्दुमती परिणय : खुन्नामल शर्मा, पंचम तरंग, पृ० ९६ ।
३. सैरन्ध्री : मैथिलीशरण गुप्त, सप्तम आवृत्ति २००३ वि०, अन्तिम पृ० ३१ ।

निरखत छवि ह्वै विह्वल घोर निद्रा बस सोई,
बदन तजी निज कान्ति अंग निज सुखमा गोई।
राहु ग्रसत जनु चन्द लगति नभ चाँदनी फीकी,
तस मलीन मुख युक्त लसी सुखमा अंग तीकी।[1]

नीचे उतरती अलौकिक पुष्पमाल आलम्बन है, अनुभाव राजा का विह्वल होकर देखना है, संचारी आवेग और संभ्रम है।

'कंस वध' में कवि ने देवकी के आठवें जन्मजात शिशु का बात करना दिखलाया है—

शीघ्र ही बोले वे नवजात
हमें ले चलो नन्द गृह तात।[2]

जैसे ही वसुदेव शिशु कृष्ण को लेकर बाहर निकले—

बन्द ही सहसा हुये कपाट
जोहते थे मानो वे बाट।[3]

इसी प्रकार कंस ने नवजात कन्या को मारने के लिये उठाया तो वह आकाश में उड़ गई—

उठाई ज्यों ही करने अन्त
रह गया वह करता हा ! हन्त !!
व्योम में विद्युत के वह तुल्य
शीघ्र उड़ गई शक्ति बाहुल्य।[4]

नवजात कन्या का आकाश-गमन आलम्बन है, भौचक्का होना अनुभाव है, आवेग, संभ्रम संचारी हैं।

द्विवेदी युगीन खण्ड काव्यों में शान्त रस 'पथिक, प्रेम-पथिक, धर्मवीर,- हकीकतराय, गंगावतरण, मैथिली मंगल, उषाकाल, देवदूत आदि में मिलता है। शान्त रस का स्थायी भाव निर्वेद है। 'पथिक' में कवि ने एक साधु पुरुष का आविर्भाव कराया है जो पथिक को मानव मात्र की सेवा हेतु उत्प्रेरित करता है और कर्म के दार्शनिक पक्ष का बोध कराता है। पथिक

१. इन्दुमती परिणय : पं० खुन्नामल शर्मा, नवम तरंग, पृ० १३४।
२. कंस वध : श्यामलाल पाठक, तृतीय परिच्छेद, पद २९, पृ० २४।
३. वही, चतुर्थ परिच्छेद, पद १९, पृ० २६।
४. वही, पद २७, पृ० ३१।

प्रकृति-प्रेमी है और प्रकृति के सर्जक को महत्ता देता है। उसके हृदय में निर्वेद का भाव विद्यमान है जिसकी झलक निम्नलिखित उक्तियों में मिलती है—

एक पथिक स्वच्छन्द समुद्र-समीरण का अनुरागी,
विश्व समान हृदय का स्वामी, हर्ष-विमर्ष-विरागी।[१]
शान्त स्वर्ग सुख छोड़ कहाँ संसार नरक में जाऊँ ?
हीरा सा जीवन ले क्यों कौड़ी के मोल बिकाऊँ ?[२]

संसार की असारता आलम्बन है, उद्दीपन संसार के नाटकीय दृश्य, रम्य कानन आदि हैं, अनुभाव संसार से उदासीनता है, संचारी हठी, मति हैं।

कवि ने 'धर्मवीर हकीकतराय' में कहा है—

माता पिता पत्नी सभी का चन्द दिन ही साथ है।
अरु पाँच तत्वों से रचा यह देह नश्वर पाथ है।[3]

+ + +

सुशरीर जरजर जीर्ण तरु को छोड़ना नर-धर्म है,
नित नूत देही धारना जीवात्मा का कर्म है।[४]

यहाँ भी संसार की नश्वरता का बोध निर्वेद का भाव उत्पन्न करता है।

इन काव्यों में इस प्रकार के भी उदाहरण मिलते हैं जिनमें निर्वेद केवल वक्तव्य एवं उपदेश तक ही सीमित रह जाता है, निर्वेद का भाव रस दशा तक नहीं पहुँच पाता है। जैसे—

भव सिन्धु तारक स्वद प्रभु ! शुभ धर्म ही जलयान है,
अति श्रेय इसको कह रहे जितने जगत मतिमान हैं।
तज इसलिए आश्रय ग्रहण सब सौख्य लौकिक को तथा,
अनुरक्त रहना चाहिए, शुभ कर्म में ही सर्वदा।

'प्रसाद' ने अपने 'प्रेम-पथिक' में नायक किशोर के द्वारा नायिका चमेली को भी अपना प्रेम विश्वात्मा के प्रेम में मिला देने को उन्मुख कर शान्त रस का प्रतिपादन किया है—

आत्मसमर्पण करो उसी विश्वात्मा को पुलकित होकर,
प्रकृति मिला दो, विश्व प्रेम में, विश्व स्वयं ही ईश्वर है।[५]

---

१. पथिक : रामनरेश त्रिपाठी, पहिला सर्ग, संस्करण १९५१, पद २, पृ० १७।
२. वही, पद ५९, पृ० २६।
३. धर्मवीर हकीकतराय : ठा० गदाधर सिंह भृगुवंशी, पद १३३, पृ० ३४।
४. वही, पद १५३, पृ० ३९।
५. प्रेम पथिक : जयशंकर प्रसाद, पृ० ३०।

काव्य शास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित इन नौ स्थायी भावों के अतिरिक्त वात्सल्य और भक्ति की भी परवर्ती विवेचकों ने रस की श्रेणी में गणना की है।

वात्सल्य के अन्तर्गत माता-पिता का अपनी सन्तान के प्रति प्रेम आता है। द्विवेदी-युगीन काव्य—'अनाथ, कंस वध, मैथिली मंगल, जयद्रथ वध, शकुन्तला, धर्मवीर हकीकतराय, करुणालय, सुहराब और रुस्तम, विकट भट' आदि खण्डकाव्यों में वात्सल्य का चित्रण मिलता है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

धुलाऊँगी किसका फिर पंक ?
किसे लूँगी सप्रेम स्वअंक ?
पिन्हाऊँगी किसको पट-पीत ?
खिलाऊँगी किसको नवनीत ?[1]

'कंस वध' में माँ यशोदा कृष्ण के मथुरा जाने से अधीर हैं। पुत्र कृष्ण आलम्बन, अनुभाव व्यग्र होना, प्रलाप करना है, उद्दीपन पीत पट और नवनीत आदि कृष्ण की प्रिय वस्तुएँ हैं, संचारी चिन्ता, मोह, विषाद हैं। आश्रय यशोदा माँ के हृदय में वात्सल्य-विरह का परिपाक हुआ है।

'शकुन्तला' के 'विदा-सर्ग' में ऋषि कण्व अपनी पालित पुत्री को पति के घर भेजते समय विह्वल हो उठते हैं। पिता का वात्सल्य इन पंक्तियों में उमड़ पड़ा है—

वेदी खुदती देख हरिण शृंगों के मारे-
बेटी ! कहकर किसे बुलाऊँगा मैं द्वारे !
किसको आया देख शान्त वे हो जावेंगे,
अपनी खोई हुई सम्पदा को पावेंगे।[2]

इसी प्रकार 'मैथिली मंगल' में सुनयना बेटी जानकी को पति-गृह को विदा करते समय ममतावश विह्वल हो उठती है। वात्सल्यजन्य विरह का यहाँ पूर्ण परिपाक हुआ है—

तू थी मेरे कर्म्म मार्ग की दीपक-शिखा उदारा,
तेरे बिना हुई मैं अन्धी, जीवन भी अँधियारा।

---

१. कंस वध : श्यामलाल पाठक, षष्ठ सर्ग, पद ३५, पृ० ४९।
२. शकुन्तला : मैथिलीशरण गुप्त, तेरहवाँ संस्करण, पृ० २६।

इस घर में कर मुझे अकेली बेटी तू जाती है,
तव वियोग पीड़ा की औषधि कुछ न दृष्टि आती है।[1]

विदा होती बेटी आलम्बन है, रुदन, अन्धी जैसी होना, प्रलाप करना अनुभाव है, घर में अकेले होना, बेटी की स्मृतियाँ, उद्दीपन है, विषाद, व्यग्रता, मोह संचारी है। इसी प्रकार 'दृग-पथ में—हे बेटी'[2] अंश भी द्रष्टव्य है।

'मौर्य विजय' में सिल्यूकस का पितृ वात्सल्य उस समय प्रकट होता है, जब वह एथेना की इच्छा को महत्त्व देकर चन्द्रगुप्त से उसकी शादी की स्वीकृति देता है—

एथेना भी है चाहती उसे चित्त से सर्वथा।
क्या पहुँचा सकते हैं कभी हम उसके मन को व्यथा?[3]

इसी सन्दर्भ में 'पतिव्रतादर्श' का सुनन्दा सहवास का प्रकरण उल्लेखनीय है, जब चेदिराज की माँ दमयन्ती को अपनी बेटी मानकर वात्सल्य देती है-

सचमुच माता हृदय कमल से उस युवती को,
चिपटा कर मुख पोंछ रही थी, वह धरती को।
थी देख रही, दृग से बही धार मही पर और सब,
चुपचाप चित्र से थे खड़े, स्वर्ग बना वह ठौर सब।[4]

विदेशी शासकों द्वारा किये गये उत्पाड़न की स्थिति में ईश्वर को ही त्राणकर्त्ता मानकर इस युग के कवियों ने अपने काव्यों में भक्ति को पर्याप्त स्थान दिया है। जैसे—

जगन्नियन्ता की इच्छा से यह संसार बना है।

\+ \+ \+

मैं कर चुका समर्पण सब कुछ इच्छा पर ईश्वर की।[5]

---

१. मैथिली मंगल : शुकलाल प्रसाद पाण्डेय, विदा सर्ग, छन्द ११७, पृ० १६८।
२. वही, छन्द ११९, पृ० १६८।
३. मौर्य विजय : सियारामशरण गुप्त, तृतीय सर्ग, पृ० २९।
४. पतिव्रतादर्श : रामशरण गुप्त 'शरण', पूर्वार्द्ध, पद १०६, पृ० ४९।
५. पथिक : रामनरेश त्रिपाठी, द्वितीय सर्ग, छन्द ५१, पृ० ३३, ३४।

अहो ! जग प्रभु-लीला स्थान,
उसी माली का यह उद्यान ।[1]

और किसे अब यहाँ हमारा ध्यान है ?
ऊपर नीचे वही एक भगवान है ।[2]
ईश-रक्षक है हमारा आपका,
दण्ड देगा पापियों को पाप का ।[3]

द्विवेदी युग में अपने खण्ड काव्यों के प्रारम्भ में प्रायः सब कवियों ने वन्दना रूप में अपनी भक्ति भावना प्रकट की है। बाबू शिवदास गुप्त 'कुसुम' ने अपने 'कीचक वध' में ईश्वर से अटल भक्ति माँगी है--

हे सम्बल ! मुझ बल विहीन को जीवन बल दो,
भक्तिभवन ! निज भक्ति भावना मुझे अटल दो।
हे अनन्त तव चरण कमल में मेरी गति हो,
हे कवि ! तव कविता कलाप में अविचल रति हो।

इसी प्रकार रामशरण गुप्त 'शरण' ने 'पतिव्रतादर्श' के आरम्भ में जगदीश्वर की भक्ति प्रदर्शित की है—

श्री जगदीश्वर ! जग प्रतिपालक ! जन रखवारे।
असुरारे ! हे हरे ! मुरारे ! मुनिगण प्यारे।
जय जय पूरण काम, राम, सुखधाम नाम तव,
जिसकी घट रट लगा, साधु चटपट तरते भव।
सब शोक हरण ! अशरण-शरण ! दारुण दुःख दरिद दरण।
हे प्रेम भरण ! प्रभु दीजिये, चरण-शरण चाहे शरण।

भक्ति प्रधान काव्यों का प्रायः इस युग में अभाव है, किन्तु ईश्वर में आस्था का स्वर अधिकांश काव्यों में प्राप्त होता है। प्रायः सभी काव्यों का आरम्भ भी ईश-वन्दना से ही होता है।

काव्य-शास्त्र में वर्णित इन स्थायी भावों के अतिरिक्त मानव-मन में बार-बार उठने वाले अनेक भावों का समावेश इन काव्यों में हुआ है। शृंगार

---

१. कंस वध : श्यामलाल पाठक, षष्ठ सर्ग, पद ६, पृ० ४२।
२. किसान : मैथिलीशरण गुप्त, सर्वस्वान्त शीर्षक, संस्करण २००५ वि०, पृ० २४।
३. आत्मार्पण : द्वारिकाप्रसाद गुप्त, द्वितीय सर्ग, पद १८, पृ० १५।

के अतिरिक्त प्रेम की व्याप्ति जो देश-प्रेम, प्रकृति-प्रेम, मानव-प्रेम आदि के रूप में प्रकट होती है। प्रेम की भावात्मक सत्ता और उसकी उदात्तता का वर्णन स्वतन्त्र रूप से इन काव्यों में मिलता है, जैसे—

प्रेम स्वर्ग है, स्वर्ग प्रेम है,
प्रेम अशंक अशोक।
ईश्वर का प्रतिबिम्ब प्रेम है,
प्रेम हृदय आलोक।[1]

मिलन अन्त है मधुर प्रेम का,
और विरह जीवन है।
विरह प्रेम की जाग्रत गति है,
और सुषुप्ति मिलन है।[2]

एक प्रेम ही सारे जग का,
होता आया है आधार।
जगत प्रेम पर ही स्थिर है,
ऐसा किया गया निर्धार।[3]

देश-प्रेम से तो लगभग सभी काव्य ओत-प्रोत हैं। द्विवेदी युग में भारत पराधीन था। स्वतन्त्र होने के लिए संघर्ष के बीच स्थान-स्थान पर देश-प्रेम फूटा पड़ता है, जैसे—

निज देश-रक्षा का अहो जिसको नहीं कुछ ध्यान है,
प्राणेश! वह पशु तुल्य है, सप्राण मृतक समान है।[4]

सम्पूर्ण विश्व में अपने देश के जयगान का प्रसार करने की भावना भी देश-प्रेम का ही रूप है—

हे भगवान! विश्व में गूंजे,
इसी पवित्र गान की तान।

---

१. मिलन : रामनरेश त्रिपाठी, दूसरा सर्ग, बारहवाँ संस्करण, पृ० २९।
२. पथिक : रामनरेश त्रिपाठी, पहिला सर्ग, संस्करण १९५१, पद १२, पृ० १९।
३. चारण : श्रीवर, नवम् परिच्छेद, पृ० ३०।
४. वीरांगना वीरा : ठा० भगवतसिंह, पद ३४, पृ० ९।

जय जय पूज्य देश ! जय भारत !
जय जय प्यारे हिन्दुस्थान ।[1]

'मौर्य विजय' में भी देश-प्रेम का स्वर मुखर है—

आओ वीरो ! आज देश की कीर्ति बढ़ा दें,
सबके सम्मुख मातृभूमि को शीश चढ़ा दें।
शत्रु जनों को मार यहाँ से अभी हटा दें,
उनका घोर घमण्ड सदा के लिए घटा दें।
संसार देख ले फिर हमें, तुच्छ नहीं हैं हम कभी,
निज भारतीय बल-वीर्य्य का आओ, परिचय दें अभी ।[2]

द्विवेदी-युगीन खण्डकाव्यों में प्रकृति वर्णन उद्दीपन रूप में कम आलम्बन-रूप में अधिक हुआ है। प्रकृति कवियों के लिए साधन न बनकर साध्य बनी है। प्रकृति से निकट सम्बन्ध स्थापित करके कवियों ने लिखा है जिसे पढ़ते समय प्रकृति के प्रत्यक्ष दर्शन और सन्निध्य का सुख प्राप्त होता है। जैसे—

तरल तरंगवती रवितनया बहती थी कलरव करती,
शशि तारक चंचल छाया पड़ श्यामल जल में मन हरती।
विमल विभा वर विधु की सरि में विशद छटा छिटकाती थी,
विकसित-वदन नवल कुमुदों का चुम्बन कर मुद पाती थी ।[3]

शुक्ल जी ने इस प्रकार यमुना के मनोरम प्राकृतिक दृश्य का स्वतन्त्र रूप में सूक्ष्म और यथातथ्य वर्णन प्रस्तुत कर पाठक को प्रकृति के सान्निध्य का लाभ उठाने का अवसर प्रदान किया है।

रीतिकालीन कवियों की भाँति इस युग के कवियों ने उद्दीपन के रूप में प्रकृति चित्रण नहीं किया है। स्वतन्त्र रूप से प्राकृतिक सुषमा का रसास्वादन करने और मन के रंजन के लिए ही प्रायः कवियों ने प्रकृति की विविध मनोहर छवियों को रूपायित किया है। इस प्रकार आलम्बनगत प्रकृति चित्रण के अतिरिक्त आलोच्य युग में पृष्ठभूमि, अलंकार, मानवीकरण, उपदेश, रहस्य एवं उद्दीपन के रूप में भी प्रकृति चित्रण किया गया है।

**आलम्बन रूप में**—सूर्य-चन्द्र, नदी-नाले, बाग-बगीचे, धरती-अम्बर,

---

१. आत्मार्पण : द्वारिकाप्रसाद गुप्त 'रसिकेन्द्र', पंचम सर्ग, पद ३३।
२. मौर्य विजय : सियारामशरण गुप्त, द्वितीय सर्ग, पृ० १५।
३. रसाल-वन : गिरिजादत्त शुक्ल, कालिन्दी तीर।

पशु-पक्षी, फूल-पत्ते, सिन्धु-पर्वत आदि के सौंदर्य का ऐसा हृदय-स्पर्शी वर्णन कतिपय कवियों ने किया है कि पाठक अपने को प्रकृति के बीच अनुभव करने लगता है। लगता है जैसे वह उस दृश्य को प्रत्यक्ष देख रहा हो। उदाहरणार्थ-

प्रतिक्षण नूतन वेश बनाकर रंग विरंग निराला।
रवि के सम्मुख थिरक रही है नभ में वारिद माला।[1]

सूर्य के सामने बदली का नृत्य एक मोहक दृश्य उपस्थित करता है। इसी प्रकार—

कलकल करता हुआ सिन्धु-नद बहता जाता,
रजत कान्तिमय विमल सलिल मन को ललचाता।
उसमें निज प्रतिबिम्ब-व्याज से आकर तारे-
क्रीड़ा सी कर रहे, विपुल सुन्दरता धारे।
बालू फैली तट-प्रान्त में जो दृगन्ति पर्यन्त है,
वह विधु-किरणों से चमककर हुई रुचिर अत्यन्त है।[2]

कल-कल करती हुई सिन्धु नदी की धारा, उसका चाँदी सा चमकता जल, उसमें तारों का प्रतिबिम्ब, दूर-दूर तक फैली रेत और चाँदनी में उसका चमकना-पढ़ते पढ़ते दृश्य जैसे साकार होकर आँखों के आगे खिच जाता है और मन अभिभूत हो उठता है—।

'गंगावतरण' में रत्नाकर जी ने प्रकृति के सौंदर्य को छन्द में बन्दी कर लिया है—

दिव्य द्रुमनि की पाँति,लसति बहु भाँति सुहाई।
ललित लता बहु लहलहाति जिनसौं लिपटाई॥
स्याम बरनि मन हरनि नदी कृस्ना अति निर्मल।
कलित-कंज-बहुरंग बहति तहँ मंजु मधुर जल॥[3]

मनोहर सरिता, सुन्दर खिले बहुरंगी कमल—सब मिलकर ऐसा दृश्य उपस्थित करते हैं कि पाठक बरबस मुग्ध हो जाता है।

'वीरबाला' का निम्नलिखित चित्रण भी दर्शनीय हैं—

वायु शीतल चल रही है, है सुहाना सा समय,
बाल रवि ने कर दिया सारा विपिन है स्वर्णमय।

---

१. पथिक : रामनरेश त्रिपाठी, पंचम सर्ग, पृ० १९।
२. मौर्य विजय : सियारामशरण गुप्त, प्रथम सर्ग, पृ० ८।
३. गंगावतरण : जगन्नाथदास रत्नाकर, सर्ग ४, छन्द १२।

पुष्प वृक्षों पर मनोहर पक्षिगण है गा रहा,
या मधुर मृदु गान में माधव महत्व सुना रहा ।[१]

भोर की मनोरम वेला में बाल रवि ने उदित होकर सम्पूर्ण वन को सोने के रंग में रंग दिया है। पक्षी चहचहा रहे हैं, शीतल हवा चल रही है। यह सुहावना दृश्य मन को बाँधता है।

**पृष्ठभूमि रूप में**—कवि को जब कोई विशेष बात कहने के लिए किसी विशेष वातावरण की अपेक्षा होती है, तब प्रकृति का सहारा लेकर वह एक पृष्ठभूमि तैयार करता है। जैसे–'कंस वध' के एक प्रसंग में—

प्रकृति क्या सुन्दर सजती साज,
प्रकट जब होता दिनकर-राज ।
मुदित पक्षी-रव सुखद महान,
बताता निशीथिनी-अवसान ।[२]

कृष्ण-जन्म की पृष्ठभूमि के रूप में कवि ने यहाँ इस दृश्य का संयोजन किया है। जब सूर्य उदय होता है तो प्रकृति सुन्दर स्वरूप धारण करती है। प्रसन्न पक्षियों के मधुर कलरव से रात्रि का अवसान होकर सूर्य का आगमन होना प्रकट होता है। ऐसे उल्लासमय वातावरण का चित्रण करके कवि दुःख रूपी रात्रि के अन्त और बाल-रवि कृष्ण के आगमन का संकेत करता है।

'स्वतन्त्रता पर वीर बलिदान' में कवि ने युद्ध की पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति को इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

पद-रज ने उड़कर किया सूर्य शशि मण्डल झम्पित,
लग गये निखिल ब्रह्मांड चाल से होने कम्पित ।[3]

पं० रामचरित उपाध्याय ने भी देव-सभा जुड़ने से पूर्व पृष्ठभूमि बनाई है—

वर्षा बीती सुखद शरत के,
समय समुज्ज्वल हुई मही ।

---

१. वीर बाला : प्रथम सर्ग, पद ४, पृ० २ ।
२. कंस-वध : श्यामलाल पाठक, प्रथम सर्ग, प्रथम पद ।
३. स्वतन्त्रता पर वीर बलिदान : रघुनन्दन प्रसाद शुक्ल, पद ८५, पृ० २२ ।

किच किच कीचड़ का अवनी पर,
कहीं रहा अब नाम नहीं।[1]

**अलंकार रूप में**—अलंकार रूप में भी प्रकृति का चित्रण इन कवियों ने किया है। कहीं प्रस्तुत उपमानों को और कहीं अप्रस्तुत उपमानों को प्रकृति से ग्रहण कर उपमेय की प्रभविष्णुता में वृद्धि की है, जैसे—

रन्जित घनों का दल मत्त विचरण कर,
हंस सा उदित तारे चुनता था मोद भर।[2]
लाज की मादक-सुरा सी लालिमा
फैल गालों में नवीन गुलाब से।
छलकती थी बाढ़ सी सौंदर्य की
अधखुले सस्मित-गढ़ों से, सीप-से।[3]

गाल की लालिमा के लिए प्रकृति से गुलाब को, सस्मित गढ़ों के लिए सीप को उपमान के रूप में पाठक के सामने लाकर कवि ने प्रकृति का अलंकरण हेतु प्रयोग किया है।

'पतिव्रतादर्श' में शरण जी ने भी अलंकार के रूप में प्रकृति-चित्रण किया है। एक स्थान पर प्रकृति के उपादानों से दमयन्ती के सौंदर्य का साम्य करते हुए कवि कहता है—

रूपवती वह वनदेवी सी देखी बाला—
अंग प्रभा से सकल विपिन हो रहा उजाला।
कमलानन पर कृष्ण केश कटि लौं लहराते—
श्यामघटा में चन्द्रपटा की छटा दिखाते।[4]

इस सौन्दर्य वर्णन में प्रकृति से उद्भूत कुछ आलंकारिक उक्तियाँ द्रष्टव्य हैं, यथा—काले केशों के बीच श्वेत कमल सा मुख कि जैसे काली बदली के बीच चन्द्रमा की उज्ज्वल छवि। ये अप्रस्तुत उपमान छवि को अधिक स्पष्ट और मोहक बना देते हैं। अनेक स्थलों पर शरीर के अवयवों के लिए अत्यन्त मनोरम उपमाएँ और आरोप कवियों ने प्रकृति से ग्रहण किये हैं, जैसे देह के लिए जंगमलता, दृग के लिए चातक, कच के लिए सिवार, नीर

---

१. देव सभा : रामचरित उपाध्याय, पहली बैठक, पद १।
२. उषाकाल : आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव, पृ० ४४।
३. ग्रन्थि : सुमित्रानन्दन पन्त, सर्ग एक बार, पृ० ६।
४. पतिव्रतादर्श : रामशरण गुप्त 'शरण', पद ३८, पूर्वार्द्ध।

भरे घन, अलिनी माला, अधर के लिए प्रवाल, विद्रुम के पल्लव, साँस के लिए अग्नि-शिखा, दाँत के लिए हिम-कण, मीसी, गाल के लिए गुलाब, बिन्दी के लिए बालरवि, गलबाही के लिए हिंडोला, उरोज के लिए वट, चित्त के लिए समुद्र आदि उपमान अंगों की चारु छवि में वृद्धि करते हैं।

**मानवीकरण रूप में**—प्रकृति में मानवीकरण चेतना का चित्रण भी कुछ कृतियों में हुआ है। 'वसुमती' में प्रभात को युवक और राका को युवती के रूप में चित्रित करते हुए शास्त्रीजी लिखते हैं—

वा कमनीय नील नभ वसना
श्यामामा शारद-विधु-वदनी,
तारा-मणि सर्वांग भूषिता
राका-तरुणी का प्रभात ज्यों लूट ले गया हो सर्वस्व।[१]

नीले वस्त्रों वाली, शारद के चन्द्रमा से मुखवाली, अंगों में तारे जड़े गहने पहिने हुए राका का सर्वस्व प्रभात लूट ले गया। यहाँ रात्रि और प्रभात में मानवीय चेतना का आरोपण कवि ने किया है।

'महाराणा का महत्व' में भी प्रकृति में इस सचेतना के दर्शन होते हैं—

तारा-हीरक-हार पहनकर चन्द्रमुख—
दिखलाती, उतरी आती थी चाँदनी,
जैसे कोई पूर्ण सुन्दरी प्रेमिका,
मन्थर गति से उतर रही हो सौंध से।[२]

कवि को चाँदनी में सुन्दर प्रेमिका सी जीवन्तता दिखलाई पड़ती है। इसी प्रकार 'महाराणा का महत्त्व' में कवि ने मलयानिल का मानवीकरण किया है, उसके हाथ है, हाथों पर वह किसी को उठाकर चलता है—

मलयानिल अपने हाथों पर है धरे,
तुम्हें लिए जाता है अच्छी चाल से।[3]

त्रिपाठी जी ने कई स्थानों पर प्रकृति चित्रण का मानवीकरण किया है, यथा—

सिंधु-संतरी गरज रहा था, अगणित उर्मि-अधर से।[४]

---

१. वसुमती : दिवाकर प्रसाद शास्त्री, छन्द १०, पृ० २।
२. महाराणा का महत्व : जयशंकर प्रसाद, पृ० १८।
३. वही, पृ० १३।
४. पथिक : रामनरेश त्रिपाठी, दूसरा सर्ग, पद ३।

सिन्धु संतरी है जो अपनी अगणित लहरों के अधरों से गरज रहा है, तथा—

देता है सूचना पपीहा, हवा किवाड़ बजाती ।[1]

यहाँ 'सूचना देना' और 'बजाना' भी मानवीय क्रियाएँ हैं जिनका आरोपण कवि ने पपीहे और किवाड़ में किया है ।

**उपदेशक के रूप में**—प्रकृति के माध्यम से कवियों ने उपदेश भी दिये हैं—

शुचि शैल्य सुभग समीर सुरभित सौख्य प्रद था बह रहा,
कर केलि मुकुलित कलिन सों, खेलो खिलो यों कह रहा ।[2]

कवि का कथन है कि सुरभित सुखद पवन अधखिली कलियों के साथ खेलता हुआ मनुष्यों को भी इसी प्रकार खेलने और खिलने का उपदेश देता है ।

'सावित्री उपाख्यान' में भी कवि प्रकृति के वर्णन द्वारा नीति की शिक्षा देता है—

कहुँ तरु शाखा झुकीं, प्रचुर मधुफल के लागे ।
मनहुँ सिखावत जनहिं नवहु पानिपु के जागे ।
तहाँ एक सुविशाल शाल को वृक्ष मनोहर ।
जनु प्रभु पहँ विनवत नृप जस ऊँचे उठाय कर ।।[3]

**रहस्य के रूप में**—कहीं-कहीं प्रकृति चित्रण उस विराट सत्ता की ओर संकेत करता हुआ, उस रहस्य को स्पर्श करता हुआ भी मिलता है । बादल, बिजली, सूर्य, चन्द्र, निशा, फूल, पत्रों आदि से ही मनुष्य उस असीम ईश्वरीय शक्ति का आभास पाता है—

छोटे छोटे कुसुम श्यामला धरणी में किसका सौंदर्य
इतना लेकर खिलते हैं, जिन पर सुन्दरता का गर्वी-
मानव भी मधु लुब्ध मधुप-सा सुख अनुभव करता-फिरता ।[4]

**उद्दीपन रूप में**—इन काव्यों में उद्दीपन रूप में भी कहीं-कहीं प्रकृति वर्णन किया गया है, जैसे—

देखहु घन मण्डल अति रूरे । जनु कनात चहुँ दिशि मह पूरे ।
कटी घास में सुसुमन लागे । जनु मखमल में बूटा पागे ।

---

१. पथिक : रामनरेश त्रिपाठी, चौथा सर्ग, पद ६, पृ० ४८ ।
२. वीरांगना वीरा : ठा० भगवत सिंह, पद १२३, पृ० ३२ ।
३. सावित्री उपाख्यान : प्रसिद्धनारायण सिंह, पद ९-१०, पृ० २१ ।
४. प्रेम पथिक : जयशंकर प्रसाद, पृ० ३१ ।

घन वर्षहिं पियूष इव बिन्दू। जनु मुक्ता स्रवहीं मणि सिंधू।
ऐसे समय हरित कहुँ होई। होय प्रसन्न प्रेम रत जोई॥[1]

ऐसे समय में जब बादल घिरे हैं, फूल खिले हैं, वर्षा हो रही है–प्रेम निमग्न व्यक्ति अवश्य प्रसन्न होंगे। ऐसा साज सजकर प्रकृति प्रेम करने वालों की भावनाओं को गुदगुदाती है, उद्दीप्त करती है।

इस प्रकार इन खण्डकाव्यों में यद्यपि महाकाव्यों की भाँति प्रकृति वर्णन विराट और विस्तृत रूप में नहीं मिलता है, तथापि अनेक रूपों में और अनेक ढंगों से प्रकृति के जो मनोरम चित्र खींचे गये हैं, वे स्वयं में एक आकर्षण है। कुछ खण्डकाव्यों–जैसे मिलन, पथिक आदि की लोकप्रियता का एक कारण उनका उल्लेखनीय प्रकृति वर्णन भी है। आलम्बन रूप में प्रकृति का यह सहज स्वाभाविक चित्रण तत्कालीन काव्य की एक विशिष्ट पहिचान है।

रस के उत्कर्षकारी गुण माधुर्य, ओज, प्रसाद का भी अच्छा निर्वाह इन काव्यों में हुआ है। श्रृंगार में माधुर्य और वीर में ओज के सर्वत्र दर्शन होते हैं। प्रसाद गुण श्रुति मात्र से अर्थ व्यञ्जित करने वाले सभी शब्दों से प्रसारित होता है और प्रायः सभी रसों में अन्तर्निहित रहता है। यह भाव-दशा की स्थिति प्रस्तुत करता है। यथा—

एक रसाल-विटप-वन रविजा तट पर था शोभाशाली,
जिसमें चन्द्र विभा वैभव ने शान निराली थी डाली।
दार्शनिक कवियों को जो वह मोद सदैव वितरता था,
तो निर्जनता से अबलाओं को भयभीता करता था।[2]

उपर्युक्त पंक्तियों में यमुना किनारे एक आम्र कुंज की सुषमा का वर्णन है जो चित्त प्रसादक है।

इन काव्यों में जहाँ रस की प्रगाढ़ता है, वहीं यत्रतत्र रसाभास भी है। समाज, वर्ग अथवा व्यक्तित्व के प्रतिकूल वर्णन तथा अनुचित प्रसंग से अभिव्यक्त भाव तथा रस-रसाभास या भावाभास कहलाता है। 'कीचक-वध' में दुष्ट और कामी कीचक का सदाचारी साध्वी द्रौपदी के प्रीतिभाव-रसाभास की कोटि में आता है। जैसे–

तेरे कुंचित केश हृदय को नागिन से डँस जाते हैं।
+ + +

---

१. भारतीय दृश्य : रणछोड़ जी दीवान, प्रथम खण्ड, पृ० ५।
२. रसाल वन : गिरिजादत्त शुक्ल, कालिन्दी तीर सर्ग।

तेरी नील कमल सी आँखें मानस सर में रहती हैं ।

+ + +

तेरी भुज डालों पर मानो रति ने दिया हिंडोरा है ।[1]

यहाँ कुपात्र होने से कीचक का प्रेम निवेदन श्रृंगार का रसोद्रेक न कर रति के विपरीत भाव हृदय में उत्पन्न करता है, अतः रसाभास है ।

कहीं-कहीं अनुचित उपमान भी विद्रूपता उत्पन्न करते हैं और रसाभास का कारण बनते हैं, जैसे—

था श्वेत कमल-दल पर मनो रक्त कीट कोई पड़ा ।[2]

यहाँ श्वेत कमल जैसे मुख पर खूनी रंग के कीड़े का बैठा होना सुषमा में कुरूपता, कोमलता में कठोरता पैदा करना है ।

भावोदय या भाव-दशा भी इन काव्यों में दृष्टिगत होती है जहाँ भाव अंकुरित होने के अनन्तर उद्दीपक विभाव से उसे पोषण नहीं मिलता और रसोद्रेक नहीं हो पाता । जैसे 'भंग में अंग' में निम्नलिखित उदाहरण में—

नृप बाल के रस रंग का वत्सर त्वरागत हो गया,
मानो कभी वह दृष्टिगोचर था नहीं यों खो गया ।[3]

यहाँ सत्यवान की मृत्यु के समय शोक का भाव तो उदय हुआ किन्तु उद्दीप्त न हो पाने से करुण रस का परिपाक नहीं हो पाता । भाव सन्धि का दृष्टान्त 'रंग में भंग' में मिलता है । जहाँ सम चमत्कार दो भावों की योजना हुई है । निम्नलिखित पद में मातृभूमि विषयक रति और उसका रक्षा का उत्साह दोनों भाव सम रूप में प्रबल होकर आये हैं—

पुष्ट हो जिसके अलौकक अन्न नीर समीर से,
मैं समर्थ हुआ सभी विध रह विरोग शरीर से ।
यदपि कृत्रिम रूप में यह मातृभूमि समक्ष है,
किन्तु लेना योग्य क्या उसका न मुझको पक्ष है ।[4]

इस प्रकार भाव-निरूपण के व्यापक परिप्रेक्ष्य में द्विवेदी युगीन खण्ड-काव्यों को देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि काव्यशास्त्र-सम्मत रस-सिद्धान्त को आधार मानकर इनकी रचना नहीं की गई तथापि इनमें

---

१. कीचक वध : शिवदास गुप्त 'कुसुम', तृतीय सर्ग, छन्द २४, २५ ।
२. पतिव्रतादर्श : रामशरण गुप्त 'शरण', उत्तरार्द्ध, पद १४९ ।
३. भंग में रंग : अम्बिकादत्त त्रिपाठी, पद ८५, पृ० १९ ।
४. रंग में भंग : गुप्त जी, एकादश संस्करण, पद २४, पृ० ११ ।

आधारभूत सभी रसों और रस-अवस्थाओं का समावेश हो गया है। देश-स्वातन्त्र्य के अनुष्ठान के संकल्प की प्रथम साहित्यिक आहुति के रूप में प्रस्तुत इन काव्यों में वीर रस को प्राथमिकता मिली है। द्विवेदी जी के आदर्शपरक दृष्टिकोण के कारण शृंगार रस का चित्रण मर्यादित रूप में किया गया है। अभिमन्यु वध, इन्दुमती आदि पौराणिक दुखान्त प्रसंगों को काव्य का उपजीव्य बनाने के कारण करुण रस का मार्मिक निरूपण हुआ है। अंगीरस के रूप में इन काव्यों में प्रधानता इन्हीं रसों को मिली है। अन्य रस मुख्यतः इनके उपकारक और सहयोगी के रूप में आये हैं। इन भाव दशाओं के अतिरिक्त मानव मन में उठने वाले अन्य भावों, विचारों और संवेगों को भी इन कवियों ने अभिव्यक्ति दी है। साथ ही व्यक्ति और समाज-व्यापी संवेदनाओं से अभिभूत इन कवियों की कलम ने न केवल वर्तमान को सँजोया, बल्कि आगे आने वाले छायावाद और रहस्यवाद के लिए भी उर्वर भूमि तैयार की है।

•

## नवम् अध्याय

# खण्ड-काव्यों का कला पक्ष

कथ्य और अभिव्यंजना अन्योन्याश्रित हैं। कथ्य के स्वरूप-परिवर्तन के साथ ही अभिव्यंजना की पद्धति भी बदल जाती है। काव्य-दृष्टि भी अभिव्यंजना को प्रभावित करती है। भारतेन्दु-युग की हिन्दी कविता में परिवर्तन के जो लक्षण दिखाई पड़े, वे द्विवेदी-युगीन काव्य के लक्ष्य बन गये। काव्य-दृष्टि और काव्यगत मान्यताओं के बदलने के साथ ही वस्तु, भाव, भाषा, छन्द-शिल्प आदि में भी बदलाव आया और कवियों की जीवन-दृष्टि में भी मौलिक परिवर्तन हुए। प्रस्तुत अध्याय में भाषा, छन्द-विधान, अलंकार-योजना तथा काव्य की अन्य रूपगत और शिल्पगत विशेषताओं के विवेचन सहित द्विवेदी-युगीन खण्डकाव्यों के कला-पक्ष का समग्रतः आकलन किया गया है।

**भाषा :**

इस युग के काव्य की भाषा मुख्यतः खड़ी बोली है। इससे पूर्व काव्य में ब्रजभाषा का प्रयोग प्रचलित था। खड़ी बोली गद्य की भाषा समझी जाती थी। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जब 'सरस्वती' के सम्पादक हुए तो उन्होंने महसूस किया कि उन साहित्यिक, सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों में काव्य में खड़ी बोली का आगमन उसे नयी स्फूर्ति, नई दिशा, नये आयाम दे सकता है। उन्होंने तत्कालीन काव्य-भाषा का अपरिमार्जित और अशुद्ध रूप देखा और 'सरस्वती' पत्रिका, साहित्य-सभाओं के अध्यक्षीय भाषणों और अग्र लेखों के द्वारा रचनाकारों को इसके परिमार्जन और परिष्कार के लिए उद्बोधित किया। उन्होंने भाषा को सहज और सरल करने पर जोर दिया। रसज्ञ रंजन में वे लिखते हैं—'कवि को ऐसी भाषा लिखनी चाहिए जिसे सब कोई सहज में समझ ले और अर्थ को हृदयंगम कर सके। पद्य पढ़ते ही उसका अर्थ बुद्धिस्थ हो जाने से विशेष आनन्द प्राप्त होता है और पढ़ने में जी लगता है।'[1]

द्विवेदी जी ने अपनी लेखन प्रतिभा, समीक्षक के अनुशासन, सम्पादन के वर्चस्व एवं व्यक्तिगत प्रभाव द्वारा तत्कालीन कवियों को आदर्श पुरुषों का

---

१. रसज्ञ-रंजन : महावीर प्रसाद द्विवेदी, द्वितीय संस्करण, पृ० ५।

अवलम्बन करके सोद्देश्य, शिक्षाप्रद काव्य खड़ी बोली में रचने को प्रेरित किया। 'द्विवेदी जी की अनुशासक दृष्टि केवल काव्य विषय तक सीमित रही हो अथवा आदर्श और लोक-मंगल की दर्शनाकांक्षिणी रही हो अथवा च्युत-संस्कृति एवं ग्राम्यत्व की विरोधिनी हो, ऐसी बात नहीं। काव्य का सम्पूर्ण क्षेत्र उनके अनुशासन की त्रिज्या से स्पर्शित रहा। क्या विषय और क्या रूप, क्या भाषा और क्या छन्द-सभी द्विवेदी जी के इंगित के अनुगामी बनकर नृत्यरत रहे।'[1]

फलतः विरोध के बावजूद ब्रजभाषा के स्थान पर काव्य में खड़ीबोली को स्थान मिला और जयशंकर प्रसाद, लोचनप्रसाद पाण्डेय, बालमुकुन्द गुप्त, गोपालशरण सिंह, नाथूराम शर्मा 'शंकर', अयोध्या प्रसाद खत्री आदि ने खड़ी बोली में रचना प्रारम्भ की। आरम्भ में काव्य-भाषा के रूप में खड़ी बोली के प्रयोग में अपरिपक्वता और व्याकरणगत शैथिल्य रहा। क्रिया पदों में भी ब्रजभाषा के शब्द आये। उस समय ब्रजभाषा में और भी जो खण्डकाव्य लिखे गये, उनमें भी ठेठ ब्रजभाषा का रूप न रहकर खड़ी बोली का पुट आ गया। उदाहरणार्थ १९०२ में ब्रजभाषा में रचे गये "सावित्री उपाख्यान' के निम्नलिखित अंश को देखा जा सकता है—

सब निज स्वारथ तर्कहिं कर्णहिं कण प्रतिछन जागे।
करै कौन परवाह मरै को कहाँ अभागे?
जग आशा तजि उचित ईश अवलम्बन करिबो,
व्है निशंक धरि धीर धर्म को पथ अनुसरिबो।[2]

इसमें 'को' का स्थान 'कौन' ने 'कित' का स्थान 'कहाँ' ने लिया है। निज, आशा, उचित, अवलम्बन, निशंक, पथ आदि खड़ी बोली के शब्दों का समावेश भी हो गया है। सन १९०५ ई० तक खड़ी बोली इस स्थिति में आ गई कि अवधी की रचना में भी खड़ी बोली का प्रचुर प्रयोग होने लगा। जैसे—

विधन हरन दुख दमन तम, करि सम आनन जासु।
गन नायक दायक सुमति, बन्दौं पायन तासु॥[3]

---

१. द्विवेदी युग की पृष्ठभूमि और नाथूराम शंकर : डा० वीरेन्द्र कौशिक, पृ० ७९।
२. सावित्री उपाख्यान : प्रसिद्धनारायण सिंह, पद २८, पृ० ३७।
३. दुर्गा विजय : मुकुट लाल 'रंग जी', पहिला दोहा, पृ० १।

## नवम् अध्याय

# खण्ड-काव्यों का कला पक्ष

कथ्य और अभिव्यंजना अन्योन्याश्रित हैं। कथ्य के स्वरूप-परिवर्तन के साथ ही अभिव्यंजना की पद्धति भी बदल जाती है। काव्य-दृष्टि भी अभिव्यंजना को प्रभावित करती है। भारतेन्दु-युग की हिन्दी कविता में परिवर्तन के जो लक्षण दिखाई पड़े, वे द्विवेदी-युगीन काव्य के लक्ष्य बन गये। काव्य-दृष्टि और काव्यगत मान्यताओं के बदलने के साथ ही वस्तु, भाव, भाषा, छन्द-शिल्प आदि में भी बदलाव आया और कवियों की जीवन-दृष्टि में भी मौलिक परिवर्तन हुए। प्रस्तुत अध्याय में भाषा, छन्द-विधान, अलंकार-योजना तथा काव्य की अन्य रूपगत और शिल्पगत विशेषताओं के विवेचन सहित द्विवेदी-युगीन खण्डकाव्यों के कला-पक्ष का समग्रतः आकलन किया गया है।

**भाषा :**

इस युग के काव्य की भाषा मुख्यतः खड़ी बोली है। इससे पूर्व काव्य में ब्रजभाषा का प्रयोग प्रचलित था। खड़ी बोली गद्य की भाषा समझी जाती थी। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जब 'सरस्वती' के सम्पादक हुए तो उन्होंने महसूस किया कि उन साहित्यिक, सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों में काव्य में खड़ी बोली का आगमन उसे नयी स्फूर्ति, नई दिशा, नये आयाम दे सकता है। उन्होंने तत्कालीन काव्य-भाषा का अपरिमार्जित और अशुद्ध रूप देखा और 'सरस्वती' पत्रिका, साहित्य-सभाओं के अध्यक्षीय भाषणों और अग्र लेखों के द्वारा रचनाकारों को इसके परिमार्जन और परिष्कार के लिए उद्‌बोधित किया। उन्होंने भाषा को सहज और सरल करने पर जोर दिया। रसज्ञ रंजन में वे लिखते हैं—'कवि को ऐसी भाषा लिखनी चाहिए जिसे सब कोई सहज में समझ ले और अर्थ को हृदयंगम कर सके। पद्य पढ़ते ही उसका अर्थ बुद्धिस्थ हो जाने से विशेष आनन्द प्राप्त होता है और पढ़ने में जी लगता है।'[1]

द्विवेदी जी ने अपनी लेखन प्रतिभा, समीक्षक के अनुशासन, सम्पादन के वर्चस्व एवं व्यक्तिगत प्रभाव द्वारा तत्कालीन कवियों को आदर्श पुरुषों का

---

१. रसज्ञ-रंजन : महावीर प्रसाद द्विवेदी, द्वितीय संस्करण, पृ० ५।

अवलम्बन करके सोद्देश्य, शिक्षाप्रद काव्य खड़ी बोली में रचने को प्रेरित किया। 'द्विवेदी जी की अनुशासक दृष्टि केवल काव्य विषय तक सीमित रही हो अथवा आदर्श और लोक-मंगल की दर्शनाकांक्षिणी रही हो अथवा च्युत-संस्कृति एवं ग्राम्यत्व की विरोधिनी हो, ऐसी बात नहीं। काव्य का सम्पूर्ण क्षेत्र उनके अनुशासन की त्रिज्या से स्पर्शित रहा। क्या विषय और क्या रूप, क्या भाषा और क्या छन्द-सभी द्विवेदी जी के इंगित के अनुगामी बनकर नृत्यरत रहे।'[१]

फलतः विरोध के बावजूद ब्रजभाषा के स्थान पर काव्य में खड़ीबोली को स्थान मिला और जयशंकर प्रसाद, लोचनप्रसाद पाण्डेय, बालमुकुन्द गुप्त, गोपालशरण सिंह, नाथूराम शर्मा 'शंकर', अयोध्या प्रसाद खत्री आदि ने खड़ी बोली में रचना प्रारम्भ की। आरम्भ में काव्य-भाषा के रूप में खड़ी बोली के प्रयोग में अपरिपक्वता और व्याकरणगत शैथिल्य रहा। क्रिया पदों में भी ब्रजभाषा के शब्द आये। उस समय ब्रजभाषा में और भी जो खण्डकाव्य लिखे गये, उनमें भी ठेठ ब्रजभाषा का रूप न रहकर खड़ी बोली का पुट आ गया। उदाहरणार्थ १९०२ में ब्रजभाषा में रचे गये "सावित्री उपाख्यान' के निम्नलिखित अंश को देखा जा सकता है—

सब निज स्वारथ तकहिं कणहिं कण प्रतिछन जागे।
करै कौन परवाह मरै को कहाँ अभागे?
जग आशा तजि उचित ईश अवलम्बन करिबो,
ह्वै निशंक धरि धीर धर्म को पथ अनुसरिबो।[२]

इसमें 'को' का स्थान 'कौन' ने 'कित' का स्थान 'कहाँ' ने लिया है। निज, आशा, उचित, अवलम्बन, निशंक, पथ आदि खड़ी बोली के शब्दों का समावेश भी हो गया है। सन् १९०५ ई० तक खड़ी बोली इस स्थिति में आ गई कि अवधी की रचना में भी खड़ी बोली का प्रचुर प्रयोग होने लगा। जैसे—

विधन हरन दुख दमन तम, करि सम आनन जासु।
गन नायक दायक सुमति, बन्दौं पायन तासु॥[3]

---

१. द्विवेदी युग की पृष्ठभूमि और नाथूराम शंकर : डा० वीरेन्द्र कौशिक, पृ० ७९।
२. सावित्री उपाख्यान : प्रसिद्धनारायण सिंह, पद २८, पृ० ३७।
३. दुर्गा विजय : मुकुट लाल 'रंग जी', पहिला दोहा, पृ० १।

सन् १९०६ ई० तक आते-आते ब्रज-भाषा में खड़ी बोली का प्रयोग और अधिक होने लगा। भाषा का अनगढ़पन, अटपटापन और ग्रामीण प्रयोग लुप्त हो गये। उस समय के खण्ड-काव्यों की भाषा इस बात की साक्षी है। 'इन्दुमती परिणय' में जीवन की विसंगतियों की बात कहते हुए शर्मा जी लिखते हैं—

जहाँ अमिय तहँ गरल है, जहाँ मोद तहँ शोक।
शशिहिं देख विकसत कुमुद, किलकत अति मन कोक॥[1]

इस समय के कवियों में पुरातन के प्रति मोह और नूतन के प्रति आकर्षण दिखाई देता है। ब्रजभाषा के अवसान और खड़ी बोली के उदय के उस संक्रान्ति काल में ब्रजभाषा में कविता पढ़ने और लिखने के आदी कवियों को खड़ी बोली में सायास लिखना पड़ा। द्विवेदी युग के पूर्वार्द्ध में 'सरस्वती' में प्रकाशित होने वाली रचनाओं की भाषा इसीलिये सही रूप में व्याकरण सम्मत, शुद्ध और समर्थ नहीं है। कुछ रचनाएँ प्रयोग मात्र लगती हैं, जिनमें कलात्मक स्थिरता का अभाव है। द्विवेदी युग के आरम्भ में माधुर्य के लिए माधुर्यता, सौन्दर्य के लिए सौन्दर्यता, उनका के लिए उन्होंका, जिनका के लिए जिन्होंका, मेरे लिए को मेरे को, हुआ के लिए हुवा, जोड़ के लिए जोड़, छोड़ के लिए छोड़ आदि शब्द विभिन्न प्रभावों के कारण प्रचलित थे। अनुस्वार, वर्तनी, लिंग, क्रमबद्धता आदि के प्रयोगों में भी नियम भंग हो रहे थे। बंगला से हिन्दी में अनुवाद की प्रवृत्ति का प्राबल्य, संस्कृत से शब्द लेने में गर्व का अनुभव होना और अरबी, अंग्रेजी, मराठी आदि अन्य भाषा के शब्दों के प्रभाव के कारण भाषा में विकृति एवं अस्थिरता आने लगी थी। लेखकों को विभक्ति चिह्नों का भी सही ज्ञान नहीं था। हिन्दी की व्याकरण पर अंग्रेजी अनुकरण का और ब्रजभाषा का प्रभाव था।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी खड़ी बोली का परिमार्जित रूप काव्य में लाने के लिए कटिबद्ध थे। उन्होंने इस हेतु अथक श्रम किया। उन्होंने 'सरस्वती' के प्रकाशन के लिए खड़ी बोली की रचनाओं का आह्वान किया और रचनाओं को 'सरस्वती' में प्रकाशित करने के लिए स्वयं ही परिमार्जित कर उन्हें व्याकरण सम्मत एवं शुद्ध बनाया। यहाँ तक कि खड़ी बोली के कवियों को तैयार करने का श्रेय भी द्विवेदी जी को मिलता है। सन् १९०६ में ही खड़ी बोली का यह रूप सामने आया—

---

१. इन्दुमती परिणय : खुन्नामल शर्मा, उत्तरार्द्ध, पंचम तरंग, पृ० ९३।

जगदीश्वर की दया दृष्टि से हुआ तत्क्षण सब दुख दूर।
फैल गया सुख शान्ति चतुर्दिक प्रेम, प्रमोद, मोद भरपूर ।।[१]

शुद्ध, सरल, प्रसाद गुण सम्पन्न अभिधात्मक खड़ी बोली का यह प्रयोग विस्तार पाता गया। द्विवेदी जी ने अपने को खड़ी बोली की सामर्थ्य-वृद्धि के लिए जैसे समर्पित कर दिया। इस युग के प्रमुख कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त को सामने लाने में भी द्विवेदी जी का पूरा हाथ रहा। गुप्त जी के काव्यों के कई अंश पहिले 'सरस्वती' में छपे। द्विवेदी जी के अनुशासन में रह कर तत्कालीन कवियों की भाषा में निरन्तर निखार आया। सन् १९०९ में रचे गये गुप्त जी के 'रंग में भंग' खण्ड-काव्य की भाषा द्रष्टव्य है—

दीखते नर-रत्न ऐसे झोपड़ों में भी कहीं।
व्योम-चुम्बी राजगृह में जन्मते जैसे नहीं ।।[२]

या

किन्तु अवसर का मरण क्या सहज में मिलता कभी,
इसलिये अब हे पिता आज्ञा मुझे दीजे अभी।[३]

इसमें 'दीखते' और 'दीजे' आदि के शिथिल प्रयोग हैं—शेष सहज खड़ी बोली है। सन् १९१० के बाद से ही खड़ी बोली का श्री और सौन्दर्य निखरा। गुप्त जी, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', जयशंकर प्रसाद, रामचरित उपाध्याय, सियारामशरण गुप्त, पं० लोचनप्रसाद पाण्डेय, रामनरेश त्रिपाठी, रामशरण गुप्त 'शरण', शुकलाल प्रसाद पाण्डेय, रामदत्त राय शर्मा, सुमित्रानन्दन पन्त आदि ने अपनी रचनाओं द्वारा खड़ी बोली को इतना समृद्ध और समुन्नत बना दिया कि वह सम्पूर्ण देश की सम्पर्क भाषा बन गई और राष्ट्र भाषा होने की अधिकारिणी हो गई। अवधी और ब्रज से उसने बहुत कुछ लिया। थोड़ा सा रूप भेद करके उसने अपार शब्दावली संजो ली। वह जीवनी-शक्ति से भरपूर काव्य का सशक्त माध्यम बन गई। एक के बाद एक खण्ड-काव्य खड़ी बोली में लिखे जाने लगे। जनता की बोल चाल की भाषा होने से काव्य में इसका स्वागत हुआ। उत्साह और प्रेरणा पाकर जैसे-जैसे इसका प्रयोग बढ़ा, वैसे-वैसे इसमें निखार भी आता गया। उदाहरणस्वरूप सन् १९१० में लिखे गये 'जयद्रथ-वध' की भाषा को लिया जा सकता है—

१. भाग्य चक्र : रामचरित सिंह 'वल्लभ', पृ० ११।
२. रंग में भंग : मैथिलीशरण गुप्त, एकादश संस्करण, पद ३८, पृ० १४।
३. वही, पद ७२, पृ० २३।

इस युद्ध में जैसा पराक्रम पार्थ का देखा गया,
इतिहास के आलोक में है सर्वथा वह ही नया।
करता पयोदों को प्रभञ्जन शीघ्र अस्तव्यस्त ज्यों,
करने लगे तब ध्वस्त अर्जुन शत्रु-सैन्य समस्त त्यों।[1]

ओज और प्रसाद गुण सम्पन्न इस प्रकार की भाषा पाठक के सामने अप्रस्तुत उपमानों द्वारा दृश्य को साकार कर उस पर अपना प्रभाव डालने लगी। सन् १९१३ में प्रसाद के 'प्रेम-पथिक' के कल्पना-प्रसूत प्रेमाख्यान में भाषा व्याकरणसम्मत और तत्सम होने के साथ माधुर्य गुण से परिपूर्ण कोमल और कान्त भी है, जैसे—

उस सौन्दर्य सुधा सागर के कण हैं हम तुम दोनों ही,
मिले उसी आनन्द-अम्बुनिधि में मन से प्रमुदित होकर।
यह जो क्षणिक वियोग, वहाँ पर नहीं फटकने पावेगा,
एक सिन्धु में मिलकर अक्षय सम्मेलन होगा सुन्दर।[2]

सन् १९१४ से १९२० ई० तक के अन्तर्गत खड़ी बोली विकास के क्रमिक सोपानों को पार कर शिखर पर पहुँच गई। पौराणिक, ऐतिहासिक, काल्पनिक विषयवस्तु लेकर अनेक खण्डकाव्य लिखे गये। उनके स्वागत और सफलता के आधारभूत कारणों में सशक्त, प्रांजल, शुद्ध और सहज भाषा का होना भी है। सियारामशरण गुप्त ने अपने 'मौर्य-विजय' में सन् १९१४ में ही इस प्रकार की भाषा का व्यवहार किया—

कवचामृत था कवच-सदृश ही दृढ़ तन उनका,
दमक रहा था दिव्य दीप्ति में आनन उनका।
साहस से था भरा हुआ अविचल मन उनका,
था स्वदेश-रक्षार्थ समर्पित जीवन उनका।[3]

इसमें सानुप्रासिक वर्णयोजना, शब्द सौन्दर्य के साथ ही भाव सौष्ठव भी है। एक कवि की रचना के प्रति जनता का समादर, सराहना और आग्रह देख कर दूसरे कवि को उत्साह और बल मिला। स्वदेश प्रेम, राष्ट्रीयता, नारियों के चरित्र के उन्नत होने की कामना आदि से ओतप्रोत कवियों ने

---

१. जयद्रथ वध : मैथिलीशरण गुप्त, आठवाँ संस्करण, पृ० ९६।
२. प्रेम पथिक : जयशंकर प्रसाद, पृ० ३१।
३. मौर्य विजय : सियारामशरण गुप्त, द्वितीय सर्ग, संस्करण २०३० वि०, पृ० १५।

इस प्रकार की भावनाओं को उद्दीप्त करने की सामर्थ्य रखने वाले कथानकों का चयन कर काव्य लिखे। खण्डकाव्यों की जैसे बाढ़ आ गई। थोड़े से रूप भेद से कवियों ने अन्य भाषाओं और बोलियों के प्रचलित शब्दों को खड़ी बोली के अनुकूल ढाल कर उसकी शब्द-शक्ति में अभिवृद्धि की। किन्तु ऐसे शब्द अधिक नहीं हैं। मुख्यतः संस्कृत तत्सम शब्दों का ही प्रयोग किया गया। तत्सम शब्दों के प्रयोग की दृष्टि से इस युग के कवियों के दो वर्ग किये जा सकते हैं। कुछ कवियों ने तो तत्सम पदावली का मुख्यतः प्रयोग करते हुए भी प्रायः ऐसे शब्दों का ही प्रयोग किया है जो प्रचलित और बहुत क्लिष्ट नहीं हैं, किन्तु कुछ कवियों की प्रवृत्ति अत्यन्त संस्कृत-निष्ठ समस्त पदावली से युक्त दुरूह भाषा के प्रयोग की ओर अधिक दिखाई पड़ती है। इस प्रकार शनैः शनैः ब्रजभाषा की रसमय नूपुर ध्वनित, लालित्यपूर्ण पदावली का तिरोभाव होने लगा। संस्कृत-निष्ठ पदावली का प्रयोग करके अपनी विद्वत्ता प्रदर्शित करने की भावना कुछ कवियों में दिखलाई देने लगी, जैसे—

भगला भयार्त्त सुधैर्य भी पा पवन सहसाक्रमण से,
उस उर-विदारक दुःख दुस्सह, नित्य के परिभ्रमण से।[१]

मध्य निशा, निर्मल निरभ्र नभ दिशा विराव विहीना।[२]

भव-भय-भंजन, मुनि-मन-रंजन, अघदल गंजन,
तृणमिव दुःख हरति नाथ ! तव कृपा प्रभंजन।[3]

इसके साथ ही समस्त पदों का भी कवियों ने प्रयोग किया, जैसे—दुर्दैव-दत्त-विलाप या 'हो प्राण-वलि-यश-लोभ-लोलुप तो न तनु त्यागा कहीं'[४] जिन्होंने काव्य में नीरसता और कर्ण-कटुता का आविर्भाव किया। भाषा के सम्बन्ध में इस समय जैसे दो मत हो गये। एक पक्ष संस्कृत गर्भित शब्दावली के प्रयोग द्वारा उसे एकदम शुद्ध, अमिश्रित और सीमित बनाने के पक्ष में था, दूसरा पक्ष उसे उन्मुक्त स्रोतस्विनी सदृश सामान्य जनता की समझ के साथ प्रवाहित होने वाली सहज भाषा के रूप में देखना चाहता था। इसी से इस युग में एक ओर जहाँ संस्कृत बहुलता दुरूह भाषा के प्रयोग हुए, वहीं

१. प्रणवीर प्रताप : गोकुलचन्द्र शर्मा, छन्द ७७।
२. पथिक : रामनरेश त्रिपाठी, पहिला सर्ग, संस्करण १९५१ ई०, पद १७, पृ० १९।
३. पतिव्रतादर्श : रामशरण गुप्त 'शरण', पूर्वार्द्ध, पद ४३।
४. प्रणवीर प्रताप : गोकुल चन्द्र शर्मा, पृ० ५८।

दूसरी ओर आम-प्रचलित शब्दों को अपनाकर उसे एकदम सरल और सहज, बोधगम्य बना देने की चेष्टा भी की गई। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने कहा—'आजकल हिन्दी संक्रान्ति की अवस्था में है, हिन्दी-कवि का कर्तव्य यह है कि वह लोगों की रुचि का विचार रखकर अपनी कविता ऐसी सहज और मनोहर रचे कि साधारण पढ़े-लिखे लोगों में भी पुरानी कविता के साथ-साथ नई कविता पढ़ने का अनुराग उत्पन्न हो जाय—जब लोगों का झुकाव इस ओर होने लगे, तब समय-समय पर, कल्पित अथवा सत्य आख्यानों के द्वारा सामाजिक, नैतिक और धार्मिक विषयों की मनोहर शिक्षा दे। जब जो विषय उसके अवलोकन में आवे, तभी उस पर अपनी स्वाभाविक शक्ति से कविता लिखकर लोगों को परोक्ष रूप से सचेत करे।'[१] इसे व्यवहार रूप में लाने के लिए द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से तत्कालीन कवियों को अनुशासित और संचालित किया। इससे खड़ी बोली के स्वरूप के स्थिर होने में बहुत सहायता मिली। उन्होंने प्रचलित मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोग पर बल देकर जन-साधारण में खड़ी बोली को अधिक लोकप्रिय बनाने की चेष्टा की। फलस्वरूप इस युग के खण्डकाव्यों में 'जी की कली खिलना, गाल बजाना, धूल धूसरित होना, फूला न समाना, चिकनी चुपड़ी बातें करना, बाल की खाल निकालना, प्राण पखेरू उड़ना, सिक्का जमाना, डोरे डालना, छाती फटना, पानी पीकर कोसना, चींटी के पंख निकलना, मुँह मोड़ना, पीठ देना, वीर गति को प्राप्त होता, नींव हिलना, छाँह छूना, नाकों दम करना' जैसे मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोग मिलते हैं। कुछ मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोग द्रष्टव्य हैं—

**डंके पर चोट** पड़े ज्यों ही, बिजली सा रण में जा चमका।[२]
**हिल जाय पत्ता तो कहीं,** सत्ता बिना इस मूर्ति की।[3]

तजते हुए प्रिया को मेरी **फटी न छाती**।[४]
मस्तक **ऊंचा हुआ** तुम्हारा कभी जाति गौरव से।[५]

---

१. रसज्ञ-रंजन : महावीर प्रसाद द्विवेदी, पृ० १८।
२. अभिमन्यु का आत्मदान : कमला प्रसाद वर्मा, दूसरा सर्ग, पृ० ५।
३. जयद्रथ वध : मैथिलीशरण गुप्त, साठवाँ संस्करण, पृ० ९०।
४. शकुन्तला : मैथिलीशरण गुप्त, तेरहवाँ संस्करण, पृ० ३४।
५. पथिक : रामनरेश त्रिपाठी, दूसरा सर्ग, पद ३१, पृ० ३१।

बोया वृक्ष बबूल आम्रफल क्योंकर चखते।[1]
नौ द्वै ग्यारह होत तीन पाँचहिं बिसरावत।[2]

ऐसे प्रयोगों से भावों को विस्तार मिला और चित्र जीवन्त हो उठे हैं। कहीं-कहीं मुहावरों का तत्समीकरण किया गया है जिससे मुहावरे अपनी अर्थवत्ता और प्रभाव खो बैठे हैं। जैसे—'पाँव तले जमीन खिसकना' के स्थान पर 'नीचे की धरा हटना', 'आँख के तारे' के स्थान पर 'दृगों का तारा', 'धरती फटना' के स्थान पर 'मही फटना' आदि।

इन मुहावरों और कहावतों के माध्यम से कवियों ने कतिपय कटु सत्यों की भी अभिव्यक्ति की है। ऐसे प्रयोगों से भाषा की संप्रेषण शक्ति को तीव्र कर भाव को आत्मसात् करने में सहायता दी। इन प्रयोगों से इस काल के कवियों की लोकवादी चेतना का भी पता चलता है। लोक-भाव और लोक-संस्कृति की अभिव्यक्ति के लिए लोक-भाषा का भी प्रयोग किया गया है, जैसे—

अरे बोलता सुआ हमारी मैना प्यारी।
कौन बिलरिया हरी ? मरे वह बज्जर मारी।[3]

द्विवेदी-कालीन खण्ड-काव्यों में अभिधात्मक भाषा का ही मुख्यतः प्रयोग किया गया है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित अंश को लिया जा सकता है—

लेकिन अब तो टका धर्म है, टका कर्म है, टका सखा,
टका मोक्षदायक है इससे सबने उसको बड़ा लखा।[4]

इसका यह अर्थ नहीं है कि लक्षणा और व्यंजना का प्रयोग हुआ ही नहीं है, लेकिन ऐसे प्रयोग कम हैं, जैसे—

कोई बाहर बैर दीखता, भीतर से पर क्रूर महा।
बाहर भीतर एक सदृश, कोई बिरला अंगूर रहा।[5]

कोई बाहर से बेर के गूदे के समान कोमल और अन्दर से गुठली के समान कठोर तो है पर अंगूर के समान बाहर भीतर दोनों जिसके कोमल हों,

---

१. पतिव्रतादर्श : रामशरण गुप्त 'शरण', पूर्वार्द्ध, पद ३०, पृ० १५।
२. पथिक : रामनरेश त्रिपाठी, चौथा सर्ग, पद ४।
३. सावित्री उपाख्यान : प्रसिद्धनारायण सिंह, सप्तम प्रतिभा, पद २७, पृ० ३२।
४. बूढ़े का ब्याह : सैयद मीर अली मीर, षष्ठ परिच्छेद, पृ० ३२।
५. भगतिन बिल्लैया : हरद्वार प्रसाद गुप्त, पद १२६, पृ० ३३।

ऐसा बिरला ही कोई होता है। यहाँ बेर और अंगूर की लाक्षणिकता दर्शनीय है। इसी प्रकार व्यंजनात्मक प्रयोग भी कहीं-कहीं मिलते हैं। यथा—

सोलह बसन्तों ने सविधि
कुसुमेषु के आदेश से
लेकर सकल कुसुमावली
अब तक समर्चन था किया इस हेम ललिता-रूप का।[1]

सोलह वसन्तों से वसुमति के षोडशी होने की व्यंजना की गई है। द्विवेदी युग के उत्तरार्द्ध में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति के आगमन के साथ ही भाषा में लाक्षणिक प्रयोग छिटपुट रूप में प्रारम्भ हो गये, जिनका पूर्ण उत्कर्ष, छायावाद में दिखलाई पड़ता है।

इस युग में उर्दू और अंग्रेजी के शब्दों का भी कुछ कवियों ने बहुतायत से प्रयोग किया है। इस प्रकार के प्रयोग अभीष्ट प्रभाव की सृष्टि में बाधक भी होते हैं। निम्नलिखित अंश को उदाहरण रूप में देखा जा सकता है—

निज देश की निज धर्म की मर्याद रखूँगा,
श्री राम की औलाद को दागी न लखूँगा।[2]

कहीं-कहीं शब्दों के उच्चारण के अनुसार ही उनकी वर्तनी भी रखी गयी है। जैसे—सकता सकती के लिए सक्ता सक्ती, पहनाना के लिए पिन्हाना, वहाँ पर के लिए वाँ पर का प्रयोग किया गया है। कुछ नये शब्दों को भी कवियों ने तुक के आग्रह से या मात्रा पूरी करने के लिए गढ़ लिया है, जैसे—अधिकन्तु, विनयिता, विनिद्रित, अनुशोक आदि। प्रायः सभी खण्ड-काव्यों में अहा, अहो, अहह, अरे, हैं, हाय, हा, हहा, रे आदि शब्दों का प्रयोग रचनाकारों ने किया है। कहीं तो यह हर्ष, विषाद, विस्मय आदि भावना की तीव्रता के वाचक बनकर आये हैं, किन्तु तुक और मात्रा पूर्ति के लिए प्रायः इनका प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार उपसर्गों और परसर्गों के प्रयोग इन कृतियों में मिलते हैं, जैसे—विचुम्बित, विमोहित, अभिनत आदि। तद्भव शब्द जैसे—करतब (कर्त्तव्य), अवसि (अवश्य), भरम (भ्रम), ब्याह (विवाह), छीन (क्षीण) आदि। देशज शब्द जैसे—बिहूलसी, थोथा, लथेड़ना, लदपद, कंदील आदि और ग्रामीण शब्द जैसे—हिल्लाते, बकोटे, कनौखी, बिचारी, असवारी, आदि शब्दों के साथ-साथ विभाषाओं और

१. वसुमति : दिवाकर प्रसाद शास्त्री, द्वितीय सर्ग, पद २६ पृ० १४।
२. वीर प्रताप : लाला भगवान दीन।

बोलियों में प्रचलित देशज और लोक-व्यवहृत शब्दों का प्रयोग भी किया है, जैसे—चंगेर आदि। कहीं-कहीं इस प्रकार के देशज शब्द अर्थ बोध में तो व्यवधान उत्पन्न करते ही हैं, खड़ी बोली के बीच में खप भी नहीं पाते तो खटकते भी हैं, जैसे रामनरेश त्रिपाठी के 'पथिक' में पंजाबी के 'उड़ीक' शब्द का प्रयोग। अप्रचलित दुरूह शब्दों का प्रयोग भी इस युग की कृतियों में मिलता है जो अर्थ ग्रहण में बाधक बनता है, जैसे बीरुध, पण्य, अभ्र, प्रत्न, रोधित, इक्षु, अनुसृत्य, अविधान, अवचय आदि। उर्दू शब्दों जैसे—मर्जी, नसीहत, खाक, तवज्जुह, सितम, जायज, इसरार, कत्ल आदि के प्रयोग भी कहीं-कहीं दुरूह हो गये हैं। किसी-किसी कवि ने व्याकरण के नियमों का भी उल्लंघन किया है, विशेषकर क्रिया पदों में जहाँ पुल्लिग के लिए स्त्रीलिंग वाचक तथा स्त्रीलिंग के लिए पुल्लिग क्रिया के प्रयोग किये गये हैं।

इन सब त्रुटियों और कमियों के बावजूद भी खड़ी बोली की विकासधारा अवरुद्ध नहीं हुई। वह निरन्तर परिष्कृत होती गई और उसमें इतनी सामर्थ्य आ गई कि वह इस युग का अनेक प्रभावपूर्ण उत्कृष्ट रचनाओं का सशक्त माध्यम बनी। उन्नीस सौ सोलह से उन्नीस सौ बाईस तेईस तक प्रकाशित खण्डकाव्य अनाथ, उषा-हरण, मिलन, पथिक, अभिमन्यु का आत्मदान, देवदूत, देवसभा, आत्मार्पण, भंग में रंग, वीरांगना वीरा, वीरबाला, रसालवन, वसुमति, वीर हमीर, उषाकाल आदि इस बात की पुष्टि करते हैं। द्विवेदी-काल के उत्तरार्द्ध के खण्ड-काव्यों में खड़ी बोली निरन्तर समृद्ध होती हुई प्रौढ़ता को प्राप्त हो गई है। पूर्वार्द्ध की अपरिष्कृत, तुतली भाषा, जिसने इतिवृत्तात्मकता को आश्रय लेकर खड़ा होना सीखा, द्विवेदी जी के संरक्षण और उनके अथक प्रयास द्वारा गति पा गई और गूढ़ भावों की अभिव्यक्ति में भी सक्षम हुई।

**छन्द :**

द्विवेदी युगीन खण्डकाव्यों में छन्दों में भी वैविध्य मिलता है। परम्परागत छन्दों से हटकर इस युग में कुछ नये प्रयोग हुए जिनका श्रेय द्विवेदी जी को है। उन्होंने कहा—'दोहा, चौपाई, सोरठा, घनाक्षरी, छप्पय और सवैया आदि का प्रयोग हिन्दी में बहुत हो चुका। कवियों को चाहिए कि यदि वे लिख सकते हैं तो इनके अतिरिक्त और छन्द भी वे लिखा करें—पादान्त में अनुप्रास-हीन छन्द भी हिन्दी में लिखे जाने चाहिए। इस प्रकार के छन्द जब

संस्कृत, अंग्रेजी और बंगला में विद्यमान हैं, तब कोई कारण नहीं कि हमारी भाषा में वे न लिखे जाँय।'[1]

इस प्रकार प्रचलित छन्द तो प्रयुक्त हुए ही साथ ही संस्कृत, बंगला, मराठी और उर्दू के छन्दों को ग्रहण कर लेने से छन्दों में एक ताजगी आई। संस्कृत वृत्त को अपना लेने से अतुकान्त छन्द का आकाश पाकर अभिव्यक्ति को स्वच्छन्द उड़ान भरने का अवसर मिला। फलतः हरिऔध जी चौपदों, छपदों और गण वृत्तों में, प्रसाद, दिवाकर प्रसाद शास्त्री, गुप्त जी आदि ने अतुकान्त छन्दों में, रामचरित उपाध्याय ने द्रुतविलम्बित तथा आर्यावृत्त में, नाथूराम शर्मा 'शंकर', जगमोहन सिंह ने कवित्तों और सवैयों में और सनेही जी तथा दीन जी ने उर्दू के बहरों में लिखा। श्री वागीश्वर मिश्र ने कई छन्दों का सम्मिश्रण कर नये ढंग का एक मिश्र छन्द रचा। अपने-अपने ढंग से मिश्र छन्द के प्रयोग श्रीधर पाठक, द्विवेदी जी, प्रसाद, पन्त, शंकर आदि ने किये। इस छूट से कविता एक नई झंकार और नूतन श्री से उद्दीप्त हो उठी। अन्त्यानुप्रास और गण के कठोर अनुशासन से मुक्ति पा जाने से काव्य की अभिव्यंजना में गहराई और व्यापकता आ गई। वर्णिक और मात्रिक, सम और विषम सभी प्रकार के छन्द व्यवहार में आये। रोला, छप्पय, कुण्डलियाँ, गीतिका, हरिगीतिका, वीर, ताटंक, लावनी, सरसी, सुमेरु, पीयूषवर्षी आनन्द छन्द, भुजंग प्रयात आदि ने सामने आकर कवियों को नई-नई रचनाओं के लिए भी उकसाया। अपनी एक ही रचना में कवियों ने विविध छन्दों का प्रयोग किया। द्विवेदी युग के आरम्भ में ही पं० खुन्नामल शर्मा ने सन् १९०६ में विभिन्न छन्दों जैसे शोभन, चान्द्रायण, रोला, त्रिभंगी, हरिप्रिया, दंडक, शिखरिणी, दोहे, चतुष्पदा, हरिगीतिका आदि का सफल प्रयोग अपने 'इन्दुमती' खण्डकाव्य में किया। गुप्त जी ने भी अरिल्ल, आर्या, आल्हा, घनाक्षरी, चौपाई, गीतिका, हरिगीतिका, मधुमालती, राधिका, सरसी, चौपैया, तोटक, दिग्पाल, पद्धरि, सार, पीयूष, सवैया, रोला, उल्लाला आदि विविध छन्दों का सफल प्रयोग किया। उदाहरण के लिए विविध खण्डकाव्यों से कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं—

इन्दुमती छबि पेखि, पुष्प निज छबि बिसराई,
अंग मृदुलता निरखि, लता मनमाँहि लजाई।[2]

---

१. रसज्ञ-रंजन : महावीर प्रसाद द्विवेदी, द्वितीय संस्करण १९३३ पृ० ३-४।

२. इन्दुमती परिणय : खुन्नामल शर्मा, नवम तरंग, पृ० १३३।

यह रोला छन्द है। इसके प्रत्येक चरण में चौबीस मात्राएँ हैं। ग्यारह और तेरह मात्राओं पर यति है। ग्यारह मात्राओं में एक छकल, एक द्विकल और एक त्रिकल तथा तेरह मात्राओं में त्रिकल, द्विकल, छकल और द्विकल का क्रम है। चरणान्त में दो गुरु हैं। गीतिका छन्द का प्रयोग गुप्त जी ने अपने काव्य 'रंग में भंग' में किया है—

यह चराचर विश्व अब, मुझको अंधेरा हो गया।
आपका सोंपा हुआ सर्वस्व मेरा खो गया।
फिर अंधेरे में रहूँ, सर्वस्व खोकर मैं अहो!
या उसे पाकर सदा को, स्वर्ग-सुख भोगूँ कहो।[1]

प्रत्येक पद में छब्बीस मात्राएँ हैं, बारह और चौदह मात्राओं पर यति है। तीसरी, दसवीं, सत्रहवीं और चौबीसवीं मात्राएँ लघु हैं। चरण के अन्त में लघु गुरु का क्रम है अतः यह गीतिका का एक आदर्श छन्द है।

सार छन्द का प्रयोग श्री रामनरेश त्रिपाठी ने किया है —

शारीरिक वासना-तृप्ति का साधन जहाँ प्रणय है।
जहाँ शब्द चातुर्य सत्य है, भ्रमोत्पत्ति निर्णय है।
चलता है तूफान जहाँ हिंसा का हृदय, हृदय में।
मैत्री में विश्वासघात है, छल है छिपा विनय में॥[2]

इसमें प्रत्येक पद में २८, २८ मात्राएँ हैं, १६ और १२ मात्राओं पर यति है तथा अन्तिम वर्ण गुरु है। 'पथिक' में इसके प्रयोग ने इस छन्द को उस समय लोकप्रिय बनाया। मात्रिक छन्द षट्पदी का प्रयोग रामशरण गुप्त 'शरण', सियारामशरण गुप्त इत्यादि कई कवियों ने किया। उदाहरणार्थ—

प्रेम विवश हो पंचानन पद पीठ चाटता।
प्रेम पला विकराल व्याल भी नहीं काटता।
प्रेम शक्ति से मीरा को विष बना अमीरस।
मधुर हो गया सूरदास का जीवन नीरस।
नल-अन्तस्तल भी था भरा स्वच्छतलातल प्रेम जल।
सुतसुता-चन्द्रमुख से बढ़ा ज्वार चला दृग से निकल॥[3]

इसमें प्रारम्भ में २४-२४ मात्राओं वाले रोला छन्द के चार पद और

---

१. रंग में भंग : गुप्त जी, एकादश संस्करण, छन्द ७०, पृ० २२।
२. पथिक : रामनरेश त्रिपाठी, संस्करण १९५१, पद ४७, पृ० २४।
३. पतिव्रतादर्श : रामशरण गुप्त 'शरण', उत्तरार्द्ध, पद १८०।

अन्त में २८-२८ मात्राओं के उल्लाला छन्द के दो पद हैं। छहों पदों ने मिलकर षट्पदी छन्द की रचना की है जो स्वयं में पूर्ण है।

'मौर्य विजय' का निम्नलिखित छन्द भी षट्पदी का अच्छा उदाहरण है—

साक्षी है इतिहास हमीं पहले जागे हैं।
जागृत सब हो रहे हमारे ही आगे हैं।
शत्रु हमारे कहाँ नहीं भय से भागे हैं।
कायरता से कहाँ प्राण हमने त्यागे हैं।
हैं हमीं प्रकम्पित कर चुके, सुरपति तक का भी हृदय।
फिर एक बार हे विश्व ! तुम गाओ भारत की विजय ॥[1]

इस छप्पय में भी प्रथम चार पदों में रोला और अन्तिम दो पदों में उल्लाला छन्द है।

'महाराणा का महत्त्व' में प्रसाद जी ने प्लवंगम छन्द का प्रयोग किया है। इसमें हर पद में २१ मात्राएँ होती हैं। प्रसाद जी ने इसका प्रयोग अतुकान्त रूप में किया है, यथा—

कंपी सुराही कर की, छलकी वारुणी,
देख ललाई स्वच्छ मधूक कपोल के।
खिसक गयी उर से जरतारी ओढ़नी,
चकाचौंध सी लगी विमल आलोक की।[2]

अतुकान्त तटिक छन्द का प्रयोग प्रसाद के 'प्रेम पथिक' में मिलता है—

छोटे छोटे कुसुम श्यामला धरणी में किसका सौन्दर्य
इतना लेकर खिलते हैं, जिन पर सुन्दरता का गर्व्वी
मानव भी मधु लुब्ध मधुप-सा सुख अनुभव करता-फिरता।[3]

इसमें प्रत्येक पद में ३० मात्रायें हैं और कहीं छन्द भंग नहीं है। 'उषा हरण', 'जयद्रथ-वध' आदि में हरि-गीतिका छन्द का सफल प्रयोग हुआ है—

कर में मुझे तुम शस्त्र देकर, फिर दिखाओ वीरता,
देखूँ, यहाँ फिर मैं तुम्हारी धीरता, गम्भीरता।

---

१. मौर्य विजय : सियारामशरण गुप्त, तृतीय सर्ग, संस्करण २०१३ वि०, पृ० ३१।
२. महाराणा का महत्त्व : जयशंकर प्रसाद।
३. प्रेम पथिक : जयशंकर प्रसाद, तृतीय संस्करण, पृ० ३१।

हो सात क्या, सौ भी रहो तो भी रूलाऊँ मैं तुम्हें,
कर पूर्ण रण-लिप्सा अभी क्षण में सुलाऊँ मैं तुम्हें।[1]

इसमें प्रत्येक चरण में २८ मात्राएँ हैं, १६ और १२ मात्राओं पर यति है। अन्त में, चारों पदों में रगण है जिससे छन्द और श्रुतिमधुर हो गया है। पाँचवीं, बारहवीं, उन्नीसवीं और छब्बीसवीं मात्राएँ लघु हैं।

'कंस-वध' में पद्धरि छन्द का सौन्दर्य अवलोकनीय है—

'कहाँ जा छिपे हमारी बार,
खबर जो भूले जगदाधार।
धरा ! तू फट जा सहसा आज,
देवकी की रख ले तू लाज।[2]

इसमें प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ हैं और अन्त में नियमानुसार गुरु-लघु हैं।

'अभिमन्यु का आत्मदान' में 'मत्त सवैया' का प्रयोग किया गया है—

रणभूमि परीक्षास्थल पर ही हो जाय परीक्षा वीरों की,
तुम सात ! नहीं परवा मुझको, मैं घटा लगा दूँ तीरों की।[3]

प्रत्येक चरण में ३२ मात्राएँ हैं। आदि से अन्त तक द्विकल हैं।

'हल्दी घाटी की लड़ाई' में वीर छंद का जिसे आल्हा छंद भी कहते हैं, प्रयोग है—

पूरब से रजपूत और पश्चिम से पवन बहादुर आय।
जुटे वीर घनघोर मेघ सम नेजा, तीर, सेल हर्षाय।[4]

प्रत्येक चरण में ३१-३१ मात्राएँ हैं। सोलह और पन्द्रह मात्राओं पर यति है। हर चरण के अन्त में गुरु-लघु का क्रम है।

चौपाई को भी इन खण्डकाव्यों में स्थान मिला है, यथा—

ब्राह्मण हारि कहैं कर जोरी। पेट हेत यह करत बहोरी॥
सुन्दरलाल आदि नर नारी। पूजा मूर्ति दिये सब टारी।[5]

---

१. जयद्रथ वध : गुप्त जी, साठवाँ संस्करण, पृ० १९।
२. कंस वध : श्यामलाल पाठक, सर्ग तृतीय, पद ६, पृ० १८।
३. अभिमन्यु का आत्मदान : कमला प्रसाद वर्मा, छठां सर्ग, पृ० २०।
४. हल्दी घाटी की लड़ाई : कवि माणिक।
५. दयानन्द जीवन काव्य : हरिदत्त वर्मा, पृ० ४६।

अन्त में २८-२८ मात्राओं के उल्लाला छन्द के दो पद हैं। छहों पदों ने मिलकर षट्पदी छन्द की रचना की है जो स्वयं में पूर्ण है।

'मौर्य विजय' का निम्नलिखित छन्द भी षट्पदी का अच्छा उदाहरण है—

साक्षी है इतिहास हमीं पहले जागे हैं।
जागृत सब हो रहे हमारे ही आगे हैं।
शत्रु हमारे कहाँ नहीं भय से भागे हैं।
कायरता से कहाँ प्राण हमने त्यागे हैं।
हैं हमीं प्रकम्पित कर चुके, सुरपति तक का भी हृदय।
फिर एक बार हे विश्व ! तुम गाओ भारत की विजय ॥[1]

इस छप्पय में भी प्रथम चार पदों में रोला और अन्तिम दो पदों में उल्लाला छन्द है।

'महाराणा का महत्त्व' में प्रसाद जी ने प्लवंगम छन्द का प्रयोग किया है। इसमें हर पद में २१ मात्राएँ होती हैं। प्रसाद जी ने इसका प्रयोग अतुकान्त रूप में किया है, यथा—

कंपी सुराही कर की, छलकी वारुणी,
देख ललाई स्वच्छ मधूक कपोल के।
खिसक गयी उर से जरतारी ओढ़नी,
चकाचौंध सी लगी विमल आलोक की।[2]

अतुकान्त तटिक छन्द का प्रयोग प्रसाद के 'प्रेम पथिक' में मिलता है—

छोटे छोटे कुसुम श्यामला धरणी में किसका सौन्दर्य
इतना लेकर खिलते हैं, जिन पर सुन्दरता का गर्व्वी
मानव भी मधु लुब्ध मधुप-सा सुख अनुभव करता-फिरता।[3]

इसमें प्रत्येक पद में ३० मात्रायें हैं और कहीं छन्द भंग नहीं है। 'उषा हरण', 'जयद्रथ-वध' आदि में हरि-गीतिका छन्द का सफल प्रयोग हुआ है—

कर में मुझे तुम शस्त्र देकर, फिर दिखाओ वीरता,
देखूँ, यहाँ फिर मैं तुम्हारी धीरता, गम्भीरता।

---

१. मौर्य विजय : सियारामशरण गुप्त, तृतीय सर्ग, संस्करण २०१३ वि०, पृ० ३१।
२. महाराणा का महत्त्व : जयशंकर प्रसाद।
३. प्रेम पथिक : जयशंकर प्रसाद, तृतीय संस्करण, पृ० ३१।

हो सात क्या, सौ भी रहो तो भी रूलाऊँ मैं तुम्हें,
कर पूर्ण रण-लिप्सा अभी क्षण में सुलाऊँ मैं तुम्हें।[1]

इसमें प्रत्येक चरण में २८ मात्राएँ हैं, १६ और १२ मात्राओं पर यति है। अन्त में, चारों पदों में रगण है जिससे छन्द और श्रुतिमधुर हो गया है। पाँचवीं, बारहवीं, उन्नीसवीं और छब्बीसवीं मात्राएँ लघु हैं।

'कंस-वध' में पद्धरि छन्द का सौन्दर्य अवलोकनीय है—

'कहाँ जा छिपे हमारी बार,
खबर जो भूले जगदाधार।
धरा ! तू फट जा सहसा आज,
देवकी की रख ले तू लाज।[2]

इसमें प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ हैं और अन्त में नियमानुसार गुरु-लघु हैं।

'अभिमन्यु का आत्मदान' में 'मत्त सवैया' का प्रयोग किया गया है—

रणभूमि परीक्षास्थल पर ही हो जाय परीक्षा वीरों की,
तुम सात ! नहीं परवा मुझको, मैं घटा लगा दूँ तीरों की।[3]

प्रत्येक चरण में ३२ मात्राएँ हैं। आदि से अन्त तक द्विकल हैं।

'हल्दी घाटी की लड़ाई' में वीर छंद का जिसे आल्हा छंद भी कहते हैं, प्रयोग है—

पूरब से रजपूत और पश्चिम से पवन बहादुर आय।
जुटे वीर घनघोर मेघ सम नेजा, तीर, सेल हर्षाय।[4]

प्रत्येक चरण में ३१-३१ मात्राएं हैं। सोलह और पन्द्रह मात्राओं पर यति है। हर चरण के अन्त में गुरु-लघु का क्रम है।

चौपाई को भी इन खण्डकाव्यों में स्थान मिला है, यथा—

ब्राह्मण हारि कहैं कर जोरी। पेट हेत यह करत बहोरी॥
सुन्दरलाल आदि नर नारी। पूजा मूर्ति दिये सब टारी।[5]

---

१. जयद्रथ वध : गुप्त जी, साठवाँ संस्करण, पृ० १९।
२. कंस वध : श्यामलाल पाठक, सर्ग तृतीय, पद ६, पृ० १८।
३. अभिमन्यु का आत्मदान : कमला प्रसाद वर्मा, छठां सर्ग, पृ० २०।
४. हल्दी घाटी की लड़ाई : कवि माणिक।
५. दयानन्द जीवन काव्य : हरिदत्त वर्मा, पृ० ४६।

इसके प्रत्येक चरण में १६-१६ मात्राएं हैं। चरण के अन्त में जगण या तगण अर्थात् गुरु के पश्चात् लघु का प्रयोग नहीं है।

वर्णिक वृत्तों जैसे शालिनी, इन्द्रवज्रा, भुजंगप्रयात, तोटक, द्रुत-विलम्बित, मालती, वसन्ततिलका, मालिनी, मन्दाक्रान्ता, शिखरिणी, सवैया, शार्दूलविक्रीडित आदि के भी प्रयोग द्विवेदी युगीन खण्डकाव्यों में हुए हैं। ये वृत्त मात्राओं के अनुसार नहीं वर्णों अथवा अक्षरों की गणना के आधार पर गुरु और लघु वर्ण के विशिष्ट समायोजन द्वारा रचे जाते हैं। 'वीर बाला' खण्डकाव्य में वसन्ततिलका, मन्दाक्रान्ता, मालिनी, शिखरिणी आदि वर्णिक वृत्त प्रयुक्त हुए हैं। वसन्ततिलका का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

स्वामी वही, गुरु वही, हित है, सखा है,
माली अनन्य उसके सुख की लता का।
प्रेमी समान प्रिय पूजित देवता सा,
सर्वस्व है स्वपति एक पतिव्रता का।[1]

इसके प्रत्येक चरण में चौदह वर्ण हैं जिनमें क्रमशः एक तगण (SSI) एक भगण (SII) दो जगण (ISI) और अन्त में दो गुरु (SS) का प्रयोग किया गया है।

'उषाकाल' खण्डकाव्य में आनन्दी प्रसाद श्रीवास्तव ने हिन्दी पिंगल का अनुसरण न करके बंगला के पयार छन्द के ढंग पर छन्द रचा है जो कवित्र छन्द के अधिक सदृश चला है। इसमें प्रत्येक चरण में समान वर्ण नहीं है। जहाँ अन्त में दीर्घ है वहाँ प्रत्येक चरण में १५-१५ वर्ण हैं, जहाँ अन्त में ह्रस्व है, वहाँ प्रत्येक चरण में १६-१६ वर्ण हैं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित छन्द को लिया जा सकता है—

सारी चौकड़ी की उस स्थिरता में लीनता,
ग्रसे स्नेह शशि राहु लालसा मलीनता।
श्याम मृति-अंक में शरीर स्वर्णकृत वह,
मंजु बाल तन शरजाल अधिकृत वह।[2]

वियोगी जी के 'प्रेम पथिक' में शिखरिणी वर्ण वृत्त के सौष्ठव को देखा जा सकता है—

कबै प्यारो ए है मुख-छबि दिखै है रस भरी।
चिते है त्यों दे है कर कमल, रैहै किहि घरी।

---

१. वीर बाला, आठवाँ सर्ग, पद १७, पृ० ८१।
२. उषा काल : आनन्दी प्रसाद श्रीवास्तव, पृ० १६।

लगा लै है ही सों मधुर मुसकै है चित करै।
पराशान्ती पै ह्वै यह पथिक वाको कब तरै ॥[1]

इसमें छन्द शास्त्र के नियमानुसार ही कवि ने प्रत्येक चरण में सत्रह वर्णों का प्रयोग किया है। हर चरण में यगण (।ऽऽ) मगण (ऽऽऽ) नगण (।।।) सगण (।।ऽ) भगण (ऽ।।) तथा अन्त में दो वर्ण एक लघु और एक गुरु प्रयुक्त हुए हैं।

कुछ काव्यों में बहरों का भी प्रयोग हुआ है, जैसे नारायण प्रसाद बेताब 'कल्पित' ने अपने 'दयानन्द दिग्दर्शन' में चार मुसद्दस दो बहरों—(१) तकासव मुसम्मन सालिक और (२) हजज मुसम्मन सालिक में लिखे हैं। उदाहरणार्थ--

अभी लेके तिरशूल निकलेंगे शंकर,
फटा चाहती है यह पिंडी मुकर्रर।
जटा गंगाधारी दिशाओं के अफसर,
इसे आज रख देंगे निश्चय कुचल कर।
सजा देंगे गुस्ताख को बात क्या है,
यह चूहा है चूहे की औकात क्या है।[2]

इस बहर 'तकासव' की ध्वनि हिन्दी के भुजंग प्रयात वर्णिक वृत्त के समान है जिसमें प्रत्येक चरण में चार यगण (।ऽऽ) होते हैं। कुछ कवियों ने इस प्रकार के छंद लिखे हैं जो पिंगल शास्त्र में नहीं हैं, जैसे 'मेवाड़-गाथा' का यह छंद--

'छोड़े देता हूँ अभी मातृभूमि मेवाड़; जन्म भर के लिए।'
'देख करो हे भाइयो! खोल हृदय की दृष्टि; ग्रहण उपदेश कुछ।'
'रहो प्रेम से सुख सहित तजकर बन्धु विरोध; सदा फूलो फलो।'[3]

इन छंदों में २४-२४ मात्रा के चरण हैं। अन्तिम चरण में १० मात्रा का एक छोटा लघुचरण और जोड़कर नया प्रयोग किया गया है।

तुकान्त छंदों के साथ ही अतुकान्त छन्दों का भी इस युग में अच्छा प्रयोग मिलता है। द्विवेदी जी भी अतुकान्त छंद के पक्षधर थे—

---

१. प्रेमपथिक : हरिप्रसाद द्विवेदी 'वियोगी हरि', पृ० २६।
२. दयानन्द दिग्दर्शन : नारायण प्रसाद 'बेताब', मुसद्दस १, बहर ८, पृ० ६।
३. मेवाड़ भाषा : लोचन प्रसाद पाण्डेय, सर्ग आत्मत्याग, पृ० १७।

'तुले हुए शब्द में कविता करने और तुक, अनुप्रास आदि ढूँढने से कवियों के विचार-स्वातन्त्र्य में बड़ी बाधा आती है।'[1]

फलतः कई कवियों ने तुकान्त का मोह छोड़ दिया। अन्त्यानुप्रास और गण के कठोर बन्धन से मुक्ति पाकर संस्कृत वृत्तों के अनुकरण पर लिखे गये नवीन प्रयोगों ने छन्द को नयी शक्ति और नूतन सौन्दर्य दिया है। उन्होंने सिद्ध किया कि छन्द भावना का मात्र अनुवर्तन ही नहीं करता, उसका पोषण भी करता है। इस प्रकार के छन्दों का प्रयोग करने वाले कवियों ने भिन्न तुकान्त कविता के लिए गण-वृत्त और मात्रिक-वृत्त दोनों को ही अनुकूल माना है। 'गंगा पुस्तक माला' के ५१वें पुष्प के रूप में प्रकाशित शिवदास 'कुसुम' की कृति 'उषा' के सम्पादकीय वक्तव्य में श्री दुलारे लाल भार्गव ने लिखा—

'हिन्दी में काफिए बन्दी की बन्दिश बहुत दिनों से प्रचलित है, इसीलिए इस प्रकार की रचना अभी तक लोकप्रिय नहीं हो पायी है तथापि इसमें संदेह नहीं कि इस तरह की जो कुछ रचना अभी तक की गयी है, वह पुरस्कृत नहीं तो तिरस्कृत भी नहीं हुई। भावपूर्ण कविता के लिए काफिए बन्दी की विशेष आवश्यकता नहीं होती और यह भी सत्य है कि भाव की पूर्ण रक्षा के लिए काफिए का पूर्ण बन्धन न रहना चाहिए।'[2]

द्विवेदी युग में अतुकान्त का प्रयोग 'महाराणा का महत्त्व', 'करुणालय', 'विकट भट', 'वसुमती', 'प्रेमपथिक' आदि में हुआ है। अतुकान्त छन्द में तुकान्त छन्द की तरह संगीतात्मकता और श्रुति-माधुर्य तो नहीं होता, पर उसमें एक विशिष्ट लय और प्रवाह अवश्य होता है। इसकी लयात्मकता में ही इसका संगीत और माधुर्य रहता है।

मैथिलीशरण गुप्त के 'विकट-भट' में जब सवाई सिंह, राज-दरबार में निर्भय होकर प्रवेश करता है, तब कवि ने एक प्रभावपूर्ण चित्र खींचा है—

निर्भय मृगेन्द्र नया करता प्रवेश है–
वन में ज्यों डाले बिना दृष्टि किसी ओर त्यों,
भोर के भभूके सा प्रविष्ट हुआ साहसी
बालवीर, मन्द मन्द धीर गति से धरा
मानो धँसी जा रही थी, वदन गंभीर था,

१. रसज्ञ-रंजन : महावीर प्रसाद द्विवेदी, द्वितीय संस्करण, पृ० ४०।
२. उषा : शिवदास 'कुसुम', भूमिका।

उठता शरीर मानों अंगे में न आता था,
वक्षस्थल देख के कपाट खुले जाते थे।[1]

अतुकान्त होते हुए भी इसमें एक विशिष्ट गति और लयात्मकता है। अतुकान्त छन्द के प्रयोग की दृष्टि से 'वसुमती' खण्डकाव्य उल्लेखनीय है। नये प्रतीक, व्यापक साम्य और प्रवाह इसकी विशेषताएँ हैं। इसके रचयिता दिवाकर प्रसाद शास्त्री ने ग्रन्थ की भूमिका में स्वयं लिखा है—'वसुमती' के छन्दों के विषय में मुझे बहुत कुछ कहना है। सबसे पहिले तो यह कह देना चाहता हूँ कि इन छन्दों को आप किसी पिंगल ग्रन्थ में नहीं पा सकते। छन्दों के विषय में मेरी भावना यह है कि उनमें एक सरल गति और व्यापक साम्य होना चाहिए और कुछ नहीं। केवल तुकबन्दी ही अच्छी कविता नहीं है और तुकों के फेर में पड़ कर कवि के अच्छे से अच्छे भाव दबे रह जाते हैं। हिन्दी साहित्य अब ऐसे स्थान पर पहुँच चुका है कि तुकों के बिना भी उसके काव्य की उत्तमता अक्षुण्ण रह सकती है'—और वास्तव में तुक के बिना भी 'वसुमती' काव्य की उत्तमता अक्षुण्ण रहेगी, इसमें सन्देह नहीं है। इसके भिन्न तुकान्त पदों का लयगत लालित्य द्रष्टव्य है—

मधु रजनी समाप्त प्राया थी,
किसी विजित सेनापति सा विधु
लज्जित हो अपना मलीन मुख
पच्छिम के पादप कुञ्जों में मनो छिपाने जाता था।[2]

अर्थेच्छा उत्साह-पंखयुत
विकट कपट कठोर मुख वाले
बुझा बुझा निज शिक्षा विष में
यों नीतिज्ञ-धनुर्धर ने भारत पर छोड़े दो नर-बाण।[3]

अलगूराय 'आनन्द' ने भी अपने काव्य 'शान्ति प्रताप' में अतुकान्त छन्द का प्रयोग किया है—

प्रकृष्टता भाव भरी हुई कथा
सुवीरता शोभन चातुरी हरी

---

१. विकट भट : मैथिलीशरण गुप्त, संस्करण २००३ वि०, पृ० १४।
२. वसुमती : दिवाकर प्रसाद शास्त्री, चतुर्थ सर्ग, पद १, पृ० २५।
३. वही, प्रथम सर्ग, पद २७, पृ० ६।

प्रताप की भावुकता ठगी हुई
अतीव पद्मा उसमें विलीन थी।[1]

मुक्त छन्द का यह सहज प्रवाह पाठक को प्रभावित ही नहीं करता, वरन् भावों के रसात्मक सम्प्रेषण में सहायक भी होता है। इस प्रकार द्विवेदी-युगीन खण्ड-काव्यों में रीतिकालीन कवित्त-सवैया की सीमित छन्द-परम्परा से मुक्त होकर विविध छन्दों का प्रयोग किया गया, किन्तु मात्रिक छन्दों का अपेक्षाकृत अधिक प्रयोग किया गया। इस काल में विविध छन्दों के आगमन और उत्कर्ष ने काव्य को अधिक लोकप्रिय बनाया, इसमें सन्देह नहीं।

**अलंकार :**

काव्य की सौन्दर्य-योजना में अलंकारों की सदा ही महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है, किन्तु रूप-सज्जा के लिए उनका अति आग्रह, सायास समायोजन काव्य के स्वाभाविक प्रवाह और प्रभाव को नष्ट कर देता है। द्विवेदी जी ने इस प्रवृत्ति की वर्जना के लिए ही 'रसज्ञ-रंजन' में एक स्थान पर कहा—'कविता करने में हमारी समझ में अलंकारों को बलात् लाने का प्रयत्न न करना चाहिए।'[2]

अलंकरण-सज्जा और पाण्डित्य प्रदर्शन की रीतिकालीन प्रवृत्ति पर अन्य विद्वानों ने भी प्रहार किया, फलस्वरूप अब कवियों ने प्रचलित अलंकारों को संवारा, नवीन अलंकारों की उद्भावना की। हठधर्मितावश यत्नपूर्वक अलंकारों को कृति में ठूंसकर अपनी विद्वता प्रदर्शित करने की चेष्टा प्रायः नहीं की। द्विवेदी युगीन खण्डकाव्यों में अपने धर्म के अनुसार अलंकार बहुधा काव्यगत सौन्दर्य और प्रभाव को बढ़ाते ही दृष्टिगत होते हैं। इससे उनकी सम्प्रेषणीयता तो बढ़ी ही है, सादृश्यधर्मा प्रस्तुति से वर्ण्य का स्वरूप-बोध भी सहज ग्राह्य हुआ है। शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों के ही समर्थ प्रयोग कवियों ने आलोच्य युग में किये हैं। उभयालंकार भी यत्रतत्र मिलते हैं।

**शब्दालंकार :**

शब्दालंकारों में अनुप्रास का प्रयोग इन काव्यों में सर्वाधिक हुआ है। उदाहरणस्वरूप—

---

१. शान्ति प्रताप : अलगूराय 'आनन्द', सर्ग ३।

२. रसज्ञ-रंजन : महावीर प्रसाद द्विवेदी, द्वितीय संस्करण, पृ० ९।

ललित लहलही लता लसित अलि मुखरित कंज-भुवन को।[१]
हो चित चंचल चंचला सम चंचलित चलने लगा।[२]
सलिलेश-सुखदा सुरसरि का था समागम ज्यों हुआ।[३]

चक्राकार चूमती सी चपला-चमक थी।[४]

इन सब में शब्दगत वर्णों में व्यंजनों की समानता है। पहिली में ल की आवृत्ति, दूसरे, तीसरे, चौथे में क्रमशः च, स और च की आवृत्ति ध्यान खींचती है। इन काव्यों में छेकानुप्रास, वृत्यानुप्रास, लाटानुप्रास आदि अनुप्रासों के सभी भेदों का समावेश हुआ है। जैसे—श्यामलाल पाठक की कृति के निम्नलिखित उदाहरण में—

घूमते सुख दुख ज्यों शशि अर्क,
व्यर्थ है करना तर्क वितर्क।[५]

प्रथम चरण और द्वितीय चरण में र्क की कई बार आवृत्ति है। यहाँ ग्राम्यावृत्ति के साथ वृत्यानुप्रास ने शोभा वृद्धि करते हुए भाव को उद्दीप्त करने में भी सहयोग किया है। इसी प्रकार इस पद में—

चला चली में चित्त चपल चंचल चोरी से,
वहीं रह गया, गया न नल संग बरजोरी से।[६]

यहाँ प्रथम चरण में च वर्ण का द्वितीय चरण में ग वर्ण का अनुरणन श्रुद्धि माधुर्य सुख दे पाठक का मनोरंजन करता है। यहाँ अनुप्रास शृंगार का उपकारक भी है।

'आत्मार्पण' में अनुप्रास के प्रयोग निम्नलिखित छन्द में देखने योग्य हैं—

रमा-रमण! यों रमा-सहित फिर
भारत में करिए प्रभु-वास,
दीन दशा हो दूर दयानिधि!
पूर्ण प्रभा का बढ़े विकास।[७]

---

१. पथिक : रामनरेश त्रिपाठी, तीसरा सर्ग, संस्करण १९५१, पद १९।
२. भंग में रंग : अम्बिका दत्त त्रिपाठी, पद ६६, पृ० १५।
३. वही, पद ४०, पृ० ९।
४. उषाकाल : आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव (नरेन्द्र की पूर्व-स्मृति), पृ० ४४।
५. कंस वध : श्यामलाल पाठक, द्वितीय सर्ग, छन्द १९, पृ० १३।
६. पतिव्रतादर्श : रामशरण गुप्त 'शरण', पूर्वार्द्ध, पद २३, पृ० १२।
७. आत्मार्पण : द्वारिकाप्रसाद गुप्त रसिकेन्द्र, प्रथम सर्ग, पद ५६, पृ० ६०।

इसमें प्रथम चरण में र और तृतीय चरण में द वर्ण की बार-बार आवृत्ति से काव्य में सौन्दर्य बढ़ा है। माधुर्य-व्यंजक वर्णों के प्रयोग से उपनागरिका वृत्ति का समाहार हुआ है, साथ ही यहाँ अनुप्रास भक्ति का उपकारक भी है।

कहीं-कहीं अनुप्रास के ऐसे प्रयोग भी हैं जो मन को बिलकुल नहीं छूते, मात्र अनुप्रास लाने के लिए ही किये गये लगते हैं, जैसे—

उसने खुदाकर एक शुद्ध सुरंग तोप रखा दिया,
यमदूत को यम ने यथा यमनीय जीव लिखा दिया।[1]

यवन सेना ने शत्रुपक्ष को मारने के लिए जो योजना बनाई और तोप रखवाई उसके लिए कवि की यह उक्ति कि यम ने यमदूत को जैसे यम के योग्य 'जीव' लिखा दिया मात्र जबर्दस्ती का रचा अलंकार है।

अनुप्रास के अतिरिक्त यमक, श्लेष, वीप्सा, वक्रोक्ति, पुनरुक्ति आदि अन्य शब्दालंकारों का प्रयोग भी कहीं-कहीं मिलता है। जैसे—

तरणि के ही संग तरल तरंग से
तरणि डूबी थी हमारी ताल में।[2]

प्रथम चरण में यहाँ 'तरणि' का सूर्य के अर्थ में और द्वितीय चरण में नाव के अर्थ में प्रयोग किया गया है, अतः यमक अलंकार है।

**अर्थालंकार—**

अर्थालंकारों में साम्य मूलक अलंकारों का ही सर्वाधिक प्रयोग इन खण्ड काव्यों में हुआ है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अनन्वय, प्रतीप, अपह्नुति, सन्देह, भ्रान्तिमान, दृष्टान्त आदि के प्रयोग की ओर कवियों का विशेष रुझान दिखलायी पड़ता है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित अंश देखे जा सकते हैं—

**उपमा—**

मेरे मुख को चन्द्र बताकर तुम चकोर बनते थे।
नीर भरे धन से मेरे कच देख मोर बनते थे॥[3]

इसमें बालों की उपमा नीर भरे घन से दी गयी है। पद को पढ़ते ही पाठक के सामने जल भरे बादलों का चित्र आता है और इससे उसे नायिका

---

१. चित्तौड़-विध्वंस : कालीप्रसाद शास्त्री, पद १८, पृ० ७।
२. ग्रन्थि : सुमित्रानन्दन पंत, प्रथम परिच्छेद, पृ० ३।
३. पथिक, रामनरेश त्रिपाठी, तीसरा सर्ग, पद १९।

की भीगी सघन केश राशि के स्वरूप का काफी कुछ आभास मिल जाता है।

'प्रेम पथिक' के निम्नलिखित उदाहरण में उपमा द्रष्टव्य है—

नीलोत्पल के बीच सजाये मोती के आँसू के बूंद।

'मैथिली मंगल' में कवि शुकलाल प्रसाद ने मालोपमा और रूपक की सुन्दर प्रस्तुति की है। रूप वर्णन में उन्होंने उपमाओं और रूपकों की झड़ी लगा दी है।

'सुहराब और रुस्तम' में भी कवि ने उपमेय के लिए सादृश्यमूलक कई उपमानों को एकत्र कर दिया है—

हरिण सा तीव्र, बल में केहरी सा,
वहाँ वह झूमता फिरता करी सा,
झपटता द्वीपि ज्यों आखेट पर है,
वहाँ सोहराब त्यों करता समर है।[1]

रामनरेश त्रिपाठी ने भी 'मिलन' में उपमा के कुछ बड़े अच्छे प्रयोग किये हैं, जैसे—

पंकज माला सी प्रणयी के,
मृदु गलबहियाँ डाल।
दृग चकोर से देख चन्द्रमुख,
बोली विह्वल बाल।[2]

प्रिय के गले में कमल की माला सी बाहें डाल देना स्थिति को चित्रात्मकता देकर रति-भाव को प्रगाढ़ करता है। यहाँ यह अलंकार श्रृंगार का उपकारक भी है।

**रूपक—**

भारत-नैश-नभस्थल पर थे
उडगन से अनेक लघु नरपति
इस तम का अवरोध न करके
एक अन्य पर टूट परस्पर वे करते थे आत्म-विनाश।[3]

उपमेय भारत को उपमान नभस्थल का रूप देकर कवि ने रूपक अलंकार की योजना की है। भारत के आकाश में तारों जैसे छोटे-छोटे राजा अंधकार

---

१. मिलन : रामनरेश त्रिपाठी, पृ० १६।
२. सुहराब और रुस्तम : तृतीय उच्छ्वास, पद १६, पृ० १९।
३. वसुमती : दिवाकर प्रसाद शास्त्री, छन्द ६, पृ० २।

निश्चित ही कवि की मौलिक कल्पना शक्ति का सूचक है, शेष उदाहरणों में कल्पना की कोई विशेष नवीनता नहीं है।

**प्रतीप—**

प्रतीप अलंकार के भी कई उदाहरण इन काव्यों में प्राप्त होते हैं, जैसे—

विटप तले बैठी दिखलाई वन में एक नवल बाला,
वदन छिपाती थी लख जिसकी अलक-छटा अलिनीमाला।

\+ \+ \+

व्रीड़ित परम बना था बिम्बा अधर अरुणिमा-दर्शन से,
पल्लव लाल प्रवाल सभी थे श्रीहत निज मद-मर्दन से।[1]

बाला की केश राशि के सौन्दर्य को देख भ्रमरियों की पंक्तियाँ मुख छिपाने लगीं, अधरों की अरुणिमा के आगे बिम्बाफल लज्जित हो गया, अपने मद के मर्दित हो जाने से समस्त लाल प्रबाल शोभा-हीन हो गये। कवि ने यहाँ उपमेय के सामने प्रसिद्ध उपमानों का तिरस्कार कर, उन्हें हीन दिखा प्रतीप की अच्छी योजना की है।

'सावित्री उपाख्यान' का यह प्रसंग भी प्रतीप का अच्छा उदाहरण है—

मुख पंकज की दुति देखत ही।
जलजात लजात थिरात नहीं।
चख चंचल, खंजन मान हरे।
अरुणाधर हैं मुस्कान भरे॥[2]

**दृष्टान्त—**

'देव-दूत' में रामचरित उपाध्याय ने दृष्टान्त का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया है, जैसे—

कंचक छोड़ दिव्य तन विषधर
श्वास छोड़ता है जैसे,
बन्धक-मुक्त सिंह हो गज के
शीश तोड़ता है जैसे।
वैसे ही निज प्रतिबन्धक को
तू भी दूर भगावेगा।

१. रसाल वन : गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश', विपद घटा, पृ० १०।
२. सावित्री उपाख्यान : प्रसिद्ध नारायण सिंह, प्रथम प्रतिभा, पद २५, २६ पृ० ३।

यहाँ समुचित कारण होने पर भी कार्य सिद्ध होना दुष्कर है, अतः विशेषोक्ति अलंकार है।

**अन्वय**—'मैथिली मंगल' आदि में 'अनन्वय' अलंकार का भी कवि ने प्रयोग किया है—

देख यह हाल ठीक जँचता यही है आली
सीता का ही मुख, सीता मुख के समान है।[1]

उपमेय सीता के मुख के लिए कवि को और कोई उपमान नहीं जँचा, इसलिए वह कह बैठा कि सीता का मुख सीता के मुख सा ही है। इसी प्रकार 'मौर्य विजय' में भी 'अनन्वय' को स्थान मिला है, जब चन्द्रगुप्त भारत के प्रताप को बखानते हुए सिल्यूकस से कहता है—

क्या आप जानते थे नहीं, भारतवर्ष-प्रताप को?
है भारत भारत ही सदा, ज्ञात न था क्या आपको?[2]

**सन्देह**—कहीं-कहीं उपमेय को देखकर कवि को दूसरे अनेक उपमानों की झलक मिलती है, पर वह निश्चय नहीं कर पाता है कि वह कौन से उपमान के अनुरूप है। इस प्रकार प्रस्तुत उपमेय यह है कि नहीं, इसका सन्देह बना रहने की स्थिति सन्देह अलंकार को जन्म देती है। 'सन्देह' अलंकार के निम्नलिखित उद्धरण द्रष्टव्य हैं—

नभ-सर में क्या विकसा है दिव्य पारिजात,
अथवा मनोज्ञ गोल नेत्र जगती का है।
प्रकृति नटी का किंवा घी का दिव्य दीपक है,
रोरी का ही टीका किंवां प्राची रमणी का है।[3]

सनसनाता नाग सा निकला अनोखा वाण था।
मन्त्र पढ़ छोड़ा हुआ अथवा कहीं सप्राण था॥[4]
आनन अम्बुज सरिस किधौं जस पूरन चन्दा।[5]
अधर बिम्ब सों मिलत किधौं विद्रुम के पल्लव।[6]

१. मैथिली मंगल : शुकलाल प्रसाद, विवाह-सर्ग, छंद १००, पृ० ६८।
२. मौर्य विजय : सियारामशरण गुप्त, तृतीय सर्ग, पृ० २७।
३. मैथिली मंगल : शुकलाल प्रसाद, विवाह सर्ग, छंद १२, पृ० ५४।
४. वीरबाला : तीसरा सर्ग, पद ३६, पृ० २९।
५. इन्दुमती परिणय : खुन्नामल शर्मा, उत्तरार्द्ध, प्रथम तरंग, पृ० ५४।
६. वही।

**अपह्नुति**––'अपह्नुति' अलंकार के उदाहरणस्वरूप निम्नलिखित अंश 'रसाल-वन' से देखा जा सकता है—

था न श्याम तिल, कल कपोल पर, एक भ्रमर रस पीने में
लीन हुआ था, निजता खोके, विकच कमल के सीने में ।[१]

गाल पर वह तिल नहीं था, वह तो कमल के सीने में एक भवरा रस पीने में तल्लीन था। यहाँ उपमेय तिल को निषेधपूर्वक छिपाकर उस पर उपमान भ्रमर का आरोप किया गया है। इसी प्रकार—

धूल नहीं यह पैरों में है लग रही,
समझो यही विभूति लिपटती है तुम्हें ।[२]

यहाँ भी उपमेय को नकार कर उपमान को ही आरोपित किया गया है।

**मानवीकरण**––'करुणालय' में 'मानवीकरण' का भी प्रयोग द्रष्टव्य है—

मलयानिल अपने हाथों पर है धरे,
तुम्हें लिए जाता है अच्छी चाल से ।[3]

प्राकृतिक उपादान में मानवीय गुणों, धरने और चलने का आरोप किया गया है।

**उभयालंकार**—'उभयालंकार' के प्रयोग भी मिलते हैं, यथा—

किन्तु इनके मद्य से कुछ कुछ अरुण लोचन बड़े,
लाल लाल हुए यथा दो लाल जलजों में जड़े ।[४]

यहाँ शब्दालंकार यमक और अर्थालंकार उपमा एक दूसरे से अलग अस्तित्व रखते हुए भी तिल-तन्दुल न्याय से मिले दिखाई देते हैं। अतः यहाँ संसृष्टि-उभयालंकार है। राणा लाल सिंह के लाल-लाल नेत्र ऐसे लग रहे थे, जैसे कमल में दो लाल जड़े हों। लाल रंग के लाल में यमक और उपमेय मद्य से लाल लोचन के लिए उपमान लाल जड़े कमल में उपमा अलंकार है। 'भंग में रंग' में सावित्री का गुणगान करते हुए कवि कहता है—

सलिलेश-सुखदा सुरसरी का था समागम ज्यों हुआ।
भूपात्मजा में गुण तथा सौन्दर्य-मेलन त्यों हुआ ॥[५]

---

१. रसाल-वन : गिरिजा दत्त शुक्ल, पृ० १० ।
२. करुणालय : जयशंकर प्रसाद, पृ० १९ ।
३. करुणालय : जयशंकर प्रसाद, पृ० १३ ।
४. रंग में भंग : गुप्त जी, एकादश संस्करण, पद ४१, पृ० १५ ।
५. भंग में रंग : अम्बिका दत्त त्रिपाठी, पद ४०, पृ० ९ ।

यहाँ अनुप्रास शब्दालंकार के साथ ही उदाहरण अर्थालंकार भी है। 'स' वर्ण की आवृत्ति भी है और उपमेय सावित्री के लिए उपमान सुरसरी से उदाहरण देकर उसे सिद्ध भी किया गया है, अतः उभयालंकार है।

'सावित्री उपाख्यान' का निम्नलिखित छन्द भी उभयालंकार का अच्छा उदाहरण है—

करम कलाप, कल कीरति कवित्तकला,
काल गाल परि तत्काल सुत उठि हैं।
सरद समे के ससिमंडल सरिस सदा,
सज्जन सपूत को सनेह किमि छूटि है।[1]

यहाँ वृत्तानुप्रास शब्दालंकार के साथ ही उपमा अर्थालंकार (उपमेय सज्जन का सादृश्य उपमान शरद के चन्द्रमा से) का योग है।

स्पष्ट है कि अलंकारों को द्विवेदी युग में महत्त्व न दिये जाने पर भी अधिकांश प्रचलित अलंकारों का प्रयोग यत्रतत्र खण्डकाव्यों में स्वतः हो गया है। वर्षों से अलंकार-निरूपण की जो परम्परा काव्य में चली आ रही थी, उसका एकदम लोप होना न संभव था न ग्राह्य। यह अवश्य हुआ कि कवियों ने अलंकारों को सायास अपनी कृतियों में नहीं ठूँसा, स्वाभाविक रूप में जहाँ वे आते गये, उन्हें स्थान दिया गया। इस प्रकार से प्रयुक्त अलंकार काव्य के स्वरूप के शोभावर्धक तो हुए ही उसकी आत्मा (रस) के भी उपकारक सिद्ध हुए। यह खड़ीबोली का आरम्भ काल था। वह शनैः शनैः परिपुष्ट और विकसित हो रही थी। अतः आरम्भ में कहीं-कहीं अलंकारों के प्रयोग भी सुसंगत और अनुकूल रूप में नहीं हुए हैं, पर उत्तरार्द्ध में आकर अलंकरण-सौष्ठव में पर्याप्त निखार आ गया है।

**गुण :**

रस के अंगी धर्म 'गुण' कहलाते हैं। इनके द्वारा उसका उत्कर्ष होता है। इस प्रकार ये गुण माधुर्य, ओज और प्रसाद रस से सम्बन्धित हैं, किन्तु इनका प्रत्यक्ष भाषा के द्वारा अक्षरों और पदों के माध्यम से ही होता है, अतः कलापक्ष पर विचार के समय गुणों के संदर्भ में प्रयुक्त वर्णों और शब्दावली पर विचार कर लेना भी संगत है। माधुर्य गुण द्विवेदी युगीन खण्ड-काव्यों के श्रृंगारिक प्रसंगों में परिव्याप्त है। इन प्रसंगों में प्रायः

१. सावित्री उपाख्यान : प्रसिद्धनारायण सिंह, सप्तम प्रतिभा, पद ४४, पृ० ३४।

ट, ठ, ड, ढ और ड वर्णों का प्रयोग नहीं के बराबर हुआ है। इनमें क से म तक के वर्ग, अपने वर्ग के अन्तिम वर्ण से युक्त वर्ण, ह्रस्व स्वर युक्त र और ण, असमस्त पद या छोटे-छोटे समस्त पद ही प्रयुक्त हुए हैं। उदाहरण के लिए यह पद लिया जा सकता है—

सुन प्रणयी के इन्दु-वदन में मृदुल कौमुदी हास,
विकसित हुआ, झुकाया उसने शशि को शशि के पास।[1]

इसमें कर्ण कटु वर्ण और समस्त पद नहीं हैं। श्रुति मधुर वर्ण ही छन्द के मधुर भाव को और मधुर बना रहे हैं। साथ ही जहाँ ट, ड, ड़ आदि के प्रयोग हुए हैं, वहाँ माधुर्य गुण खण्डित हो गया है, जैसे—

मन तुरंग दोनों के छूटे, तोड़ तोड़ कर लाज लगाम,
धर्म विचारा गिरा टिका नहि, हुआ प्रबल आरोही काम।[2]

ओज गुण वीर, वीभत्स, रौद्र रस-प्रधान काव्यों में प्रसंगानुकूल उभरा है। इन स्थलों पर प्रायः वर्गों के प्रथम वर्ण अपने वर्ग के द्वितीय वर्ण से तथा तृतीय वर्ण चतुर्थ वर्ण से मिल गये हैं और संयुक्त वर्ण बनाते हुए औद्धत्यपूर्ण हो गये हैं। इस प्रकार के पदों के उच्चारण से ही हृदय में आवेग, उत्तेजना और आवेश का संचार होता है। जैसे 'हल्दी घाटी की लड़ाई' का यह अंश—

पूरब से राजपूत और पश्चिम से यवन बहादुर आय।
जुटे वीर घनघोर मेघ सम नेजा, तीर, सेल हर्षाय॥
मुठभेड़ होते युग दल में चली जुन्नबी अरु गुजराति।
बंदरी सिंधी चली सिरोही, ऊना, कत्ता और चपाति।[3]

जहाँ इस प्रकार के मीलित और कर्ण कटु वर्णों का प्रयोग नहीं है, तालव्य 'श' और मूर्धन्य 'ष' का प्रयोग नहीं है, लम्बे समस्त पद नहीं हैं, वहाँ ओज गुण का अभीष्ट प्रभाव नहीं पड़ता—

तब कराल करवाल हाथ में लेकर सत्वर,
सिल्यूकस हो गया खड़ा उत्तेजित होकर।
बोला वह—हे चन्द्रगुप्त ! आगे बढ़ आओ,
बस अन्तिम बल वीर्य मुझे अपना दिखलाओ।[4]

---

१. मिलन : रामनरेश त्रिपाठी, पहिला परिच्छेद, चौथा संस्करण, पृ० २।
२. बूढ़े का ब्याह : सैयद अमीर अली 'मीर', तृतीय परिच्छेद, पृ० १९।
३. हल्दी घाटी की लड़ाई : कवि माणिक।
४. मौर्य विजय : सियारामशरण गुप्त, संस्करण २०३० वि०, पृ० २६।

प्रसाद गुण सहज अर्थ व्यंजित करने वाले सभी प्रांजल शब्दों से प्रसारित होता है। यह कोमल कान्त, सुष्ठु शब्दावली की अपेक्षा रखता है, जैसे—

नीरव निशा, तपोवन नीरव,
शान्त दिशा आकाश।
नीरव तारागण करते थे,
झिलमिल अल्प प्रकाश।[1]

इन खण्डकाव्यों में ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं जहाँ प्रतिकूल शब्दावली का प्रयोग होने से अभिव्यक्तिगत और अनुभूतिगत दोनों ही प्रकार के सौन्दर्य खण्डित हुए हैं, उदाहरणार्थ 'भंग में रंग' के प्रस्तुत अंश को देखा जा सकता है—

निज जीवनांकुर सर्वथा वाणी-सुधा से सींचती।
कहने लगी बाला वहाँ पति-खेद-कीली-खींचती॥[2]

निष्कर्ष यह है कि प्रारम्भिक द्विवेदी युगीन खण्ड-काव्यों में जिस भाषा का प्रयोग किया गया है, उसमें प्रायः एक अपरिपक्वता और अपरिमार्जन की स्थिति के दर्शन होते हैं, परन्तु द्विवेदी जी खड़ीबोली के प्रति समर्पित और प्रतिबद्ध थे। उसके लिए उन्होंने जो अथक श्रम और प्रयास किया उससे आगे चलकर भाषा में निखार और परिष्कार आया, व्याकरण-विषयक त्रुटियाँ और कमियाँ भी धीरे-धीरे दूर होती गयीं। उत्तरार्द्ध में लाक्षणिक और व्यंजनात्मक उक्तियों का प्रयोग भी होने लगा, सम्बोधन शैली शनैः शनैः वाग्वैदग्ध्य-नैपुण्य का स्वरूप लेने लगी। कविता स्फुट से आख्यानक कविताओं की ओर मुड़कर खण्डकाव्यों की भूमि में प्रवाहित होने लगी। द्विवेदी जी ने तुकान्त की अनिवार्यता को अस्वीकार कर अभिव्यक्ति को स्वच्छन्द विचरण का अवसर दिया जिससे छन्द पुष्ट और विकसित हुआ। रीतिकालीन रूढ़ अलंकरण पद्धति को काव्य-सौन्दर्य के लिए घातक बताते हुए सहज और स्वाभाविक अलंकार-निरूपण की जो प्रेरणा द्विवेदी जी ने तत्कालीन कवियों को दी, उससे गरिष्ठ, बोझिल की दुरूह काव्य की समाप्ति हो गयी। इस तरह सम्पूर्ण वातावरण में एक नया उत्साह और नयी उमंग की स्रोतस्विनी नये-नये खण्डकाव्यों के रूप में फूट चली। सरस्वती' ने इस धारा को बल और सहारा दिया। उन्नीस सौ बीस तक आते-आते ख्यात

---

१. मिलन : रामनरेश त्रिपाठी, पृ० ११।
२. भंग में रंग : अम्बिका दत्त त्रिपाठी, पद १३६, पृ० २९।

चरित्रों और उत्प्रेरक काल्पनिक आधारों पर रचित अनेक खण्डकाव्य द्विवेदी युग के साहित्याकाश में चमक उठे। उन्होंने न केवल तत्कालीन व्यवधानों की चुनौती ही स्वीकार की, वरन् भाषायी अर्हताओं को यथासाध्य पूरा करते हुए एक समर्थ और सम्पन्न, अपेक्षित आधारभूमि भी तैयार की, जिस पर अत्याधुनिक काव्य का विराट् और सुदृढ़ प्रासाद स्थित हुआ।



दशम अध्याय

# उपसंहार

द्विवेदी युगीन पौराणिक, ऐतिहासिक एवं काल्पनिक खण्डकाव्यों के सम्यक् आकलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतेन्दु युग की पृष्ठभूमि, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का अनुशासन, तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, नैतिक परिवेश एवं अंग्रेज-शासकों की नीति ने इस समय के लेखन को प्रबल रूप से प्रभावित किया। भारतेन्दु ने कविता को पारम्परिकता से निकाल कर स्वच्छन्द वायु में सांस लेने और लोक-जीवन में अपनी अस्मिता की पहिचान बनाने का अवसर दिया। जनता के अस्थिर-चित्त को भक्ति का स्थिर आधार देते हुए वे कवि, निबन्धकार, नाटककार और मनीषी के रूप में साहित्य के सुदृढ़-स्तम्भ बनकर सामने आये। उनकी थाती को आचार्य द्विवेदी ने अपने कन्धों पर सम्हाला। काव्य-क्षेत्र में ब्रज-भाषा का आधिपत्य था, वह अपने पूर्ण उत्कर्ष पर पहुँच चुकी थी। खड़ी बोली ने मात्र घुटनों चलना सीखा था। तत्कालीन परिवेश की गंध को आत्मसात् कर दूरदर्शी द्विवेदी जी ने कविता की सामर्थ्य को जानते हुए उसके प्रवाह को नया मोड़ दिया। मन-रंजन के साथ ही उन्होंने उसे जन-प्रक्षालन का भी माध्यम बनाने का निश्चय किया। उन्हीं दिनों 'सरस्वती' पत्रिका का सम्पादन उनके हाथ में आ गया। वे अपने संकल्प को क्रियात्मक रूप देने में जुट गये। खड़ी-बोली गद्य में प्रवेश पा चुकी थी।

मानवतावाद और बौद्धिक जागरण के पक्षधर आचार्य द्विवेदी जी कला को मात्र कला के लिए न मानकर खड़ी बोली के काव्य द्वारा पुनरुत्थान-वादी चेतना को लाने के लिये कटिबद्ध हो गये। उनके आह्वान पर कवि गण एक विशेष उद्देश्य को लेकर रचनाधर्मिता में प्रवृत्त हुए। यही कारण है कि द्विवेदी युग में लिखे गये खण्डकाव्यों के वर्ण्य विषय ऐसे पौराणिक, ऐतिहासिक और काल्पनिक आख्यान हैं जो जनता में अत्याचार और अन्याय के प्रति आक्रोश, देश-प्रेम तथा राष्ट्रीय भावना का उदय कर उसे अपने अधिकार और कर्त्तव्य के प्रति सजग करते हैं। इसी के अनुसार पुराणों से अभिमन्यु, अर्जुन, भीम, कृष्ण, राम, अनिरुद्ध, अम्बरीष, नल, प्रह्लाद, द्रौपदी, सीता, शकुन्तला, सावित्री, दमयन्ती आदि के आदर्श चरित्रों को

लेकर अतीत गौरव और उपदेश से पूर्ण, प्रेरणाप्रद खण्डकाव्य लिखे गये। इतिहास से राणा प्रताप, चन्द्रगुप्त मौर्य, हमीर, सुहराब, रुस्तम, हकीकतराय, पद्मिनी, देवलदेवी, वसुमति, वीरांगना वीरा आदि के वीर और साहसी चरित्रों को लिया गया और काल्पनिक चरित्रों में भी कवियों ने देश-प्रेम, स्वातन्त्र्य भावना और वीरत्व को कूट-कूट कर भरा। कवियों के सुधारवादी दृष्टिकोण का ही यह परिणाम है कि स्त्री-शिक्षा, अन्धविश्वास, दहेज, विधवा विवाह, बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह-छुआछूत, जातिगत भेदभाव, किसानों की दुर्दशा आदि सामयिक समस्याओं और कुप्रथाओं के उन्मूलन के उद्देश्य से इन्हें भी रचनाओं का विषय बनाया गया। समाज को केन्द्र बनाकर रचनाओं के माध्यम से अपना निर्भीक मत व्यक्त करते हुए कवियों ने निदान और उपचार भी प्रस्तुत किये।

वर्ण्य विषयों के अनुसार ही इन काव्यों में रस की योजना की गई है। जनता में वीर पूजा, जातीय अभिमान और स्वदेश प्रेम की भावना को उकसाने का जो उद्देश्य कवियों के सामने था, उसकी पूर्ति हेतु वीर रस अपेक्षित था, अतः अधिकांश काव्यों में वीर रस की प्रधानता है। श्रृंगार, करुण, रौद्र, शान्त आदि रस प्रायः सहयोगी के रूप में ही आये हैं। श्रृंगार की प्रधानता न होने से प्रकृति वर्णन भी उद्दीपन रूप में न होकर आलम्बन रूप में ही हुआ है। इन्दुमती-परिणय, मिलन, पथिक, मौर्य विजय, गंगावतरण, देव सभा आदि का प्रकृति-वर्णन द्विवेदी युग की विशेष देन है।

द्विवेदी जी ने महसूस किया कि विदेशी शासकों के इस दमनात्मक, धूर्त रवैये के प्रतिरोध में ब्रजभाषा जैसी ललित, कोमल कान्त पदावली से बात नहीं बनेगी, खड़ी बोली ही राष्ट्रवादी चेतना को जागृत करने में सक्षम होगी, अतः उन्होंने खड़ी बोली को पद्य की भाषा बनाने पर बल दिया। विभिन्न लेखकों से खड़ी बोली में लिखने का आग्रह करते हुए उन्होंने शब्दों का मूल रूप न बिगाड़ने, अक्षर मैत्री का विशेष ध्यान रखने एवं व्याकरण-सम्मत भाषा का प्रयोग करने की हिदायत दी। द्विवेदी जी की प्रेरणा से ही ब्रजभाषा में लिखते रहने वाले कवियों ने भी खड़ी बोली में लिखना प्रारम्भ किया। नयी होने से खड़ी बोली आरम्भ में कुछ ऊबड़-खाबड़ सी खुरदरापन लिए चली, किन्तु शनैः शनैः उसमें स्निग्धता और लावण्य आता गया। विभिन्न भाषाओं जैसे अंग्रेजी, उर्दू, फारसी, अरबी आदि के शब्दों को आत्मसात् कर खड़ी बोली समृद्ध होती गई।

द्विवेदी जी का ध्यान कविता के उपयोगितावादी मूल्य पर अधिक था

कलात्मक मूल्य पर कम। कविता द्वारा आम जनता को प्रभावित कर उन्हें उसका नैतिक और चारित्रिक उत्थान भी अपेक्षित था। यह तभी संभव था जब कविता सरल और बोधगम्य होती, अतः उन्होंने सीधी सरल भाषा में इतिवृत्तात्मक वर्णन पर बल दिया। यही कारण है कि सायास अलंकारों को भरने की प्रवृत्ति इन रचनाओं में नहीं मिलती। फिर भी स्वाभाविक रूप में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास आदि अलंकार इनमें पाये जाते हैं। कहावतों और मुहावरों का अच्छा प्रयोग किया है। अधिकांश कवियों ने सम्बोधन शैली को अपनाकर वाच्यार्थ प्रधान अभिधात्मक भाषा लिखी। परम्परागत तुकान्त छन्दों का मोह छोड़कर रचनाकारों ने संस्कृत वृत्तों के अनुकरण पर अतुकान्त और अन्त्यानुप्रासहीन छन्द भी रचे। उर्दू के बहरों को भी कृतिकारों ने स्थान दिया, तकासव और हजज आदि को अपनाया गया। रचनाओं को सामान्य जन के अधिक समीप लाने के उद्देश्य से तद्भव, देशज और ग्रामीण प्रयोगों, लोकोक्तियों और लोक भाषा के प्रयोग भी किये गये।

इस प्रकार कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में कुछ विशिष्ट उद्देश्यों को लेकर द्विवेदी युग में जो खण्डकाव्य लिखे गये, उनमें कुछ सामान्य प्रवृत्तियाँ उभर कर सामने आईं, जैसे उपदेशात्मकता, आदर्शवादी दृष्टिकोण, नैतिकता, मानवता एवं विश्व-बन्धुत्व की भावना, राष्ट्रीयता, इतिवृत्तात्मकता, सम्बोधनात्मक अभिव्यक्ति, अतीत गौरव गान, वीर पूजा, वर्तमान पर क्षोभ, भाषा संस्कार, पुनरुत्थान एवं सुधारवादी दृष्टिकोण आदि। बौद्धिकता भी दिखाई दी। असहज और चमत्कारपूर्ण पौराणिक कथांशों को इन कवियों ने अलग कर दिया। तर्क और बुद्धिसंगत संभव घटनाओं एवं क्रिया-कलापों को ही स्थान दिया, जैसे गुप्त जी ने अपने 'जयद्रथ-वध' में सूर्य के छिप जाने का कारण 'माया' को न बताकर, अचानक काले मेघों का उस पर छा जाना, जो बुद्धि ग्राह्य है, बताया। राम, लक्ष्मण, सीता आदि चरित्रों में भी ईश्वरीय अलौकिकता का दर्शन न करवाकर इन कवियों ने उनमें मानवत्व को प्रतिष्ठा दी, जैसे मैथिली मंगल में शुकलाल प्रसाद ने राम को आदर्श मानव के रूप में चित्रित कर उनमें हास-परिहास की स्वाभाविक स्थिति भी दिखाई है।

अंग्रेजी, संस्कृत, बंगला एवं अन्य भाषाओं की रचनाओं के हिन्दी अनुवादों द्वारा भी प्राचीन संस्कृति की भव्यता से कवियों ने लोगों को अवगत कराया। इस प्रकार रीतिकालीन अमर्यादित, अबाध शृंगार का

विरोध करते हुए पुरातन के प्रति मोह और नवीन के प्रति आकर्षण की असामान्य स्थिति में भी इस काल में लोक मंगल की भावना ही कवियों में सर्वोपरि रही।

द्विवेदी युग में उ ित और पोषित काव्य की इन प्रवृत्तियों ने अगले दशक में भी खण्डकाव्यों को प्रभावित किया। गंगा पुस्तक माला, लखनऊ द्वारा संवत् १९८० वि० में प्रकाशित शिवदास गुप्त का 'उषा', गृहलक्ष्मी कार्यालय, प्रयाग द्वारा इसी सन् में प्रकाशित ठाकुर श्रीनाथ सिंह का 'सती पद्मिनी', संवत् १९८३ वि० में ११५ हरिसन रोड, कलकत्ता से प्रकाशित जगदीशनारायण तिवारी का 'दुर्योधन वध', साहित्य सागर कार्यालय, सुइथकला, जौनपुर से प्रकाशित अम्बिकादत्त त्रिपाठी का 'कृष्णाकुमारी', साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी से प्रकाशित मुंशी अजमेरी का 'गोकुलदास', इण्डियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग से प्रकाशित कुँअर हिम्मत सिंह का 'महिषा-सुर-वध', श्री विष्णु का 'सुलोचना सती' आदि बाद के अनेक खण्डकाव्यों में द्विवेदी युगीन काव्य-प्रवृत्तियों का इस प्रकार समावेश हो गया है कि यदि उनके मुखपृष्ठ पर प्रकाशित समय न देखा जाय तो उन्हें निर्विवाद द्विवेदी-युगीन काव्य माना जा सकता है।

इस प्रकार इन द्विवेदी युगीन खण्डकाव्यों ने भारतीय जनता में परा-धीनता से मुक्ति पाने की छटपटाहट पैदा की, उनमें साहस और जोश जगाकर स्वतन्त्र होने के लिए उन्हें बड़ा से बड़ा त्याग करने को सन्नद्ध किया, जो न केवल साहित्य वरन् भारतीय इतिहास की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना है। साथ ही प्रभावशाली लोकप्रिय वर्ण्य विषयों के चयन के कारण इन खण्डकाव्यों ने जन-मानस में कविता पढ़ने की रुचि उत्पन्न करके एक महत्त्वपूर्ण कार्य किया। खड़ी बोली के पोषण और विकास में भी इन खण्ड-काव्यों का प्रमुख हाथ है। एक प्रकार से यह कहा जा सकता है कि खड़ी बोली के वर्तमान समृद्ध-स्वरूप, जिसने उसे देश की राज-भाषा के पद पर आसीन कराया, का श्रेय द्विवेदी युगीन काव्य को ही है। वास्तव में इन पौराणिक, ऐतिहासिक और काल्पनिक खण्डकाव्यों के माध्यम से कवियों ने देश, समाज और साहित्य को जो उल्लेखनीय देन दी, वही तदनन्तर आविर्भूत स्वच्छन्दतावाद, छायावाद, रहस्यवाद एवं प्रगतिवाद की आधार स्तम्भ बनी। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और द्विवेदी-युगीन काव्य का, हिन्दी भाषा, साहित्य और इतिहास सदैव ऋणी रहेगा।

●

# ग्रन्थ-सूची

(क) उपजीव्य खण्डकाव्य


१. अनाथ : सियारामशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी ।

२. अम्बरीष : रामनारायण चतुर्वेदी, मंगलायतन, बादशाह मंडी, प्रयाग ।

३. अभिमन्यु का आत्मदान : कमलाप्रसाद वर्मा, महाराज की ड्योढ़ी, पटना ।

४. आत्मार्पण : द्वारिकाप्रसाद गुप्त 'रसिकेन्द्र', गंगा पुस्तक-माला, लखनऊ ।

५. इन्दुमती परिणय : खुन्नामल शर्मा, नवलकिशोर प्रेस, ब्रांच, प्रयाग ।

६. उद्धव शतक : जगन्नाथदास 'रत्नाकर', इण्डियन प्रेस पब्लिकेशन्स प्रा० लि०, प्रयाग ।

७. उषा काल : आनन्दिप्रसाद श्रीवास्तव, रामनारायणलाल पब्लिशर एण्ड बुकसेलर, इलाहाबाद ।

८. उषा हरण : रामदत्त राय शर्मा, सद्ग्रन्थमाला कार्यालय

९. ऊजड़ ग्राम : छंगामल चतुर्वेदी, विश्वकर्मा प्रेस, मथुरा ।

१०. करुणालय : जयशंकर प्रसाद, भारती भण्डार, बनारस सिटी ।

११. किरातार्जुनीय भाषा : लाला सीताराम, बी० ए०, इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद ।

१२. किसान : मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य प्रेस, चिरगाँव, झाँसी ।

१३. कीचक वध : बाबू शिवदास गुप्त, वर्म्मन प्रेस, ३७१अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता ।

१४. कुमार संभव भाषा : लाला सीताराम, बी० ए०, किशोर ब्रदर्स, मुट्ठीगंज, इलाहाबाद ।

१५. कुमार संभव सार : महावीर प्रसाद द्विवेदी, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ।

१६. कृष्ण दर्शन : मानिक मंगलाप्रसाद गुप्त, कृष्णदर्शन पुस्तकालय, रास मंडल, जौनपुर ।

१७. कृषक क्रन्दन : गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', प्रताप पुस्तकालय, कानपुर ।

१८. कंस-वध : श्यामलाल पाठक, सरस्वती सदन, भालदारदारपुरा, जबलपुर ।

१९. गर्भरण्डा रहस्य : नाथूराम शर्मा 'शंकर', नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ ।

२०. गंगावतरण : जगन्नाथदास 'रत्नाकर', इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद ।

२१. ग्रन्थि : सुमित्रानन्दन पन्त, इण्डियन प्रेस लि०, प्रयाग

२२. चारण : श्रीवर, इण्डियन प्रेस, प्रयाग ।

२३. चित्तौड़-विध्वंस : कालीप्रसाद शास्त्री 'श्रीकर', शुक्ल प्रेस, एलनगंज, प्रयाग ।

२४. जयद्रथ वध : मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झांसी ।

२५. दयानन्द जीवन काव्य : हरिदत्त वर्मा, सरस्वती पुस्तकालय, चिरगाँव बाम्बे ।

२६. दिल्ली-पतन : काशीप्रसाद शास्त्री, भारती भण्डार, दालमंडी, कानपुर ।

२७. दुर्गा विजय : मुकुटलाल 'रंग जी', बिहार बन्धु यंत्रालय, बांकीपुर ।

२८. देवल देवी : विद्याप्रेमी दीनानाथ 'अशंक', गृहलक्ष्मी कार्यालय, प्रयाग ।

२९. देव-दूत : रामचरित उपाध्याय, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, गिरगाँव बम्बई ।

३०. देव सभा : रामचरित उपाध्याय, हरदुआगंज, अलीगढ़ ।

३१. देशभक्त होरेशस : सत्यनारायण कविरत्न ।

३२. द्रौपदी स्वयंवर : रामजी पाण्डेय 'आर्या', भ्रमर पुस्तकमाला, सण्डीला, हरदोई ।

३३. द्रौपदी चीरहरण और आल्हा : पं० लोधेश्वर त्रिपाठी, लीडर प्रेस, प्रयाग ।

३४. धर्मवीर हकीकतराय : ठा० गदाधर सिंह भृगुवंशी, प्रभुपुर, डा० रामगढ़, काशी।
३५. पतिव्रतादर्श : रामशरण गुप्त 'शरण', शरण ग्रन्थमाला कार्यालय, उम्मेदस्कूल, जोधपुर।
३६ पथिक : रामनरेश त्रिपाठी, नवभारती, इलाहाबाद।
३७. पद्मिनी : लोकनाथ सिलाकारी, पं० दुर्गाप्रसाद बालमुकुन्द बुकसेलर, बड़ा बाजार, सागर, म० प्र०।
३८. पलासी का युद्ध : 'मधुप', साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी।
३९. प्रणवीर प्रताप : गोकुल चन्द्र शर्मा,साहित्य सदन, अलीगढ़।
४०. प्रेम पथिक : हरिप्रसाद द्विवेदी, 'वियोगी हरि', प्रेम मंदिर, आरा।
४१. प्रेम पथिक : जयशंकर प्रसाद,भारती भण्डार, इलाहाबाद
४२. प्रेम राज्य : जयशंकर प्रसाद, प्रसाद ग्रन्थावली, सं० रत्नशंकर प्रसाद, वाराणसी।
४३. प्रेमेश्वर विरह-दर्पण : रामनारायण ब्रह्मभट्ट मुख्तार, एंग्लो इण्डियन प्रेस, लखनऊ।
४४. बूढ़े का ब्याह : सैयद अमीर अली 'मीर', जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई।
४५. भगतिन बिलैया : हरद्वारप्रसाद गुप्त, साहित्य प्रचारक समिति, गौरा बरहज, गोरखपुर।
४६. भाग्य चक्र : रामचरित सिंह 'बल्लभ', कलकत्ता।
४७. भारतीय दृश्य : विश्वनाथ ठाकुर, प्रताप प्रेस, कानपुर।
४८. भोज प्रबन्ध : ठा० रामयश सिंह, बालकृष्ण प्रेस, शंकर घोष लेन, कलकत्ता।
४९. भंग में रंग : अम्बिका दत्त त्रिपाठी, साहित्य सागर, सुइथाकलाँ, जौनपुर।
५०. महाराणा का महत्त्व : जयशंकर प्रसाद, भारतीय भण्डार, बनारस सिटी।
५१. महात्मा गौतम बुद्ध : शंकर शरण गुप्त, हिन्दी ग्रन्थ भण्डार कार्यालय, कानपुर।

५२. महाराजा रूप सिंह : पं० रामदीन पाराशर, स्टैंडर्ड प्रेस, इलाहाबाद ।
५३. मातृ वन्दना : ईश्वर प्रसाद शर्मा, कोपागंज, आजमगढ़ ।
५४. मिलन : रामनरेश त्रिपाठी, हिन्दी मन्दिर, प्रयाग ।
५५. मेघदूत : पं० केशवप्रसाद मिश्र, भारत कला परिषद्, काशी ।
५६. मेवाड़ गाथा : लोचनप्रसाद पाण्डेय, श्री हरिदास वैद्य, कलकत्ता ।
५७. मैथिली मंगल : पं० शुकलाल प्रसाद पाण्डेय, मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद्, भोपाल ।
५८. मौर्य विजय : सियारामशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी ।
५९. रसाल वन : गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश', इण्डियन प्रेस लि०, प्रयाग ।
६०. रंग में भंग : मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी ।
६१. वसुमती : दिवाकर प्रसाद शास्त्री, लहरी बुक डिपो, काशी ।
६२. वायस-विजय : नाथूराम शर्मा 'शंकर', हरदुआगंज, अलीगढ़ ।
६३. विरहिणी ब्रजांगना : 'मधुप', साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी ।
६४. विकट भट : मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी ।
६५. विश्वनाथ काशी (दिवोदास कथा) : गौरीप्रसाद मिश्र, वकील, भागलपुर ।
६६. वीर प्रताप : लाला भगवान दीन, माधोप्रसाद भारत प्रेस, बनारस ।
६७. वीर बाला : भार्गव पुस्तकालय, गायघाट, काशी ।
६८. वीरांगना वीरा : ठा० भगवत सिंह 'विशारद', ओसवाल प्रेस, १९ सीतागोग्र स्ट्रीट, कलकत्ता ।
६९. वीर हमीर : रामकुमार वर्मा, चन्द्रलोक प्रकाशन, इलाहाबाद ।

७०. वीर होरेशस : रघुनाथप्रसाद कपूर, जगद्विनोद प्रेस, अलीगढ़।

७१. शकुन्तला : मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झांसी।

७२. शान्ति प्रताप : अलगूराय आनन्द, हरगोविन्द भार्गव, सरस्वती प्रेस, बनारस।

७३. श्रान्त पथिक : श्रीधर पाठक।

७४. श्री कृष्णचन्द्र चन्द्रिका : गणेश सिंह, श्री वेंकटेश्वर यन्त्रालय, बम्बई।

७५. श्री सदाशिव विवाह : रणछोड़ जी दीवान जी, गजानन प्रिंटिंग प्रेस, बम्बई।

७६. श्री सत्यनारायण की कथा : पं० रामचन्द्र शर्मा, शर्मा प्रिंटिंग प्रेस, भरतपुर।

७७. सत्याग्रही प्रह्लाद : तुलसीराम शर्मा 'दिनेश', कामर्शियल प्रेस, जुही, कानपुर।

७८. सावित्री उपाख्यान : प्रसिद्धनारायण सिंह, पगही, डा० धानापुर, गाजीपुर।

७९. सुहराब और रुस्तम : विद्याभूषण 'विभु', कला कार्यालय, प्रयाग।

८०. स्वतन्त्र पर वीर बलिदान : रघुनन्दनप्रसाद शुक्ल, ३२/१ बुलानाला, काशी।

८१. हल्दी घाटी की लड़ाई : कवि माणिक, माणिक कार्यालय, ९४ मिश्र पोखरा, काशी।

८३. हल्दी घाट का युद्ध : ठा० लालबहादुर सिंह, भारतभूमि यंत्रालय, काशी।


**(ख) सहायक ग्रन्थ :**


१. अनुसंधान का स्वरूप : डा० उदयभानु सिंह, हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली-६।

२. आधुनिक काव्यधारा : डा० केसरीनारायण शुक्ल, नन्दकिशोर एण्ड सन्स, चौक, वाराणसी।

३. आधुनिक कवि-भाग २ : सं० सुमित्रानन्दन पन्त।

४. आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य सिद्धान्त : सुरेशचन्द्र गुप्त, हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली।

५. आधुनिक हिन्दी साहित्य : लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, हिन्दी साहित्य परिषद, इलाहाबाद वि० वि० ।

६. आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ : डा० नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ।

७. आधुनिक हिन्दी काव्य में राष्ट्रीय चेतना का विकास : डा० जितराम पाठक, राजीव प्रकाशन, १७३, अलोपीबाग, इलाहाबाद ।

८. आधुनिक हिन्दी काव्य और कवि : सं० डा० रामचन्द्र तिवारी, नया साहित्य प्रकाशन, मिन्टोरोड, इलाहाबाद ।

९. आधुनिक हिन्दी कविता में मनोविज्ञान : डा० उर्वशी ज० सूती, अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर ।

१०. आधुनिक हिन्दी काव्य में वात्सल्य रस : डा० श्रीनिवास शर्मा, अशोक प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली ।

११. आधुनिक साहित्य : आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ।

१२. उषा : शिवदास गुप्त 'कुसुम', गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, अमीनाबाद, लखनऊ ।

१३. एक्सप्लोरिंग पोइट्री : एम० एल० रोसेन्थाल, ए० जे० एम० स्मिथ, मेकमिलन एण्ड कम्पनी ।

१४. काव्य दर्पण : पं० रामदहिन मिश्र, ग्रन्थमाला कार्यालय, पटना ।

१५. काव्य शास्त्र : डा० भगीरथ मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर ।

१६. काव्य मनीषा : डा० भगीरथ मिश्र, हिन्दी समिति सूचना विभाग, उ० प्र०, लखनऊ ।

१७. काव्य निर्णय : भिखारीदास, कल्याणदास एण्ड ब्रदर्स, ज्ञानवापी, वाराणसी ।

१८. काव्य शास्त्र मार्ग-दर्शन : कृष्णकुमार रस्तोगी, एस० ई० एस० एण्ड कं०, फव्वारा, दिल्ली–६ ।

१९. काव्यांग परिचय : पं० लालधर त्रिपाठी 'प्रवासी', हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, कलकत्ता–७।

२०. काव्य के रूप : बाबू गुलाबराय, एम० ए०, आत्माराम एण्ड संस, काश्मीरी गेट, दिल्ली–६।

२१. काव्यालंकार : रुद्रट।

२२. काव्य रूपों के मूल स्रोत और उनका विकास : डा० शकुन्तला दुबे, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी।

२३. काव्यानुशासनम् : हेमचन्द्र।

२४. कृष्णा कुमारी : अम्बिका दत्त त्रिपाठी, साहित्य सागर कार्यालय, सुइथाकलाँ, जौनपुर।

२५. खड़ी बोली हिन्दी साहित्य का इतिहास : ब्रजरत्नदास, हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस।

२६. गोकुलदास : मुन्शी अजमेरी, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी।

२७. द वेल्थ एण्ड टेक्सेबिल कैपेसिटी आफ इण्डिया : शाह और खंबाना।

२८. द्विवेदी युगीन काव्य : डा० पूनमचन्द्र तिवारी, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, मालवीयनगर, भोपाल–३।

२९. द्विवेदी युगीन काव्य पर आर्यसमाज का प्रभाव : भक्तराम शर्मा, वाणी प्रकाशन, कमलानगर, दिल्ली–७।

३०. द्विवेदी युगीन साहित्य समीक्षा : डा० संकटाप्रसाद मिश्र, अन्नपूर्णा प्रकाशन, १०६।१५४, गाँधीनगर, कानपुर।

३१. द्विवेदी युग के साहित्य-कारों के कुछ पत्र : सं० बैजनाथ सिंह, हिन्दुस्तानी एकेडमी, उ० प्र०, इलाहाबाद।

३२. द्विवेदी मीमांसा : प्रेमनारायण टंडन, इण्डियन प्रेस लि०, प्रयाग।

३३. द्विवेदी युग की पृष्ठभूमि और नाथूराम शंकर : डा० वीरेन्द्र कौशिक, अनुराधा प्रकाशन, फूलबाग, मेरठ।

३४. द्विवेदी युग का हिन्दी काव्य : डा० रामसकलराम शर्मा, अनुसंधान प्रकाशन, आचार्यनगर, कानपुर–३।

३५. द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ : काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।

३६. दुर्योधन वध : जगदीशनारायण तिवारी, ११५, हरिसन रोड, कलकत्ता।

३७. पं० रामनरेश त्रिपाठी का काव्य : डा० कृष्णदत्त पालीवाल।

३८. प्रसाद-ग्रन्थावली प्रसाद वांगमय, खण्ड १ : सं० रत्नशंकर प्रसाद, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

३९. प्रसाद की काव्य प्रवृत्ति : डा० कामेश्वर प्रसाद सिंह, अनुसंधान प्रकाशन, आचार्यनगर, कानपुर–३।

४०. भारतीय काव्य शास्त्र के सिद्धान्त : डा० कृष्णदेव झारी, अशोक प्रकाशन, दिल्ली–६।

४१. भारतीय काव्यांग : डा० सत्यदेव चौधरी, साहित्य भवन।

४२. महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग : डा० उदयभानु सिंह, लखनऊ विश्व-विद्यालय।

४३. महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नव-जागरण : डा० रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

४४. महिषासुर वध : कुं० हिम्मत सिंह, इण्डियन प्रेस, लि०, प्रयाग।

४५. मिश्रबन्धु-विनाद, खंड ३-४ : मिश्र बन्धु, गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ।

४६. मैथिलीशरण गुप्त–कवि तथा भारतीय संस्कृति के आख्याता : उमाकान्त, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

४७. मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य : कमलाकान्त पाठक, रणजीत प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स, दिल्ली।

४८. मैथिलीशरण गुप्त के काव्य की अन्तर्कथाओं के स्रोत : डा० शशि अग्रवाल, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ।

४९. रसज्ञ-रंजन : आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, राष्ट्रीय हिन्दी मन्दिर, जबलपुर ।

५०. रस मीमांसा : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ।

५१. रत्नाकर की साहित्य साधना : दानबहादुर पाठक 'वर', विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा ।

५२. राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ : रा० मै० श० गु० अभिनन्दन समिति, ८७ विवेकानन्द रोड, कलकत्ता।

५३. विचार और विवेचन : डा० नगेन्द्र, गौतम बुकडिपो, नई सड़क, दिल्ली ।

५४. वांगमय विमर्ष : आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस ।

५५. सती पद्मिनी : डा० श्रीनाथ सिंह, गृहलक्ष्मी कार्यालय, प्रयाग ।

५६. साहित्यालोचन : श्यामसुन्दर दास, बी० ए०, साहित्यरत्न माला कार्यालय, काशी ।

५७ साहित्यिक-निबन्ध : राजनाथ शर्मा, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।

५८ साहित्य के रूप : चन्द्रशेखर मिश्र, वाणी वितान प्रकाशन, काशी ।

५९. साहित्य दर्पण : कविराज विश्वनाथ ।

६०. सियारामशरण गुप्त—
सृजन और मूल्यांकन : ललित शुक्ल, रणजीत प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स, दिल्ली—६ ।
६१. सुमित्रानन्दन पन्त : डा० नगेन्द्र, साहित्यरत्न भण्डार, आगरा ।
६२. हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण : कृष्णदेवप्रसाद गौड़, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ।
६३. हरिऔध की काव्य शैली : विमला अहूजा, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली—६ ।
६४. हिन्दी कविता में युगान्तर : डा० सुधीन्द्र, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली—६ ।
६५. हिन्दी के स्वीकृत शोध—प्रबन्ध : डा० उदयभानु सिंह, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली—६ ।
६६. हिन्द साहित्य का वृहत् इतिहास—नवम् भाग : नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी ।
६७. हिन्दी के मध्यकालीन खण्डकाव्य : डा० सियाराम तिवारी ।
६८. हिन्दी पुस्तक साहित्य : डा० माताप्रसाद गुप्त, हिन्दुस्तानी एकेडमी, उ० प्र०, इलाहाबाद ।
६९. हिन्दी साहित्य : युग और धारा : कृष्णनारायण प्रसाद 'मागध', भारती भवन, पटना—४ ।
७०. हिन्दी साहित्य का इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ।
७१. हिन्दी की काव्यशैलियों का विकास : डा० हरदेव बाहरी, भारतीय प्रेस प्रकाशन, इलाहाबाद ।
७२. हिन्दी काव्य-शास्त्र का इतिहास : डा० भगीरथ मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, लखनऊ ।

७३. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास : डा० शम्भूनाथ सिंह, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी।

७४. हिन्दी काव्य की सामाजिक भूमिका : डा० शम्भूनाथ सिंह, चौखम्बा, विद्याभवन, वाराणसी–१।

७५. हिन्दी साहित्य कोष (प्रथम भाग) : सं० डा० धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी–१।

